अथर्ववेद

(सायण-भाष्यावलम्बी सरल हिंदी भावार्थ सहित)



सम्पादक—
श्रीराम शर्मा आचार्य,
गायत्री तपोभूमि, मथुरा।

प्रथम संस्करण] १९६० [मूल्य-६ रुपया

प्रकाशक—

गायत्री प्रकाशन, गायत्री तपोभूमि, मथुरा।

मुद्रक—

पं० पुरुषोत्तमदास कटारे, हरीहर प्रेस, मथुरा।

दशम काण्ड



१ सूक्त [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि-प्रत्यङ्गिरसः। देवता-मन्त्रोक्ताः। छन्द-बृहती; गायत्री अनुष्टुप्; पङ्क्ति; जगती; त्रिष्टुप्; उष्णिक्; गायत्री)

यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः।
सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥ १ ॥
शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा।
सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥ २ ॥
शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता।
जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्ध्वृच्छतु ॥ ३ ॥
अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम्।
यां क्षेत्रे चक्रुर्या गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥ ४ ॥
अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते।
प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत् ॥ ५ ॥
प्रतीचीन आङ्गिरसोऽध्यक्षो नः पुरोहितः।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून् कृत्याकृतो जहि ॥ ६ ॥
यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम्।
तं कृत्येऽभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागसः ॥ ७ ॥
यस्ते परूंषि संदधौ रथस्येव ऋभुर्धिया।
तं गच्छ तत्र तेऽयनमज्ञातस्तेऽयं जनः ॥ ८ ॥

ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः ।
शम्वीदं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनःसरं तेन त्वा स्नपयामसि ।९।
यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम ।
अपैतु सर्वं मत् पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥ १० ॥

जिस कृत्या को निर्माता लोग दहेज में प्राप्त वधू के समान सजाते हैं, उस कृत्या को हम भगाते हैं, वह हमारे पास से चली जाय ॥ १ ॥ सिर, नाक, कान से युक्त निर्मित कृत्या अनेक आपत्ति वाली है, उसे हम भगाते हैं, वह हमारे पास से चली जाय ॥ २ ॥ शूद्र द्वारा की गई, राजा या स्त्रियों द्वारा की गई और मंत्रों द्वारा प्रेरित कृत्या पति द्वारा उसके भाइयों के पास भेजी गई स्त्री के समान कृत्याकारी के पास लौट जाय ॥ ३ ॥ क्षेत्र में, गौओं में और पुरुषों में की गई कृत्या को मैं इस औषधि द्वारा निर्वीर्य कर चुका हूँ ॥ ४ ॥ शपथ, शपथ देने वाले को ही प्राप्त हो, हिंसा रूप पाप उसी हिंसक के पास पहुंचे। हम कृत्या को इस प्रकार लौटाते हैं, जिससे वह कृत्याकारी की ही हिंसा कर डाले ॥ ५ ॥ हमारा पुरोहित पश्चिम का है, अङ्गिरा वंश का है। हे पुरोहित! तुम सामने आती हुई कृत्याओं को खंडित करते हुए कृत्याकारियों को ही नष्ट कर डालो ॥ ६ ॥ हे कृत्ये! जिसने तुझे मेरे पास आने को कहा है, तू उसी के पास लौट जा। हम निरपराध हैं, हमारी कामना न कर ॥ ७ ॥ हे कृत्ये! ऋभु जैसे रथ को जोड़ता है, वैसे जिसने तेरी हड्डियों को जोड़ा है, तू उसी के पास लौट जा ॥यह मनुष्य तो तुझसे परिचित भी नहीं हैं ॥ ८ ॥ हे कृत्ये! जिन अभिचार करने वालों ने तुझे पाया है। यह मंगलमय पुनःसर कृत्या को दूषित कर उसके मार्ग को उल्टा करने में समर्थ है, हम उसी से तुझे स्नान कराते हैं ॥ ९ ॥ हम जिस कृत्या को प्राप्त होकर मृतवत्सा रूप दुर्भाग्य को प्राप्त होगए हैं, हमारा वह पाप दूर हो और हमारे पास धनादि स्थित रहे ॥ १० ॥

यत् ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः ।
संदेश्यात् सर्वस्मात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ॥ ११ ॥

देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात् संदेश्यादभिनिष्कृतात् ।
मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम् ।१२।
यथा वातश्च्यावयति भूम्यारेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम् ।
एवा मत् सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥ १३ ॥
अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव ।
कर्तृन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता ॥ १४ ॥
अयं पन्थाः कृत्य इति त्वा नयामोऽभिप्रहितां प्रति त्वा प्र हिण्मः।
तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव वाहिनी विश्वरूपा कुरूटिनी ।१५
पराक् ते ज्योतिरपथं ते अर्वागन्यत्रास्मदयना कृणुष्व ।
परेणेहि नवतिं नाव्या अति दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि।१६
वातइव वृक्षान् नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम्।
कर्तृन् निवृत्येतः कृत्येऽप्रजास्त्वाय बोधय ॥ १७ ॥
यां ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचख्नुः ।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम्।१८
उपाहृतमनुबुद्धं निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम् ।
तदेतु यत आभृतं तत्राश्वइव वि वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम्।१९
स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि ।
उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि ॥ २० ॥

पितरों को देते समय जिसका नाम लिया था, उस पाप से यह औषधियाँ तुझे छुड़ावें ॥ ११ ॥ देवताओं के अपराध जन्य पाप से, पितरों का नाम लेने के पाप से, अभिनिष्कृत से और सन्देश्य से यह औषधियाँ ऋषियों के तपोबल, मन्त्रबल आदि के द्वारा तुझे छुड़ावें ॥१२॥ जैसे वायु, अन्तरिक्ष से मेघ और पृथिवी से धूलि को उड़ा देता है, वैसे ही मेरे सब पाप मंत्र बल द्वारा उड़ जाँय ॥ १३ ॥ जैसे खुली हुई गर्दभी रेंकती हुई दुलत्ती चलाती है वैसे ही हे कृत्ये ! तू मंत्र द्वारा मार खाती हुई दौड़ कर अपने करने वालों

का ही नाश कर ॥ १४ ॥ हे कृत्ये ! तुझ शत्रु द्वारा प्रेरित की हुई को हम शत्रु की ओर ही भेजते हैं । वही तेरा मार्ग है । इस कर्म द्वारा तू गाड़ी से युक्त, अनेक वीरों से सम्पन्न, शब्द करती हुई सेना के समान हमारे शत्रु पर ही झपट ॥ १५ ॥ हे कृत्ये ! शत्रुओं के पास तेरी ज्योति पहुँचे । तू हमसे दूर कहीं अपना निवास बना । तू नौकाओं द्वारा तरने योग्य दुर्गम नव्वै नदियों के पार हो । हमारी हिंसा मत कर ॥ १६ ॥ जैसे वायु पेड़ों को तोड़ डालता है, वैसे ही तू शत्रुओं को तोड़ डाल । उन शत्रुओं के गौ, घोड़े और पुरुष को बाकी न रख । तू अपने करने वालों को सन्तान-हीन होने की सूचना देती हुई यहाँ से दूर हो ॥ १७ ॥ हे कृत्ये ! तुझे अग्नि में, श्मसान या क्षेत्र में गुप्त रीति से अभिचारकों ने किया है अथवा गार्हपत्य अग्नि में किया है । मैं निरपराध पुरुष उसे निर्बल करता हूँ ।१८। कपट पूर्वक किये जाने वाले वैर को हम कर्त्ता को ही प्राप्त कराते हैं, वह जहाँ से आया है, अश्व के समान वहीं जाय और कृत्याकारी की संतान को ही नष्ट करे ॥ १९ ॥ हे कृत्ये ! हम तेरे अस्थिपर्व के जानने वाले हैं, हमारे घर में श्रेष्ठ लौह की तलवारें हैं । इस लिए तू यहाँ से शीघ्र ही हमारे शत्रु के पास भाग । तू हम से अपरिचित है अतः यहाँ क्या कामना करती है ? ॥ २० ॥

ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव ।
इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजापती ॥ २१ ॥
सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥२२॥
भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते । दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम्।२३
यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सेतोष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥ २४ ॥
अभ्यक्ताक्तास्वरंकृतासर्वं भरन्ती दुरितं परेहि ।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥ २५ ॥
परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय ।
मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति ॥ २६ ॥

उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा ।
उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति ॥ २७ ॥
एतद्धि शृणु मे वचोऽथेहि यत एयथ ।
यस्त्वा चकार तं प्रति । २८ ॥
अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः ।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव ।२९
यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिताइव ।
सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥ ३० ॥
कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून् कृत्याकृतो जहि ॥ ३१ ॥
यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून् ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि।३२।

हे कृत्ये ! मैं तेरा गला और दोनों पाँव काटने को उद्यत हूँ अतः तू यहाँ से चली जा । प्रजाओं के पालन करने वाले इन्द्राग्नि मेरी रक्षा करें ॥ २१ ॥ यह सोम प्राणियों के स्वामी तथा सुख देने वाले हैं, अतः वे हम को भी सुख प्रदान करें ॥ २२ ॥ भव और शर्व नामक देवता कृत्याकारी कुकर्मी पर देवताओं के शस्त्र रूप विद्युत का प्रेरण करें ॥ २३ ॥ हे कृत्ये ! तू कृत्याकारी द्वारा दो या चार पैर वालों में भरी गई है, यदि तू यहाँ आ रही है तो आठ पैर वाली होकर लौट जा ॥ २४ ॥ हे कृत्ये ! तू घृत में तर और भले प्रकार सजी हुई दुष्कृत्यों के करने वाली है । जैसे पुत्री अपने पिता को जानती है, वैसे ही तू अपने उत्पन्न करने वाले को जानती हुई हम से दूर हट ॥ २५ ॥ हे कृत्ये ! तू यहाँ मत रुक, दूर चली जा । जैसे सिंह बिंधे हुए मृग के स्थान की ओर जाता है, वैसे ही तू शत्रु के स्थान पर जा । तेरा प्रयोग-कर्त्ता मृग रूप है और तू सिंह रूप है, इस लिए वह तुझे नष्ट करने में समर्थ नहीं है ॥ २६ ॥ पहले बैठे हुए को दूसरा व्यक्ति बाण से नष्ट करता है और पहले मारने वाले मनुष्य को दूसरा मनुष्य हत्या कर देता है ॥ २७ ॥ मेरे

इस वचन को सुनती हुई तू जहाँ से चली है, वहीं लौट। जिसने तुझे किया है, उसी को प्राप्त हो ॥ २८ ॥ हे कृत्ये ! निरपराध की हत्या करना भयंकर कर्म है, इस लिए तू हमारे गवादि पशुओं और पुरुषों की हत्या न कर। तुझे जहाँ जहाँ प्रतिष्ठित किया गया है, वहाँ-वहाँ से तुझे हम उठाते हैं। तू पत्ते से भी हलकी हो ॥ २९ ॥ हे कृत्याओ ! तुम यदि जाल से या अन्धकार से ढकी हुई हो तो हम उन सब कृत्याओं को यहाँ से लुप्त करते हुए कृत्याकारी के पास ही पुनः भेजते हैं ॥ ३० ॥ हे कृत्ये ! तू कपट करने वाले अभिचारी की सन्तानों को नष्ट कर डाल। इन कृत्याकारियों को भी ना कर दे ॥ ३१ ॥ जैसे सूर्य अन्धकार से छूट जाता है और रात्रि उत्पन्न कर वाले तथा उषा के उत्पत्ति कारणों का भी त्याग कर देता है तथा जैसे हाथ रज को झाड़ देता है, वैसे ही मैं कृत्या कर्म करने वाले के पाप को पूरी तर झाड़ता हूँ ॥ ३२ ॥

२ सूक्त

(ऋषि—नारायणः। देवता—पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्। छन्द—त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्; जगती; बृहती;)

केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ।
केनांगुलीः पेशनीः केन खानि केनोच्छ्लङ्खौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ।१
कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्नष्ठीवन्तावुत्तरौ पूरुषस्य।
जङ्घे निर्ऋत्य न्यदधुः क्व स्विज्जानुनोः सन्धी क उ तच्चिकेत ।।२।।
चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम्।
श्रोणी यदूरू क उ तज्जजान याभ्यां कुसिन्धं सुदृढं बभूव ।।३।।
कति देवाः कतमे त आसन् य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य।
कति स्तनौ व्यदधुः कः कफोडौ कति स्कन्धान् कति पृष्टीरचिन्वन् ।४।
को अस्य बाहू समभरद्वीर्यं करवादिति।
अंसौ को अस्य तद् देवः कुसिन्धे अध्या दधौ ॥ ५ ॥

कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम् ।
येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥६॥
हन्वोर्हि जिह्वामदधात् पुरूचीमधा महीमधि शिश्राय वाचम् ।
स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरपो वसानः क उ तच्चिकेत ॥ ७ ॥
मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटं ककाटिकां प्रथमो यः कपालम् ।
चित्वा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य दिवं रुरोह कतमः स देवः ॥ ८ ॥
प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संबाधतन्द्र्यः ।
आनन्दानुग्रो नन्दांश्च कस्माद् वहति पूरुषः ॥ ९ ॥
आर्तिरवर्तिर्निर्ऋतिः कुतो नु पुरुषेऽमतिः ।
राद्धिः समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः ॥ १० ॥

मनुष्य की एड़ियों को, टखनों को और मांस को किसने पुष्ट किया, सुन्दर उंगलियों का किसने पोषण किया ? इन्द्रियों को मध्य में किसने प्रतिष्ठित किया ? ॥ १ ॥ नीचे के टखनों को देवताओं ने किससे बनाया, ऊरु तथा पाँव की मध्यस्थ जांघों को किसने बनाया, जाँघों को निर्ऋति करके किससे बनाया, जाँघों का जोड़ कहाँ है, उसे कौन जानता है ? ॥ २ ॥ जाँघों के ऊपर का भाग, शिथिर, कंधे, संहितान्त यह चारों मिलते हैं, जिनसे कुसिंध दृढ़ हुआ उन श्रोणी और ऊरुओं का ज्ञाता कौन है ? ॥३॥ जो पुरुष के कंठ और हृदय को जानते हैं वे देवता कितने हैं ? तथा कितने प्रकार के हैं ? स्तनों को, कफोड़ों को, कंधों को किसने-किसने देवताओं ने बनाया और किसने देवताओं ने पृष्टियों की कल्पना की ? ॥ ४ ॥ किस देवता ने इसके वीर्य को पुष्ट किया, किस देवता ने कंधों को और किसने भुजाओं को दृढ़ किया तथा किस देवता ने कुसिंध पर स्थापित किया ? ॥ ५ ॥ मनुष्य के शिर में दो कान, दो नथुने, दो नेत्र, एक मुख, इन सात छेदों को शिर को फाड़ कर किस देवता ने किया । दो पैर वाले और चार पैर वाले प्राणी इन देवताओं की महिमा से अनेक स्थानों में होते हुए यम-स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ अनेक स्थानों को प्राप्त होने वाली जीभ को ठोड़ी में किसने स्थापित किया ?

किसने उसमें वाणी को स्थित किया ? जल का धारक वह देवता जीवों के भीतर विचरता है, उसका ज्ञाता कौन है ? ॥ ७ ॥ मस्तिष्क का जो भाग ललाट है, ककाटिका और कपाल तथा हनुओं के संचय योग्य अंश का चयन करके जो प्रथम देवता स्वर्ग को गया, वह देवता कौन-सा है ? ॥ ८ ॥ इस पुरुष के स्वप्न को प्रिय और अप्रिय वाणीको संवाधनइन्द्रियों को और आनन्दों को कौन सा देवता धारण करने वाला है ? ॥ ९ ॥ इस पुरुष में पाप, आजीविका-विरोधी तत्व, संताप आदि कहाँ से प्राप्त होते हैं और ऋद्धि, सिद्धि, समृद्धि, वुद्धि और उदिति को वह कहाँ से प्राप्त करता है ? ॥ १० ॥

को अस्मिन्नापो व्यदधाद् विषूवृतः पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः ।
तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रधूम्रा ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः ।११।
को अस्मिन् रूपमदधात् को मह्मानं च नाम च ।
गातुं को अस्मिन् कः केतुं कश्चरित्राणि पूरुषे ।। १२ ॥
को अस्मिन् प्राणमवयत् को अपानं व्यानमु ।
समानमस्मिन् को देवोऽधि शिश्राय पूरुषे ॥ १३ ॥
को अस्मिन् यज्ञमदधादेको देवोऽधि पूरुषे ।
को अस्मिन्त्सत्यं कोऽनृतं कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् ॥ १४ ॥
को अस्मै वासः पर्यदधात् को अस्यायुरकल्पयत् ।
बलं को अस्मै प्रायच्छत् को अस्याकल्पयज्जवम् ॥ १५ ॥
केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद् रुचे ।
उषसं केनान्वैन्द्ध केन सायंभवं ददे ॥ १६ ॥
को अस्मिन् रेतो न्यदधात् तन्तुरा तायतामिति ।
मेधां को अस्मिन्नध्यौहत् को बाणं को नृतो दधौ ॥ १७ ॥
केनेमां भूमिमौर्णोत् केन पर्यभवद् दिवम् ।
केनाभि मह्ना पर्वतान् केन कर्माणि पूरुषः ॥ १८ ॥
केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम् ।

केन यज्ञं च श्रद्धां च केनास्मिन् निहितं मनः ॥ १९ ॥
केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम् ।
केनेममग्निं पूरुषः केन संवत्सरं ममे ॥ २० ॥

जो जल अनेकों का वरण करने वाले, सर्वत्र वर्तमान, सागर की ओर प्रवाहमान हैं, उन जलों को अरुण, लोहित, ताम्र धूम्र रंग में ऊपर, नीचे और तिरछे जाने के निमित्त पुरुष में किसने प्रविष्ट किया ? ॥ ११ ॥ इस पुरुष में रूप, महिमा, ज्ञान, चरित्र, नाम और गति की किस देवता ने स्थापना की ? ॥ १२ ॥ प्राण, अपान, व्यान, समान वायु को इस पुरुष में किस देवता ने स्थापित किया ? ॥ १३ ॥ यज्ञ रूप कर्म को किस प्रधान देवता ने इसमें स्थापित किया है ? मरण, अमरण, सत्य और मिथ्या को इस पुरुष में किसने प्रतिष्ठित किया ? ॥ १४ ॥ जिस चर्म से देह ढका है, उसे इसमें किसने लगाया, इसमें बल, वेग और आयु की किसने कल्पना की ? ॥ १५ ॥ किस देवता ने इसमें जल को प्रवृद्ध किया, किसके द्वारा इसके लिए प्रकाश युक्त दिन को बनाया, किसके द्वारा उषा उज्वले की गई और किसके द्वारा सायंकाल की रचना की गई ? ॥ १६ ॥ प्रजाओं के विस्तारार्थ वीर्य की स्थापना किसने की, किसने इसमें बुद्धि प्रतिष्ठित की और वाण को किसने स्थापित किया ? ॥ १७ ॥ किस प्रभाव से इसने भूमि को आवृत्त किया, किस प्रभाव से यह स्वर्ग पर चढ़ता है। किस प्रभाव से पर्वतादि पर चढ़ता और कर्मों को करता है ? ॥ १८ ॥ किससे यह पर्जन्य को तथा किस से सोम को पाता है, किसके द्वारा यज्ञ और श्रद्धा को प्राप्त होता है, किससे इसका मन सत्कर्म की ओर प्रेरित होता है ? ॥ १९ ॥ किसके द्वारा यह श्रोत्रिय को, किसके द्वारा परमेष्ठी को, किसके द्वारा अग्नि को प्राप्त हो रहा है ? किस के द्वारा यह संवत्सर की गणना कर रहा है ? ॥ २० ॥

ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम् ।
ब्रह्मेममग्निं पूरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे ॥ २१ ॥

केन देवाँ अनु क्षियति केन दैवजनीर्विशः ।
केनेदमन्यन्नक्षत्रं केन सत् क्षत्रमुच्यते ॥ २२ ॥

ब्रह्म देवाँ अनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः ।
ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत् क्षत्रमुच्यते ॥ २३ ॥

केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता ।
केनेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥ २४ ॥

ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता ।
ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥ २५ ॥

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः ॥ २६ ॥

तद् वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः ।
तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः ॥ २७ ॥

ऊर्ध्वो नु सृष्टास्तिर्यङ् नु सृष्टाः सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवाँ ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ २८ ॥

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥ २९ ॥

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ ३० ॥

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥ ३१ ॥

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ३२ ॥

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम् ।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥ ३३ ॥

श्रोत्रिय, परमेष्ठी और अग्नि को ब्रह्म ही प्राप्त हो रहा है और ब्रह्म ही संवत्सर की गणना कर रहा है ॥ २१ ॥ किस कर्म से मनुष्य देवताओं के अनुकूल रह सकता है, किस कर्म से देव-प्रजाओं के अनुकूल रहता है, किस के द्वारा क्षत्र नहीं होता, किसमें सत् क्षत्र बन जाता है ? ॥ २२ ॥ मंत्र ही देवानुकूल रहता है, मंत्र ही देव-प्रजाओं के अनुकूल होता है। यह ब्रह्म ही है, सत् ब्रह्म को ही क्षत्र कहते हैं ॥ २३ ॥ इस भूमि का प्रतिष्ठाता कौन है ? उत्तर द्यौ, ऊपर का भाग और तिर्यक् भाग की स्थापना किसने की ? इस अनेक प्राणियों के गमन योग्य अंतरिक्ष की रचना किसने की ? ॥ २४ ॥ ब्रह्म ने ही पृथिवी, द्यौ, ऊपर का भाग, तिर्यक् भाग और गमन योग्य अन्तरिक्ष की रचना की है ॥ २५ ॥ प्रजापति ने इसके शिर और हृदय को सींकर मिलाया। उस ऊर्ध्व पवमान ने शीर्ष स्थान से और हृदय से ही प्रेरणा की ॥ २६ ॥ यह अथर्वा प्रदत्त शिर सरलता से प्रतिष्ठित है, यह देवताओं का कोश रूप है। प्राण, अन्न और मन उस शिर की रक्षा करते हैं ॥ २७ ॥ पुरुष जिस ब्रह्म का कहा जाता है, उसकी पुरी को जानता हुआ वह ऊर्ध्व, तिर्यक् आदि समस्त क्रियाओं में प्रकट हो जाता और अपने प्रभाव को भी उत्पन्न करता है ॥ २८ ॥ जो पुरुष ब्रह्म की उस अमरणतत्त्व से सम्पन्न पुरी को जानता है उसे ब्रह्म और मन्त्र युक्त कर्म नेत्र, प्राण और संतति प्रदान करते हैं ॥ २९ ॥ ब्रह्म की जिस पुरी में शयन करने के कारण पुरुष जिसका कहा जाता है, उसे जो जानता है, उस पुरुष का साथ प्राण और नेत्र वृद्धावस्था से पूर्व नहीं छोड़ते ॥ ३० ॥ आठ चक्र, नौ द्वार वाली देवताओं की अयोध्या नगरी है। उसमें स्वर्ग के देने वाला हिरण्यमय ज्योति से पूरी तरह ढका हुआ है ॥ ३१ ॥ उस हिरण्यमय कोश में पूजन के योग्य आत्मा का जो स्थान है, उसे ब्रह्म के जानने वाले भले प्रकार जानते हैं ॥३२॥ पाप का नाश करने वाले, यशस्वी होने के कारण दमकते हुए, कभी भी पराजित न हुए हिरण्यमय पुर में ब्रह्म प्रविष्ट होता है ॥ ३३ ॥

३ सूक्त [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि—अथर्वा । देवता—वरणमणिः, वनस्पतिः । छन्द—अनुष्टुप्;
त्रिष्टुप्, पङ्क्ति, जगती)

अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा ।
तेना रभस्व त्वं शत्रून् प्र मृणीहि दुरस्यतः ॥ १ ॥
प्रैणाञ्छृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरएता पुरस्तात् ।
अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वःश्वः ॥ २ ॥
अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः ।
स ते शत्रूनधरान् पादयाति पूर्वस्तान् दभ्नुहि ये त्वा द्विषन्ति ॥३
अयं ते कृत्यां विततां पौरुषेयादयं भयात् ।
अयं त्वा सर्वस्मात् पापाद् वरणो वारयिष्यते ॥ ४ ॥
वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥ ५ ॥
स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यदि धावादजुष्टाम्।
परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते ॥६॥
अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात् ।
मृत्योरोजीयसो वधाद् वरणो वारयिष्यते ॥ ७ ॥
यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरो यच्च मे स्वा यदेनश्चकृमा वयम् ।
ततो नो वारयिष्यतेऽयं देवो वनस्पतिः ॥ ८ ॥
वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः ।
असूर्तं रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधमं तमः ॥ ९ ॥
अरिष्टोऽहमरिष्टगुरायुष्मान्त्सर्वपूरुषः ।
तं मायं वरणो मणिः परि पातु दिशोदिशः ॥ १० ॥

यह वरण वृक्ष की मणि शत्रुओं का नाश करने में समर्थ है और इच्छित फलों की वर्षा करने वाली है। तू उसके द्वारा उद्योग करता हुआ दुष्टता करने वाले वैरियों को नष्ट कर डाल ॥ १ ॥ यह मणि तेरे अभियान में आगे-आगे चले। तू इन शत्रुओं का मर्दन कर, इनको वशीभूत कर। इस वरण मणि की सहायता से देवतागण राक्षसों के अभिचारात्मक कृत्यों को दूसरे दिन ही नष्ट कर देते थे ॥ २ ॥ यह मणि सब दुखों की चिकित्सा के समान है, यह सहस्राक्ष के समान पराक्रम वाली है, यह रमणीय हित वाली हरे रङ्ग की मणि तेरे शत्रुओं का पतन करेगी, तुरन्त तू अपने शत्रुओं का संहार कर डाल ॥ ३ ॥ तेरे लिये विस्तृत की गई कृत्या को यह धारण मणि शांत कर देगी, किसी पुरुष द्वारा प्राप्त होने वाले भय की शङ्का को मिटाती हुई यह मणि तुझे समस्त पापों से पृथक् रखेगी ॥ ४ ॥ यह सम्मुख प्राप्त दानादि गुण से सम्पन्न वरण मणि, हमारे रोग और शत्रु आदि को दूर करे। इस पुरुष में जिस यक्ष्मा आदि ने प्रवेश किया है, उसे देवगण शान्त करें ॥ ५ ॥ हे पुरुष! पापमय स्वप्न का भय, अप्रीतिकर दिशा की ओर मृग का गमन, छींक, काकादि पक्षियों के द्वारा प्राप्त अपशकुनों से यह वरण मणि तेरी रक्षा करेगी ॥ ६ ॥ हे पुरुष! यह मणि शत्रु, पाप, अभिचार आदि के भय और मृत्यु के प्रबल कृत्यों से तेरी रक्षा करेगी ॥ ७ ॥ यह वनस्पति रूप मणि मेरी माता, पिता, भ्राता तथा अन्य आत्मीयजनों ने जो पाप किया है, उससे बचावेगी॥८॥ मेरे गोत्रीय बन्धु रूप शत्रु इस वरण मणि के द्वारा व्यथा को प्राप्त हो रहे हैं, वे विस्तृत रज को प्राप्त हुए भीषण अन्धकार में पतित हों ॥ ॥ ९ ॥ मैं हिंसा से रहित होकर शान्ति प्राप्त कर रहा हूं। मैं पुत्र, भृत्यादि से सम्पन्न होता हुआ आयुष्मान बनूँ। यह वरण मणि दिशा-प्रदिशा में सर्वत्र मेरी रक्षक हो ॥ १० ॥

अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः।
स मे शत्रून् वि बाधतामिन्द्रो दस्यूनिवासुरान् ॥ ११ ॥
इमं बिभर्मि वरणमायुष्मान्छतशारदः।
स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत् ॥१२॥

यथा वातो वनस्पतीन् वृक्षान् भनक्त्योजसा ।
एवा सपत्नान् मे भङ्ग्धि पूर्वाञ्जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु॥१३
यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षान् प्सातो वनस्पतीन्
एवा सपत्नान् मे प्साहि पूर्वाञ्जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥१४
यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्यर्पिताः ।
एवा सपत्नांस्त्वं मम प्र क्षिणीहि न्यर्पय पूर्वाञ्जाताँ
उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥ १५ ॥
तांस्त्वं प्र च्छिन्द्धि वरण पुरा दिष्टात् पुरायुषः ।
य एनं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः ॥ १६ ॥
यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन् तेज आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ १७ ॥
यथा यशश्चन्द्रमस्यादित्ये च नृचक्षसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ १८ ॥
यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिञ्जातवेदसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ १९ ॥
यथा यशः कन्यायां यथास्मिन्त्संभृते रथे ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २० ॥

यह दानादि गुण सम्पन्न वनस्पति निर्मित वरण मणि दमकती हुई मेरे हृदय में प्रतिष्ठित है। जैसे इन्द्र राक्षसों को दुःख देते हैं, वैसे ही यह मेरे शत्रुओं और दस्युओं को बाधक हो ॥ ११ ॥ यह वरणमणि मुझमें राष्ट्र, पशु,

बल तथा रक्षा-साधनों की स्थापना करे। मैं इस मणि को सौ वर्ष की आयु प्राप्त करने के निमित्त धारण करता हूं ॥ १२ ॥ वायु अपने बल से वनस्पतियों और वृक्षों को तोड़ फेंकता है, वैसे ही यह मणि मेरे पहिले के और पीछे के शत्रुओं का संहार करे यह वरणमणि मेरी रक्षा करने वाली हो ॥ १३ ॥ जैसे वायु और अग्नि वनस्पतियों के पास जाकर उन्हें भस्म कर डालते हैं वैसे ही हे वरण मणि! तू मेरे पूर्वोत्पन्न तथा पीछे उत्पन्न होने वाले शत्रुओं का संहार कर। यह मणि मेरी रक्षा करे ॥ १४ ॥ वायु से सूखे हुए वृक्ष जैसे गिरकर पृथिवी पर लेट जाते हैं, वैसे ही हे वरणमणि! तू मेरे पहिले-पीछे के शत्रुओं को सुलाकर पतित कर। यह वरण मणि मेरी रक्षक हो ॥ १५ ॥ हे वरणमणि! जो इस यजमान के पशु और राष्ट्र का अपहरण करने की इच्छा करते हैं, तू उनकी आयु और भाग्य को पहले ही छीनकर नष्ट कर डाल ॥ १६ ॥ जैसे यह सूर्य अत्यन्त प्रकाशमान है, जैसे यह अत्यन्त तेजस्वी है, वैसे ही यह मणि मुझे यश और तेज प्रदान करे। मैं यश और तेज से पूर्णतया सम्पन्न होऊँ ॥ १७ ॥ सब प्राणियों के साक्षिरूप चन्द्रमा में जैसे यश प्रतिष्ठित है, वैसे ही यह मणि मुझे यश और तेज से युक्त करे ॥ १८ ॥ जैसे पृथिवी में और अग्नि में यश प्रतिष्ठित है, वैसे ही यह वरण मणि मुझे यश और तेज प्रदान करती हुई सम्पन्न बनावे ॥ १९ ॥ जैसे कन्या यशस्विनी है, संभृत रथ में यश वर्तमान है, वैसे ही यह मणि मुझे यश और तेज से युक्त करे ॥ २० ॥

यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २१ ॥

यथा यशोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २२ ॥

यथा यशो यजमाने यथास्मिन् यज्ञ आहितम् ।

एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा

समुक्षंतु यशसा समनक्तु मा ॥ २३ ॥

यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन् परमेष्ठिनि ।

एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा

समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २४ ॥

यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम् ।

एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा

समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २५ ॥

जैसे सोमपीथ और मधुपर्क में यश है, वैसे ही यह मणि मुझ में यश और तेज स्थापित करे ॥ २१ ॥ जैसे अग्निहोत्र और वषट्कार में यश है, वैसे ही वह वरणमणि मुझे यश और तेज में प्रतिष्ठित करे ॥ २२ ॥ जैसा यश यजमान में होता है, जैसे इस यजमान में यज्ञ प्रतिष्ठित होता है, वैसे ही यह वरणमणि मुझे तेज और यश में प्रतिष्ठित करे ॥ २३ ॥ जैसे प्रजापति और परमेष्ठी में यश है, वैसे ही यह वरणमणि मुझे यश और तेज प्रदान करने वाली हो ॥ २४ ॥ जैसे देवताओं में अमृत और सत्य प्रतिष्ठित है, वैसे ही वरणमणि मुझे यश और भूति दे तथा तेज और यश में प्रतिष्ठित करने वाली हो ॥ २५ ॥

४ सूक्त

(ऋषि—गरुत्मान् । देवता—सर्पविषापाकरणम् । छन्दः—पङ्क्तिः; गायत्री; बृहती; अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्)

इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरुणस्य तृतीय इत् ।

अहीनामपमा रथः स्थाणुमारदथार्षत् ॥ १ ॥

दर्भः शोचिस्तरूणकमश्वस्य वारः परुषस्य वारः ।

रथस्य बन्धुरम् ॥ २ ॥

अव श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च ।
उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ॥ ३ ॥
अरंघुषो निमज्योन्मज्य पुनरब्रवीत् ।
उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ॥ ४ ॥
पैद्वो हन्ति कसर्णीलं पैद्वः श्वित्रमुतासितम् ।
पैद्वो रथर्व्याः शिरः सं बिभेद पृदाक्वाः ॥ ५ ॥
पैद्व प्रेहि प्रथमोऽनु त्वा वयमेमसि ।
अहीन् व्यस्यतात् पथो येन स्मा वयमेमसि ॥ ६ ॥
इदं पैद्वो अजायतेदमस्य परायणम् ।
इमान्यर्वतः पदाहिघ्न्यो वाजिनीवतः ॥ ७ ॥
संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमत् ।
अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा ॥ ८ ॥
अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके ।
घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम् ॥ ९ ॥
अघाश्वस्येदं भेषजमुभयोः स्वजस्य च ।
इन्द्रो मेऽहिमघायन्तमहिं पैद्वो अरन्धयत् ॥ १० ॥

इन्द्र का प्रथम रथ, देवताओं का द्वितीय रथ, वरुण का तृतीय रथ है। सर्पों का अपमा नामक रथ है जो स्थाणु में भी गमनशील है। वह फिर भाग जाता है ॥ १ ॥ यह दर्भ सर्पों को शोकप्रद है, तरूणक और अश्व नामक सर्प के विष को रोकता, परुष नामक विष को दूर करता है, रथ का बंधुर है ॥ २ ॥ हे श्वेत सर्प! तू अपने पूर्व पद और अपर पद द्वारा सर्पों का नाश कर। जैसे गिरता हुआ काष्ट होता है, वैसे ही सर्प विष निर्वीर्य हो गया है। तू इस भीषण विष को शांत कर ॥ ३ ॥ अरंघुष गोता लगा कर निकला और कहा कि उतराते हुए काष्ठ के समान सर्पों का विष निर्वीर्य होगया है। तू इस सर्प के विष को दूर कर ॥ ४ ॥ पैद्व कसर्णील सर्प को, श्वेत औ

एवा मे वरणो मणिः कीर्ति भूर्ति नि यच्छतु तेजसा मा
समुक्षंतु यशसा समनक्तु मा ॥ २३ ॥
यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन् परमेष्ठिनि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्ति भूर्ति नि यच्छतु तेजसा मा
समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २४ ॥
यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्ति भूर्ति नि यच्छतु तेजसा मा
समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २५ ॥

जैसे सोमपीथ और मधुपर्क में यश है, वैसे ही यह मणि मुझ में यश और तेज स्थापित करे ॥ २१ ॥ जैसे अग्निहोत्र और वषट्कार में यश है, वैसे ही यह वरणमणि मुझे यश और तेज में प्रतिष्ठित करे ॥ २२ ॥ जैसा यश यजमान में होता है, जैसे इस यजमान में यज्ञ प्रतिष्ठित होता है, वैसे ही यह वरणमणि मुझे तेज और यश में प्रतिष्ठित करे ॥ २३ ॥ जैसे प्रजापति और परमेष्ठी में यश है, वैसे ही यह वरणमणि मुझे यश और तेज प्रदान करने वाली हो ॥ २४ ॥ जैसे देवताओं में अमृत और सत्य प्रतिष्ठित है, वैसे ही यह वरणमणि मुझे यश और भूति दे तथा तेज और यश में प्रतिष्ठित करने वाली हो ॥ २५ ॥

४ सूक्त

(ऋषि—गरुत्मान् । देवता—सर्पविषापाकरणम् । छन्दः—पङ्क्तिः; गायत्री; बृहती; अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्)

इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरुणस्य तृतीय इत् ।
अहीनामपमा रथः स्थाणुमारदथार्षत् ॥ १ ॥
दर्भः शोचिस्तरूणकमश्वस्य वारः परुषस्य वारः ।
रथस्य बन्धुरम् ॥ २ ॥

अव श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च ।
उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ॥ ३ ॥
अरंघुषो निमज्योन्मज्य पुनरब्रवीत् ।
उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ॥ ४ ॥
पैद्वो हन्ति कसर्णीलं पैद्वः श्वित्रमुतासितम् ।
पैद्वो रथर्व्याः शिरः सं बिभेद पृदाक्वाः ॥ ५ ॥
पैद्व प्रेहि प्रथमोऽनु त्वा वयमेमसि ।
अहीन् व्यस्यतात् पथो येन स्मा वयमेमसि ॥ ६ ॥
इदं पैद्वो अजायतेदमस्य परायणम् ।
इमान्यर्वतः पदाहिघ्न्यो वाजिनीवतः ॥ ७ ॥
संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमत् ।
अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा ॥ ८ ॥
अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके ।
घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम् ॥ ९ ॥
अघाश्वस्येदं भेषजमुभयोः स्वजस्य च ।
इन्द्रो मेऽहिमघायन्तमहिं पैद्वो अरन्धयत् ॥ १० ॥

इन्द्र का प्रथम रथ, देवताओं का द्वितीय रथ, वरुण का तृतीय रथ है। सर्पों का अपमा नामक रथ है जो स्थाणु में भी गमनशील है। वह फिर भाग जाता है ॥ १ ॥ यह दर्भ सर्पों को शोकप्रद है, वल्मीक और अश्व नामक सर्प के विष को रोकता, परुष नामक विष को दूर करता है, रथ का बंधुर है ॥ २ ॥ हे श्वेत सर्प ! तू अपने पूर्व पद और अपर पद द्वारा सर्पों का नाश कर। जैसे गिरता हुआ काष्ठ होता है, वैसे ही सर्प विष निर्वीर्य हो गया है। तू इस भीषण विष को शांत कर ॥ ३ ॥ अरंघुष गोता लगा कर निकला और कहा कि उतराते हुए काष्ठ के समान सर्पों का विष निर्वीर्य होगया है। तू इस सर्प के विष को दूर कर ॥ ४ ॥ पैद्व कसर्णील सर्प को, श्वेत और काले

को नष्ट कर डालता है। पैद्व ने रथर्व्वी और पृदाकु के शिर को तोड़ दिया था ॥ ५ ॥ हे पैद्व ! तू श्रेष्ठ है, हम तेरी प्रार्थना करते हैं। तू यहाँ आ। जिस मार्ग से हम गमन करने के इच्छुक हैं, तू उस मार्ग से सर्पों को दूर फेंक ॥ ६ ॥ सर्पों का नाश करने वाला पैद्व प्रत्यक्ष है, यह इसका पारायण है। वह इन शीघ्र चलने वाले विकूर्मों का वर्तने वाला है ॥ ७ ॥ हमारे लिये काटने को सर्प का बंद मुख न खुले और खुला मुख बंद न हो। इस क्षेत्र के नर और मादा दोनों प्रकार के सर्प मंत्र की शक्ति द्वारा निर्वीर्य हों ॥ ८ ॥ पास के और दूर के सर्प विष-हीन हों। इन आये हुए सर्पों को डण्डे से मारता हूँ। मैं बिच्छू को मुद्गर से कुचलता हूँ ॥ ९ ॥ अघाश्व और अकारण उत्पन्न होने वाले स्वज इन दोनों की औषधि मेरे पास है। हिंसात्मक पाप की इच्छा वाले सर्प के निमित्त इन्द्रदेव ने पैद्व को मेरे वश में किया है ॥ १० ॥

पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधाम्नः ।
इमे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते ॥ ११ ॥
नष्टासवो नष्टविषा हता इन्द्रेण वज्रिणा ।
जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम् ॥ १२ ॥
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ।
दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि ॥ १३ ॥
कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम् ।
हिरण्ययीभिरभ्रिभिर्गिरीणामुप सानुषु ॥ १४ ॥
आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहापराजितः ।
स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च ॥ १५ ॥
इन्द्रो मेऽहिमरन्धयन्मित्रश्च वरुणश्च । वातापर्जन्योभा ॥१६॥
इन्द्रो मेऽहिमरन्धयत् पृदाकुं च पृदाक्वम् ।
स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम् ॥ १७ ॥
इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव ।

तेषामु न्द्यमाणानां कः स्वित् तेपामसद् रसः ॥ १८ ॥
सं हि शीर्षाण्यग्रभं पौञ्जिष्ठइव कर्वरम् ।
सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यनिजमहेर्विषम् ॥ १९ ॥
अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धवः ।
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ॥ २० ॥

यह पैद्व स्थिर प्रभाव से युक्त है। इसके कारण यह सर्प शोक करते रहते हैं ॥ ११ ॥ इन सर्पों के विष और प्राण को वज्रिन इन्द्र ने नष्ट कर दिया था। यह इन्द्र के मारे हुए हैं, इन्हें अब हम मारते हैं ॥ १२ ॥ तिर्यक् बलवेटे वाले तिरश्चिराज नामक सर्प मन्त्र की शक्ति से नष्ट हुए, पृदाकु नामक सर्प भी कुचल दिये गए। तू करिक्रत, सफेद और कृष्ण सर्प को कुशाओं में रख कर नष्ट कर ॥ १३ ॥ 'सका कुमारी' किरातों के देशों में अवस्थित है। वह खोदने के सुवर्ण-आयुध द्वारा पर्वतों की चोटी पर औषधियों को खोदती है ॥ १४ ॥ यह युवा वैद्य कभी पराजित नहीं हुआ। इस में मंत्र शक्ति व्याप्त है। यह स्वज नामक सर्प और बिच्छू दोनों को नष्ट करने में समर्थ है ॥ १५ ॥ इन्द्र, वायु, मित्र, वरुण और पर्जन्यद्वय ने सर्प को वशीभूत कर लिया ॥ १६ ॥ पृदाकु, पृदाक्व, स्वज, तिरश्चिराज, कसर्णील और दशोनसि नामक सर्प को मेरे मंगल के हेतु इन्द्र ने वश में कर लिया ॥ १७ ॥ हे सर्प! तेरे उत्पत्तिकर्त्ता को इन्द्र ने पहले नष्ट कर दिया था। उन सर्पों के संहार के समय कौन-सा सर्प शक्तिशाली रहा था? ॥१८॥ कर्वर को पौञ्जिष्ठ जैसे ग्रहण करता है, वैसे ही मैंने सिंधु में लौट कर सर्प-विष का शोधन कर दिया ॥ १९ ॥ सब नदियाँ सर्पों के विष को बहा ले जाँय, तिरश्चिराज नामक सर्प नष्ट होगए, पृदाकु नामक सर्प इस मंत्र के बल से पीस दिए जाँय ॥ २० ॥

ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया ।
नयाम्यर्वतीरिवाहे निरैतु ते विषम् ॥ २१ ॥

यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु तत् ।
कान्दाविषं कनक्नकं निरैत्वैतु ते विषम् ॥ २२ ॥
ये अग्निजा ओषधिजा अहीनां ये अप्सुजा विद्युत आवभूः
येषां जातानि वहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधे
तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि ।
अधस्पदेन ते पदमा ददे विषदूषणम् ॥ २४ ॥
अङ्गादङ्गात् प्र च्यावय हृदयं परि वर्जय ।
अधा विषस्य यत् तेजोऽवाचीनं तदेतु ते ॥ २५ ॥
आरे अभूद् विषमरौद् विषे विषमप्रागपि ।
अग्निर्विषमहेर्निरधात् सोमो निरणयीत् ।
दंष्टारमन्वगाद् विषमहिरमृत ॥ २६ ॥

मैं अपनी सद्बुद्धि द्वारा उर्वरी औषधियों को वरण कर शीघ्र वेग वाली नदियों के समान प्रेरित करता हूँ, उससे हे सर्प ! तेरा विष दूर हो ॥ २१ ॥ सूर्य, अग्नि, पृथिवी और औषधियों में जो विष है तथा कन्द का विष पूर्णतया दूर हो जाय ॥ २२ ॥ अग्नि, जल और औषधि और सर्पों से उत्पन्न जो विद्युत हैं और जिनके द्वारा अनेक भीषण कर्म हुए हैं उन सर्पों को हम हव्य समर्पित करते हैं ॥ २३ ॥ हे तौदी और घृताची नाम वाली औषधे ! मैं नीचे को पाँव करके बैठा हुआ तेरे विष को निर्वीर्य करने वाले स्थान को ग्रहण करता हूँ ॥ २४ ॥ हे रोगिन् ! तू हृदय की रक्षा करता हुआ अपने हरेक अङ्ग से विष को निकाल । उस विष का प्रभाव अधोगति को प्राप्त होता हुआ नष्ट हो जाय ॥ २५ ॥ नवीन विष भी विष में मिल कर रुक गया । इस प्रकार विष नष्ट हो चुका । अग्नि ने सर्प-विष को दूर कर दिया । सोम उसे दूर ले गया । यह विष काटने वाले सर्प को ही प्राप्त हो गया, इस लिए सर्प मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥

५ सूक्त [तीसरा अनुवाक]

(ऋषि—सिन्धुद्वीपः; कौशिकः, ब्रह्मा; विहव्यः । देवता—आपः; मन्त्रोक्ता, प्रजापतिः । छन्द-पंक्तिः, जगती; बृहती; धृतिः;अनुष्टुप्; गायत्री; शक्करी अष्टिः उष्णिक्; त्रिष्टुप्)

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युनज्मि ॥१॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वो युनज्मि ॥२॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर्वो युनज्मि ॥३॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वो युनज्मि ॥४॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगायाप्सुयोगैर्वो युनज्मि ॥५॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगाय विश्वानि मा भूतान्युप तिष्ठन्तु युक्ता म आप स्थ ॥ ६ ॥

अग्नेर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त । प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ ७ ॥

इन्द्रस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त । प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ ८ ॥

सोमस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त । प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ ९ ॥

वरुणस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।

प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ १० ॥

हे जलो ! तुम इन्द्र के ओज, बल, वीर्य और अभिभव करने की शक्ति हो। तुम्हीं इन्द्र के ऐश्वर्य हो। मैं तुम्हें मन्त्र योगों से सम्पन्न करता हुआ जयशील योग के लिए समर्थ करता हूँ ॥ १ ॥ हे जलो ! तुम इन्द्र के ओज, बल, वीर्य, धन और तिरस्कार करने वाली शक्ति हो। मैं तुम्हें जयशील योग के निमित्त ब्रह्मयोग से सम्पन्न करता हूँ ॥ २ ॥ हे जलो ! तुम इन्द्र के ओज, बल, वीर्य, धन और तिरस्कार करने वाली शक्ति हो। मैं तुम्हें जयशीलता के निमित्त इन्द्र योगों से सम्पन्न करता हूँ ॥ ३ ॥ हे जलो ! तुम इन्द्र के ओज, बल, वीर्य, धन और शक्ति हो। मैं तुम्हें विजय के निमित्त सोम योगों से सम्पन्न करता हूँ ॥ ४ ॥ हे जलो ! तुम इन्द्र के ओज, शक्ति, बल, वीर्य और ऐश्वर्य हो। मैं तुम्हें विजय के निमित्त अप् योगों से सम्पन्न करता हूँ ॥ ५ ॥ हे जलो ! तुम इन्द्र के ओज, शक्ति, बल, वीर्य और ऐश्वर्य हो। जयशील योग के लिए तुम मेरे पास सदा रहो तथा सब भूत मेरे पास रहें ॥ ६ ॥ हे जलो ! तुम अग्नि के भाग हो, इस लोक को प्रजापति के वर्च से नष्ट करने के लिए जलों के वीर्य, तेज और जलों को हम में प्रतिष्ठित करो ॥ ७ ॥ हे जलो ! तुम इन्द्र के भाग हो, इस लोक को प्रजापति के वर्च से नष्ट करने के लिए जलों के वीर्य, तेज और उज्ज्वल जलों को हम में प्रतिष्ठित करो ॥ ८ ॥ हे जलो ! तुम सोम के भाग हो, इस लोक को प्रजापति के वर्च से नष्ट करने के लिए जलों के वीर्य, तेज और उज्ज्वल जलों को हम में प्रविष्ट करो ॥ ९ ॥ हे जलो ! तुम वरुण के भाग हो, इस लोक को प्रजापति के वर्च से नष्ट करने के लिए जलों के वीर्य, तेज और उज्ज्वल जलों को हम में प्रतिष्ठित करो ॥ १० ॥

मित्रावरुणयोर्भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ ११ ॥
यमस्य भाग स्थ। अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ १२ ॥

पितॄणां भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ १३ ॥
देवस्य सवितुर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ १४ ॥
यो व आपोऽपां भागोऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१५॥
यो व आपोऽपामूर्मिरप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१६॥
यो व आपोऽपां वत्सोऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१७॥
यो व आपोऽपां वृषभोऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥१८॥
यो व आपोऽपां हिरण्यगर्भोऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया [illegible]

यो व आपोऽपामश्मा पृश्निर्दिव्योप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः ।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥२०॥

हे जलो ! तुम मित्रावरुण के भाग हो । इस लोक को प्रजापति के वर्च से नष्ट करने के लिए जलों के वीर्य, तेज और उज्ज्वल जलों को हम में प्रवर्तित करो ॥ ११ ॥ हे जलो ! तुम यम के भाग हो । इस लोक को प्रजापति के वर्च से नष्ट करने के लिए जलों के वीर्य, तेज और उज्ज्वल जलों को हममें प्रतिष्ठित करो ॥ १२ ॥ हे जलो ! तुम पितरों के भाग हो । इस लोक को प्रजापति के वर्च से नष्ट करने के लिए जलों के वीर्य, तेज और उज्ज्वल जलों को हम में भर दो ॥ १३ ॥ हे जलो ! तुम सविता के भाग हो । इस लोक को प्रजापति के वर्च से नष्ट करने के लिए जलों के वीर्य, तेज और उज्ज्वल जलों को हम में भर दो ॥ १४ ॥ हे जलो ! तुम्हारा जो जलीय भाग यजुर्वेद के मंत्रों द्वारा सेवनीय और देवताओं से संयुक्त होने वाला है, उस जलीय भाग को, जो हमारे वैरी हैं, उन पर छोड़ता हूँ । वह जलीय भाग मुझे पुष्ट करे । मैं इस मंत्र द्वारा अभिचार कर्म तथा जल रूप शस्त्र से शत्रु को आच्छादित कर नष्ट करदूं ॥ १५ ॥ हे जलो ! तुम्हारी जो लहरें यजुर्मन्त्रों से सेवनीय हैं और देवताओं से मिलने वाली हैं, उन लहरों को अपने शत्रुओं पर छोड़ता हुआ अभिचार कर्म से और जल रूप शस्त्र से मंत्र द्वारा ढक कर मार डालूं । उन लहरों से मैं पुष्टि को प्राप्त करूँ ॥ १६ ॥ हे जलो ! तुम में जो वत्स है वह यजुर्वेद के मन्त्रों द्वारा सेवनीय और देवताओं से संगति करने योग्य है । उस वत्स को मैं अपने वैरी पर छोड़ता और अपने को पुष्ट करता हूँ । इस मन्त्र द्वारा, अभिचार कर्म और जल रूप आयुध से अपने शत्रु को आच्छादित कर नष्ट करदूं ॥ १७ ॥ हे जलो ! तुम में जो वृषभ है, वह यजुर्मन्त्रों द्वारा सेवनीय तथा देव-संगति से युक्त है उस वृषभ को हम अपने शत्रु पर छोड़ते हुए अपने को पुष्ट करते हैं । इ

मन्त्र द्वारा अभिचार कर्म से और उस जल रूप से अपने शत्रु को दबता हुआ नष्ट करूं ॥ १८ ॥ हे जलो! तुम में जो हिरण्यगर्भ हैं, वह यजुर्मन्त्रों से सेवनीय और देवताओं से संगति करने वाला है। उस हिरण्यगर्भ को हम अपने शत्रु पर छोड़ते हुए अपने को पुष्ट करते हैं। इस मन्त्र द्वारा अभिचार कर्म से और उस जल रूप से अपने शत्रु को आच्छादित करता हुआ मारता हूँ ॥ १९ ॥ हे जलो! तुम में जो अग्नियाँ हैं, वह यजुर्वेद के मन्त्रों से सेवनीय और देवताओं से संगति करने वाली हैं। उन अग्नियों को मैं अपने शत्रु पर छोड़ता और उन अग्नियों से ही अपने को पुष्ट करता हूँ। इस मन्त्र के बल से अभिचार कर्म द्वारा और उस जल रूप द्वारा अपने शत्रु को दबता हुआ नष्ट करता हूँ ॥ २० ॥

ये व आपोऽपामग्नयोऽप्स्वन्तर्यजुष्या देवयजनाः ।
इदं तानति सृजामि तान् माभ्यवनिक्षि ।
तैस्तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥२१॥
यदर्वाचीनं त्रैहायणादनृतं किं चोदिम ।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः ॥२२॥
समुद्रं वः प्र हिणोमि स्वां योनिमपीतन ।
अरिष्टाः सर्वहायसो मा च नः किं चनाममत् ॥२३॥
अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ।
प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुःष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु ॥२४॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्नितेजाः ।
पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि
यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२५॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहान्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः ।
अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात् तं निर्भजामो योऽस्मा

द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ।२६।
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजाः ।
दिवमनु वि क्रमेऽहं दिवस्तं निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि यं
वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ २७ ॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः ।
दिशोऽनु वि क्रमेऽहं दिग्भ्यस्तं निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि
यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२८॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाशासंशितो वाततेजाः ।
आशा अनु वि क्रमेऽहमाशाभ्यस्तं निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि
यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥२९॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नह ऋक्संशितः सामतेजाः ।
ऋचोऽनु वि क्रमे हमृग्भ्यस्तं निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि
यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३०॥

हे जलो ! तुम में जो दिव्य पृश्नि पत्थर है, वह यजुर्वेद के मन्त्रों से ...ीय और देवताओं से संगति वाला है। उसे मैं अपने शत्रु पर छोड़ता ...। अपने को पुष्ट करता हूँ। इस मन्त्र के बल से अभिचार कर्म द्वारा और ...रूप शस्त्र द्वारा मैं अपने उस शत्रु को आच्छादित करता हुआ नष्ट करूँ ...१ ॥ हम ने तीन वर्ष के भीतर जो कुछ मिथ्याभाषण किया है वह नवीन ...दुर्गति प्राप्त कराने वाला। जल मुझे उस पाप से छुड़ावे ॥ २२ ॥ ...जलो ! मैं तुम्हें समुद्र की ओर प्रेरित करता हूँ तुम उसमें लीन हो...ओ। तुम्हारी गति सब ओर है। तुम हिंसा का नाश करने वाले हो, अतः ...को कोई नष्ट न करे ॥ २३ ॥ हे जलो ! तुम पाप-रहित हो। हम को भी ...ों से छुड़ाओ। हमारे दुर्गति देने वाले पाप, दुःख और मल को प्रवाहित ...। ॥ २४ ॥ तू शत्रुनाश करने में समर्थ विष्णु का पराक्रम है। पृथिवी ने ...तीक्ष्ण किया और अग्नि ने तुझ में तेज भरा है। तू पृथिवी पर विक्रमण

कर, मैं पृथिवी से उसे हटाता हूँ। हमारा वैरी जीवित न रहे, वह अपने प्राणों से हीन हो जाय ॥ २५ ॥ तू विष्णु का शत्रु-नाशक पराक्रम है, तुम्हे अन्तरिक्ष ने तीक्ष्ण किया और वायु ने तेज से युक्त किया है। तू अन्तरिक्ष पर विक्रमण कर मैं उसे वहाँ से दूर करता हूँ। हमारा वैरी जीवित न रहे और प्राण त्याग दे ॥ २६ ॥ तू विष्णु का शत्रु-नाशक पराक्रम है, तुम्हे द्युलोक ने तीक्ष्ण किया है और सूर्य ने तेजस्वी बनाया है। तू द्युलोक पर विक्रमण कर, उसे वहाँ से दूर करता हूँ। हमारा शत्रु जीवित न रहे और प्राण त्याग दे ॥ २७ ॥ तू विष्णु का शत्रु-नाशक पराक्रम है, तुम्हे दिशा ने तीक्ष्ण किया है और मन से तेजस्वी बनाया है। तू दिशा पर विक्रमण कर, मैं उसे दिशा से पृथक् करता हूँ। हमारा वैरी प्राण त्यागे, जीवित न रहे ॥ २८ ॥ तू विष्णु का शत्रु-नाशक पराक्रम है। आशा ने तुम्हे तीक्ष्ण किया है र वात के तेज से यशस्वी बनाया है। तू आशा पर विक्रमण कर, मैं उसे आशा से हीन करता हूँ। मेरा विद्वेषी प्राण त्यागे, जीवित न रहे ॥ २९ ॥ विष्णु का शत्रु-नाशक पराक्रम है। ऋक् ने तुम्हे तीक्ष्ण किया है और साम से तेजस्वी बनाया है। तू ऋक् पर ही विक्रमण कर, मैं उसे ऋक् से पृथक् करता हूँ। मेरा विद्वेषी प्राणों को त्यागे और जीवित न रहे ॥ ३० ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः।
यज्ञमनु वि क्रमेऽहं यज्ञात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं
वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ ३१ ॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहौषधीसंशितः सोमतेजाः।
ओषधीरनु वि क्रमेऽहमोषधीभ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि
यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ ३२ ॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः।
अपोऽनु वि क्रमेऽहमद्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं
द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ ३३ ॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽन्नतेजाः।

कृपिमनु वि क्रमेऽहं कृष्यास्तं निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि
यं वयं द्विष्मः । स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥३४॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशिताः पुरुषतेजाः ।
प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात् तं निर्भजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जोवीत् तं प्राणो जहातु ॥ ३५ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्य ष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ।
इदमहमामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पदायामि ॥ ३६ ॥
सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम् ।
सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ३७ ॥
दिशो ज्योतिष्मतीरभ्यावर्ते ।
ता मे द्रविणं यच्छन्तु ता मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ३८ ॥
सप्तऋषीनभ्यावर्ते । ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम ॥३९॥
ब्रह्माभ्यावर्ते । तन्मे द्रविणं यच्छतु तन्मे ब्राह्मणवर्चसम् ।।४०।

तू विष्णु का शत्रु-नाशक पराक्रम है। तू यज्ञ द्वारा तीक्ष्ण हुआ है और ब्रह्म तेज से तेजस्वी बना है। तू यज्ञ पर विक्रमण कर, मैं उसे यज्ञ से पृथक् करता हूँ। जो हमारे वैरी हैं, प्राण उनका त्याग करे, वह जीवित न रह पावें ॥ ३१ ॥ तू विष्णु का शत्रु-नाशक पराक्रम है। तू औषधि द्वारा तीक्ष्ण हुआ है और सोम से तेजस्वी बना है। तू औषधि पर विक्रमण कर, मैं उसे औषधि से दूर करता हूँ। मेरा शत्रु प्राण त्याग दे और वह जीवित न रहे ॥ ३२ ॥ तू विष्णु का शत्रु-नाशक पराक्रम है। तू जल के द्वारा तीक्ष्ण हुआ है। तू वरुण के तेज से तेजस्वी हुआ है। तू जल पर विक्रमण कर, मैं उसे जल से पृथक् करता हूँ। मेरे शत्रु को प्राण छोड़ दे और वह शत्रु आयु से हीन हो जाय ॥ ३३ ॥ तू विष्णु का शत्रु नाशक पराक्रम है। तुझे कृषि कार्य के लिए तीक्ष्ण किया है और तू अन्न के तेज से तेजस्वी हुआ है। तू कृषि पर विक्रमण कर, मैं उसे कृषि से पृथक् करता हूँ। हमारे शत्रु को प्रा

छोद दे और वह शत्रु आयु से हीन हो जाय ॥ ३४ ॥ तू विष्णु का शत्रुनाशक पराक्रम है। तुझे प्राण ने तीक्ष्ण किया है और पुरुष तेज से तेजस्वी किया है। तू प्राण पर विक्रमण कर, मैं उसे प्राण से पृथक् करता हूँ। मेरा शत्रु प्राण से रहित हो जाय, जीवित न रहे ॥ ३५ ॥ विजित पदार्थों का ढेर हमारा है, लाये हुए पदार्थ हमारे हैं। मैं शत्रु की सम्पूर्ण सेना को वश में कर रहा हूँ। मैं अमुक गोत्र वाले, अमुक माता के पुत्र, जो मेरा शत्रु है, उसके वर्च, तेज, प्राण और आयु को घेरता हुआ शत्रु को पतित करता हूँ ॥ ३६ ॥ दक्षिण में विस्तृत हुए सूर्य से आवृत्त मार्ग का मैं अनुवर्तन करता हूँ। वह दक्षिण दिशा मुझे ऐश्वर्य और ब्रह्मतेज से सम्पन्न करे ॥ ३७ ॥ मैं दमकती हुई दिशाओं की परिक्रमा करता हुआ उनसे ब्रह्मवर्च और ऐश्वर्य की याचना करता हूँ ॥ ३८ ॥ मैं सप्त ऋषियों के सामने उपस्थित होता हूँ, वे मुझे धन और ब्रह्मवर्चस्व प्रदान करें ॥ ३९ ॥ मैं मन्त्र के सामने स्थित हूँ, वह मेरे लिए ऐश्वर्य और ब्रह्मवर्चस्व प्रदायक हो ॥ ४० ॥

ब्राह्मणाँ अभ्यावर्ते। ते मे द्रविणं यच्छन्तु
ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ४१ ॥
यं वयं मृगयामहे तं वधै स्तृणवामहै।
व्यात्ते परमेष्ठिनो ब्रह्मणापीपदाम तम् ॥ ४२ ॥
वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस्तं समधादभि।
इयं तं प्सात्वाहुतिः समिद् देवी सहीयसी ॥ ४३ ॥
राज्ञो वरुणस्य बन्धोऽसि।
सोमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमन्ने प्राणे बधान ॥ ४४ ॥
यत् ते अन्नं भुवस्पत आक्षियति पृथिवीमनु।
तस्य नस्त्वं भुवस्पते संप्रयच्छ प्रजापते ॥ ४५ ॥
अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥ ४६ ॥
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा।

विद्युर्मे अस्य देवाइन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥ ४७ ॥
यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥४८
परा शृणीहि तपसा यातुधानान् परागने रक्षो हरसा शृणीहि ।
पराचिपा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥४६॥
अपामस्मै वज्रं प्र हरामि चतुर्भृष्टिं शीर्षभिद्याय विद्वान् ।
सो अस्याङ्गानि प्र शृणातु सर्वा तन्मे देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥५०॥

मैं ब्राह्मणों की परिक्रमा करता हुआ उनसे धन और ब्रह्मवर्च की याचना करता हूँ ॥ ४१ ॥ हम जिसके लिए यह यत्न कर रहे हैं, उसे मारने वाले साधनों से ढकते हुए मन्त्र के वल से उसे अग्नि के मुख में धकेलते हैं ॥ ४२ ॥ यह समिधा से युक्त हवि रूप शस्त्र उस शत्रु को अग्नि की दाढ़ में डाले। यह तिरस्कार युक्त ज्योतिर्मती हवि शत्रु को खा डाले ॥ ४३ ॥ हे वरुण के पाश रूप मन्त्र ! तू अमुक गोत्र वाले, अमुक माता के पुत्र को अन्न और प्राण के निमित्त बाधक हो ॥४४॥ हे पृथिवी के अधिपति देव ! तुम्हारा जो अन्न पृथिवी में रहता है उसके सार रूप बल को हमें प्रदान करो ॥ ४५ ॥ मैंने दिव्य जल सञ्चित किया है, मैं उससे सङ्गति कर रहा हूँ। हे अग्ने ! मैं जल सहित तुम्हारे समक्ष उपस्थित हूँ, मुझे तेज से युक्त करो ॥ ४६ ॥ अग्ने ! मुझे तेज, सन्तान और आयु से भले प्रकार सम्पन्न करो। इन्द्र ऋषि सहित मुझे अग्नि के सेवक रूप में जान लें ॥ ४७ ॥ हे अग्ने ! जिस शत्रु कारण आज स्तुति करने वाले कठोर वाणी का उच्चारण कर रहे हैं समस्त स्त्री-पुरुषों में हलचल हो रही है, उस पीड़ा जनक शत्रु को क्रोधित मन से ज्वाला रूप बाणों को निकालते हुए मर्दित करो ॥ ४८ ॥ अग्ने ! इन पीड़ा देने वाले वैरियों को अपने तेज से भस्म कर दो। रूप, हिंसा कर्म वाले शत्रुओं को अपनी ज्वाला से मिटा दो। दूसरों के लेकर अपना सन्तोष करने वाले शत्रुओं का संहार कर डालो ॥ ४९ ॥ मैं शक्ति का ज्ञाता हूं। इस शत्रु का सिर तोड़ने के लिये चतुर्भृष्टि जल रू का प्रहार करता हूं। मेरे इस कार्य में समस्त देवता अनुकूल हों ॥ ५०

६ सूक्त

(ऋषि—बृहस्पतिः देवता—वनस्पतिः, फालमणिः, मन्त्राः । छन्द—गायत्री;
अनुष्टुप्; जगती; शक्वरी; अष्टिः; धृतिः, पङ्क्तिः)

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः । अपि वृश्चाम्योजसा ॥१॥

वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति ।
पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा ॥ २ ॥

यत् त्वा शिक्वः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या ।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम् ॥ ३ ॥

हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत् । गृहे वसतु नोऽतिथि. ॥४

तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे ।
स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयश्चिकित्सतु भूयोभूयः
श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ॥ ५ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणि फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः
श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ ६ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणि फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतौजसे वीर्याय कम् ।
सो अस्मै बलमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥७॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणि फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे ।
सो अस्मै वर्च इद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥८॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणि फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशः ।
सो अस्मै भूतिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥९॥

यमवध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं बिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणांपुरोऽजयद् दानवानां हिरण्ययीः ।
सो अस्मै श्रियमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥१०॥

जो शत्रु मुझसे द्वेष भाव रखता है, मैं उसके सिर को मन्त्र की शक्ति से काटता हूं ॥ १ ॥ यह फाल द्वारा उत्पन्न हुआ मणि रस और मंथ से युक्त है। यह तेज के सहित मेरे पास आ रहा है। यह मणि मेरे लिये कवच के समान रक्षक होगा ॥ २ ॥ तुझे शिल्पी ने अपने हाथ से आयुध द्वारा काटा है, उस तुझ पवित्र को प्राणदायक पवित्र जल पवित्र बनावें ॥ ३ ॥ यह हिरण्यलक मणि यज्ञोत्सवों को कराता हुआ हमारे गृह में अतिथि के समान निवास करे ॥ ४ ॥ जैसे पिता पुत्रों के कल्याण की बात सोचता है, वैसे ही यह मणि हमारे लिये कल्याणमयी हो। हम इस मणि को घृत, सुरा, मधु और अन्न भेंट करते हैं। देवताओं के पास से आने वाली यह मणि बारम्बार हमको प्राप्त होती हुई मङ्गल करने वाली हो ॥ ५ ॥ इस खदिर फाल की मणि को बृहस्पति ने बल-प्राप्ति के लिये बाँधा और अग्नि ने इसका प्रतिमुंचन किया। यह मणि घृत के समान सार पदार्थों की वर्षा करने वाली है। इसके द्वारा तू शत्रुओं का हनन कर ॥ ६ ॥ जिस खदिर फाल मणि को बृहस्पति ने बल प्राप्ति के लिए बाँधा और इन्द्र ने जिसे ओज वीर्य के निमित्त बँधवाया तब यह सार पदार्थों की वर्षा करने वाली मणि इन्द्र को नित्य नवीन बल प्रदान करती रहती है। तू उसी मणि से अपने शत्रुओं का हनन कर ॥ ७ ॥ जिस खदिर फाल मणि को बृहस्पति ने बल पाने के लिए बाँधा और सोम ने उसे महिमामय श्रोत्र और दर्शन शक्ति की प्राप्ति के लिए बँधवाया, वह घृत के समान सार पदार्थों की वर्षा करने वाली मणि सोम को नित्य नवीन वर्च प्रदान करती है। उसी मणि के द्वारा तू अपने शत्रुओं का हनन कर ॥ ८ ॥ जिस खदिर फाल मणि को बल प्राप्ति के निमित्त बृहस्पति ने बाँधा था और सूर्य ने जिसे दिशाओं पर विजय प्राप्त करने को बँधवाया था वह घृत के समान सार पदार्थों की वर्षा करने वाली शत्रु के लिए उग्र मणि प्रति दूसरे दिन सूर्य को अधिकाधिक भूति प्रदान करे। उसी मणि से तू शत्रुओं का संहार कर ॥ ९ ॥

जिस खदिर फाल मणि को बृहस्पति ने श्रोज के लिये बाँधा था उस मणि को धारण कर चन्द्रमा ने राक्षसों के सुवर्ण से बने नगरों पर विजय प्राप्त की। यह मणि घृत के समान सार पदार्थों की वर्धक और शत्रु के लिये उग्र है। यह मणि चन्द्रमा को नित्य प्रति बारम्बार श्री प्रदान करने वाली है। तू उसी मणि से अपने शत्रुओं को नष्ट कर ॥ १० ॥

यमवध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
सो अस्मै वाजिनं दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥११॥
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
तेनेमां मणिना कृपिमश्विनावभि रक्षतः ।
स भिषग्भ्यां महो दुहे भूयोभूय. श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि॥१२॥
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
तं बिभ्रत् सविता मणिं तेनेदमजयत् स्वः ।
सो अस्मै सूनृतां दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥१३॥
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
तमापो बिभ्रतीर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः ।
स आभ्योऽमृतमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥१४॥
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
तं राजा वरुणो मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम् ।
सो अस्मै सत्यमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥१५ ॥
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
तं देवा बिभ्रतो मणिं सर्वाल्लोकान् युधाजयन् ।
स एभ्यो जितिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥१६॥
यमवध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
तमिमं देवता मणिं प्रत्यमुञ्चन्त शंभुवम् ।
स आभ्यो विश्वमिद् दुहे भूयोभूयः श्वः श्वस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥१७

ऋतवस्तमबध्नतार्तवास्तमबध्नत ।
संवत्सरस्तं बद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति ॥ १८ ॥
अन्तर्देशा अबध्नत प्रदिशस्तमबध्नत ।
प्रजापतिसृष्टो मणिर्द्विषतो मेऽधराँ अकः ॥ १९ ॥
अथर्वाणो अबध्नताथर्वणा अबध्नत ।
तैर्मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां बिभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥२०

जिस मणि को बृहस्पति ने वायु के बाँधा था वह मणि नित्य प्रति बारम्बार वायु को वेगवान बनाती रहती है । तू उस मणि के द्वारा ही शत्रुओं को मार ॥ ११ ॥ जिस मणि को बृहस्पति ने अश्विनीकुमारों के बाँधा था, उससे अश्विनीकुमार कृषि की रक्षा करते हैं । वह बारम्बार अश्विनीकुमारों को जल प्रदान करती है । तू उसी मणि के द्वारा शत्रुओं को नष्ट कर ॥ १२ ॥ जिस मणि को बृहस्पति ने सविता के बाँधा था, जिससे सविता ने स्वर्ग पर विजय प्राप्त की । वह सविता के लिए नित्यप्रति बारम्बार वाणी प्रदान करती है । उस मणि से तू शत्रुओं का नाश कर ॥ १३ ॥ जिस मणि को बृहस्पति ने जलों के बाँधा था, उसे धारण कर वह सदा गतिमान रहते हैं । वह मणि इन जलों को नित्य प्रति अधिक से अधिक अमृतत्व देती रहती है । उसीमणि के द्वारा तू शत्रुओं को नष्ट कर ॥ १४ ॥ बृहस्पति ने जिस मणि को राजा वरुण के बाँधा था, वह मणि कल्याण प्रदायिनी है और नित्य प्रति वरुण को सत्य प्रदान करती रहती है । तू उसी मणि के द्वारा शत्रुओं का नाश कर ॥ १५ ॥ जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बाँधा था और देवताओं ने उसके प्रभाव से सब लोकों पर जय प्राप्त की थी, उसी मणि से तू अपने शत्रुओं का हनन कर ॥ १६ ॥ जिस मणि को बृहस्पति ने द्रुतगति के लिए वायु के बाँधा था और देवताओं ने भी उसे धारण किया था, वह मणि उनको विश्व प्रदान करती रहती है, तू ऐसी ही मणि से अपने शत्रुओं को नष्ट कर ॥ १७ ॥ इस मणि को ऋतु ने, उनके अवयव महीनों ने भी बाँधा था और संवत्सर इसी के बल से प्राणियों की रक्षा किया करता है ॥ १८ ॥

अन्तर्देशों और प्रदिशाओं ने भी इस मणि को धारण किया था। इसका आविष्कार प्रजापति ने किया था। यह मणि मेरे शत्रुओं की दुर्गति करने वाली हो ॥ १६ ॥ अथर्ववेद के मन्त्रों द्वारा जिन्होंने इस मणि को धारण किया, उन्होंने शत्रुओं के नगरों को तोड़ दिया। तू ऐसी ही मणि से अपने शत्रुओं का संहार कर ॥ २० ॥

तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्यकल्पयत् ।
तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ २१ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमद् रसेन सह वर्चसा ॥ २२ ॥
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह ।२३
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सह व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह ।२४।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमन्मधोर्घृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह।२५
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमदूर्जया पयसा सह द्रविणेन श्रिया सह ।२६।
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्या सह।२७
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सर्वाभिर्भूतिभिः सह ॥ २८ ॥
तमिमं देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टये ।
अभिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम् ॥ २९ ॥
ब्रह्मणा.तेजसा.सह.प्रति.मुञ्चामि.मे.शिवम्।.
असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेऽधरां अकः ॥ ३० ॥

इस मणि को धारण करके ही धाता ने प्राणियों को रचा। उसी मणि से तू शत्रुओं को नष्ट कर ॥ २१ ॥ असुरों का क्षय करने वाली जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बाँधा था, वह मणि रस और वर्च सहित मुझे प्राप्त हो गई है ॥ २२ ॥ राक्षसों को क्षीण करने वाली जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बाँधा था, वह मणि गौ, भेड़ आदि तथा सन्तानों के सहित मुझे प्राप्त होगई है ॥ २३ ॥ राक्षसों को क्षीण करने वाली जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बाँधा था, वह मणि यव, धान्य उत्सव और भूति आदि से सम्पन्न हुई मुझे मिल गई है ॥ २४ ॥ राक्षसों को नष्ट करने वाली जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बाँधा था, वह मणि घृत और मधु की धाराओं और अन्न से सम्पन्न हुई मुझे मिल गई है ॥ २५ ॥ असुरों को क्षीण करने वाली जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बाँधा था, वह मणि अन्न, बल और लक्ष्मी सहित मुझे प्राप्त हो गई है ॥ २६ ॥ राक्षसों को क्षीण करने वाली जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बाँधा था, वह मणि तेज, यश, कीर्ति और दीप्ति सहित मुझे प्राप्त होगई है ॥ २७ ॥ राक्षसों को क्षीण करने वाली जिस मणि को बृहस्पति ने देवताओं के बाँधा था, वह मणि सम्पूर्ण विभूतियों से सम्पन्न हुई मुझे प्राप्त हो गई है ॥ २८ ॥ क्षात्र बल की वृद्धि करने वाली, शत्रुओं को वशीभूत करने वाली तथा उनका संहार वाली इस मणि को पुष्टि के लिए देवगण मुझे प्रदान करें ॥ २९ ॥ हे मणे ! तू कल्याण करने वाली है। तुझे मंत्र शक्ति सहित ग्रहण करता हूँ। तू शत्रु रहित होने से अपने धारण करने वाले के शत्रु का नाश करती है। इस लिए मेरे शत्रुओं को भी बुरी गति प्रदान कर ॥ ३० ॥

उत्तरं द्विषतो मामयं मणिष्कृणोतु देवजाः।
यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥ ३१ ॥
यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥ ३२ ॥
यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति ।

एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु ॥ ३३ ॥
यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुञ्चं शिवम् ।
तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ॥ ३४ ॥
एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः ।
तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे
जातवेदसि ब्रह्मणा ॥ ३५ ॥

इस मणि का देवताओं ने आविष्कार किया। यह मुझे शत्रुओं से श्रेष्ठ बनावे। जिस मणि से दूध और जल की याचना की जाती है, वह मणि श्रेष्ठता के निमित्त ही मेरे द्वारा धारण की जाय ॥ ३१ ॥ देवता, पितर और मनुष्य जिस मणि से जीवन पाते हैं, ऐसी यह मणि श्रेष्ठता से मुझ पर चढ़े ॥ ३२ ॥ फाल द्वारा कुरेदे जाने पर जैसे भूमिगत बीज उत्पन्न होता है, वैसे ही यह मणि प्रजा, पशु और खाद्यान्नों की उत्पत्ति करने वाली हो ॥ ३३ ॥ हे मणे ! तू यज्ञ की वृद्धि करने वाली है। तू कल्याणकारिणी है। मैं तुझे जिसके लिए धारण कर रहा हूँ, उसे तू श्रेष्ठता देती हुई संतुष्ट बना ॥ ३४ ॥ हे अग्ने ! तुम मंत्र शक्ति से प्रदीप्त होते हुए इस हवि का सेवन कर तृप्त होओ। हम इन अग्निदेव से श्रेष्ठ मति, प्रजा, चक्षु, पशु और सब प्रकार का कल्याण चाहते हैं ॥ ३५ ॥

७ सूक्त [चौथा अनुवाक]

(ऋषि-अथर्वा। देवता-स्कम्भः, अध्यात्मम्। छन्द-जगती; त्रिष्टुप्; उष्णिक्; बृहती; अनुष्टुप्; गायत्री; पङ्क्ति)

कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन्नङ्ग ऋतमस्याध्याहितम् ।
क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन्नङ्गे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम् ॥१॥
कस्मादङ्गाद् दीप्यते अग्निरस्य कस्मादङ्गात् पवते मातरिश्वा ।
कस्मादङ्गाद् वि मिमीतेऽधि चन्द्रमा मह स्कम्भस्य मिमानो अङ्गम् ॥२
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम् ।

कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्युत्तरं दिवः ॥३॥
क्व प्रेप्सन् दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्व प्रेप्सन् पवते मातरिश्वा ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृतः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥४॥
क्वार्धमासाः क्व यन्ति मासाः संवत्सरेण सह संविदानाः ।
यत्र यन्त्यृतवो यत्रार्तवाः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥५॥
क्व प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहोरात्रे द्रवतः संविदाने ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥६॥
यस्मिन्त्स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान्त्सर्वां अधारयत् ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ७ ॥
यत् परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम् ।
कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र यन्न प्राविशत् कियत् तद् बभूव ॥८॥
कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद् भविष्यदन्वाशयेऽस्य ।
एकं यदङ्गमकृणोत् सहस्रधा कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र ॥९॥
यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः ।
असच्च यत्र सच्चान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १० ॥

इसके किस अङ्ग में तप, किस अङ्ग में ऋत, किस अङ्ग में श्रद्धा, किस अङ्ग में सत्य और किस अंग में व्रत रहता है ? ॥ १ ॥ इसके किस अंग से वायु चलता, किस अङ्ग से अग्नि प्रज्वलित होती और चन्द्रमा इसके किस अङ्ग द्वारा मान करता है ? ॥ २ ॥ इसके किस अंग में भूमि, किस अङ्ग में अन्तरिक्ष और किस अङ्ग में द्युलोक का निवास है ? द्युलोक से भी श्रेष्ठ स्थान इसके किस अङ्ग में स्थित है ? ॥ ३ ॥ ऊपर को उठता हुआ अग्नि कहाँ जाने की इच्छा करता है ? वायु कहाँ जाने की इच्छा करता हुआ चलता है ? आवागमन के चक्कर में पड़े प्राणी कहाँ जाने की इच्छा करते हुए किस स्कंभ के सामने चलते हैं, उसे बताओ ? ॥ ४ ॥ संवत्सर से सहमति रखने वाले पक्ष और मास कहाँ जाते हैं, ऋतुएं और मास जहाँ जाते हैं, उस स्कंभ

(सर्वाधार) को बताओ ? ॥ ५ ॥ रात्रि और दिन अनेक रूपों के धारण करने वाले हैं, वे मिलने और वियुक्त होने वाले हैं, वे दौड़ते हुए कहाँ जाते हैं ? जहाँ प्राप्ति की इच्छा वाले जल जा रहे हैं उस स्कंभ को बताओ ? ॥ ६ ॥ प्रजापति जिसमें स्तंभित होकर सब लोकों को धारण किये हुए हैं, उस स्कंभ को बताओ ? ॥ ७ ॥ जो परम, अवम और मध्यम है, जिन सब रूपों को प्रजापति ने बनाया है, उनमें कितने अंश से स्कंभ प्रविष्ट हुआ है ? जिससे प्रविष्ट नहीं हुआ, वह अंश कितना है ? ॥ ८ ॥ कितने अंश से स्कंभ भूत में घुसा है ? भविष्य में कितने अंश से सो रहा है ? जो अपने अङ्ग को सहस्र प्रकार का बना लेता है, वह उसमें कितने अंश से प्रविष्ट होता है ? ॥ ६ ॥ लोक, कोश और जल जिसमें निहित माने जाते हैं, जिसमें सत् और असत् भी है उस स्कंभ को बताओ ? ॥ १० ॥

यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम् ।
ऋतं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ११ ॥

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता ।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १२ ॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १३ ॥

यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही ।
एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १४ ॥

यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते ।
समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेऽधि समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १५ ॥

यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्यस्तिष्ठन्ति प्रथमाः ।

यज्ञो यत्र पराक्रान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१६॥

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम् ।
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ॥ १७ ॥

यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
अङ्गानि यस्य यातवः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१८॥

यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत ।
विराजमूधो यस्याहुः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१९॥

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि
कतमः स्विदेव सः ॥ २० ॥

जिस स्थान में तप और व्रत द्वारा तेजस्वी हुआ पुरुष बैठता है, जहाँ श्रद्धा, ऋत, जल और ब्रह्म भी प्रतिष्ठित हैं, उस स्कंभ को कहो ॥ ११ ॥ जिसमें अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु, पृथिवी, अन्तरिक्ष और दिव्य लोक हैं, उस स्कंभ को हमसे कहो ? ॥ १२ ॥ जिसके शरीर में तेतीस देवताओं का निवास है, उस स्कंभ को हमें बताओ ? ॥ १३ ॥ जिसमें आरम्भ काल में उत्पन्न हुए ऋषि, पृथिवी, ऋक्, साम और यजुर्वेद हैं, उस स्कंभ को हमसे कहो ॥ १४ ॥ जिसमें मरण, अमरण भले प्रकार निहित हैं, समुद्र जिसकी नाड़ी है, वह स्कंभ कौन सा है ? ॥ १५ ॥ चारों दिशा रूप जिसकी मुख्य नाड़ी है, जिसमें यज्ञ जाता है, उस स्कंभ का वर्णन करो ? ॥ १६ ॥ जो पुरुष में ब्रह्म को जानने वाले हैं, वे परमेष्ठी, प्रजापति और अग्रज ब्राह्मण को जानते हैं, वही स्कंभ के भी ज्ञाता हैं ? ॥ १७ ॥ जिसका शिर वैश्वानर, जिसके नेत्र अङ्गिरावंशीय ऋषि, जिसके अङ्ग 'यातु' हैं वह स्कंभ कौन-सा है ? ॥१८॥ जिसकी जीभ को मधुकशा और मुख को ब्रह्म कहते हैं, जिसका थन विराट कहलाता है. उस स्कंभ को बताओ ? ॥ १९ ॥ जिससे यजुर्वेद के मन्त्र अ

ऋचाएं प्रकट हुईं, अथर्व जिसका मुख और साम जिसके लोम हैं उस स्कंभ के विषय में कहो? ॥ २० ॥

असच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परममिव जना विदुः ।
उतो सन्मन्यन्तेऽवरे ये ते शाखामुपासते ॥ २१ ॥
यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः ।
भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिता स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ २२ ॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा ।
निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ ॥ २३ ॥
यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात् ॥२४॥
बृहन्तो नाम ते देवा येऽसतः परि जज्ञिरे ।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासदाहुः परो जनाः ॥ २५ ॥
यत्र स्कम्भः प्रजनयन् पुराणं व्यवर्तयत् ।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्य पुराणमनुसंविदुः ॥ २६ ॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे ।
तान् वै त्रयस्त्रिंशद् देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥ २७ ॥
हिरण्यगर्भं परममनत्युद्यं जना विदुः ।
स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्यं लोके अन्तरा ॥ २८ ॥
स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽध्यृतमाहितम् ।
स्कम्भं त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् ॥२९॥
इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्यृतमाहितम् ।
इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ३० ॥

यदि अप्रकट शाखा प्रकट हो जाय तो वह श्रेष्ठ मानी जाती है । अ

व्यक्ति जिसकी स्तुति करें वह व्यक्ति भी श्रेष्ठ माना जाता है ॥ २१ ॥ जिसमें सूर्य, रुद्र, वसु, भूत, भव्य और सब लोक जिसमें निहित हैं उस स्कंभ को बताओ ? ॥ २२ ॥ तेतीस देवता जिसकी निधि की रक्षा करते हैं, उस निधि का ज्ञाता कौन है ? ॥ २३ ॥ ब्रह्म के जानने वाले देवता जहाँ महान् ब्रह्म की स्तुति करते हैं, जो उन्हें जानता है, वही ब्रह्म को जान सकता है । ॥ २४ ॥ असत् से उत्पन्न हुए बृहत् नामक देवता स्कंभ के ही अङ्ग हैं, वे असत् कहलाते हैं । ॥ २५ ॥ स्कंभ ने उत्पन्न पुराण को व्यवर्तित किया, वह स्कंभ का अंग पुराण कहा जाता है । ॥ २६ ॥ तेतीस देवता जिसके शरीर में सुशोभित हैं, उन्हें ब्रह्म के जानने वाले विद्वान् जानते हैं । ॥ २७ ॥ वह हिरण्यगर्भ, वर्णन करने में जो न आ सके, ऐसा है । उसे स्कंभ ने ही इस लोक में प्रथम बार सींचा था । ॥ २८ ॥ स्कंभ में लोक, तप और ऋत निहित हैं । हे स्कंभ ! इन्द्र ने तुझे प्रत्यक्ष देखा है, तू इन्द्र में ही निहित है । ॥ २९ ॥ इन्द्र में ही लोक, तप और ऋत हैं । हे इन्द्र ! मैं तुम्हें जानता हूँ । सब स्कंभ में निहित हैं ॥ ३० ॥

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः ।
यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ॥ ३१ ॥
यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३२॥
यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३३ ॥
यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३४॥
स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ।
स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वीः स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेश ।३५।
यः श्रमात् तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे ।

सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३६ ॥
कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः ।
किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदा चन ॥ ३७ ॥
महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे ।
तस्मिञ्छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः ।३८।
यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा ।
यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं स्कम्भं तं
ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ३९ ॥
अप तस्य हतं तमो व्यावृत्तः स पाप्मना ।
सर्वाणि तस्मिञ्ज्योतींषि यानि त्रीणि प्रजापतौ ।।४०।।
यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेद ।
स वै गुह्यः प्रजापतिः ॥ ४१ ॥
तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम् ।
प्रान्या तन्तूंस्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न गमातो अन्तम् ॥४२॥
तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न वि जानामि यतरा परस्तात् ।
पुमानेनद् वयत्युद् गृणत्ति पुमानेनद् वि जभाराधि नाके ।।४३।।
इमे मयूखा उप तस्तभुर्दिवं सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे ।४४।

जो पहले अजन्मा था, जिससे परे कोई भूत नहीं है उसे वह आत्मा प्राप्त हो जाता है। वह सूर्य और उषा से पूर्व नाम रूपात्मक संसार को नाम से पुकारता है ॥ ३१ ॥ पृथिवी जिसकी 'प्रमा' अन्तरिक्ष उदर और द्युलोक शिर रूप है उस ब्रह्म को नमस्कार करता हूँ ॥ ३२ ॥ चन्द्र और सूर्य जिसके नेत्र और अग्नि जिसका मुख रूप है, उस ब्रह्म को नमस्कार करता हूँ ॥३३॥ जिसके प्राणापान वायु, अंगिरा नेत्र और दिशाएं प्रज्ञानी हैं, उस ब्रह्म को नमस्कार करता हूँ ॥ ३४ ॥ स्कंभ ने आकाश, पृथिवी, अन्तरिक्ष, प्रदिशा और छै उर्वियों को धारण किया है और वही स्कंभ इस लोक में व्याप्त हुआ

है ॥ ३५ ॥ जो सब लोकों का भोग करने वाला और तपस्या द्वारा प्रकट होता है तथा जिसने सोम को बनाया है, उस ब्रह्म को प्रणाम है ॥ ३६ ॥ किस सत्य की इच्छा से जल अचेष्ट रहते हैं, वायु प्रेरणा नहीं करता और मन नहीं रमता ॥ ३७ ॥ लोक में एक अत्यन्त पूजनीय व्यक्तित्व है, वह सलिल पृष्ठ पर विराजमान है, उसे तप द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। जैसे वृक्ष की शाखाएं वृक्ष की आश्रिता हैं, वैसे ही सब देवता उसके आश्रित हैं ॥ ३८ ॥ हाथ, पाँव, वाणी और नेत्रादि के द्वारा देवता जिनकी सेवा करते हैं, जो विमित देह में अमित रूप से विराजमान है, उस स्कंभ को बताओ? ॥ ३९ ॥ स्कंभ के ज्ञाता का अज्ञान मिट जाता है, वह पाप रहित होता है, प्रजापति में जो तीन ज्योतियाँ हैं वे उसमें प्रतिष्ठित हो जाती हैं ॥ ४० ॥ प्रजापति वही है जो जल में बेंत का जानने वाला है ॥ ४१ ॥ यह अनेक दिन-रात्रि छैः ऋतु वाले गमनशील संवत्सर के आश्रित हैं, मैं इन पर चढ़ता हूं। इनमें से एक तन्तु-विस्तार कर उन्हें धारण करता है और दूसरा भी उन्हें नहीं त्यागता। यह दोनों ही अन्न से युक्त नहीं होते ॥ ४२ ॥ इन नर्तनशील दिन-रात्रि में पर (दूसरा) को मैं नहीं जानता, दिन इन्हें तन्तुवान बनाता और उद्गृणन करता हुआ दिव्य लोक में पुष्ट करता है ॥ ४३ ॥ साम प्रवाहमान होने के लिए 'तसर' करते हैं और मयूख द्युलोक को स्तंभित करते हैं ॥ ४४ ॥

८ सूक्त

(ऋषि—कुत्सः। देवता—अध्यात्मम्। छन्दः—बृहती; अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्, जगती; पंक्ति; उष्णिक्; गायत्री)

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥
स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः ।
स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणन्निमिषच्च यत् ॥ २ ॥
तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन् न्यन्या अर्कमभितोऽविशन्त ।

बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेश ॥३॥
द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये ॥४॥
इदं सवितर्वि जानीहि षड् यमा एक एकजः ।
तस्मिन् हापित्वमिच्छन्ते य एषामेक एकजः ॥ ५ ॥
आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत् पदम् ।
तत्रेदं सर्वमार्पितमेजत् प्राणत् प्रतिष्ठितम् ॥ ६ ॥
एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्वतद् बभूव ॥ ७ ॥
पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति ।
अयातमस्य ददृशे न यातं परं नेदीयोऽवरं दवीयः ॥ ८ ॥
तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् ।
तदासत ऋषयः सप्त सार्कं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥ ९ ॥
या पुरस्ताद् युज्यते या च पश्चाद् या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः ।
यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा स ऋचाम् ॥१०॥

जो भूत, भविष्य और सब में व्यापक है, जो दिव्य लोक का भी अधिष्ठाता है, उस ब्रह्म को प्रणाम है ॥ १ ॥ यह पृथिवी और आकाश स्कंभ द्वारा ही स्थान पर स्थित हैं। श्वास लेने और पलक मारने वाले यह आत्म रूप स्कंभ ही हैं ॥ २ ॥ तीन प्रजाएं इसे प्राप्त करती हैं और अन्य सब ओर से सूर्य में प्रविष्ट होती हैं। पृथिवी का रचयिता ब्रह्म स्थिर रहता हुआ हरे वर्ण वाली हरिणी में प्रविष्ट होता है ॥३॥ बारह 'प्रधि' और तीन 'नभ्य' हैं, उसमें तीन सौ साठ कीलें ठुकी हैं, इन्हें कौन जानता है ? ॥ ४ ॥ हे सविता देव ! यह छै ऋतु दो-दो मास की हैं और वर्ष एक है। इनमें जो ब्रह्म से उत्पन्न प्राणी हैं, उनमें से एक प्रकार के प्राणी उस ब्रह्म मे ही लीन होने की कामना करते हैं ॥ ५ ॥ गुफा रूप देह में दमकता हुआ आत्मा निवास करता

है। जरत् नामक महत् पद में यह सचेष्ट और श्वासवान् विश्व स्थित है ॥६॥ एक चक्र और एक नेमि सहस्राक्षर के साथ गतिमान् है। उसके आधे भाग से विश्व उत्पन्न हुआ है। परन्तु इसका अन्य आधा भाग कहाँ है? ॥ ७ ॥ अग्र को पञ्चवाही प्राप्त कराती है, प्रष्टियाँ अनुकूल संवहन करती हैं। इसका आना दिखाई देता, जाना दिखाई नहीं देता। यह पास से भी पास और दूर से भी दूर है ॥ ८ ॥ ऊपर की ओर जड़ और तिर्यग्बिल चमस में विश्व रूप आत्मा स्थित है उसमें इस शरीर की रक्षा करने वाले सप्तर्षि एक साथ रहते हैं ॥ ९ ॥ जो पहिले, पीछे अथवा सब समय विनियुक्त होती है, जिससे यज्ञ को बढ़ाया जाता है, वह ऋचा कौन-सी है? ॥ १० ॥

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद् भुवत् ।
तद् दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत् संभूय भवत्येकमेव ॥ ११ ॥
अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते ।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वन् विद्वान् भूतमुत भव्यमस्य ॥१२॥
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते ।
अर्धेन विश्वं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥ १३ ॥
ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं कुम्भेनेवोदहार्यम् ।
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः ॥ १४ ॥
दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते ।
महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति ॥ १५ ॥
यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति ।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन ॥ १६ ॥
ये अर्वाङ् मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति ।
आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् ॥१७॥
सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥१८॥

सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणार्वाङ् वि पश्यति ।
प्राणेन तिर्यङ् प्राणति यस्मिञ्ज्येष्ठमधि श्रितम् ।। १९ ।।
यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु ।
स विद्वाञ्ज्येष्ठं मन्येत स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ।। २० ।।

जो सचेष्ट है, स्थित है, प्राण-क्रिया करता और नहीं भी करता, जो जो निमिषत् के समान है, उसी ने इस भूमि को धारण किया है। यह सब रूपों में होता हुआ, एक रूप को ही प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ वह अनन्त है, अन्त युक्त भी प्रतीत होता है, वह अनेक स्थानों में विस्तृत है, स्वर्ग सुख को पुष्ट करने वाला प्राणी उसे खोजता फिरता है। भूत, भविष्य भी उसी के कर्म हैं। वह सब को जानने वाला है ॥ १२ ॥ गर्भ में अदृश्य रहता हुआ प्रजापति विचरण करता और अनेक रूपों में उत्पन्न होता है, उसके आधे भाग से जगत उत्पन्न हुआ है और उसका आधा भाग कौन-सा है ? ॥१३॥ कुम्भ द्वारा जल के समान ऊपर को भरते हुए को सभी अपने चक्षु द्वारा देखते हैं, परन्तु वे मन के द्वारा नहीं जान पाते ॥ १४ ॥ अपने को पूर्ण मानने वाले से वह दूर रहता है और हीन मानने वाले से भी दूर पर ही छिप जाता है। लोक में एक अत्यन्त पूजनीय व्यक्तित्व है, राष्ट्र का भरण करने वाले उसकी सेवा किया करते हैं ॥ १५ ॥ जिसके द्वारा सूर्य उदय और अस्त होता है, वही बड़ा है। उसका अतिक्रमण करने में कोई भी समर्थ नहीं है ॥ १६ ॥ इस पुरातन, विद्वान् और सब के ज्ञाता को जो मध्य में और पीछे कहते हैं, वे सूर्य के ही कहने वाले हैं। वे अग्नि और त्रिवृत् हंस का वर्णन भी इसी प्रकार करते हैं ॥ १७ ॥ पाप का नाश करने वाले इस हंस के पङ्ख स्वर्ग गमन के लिए सहस्र दिवस तक फैले रहते हैं, वह सब देवताओं हृदय में स्थित करता हुआ सब लोकों को देखता जाता है ॥ १८ ॥ जिसमें वह महान् रमा हुआ है, वह सत्य से ऊपर तपता है और मन्त्र की शक्ति से नीचे देखता है तथा प्राण के ल से तिर्यग् गमन करता है ॥ १९ ॥ जो विद्वान् धन-मंथन करने वाली रणियों का ज्ञाता है, वही उस महान् ब्रह्म का भी ज्ञाता है ॥ २० ॥

अपादग्रे समभवत् सो अग्रे स्वराभरत् ।

चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम् ॥ २१ ॥
भोग्यो भवदथो अन्नमदद् बहु ।
यो देवमुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम् ॥ २२ ॥
सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः ॥ २३ ॥
शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वमस्मिन् निविष्टम् ।
तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद् देवो रोचत एष एतत् ॥२४॥
वालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते ।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥ २५ ॥
इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे ।
यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः ॥ २६ ॥
त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥२७॥
उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः ।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः ॥ २८ ॥
पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ॥ २९ ॥
एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव ।
मही देव्युषसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे ॥ ३० ॥

प्रथम पाँव रहित हुआ वह स्वर्ग का पोषण करता और फिर चार पैर वाला होकर भोगने में समर्थ होता हुआ, सब भोजन प्राप्त कर लेता है ॥२१॥ जो उन सनातनदेव की आराधना करता है, वह भोगने में समर्थ होता हुआ, बहुत-सा अन्न दान करता है ॥ २२ ॥ यह सनातन कहे जाते हैं फिर नवीन होते हैं। इन्हीं सूर्य से दिन और रात उत्पन्न होते हैं ॥ २३ ॥ सैकड़ों हजारों अयुत अर्बुद और दिन इनमें ही लीन रहते हैं, यह उसका साक्षिरूप ही रहता

है। उनमें लिप्त न होने से यह देव तेजस्वी रहता है ॥ २४ ॥ यह आत्मा प्रमुख होते हुए भी दिखाई नहीं देता क्योंकि यह बाल से भी सूक्ष्म है। जो आत्मा उससे मिलता है वह मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥ २५ ॥ आत्मदेव के लिए प्रस्तुत रहने वाली आत्मा कल्याणमयी और जरा रहित है । जो ब्रह्म मर्त्यलोक में अमृत के समान है, उसका उपासक भी पूजनीय हो जाता है ॥ २६ ॥ हे आत्मा, तू ही कुमारी, तू ही स्त्री और तू ही पुरुष है । तू जीर्ण होकर प्राण से वियुक्त करता और प्रकट होकर विश्वतोमुख होता है ॥ २७ ॥ तू ही इन जीवों का पिता, पुत्र, ज्येष्ठ और कनिष्ठ है । वही एक देवता मन में है । वही गर्भ में स्थित है और वही पहिले उत्पन्न हुआ है ॥ २८ ॥ पूर्ण से ही पूर्ण को सींचते हैं, पूर्ण से ही पूर्ण उदंचित होता है । जहाँ वह सींचा जाता है उसे हम जान गए हैं ॥ २९ ॥ यह सब द्वारा अनुकूल, सब को व्याप्त करके स्थित पृथ्वी, उषा से चमकती हुई सचेष्ट जीवों द्वारा देखी जाती है ॥ ३० ॥

अविर्वै नाम देवत ऋतेनास्ते परीवृता ।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः ॥ ३१ ॥
अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥ ३२ ॥
अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम् ।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत् ॥३३॥
यत्र देवाश्च मनुष्याश्चारा नाभाविव श्रिताः ।
अपां त्वां पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्मायया हितम् ॥३४॥
येभिर्वात इषितः प्रवाति ये ददन्तो पञ्च दिशः सध्रीचीः ।
य आहुतिमत्यमन्यन्त देवा अपां नेतारः कतमे त आसन् ॥३५॥
इमामेषां पृथिवीं वस्त एकोऽन्तरिक्षं पर्येको बभूव ।
दिवमेषां ददतो यो विधर्ता विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ॥३६॥

यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३७ ॥
वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३८ ॥
यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत् प्रदहन् विश्वदाव्यः ।
यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात् क्वेवासीन्मातरिश्वा तदानीम् ॥३९॥
अप्स्वा सीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन् ।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आ विवेश ।४०।
उत्तरेणेव गायत्रीममृतेऽधि वि चक्रमे ।
साम्ना ये साम संविदुरजस्तद् ददृशे क्व ॥ ४१ ॥
निवेशनः संगमनो वसूनां देवइव सविता सत्यधर्मा ।
इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥ ४२ ॥
पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥४३॥
अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥४४॥

उस ऋतु से अवि नामक देव ढके हुए हैं। उसी के रूप से यह वृक्ष हरे रंग के दिखाई देते हैं ॥ ३१ ॥ यह समीप आये को नहीं छोड़ता, यह समीपवर्ती को नहीं देखता। उस देव की ही यह कार्य-कुशलता है कि न यह मृत्यु को प्राप्त होता है और न कभी जीर्ण होता है ॥ ३२ ॥ अभूतपूर्व से प्रेरित वाणियाँ सत्यासत्य का वर्णन करती हैं वह उच्चारण की जाती हुई जहाँ लीन होती हैं, वही महद्ब्रह्म कहलाते हैं ॥ ३३ ॥ नाभि में अर्पित अरों के समान जिसमें देवगण अर्पित हैं, उसी नारायण को पूछता हूँ। वह अपनी माया द्वारा कहाँ स्थित हैं ? ॥ ३४ ॥ वायु जिनकी प्रेरणा से बहता है, जो पाँच सध्रीचीं प्रदान करते हैं, जो आहुति को श्रेष्ठ मानते हैं, वे जल के नेता

कहाँ स्थित हैं ? ॥ ३४ ॥ वही एक इस पृथिवी को आच्छादित करता, वही अन्तरिक्ष के सब ओर स्थित और वही इन जीवों को स्वर्ग प्रदान करता है । सब दिशाओं की दिक्पाल रक्षा करते हैं ॥ ३६ ॥ जिसमें यह प्रजाऐं स्थित हैं, उस विस्तृत सूत्र और कारण के भी कारण को जो जानता है, वही उस महद्ब्रह्म का ज्ञाता हो सकता है ॥ ३७ ॥ यह प्रजाऐं जिसमें स्थित हैं, उस विस्तृत सूत्र का मैं ज्ञाता हूँ । उसके कारण को भी जानता हूँ । वही महद्ब्रह्म है ॥ ३८ ॥ संसार को भस्म करने की सामर्थ वाला अग्नि आकाश-पृथिवी के मध्य आता है, जहाँ पोषणकर्त्री देवियाँ रहती हैं । उस समय मातरिश्वा किस स्थान पर था ? ॥ ३९ ॥ मातरिश्वा जल में था, सब देवता सलिल में स्थित थे, पृथिवी का रचयिता ब्रह्म निश्चल रूप से स्थित था । उसी पाप का नाश करने वाले ने वायु रूप से जल में प्रवेश किया था ॥ ४० ॥ उत्तर से गायत्री में प्रविष्ट हुए, जो साम द्वारा साम के जानने वाले हैं वह 'अज' कहाँ दिखाई देता है ? ॥ ४१ ॥ सविता देवताओं में भी दिव्य हैं, सत्य धर्म वाले हैं, पुण्यात्मा उन्हीं में प्रविष्ट होते हैं, वही उन्हें स्वर्ग में वास देते हैं । इन्द्र धन में स्थित नहीं रहते ॥ ४२ ॥ नौ द्वार युक्त पुण्डरीक त्रिगुणात्मक है । उसमें स्थित पूजनीय आत्मा के स्थान को ब्रह्मज्ञानी जानते हैं ॥ ४३ ॥ कामना से रहित, धैर्यवान्, स्वयंभू ब्रह्म अपने ही रस से स्वयं तृप्त रहते हैं; वह किसी भी विषय में असमर्थ नहीं है, उस सतत युवा आत्मा के ज्ञाता को मृत्यु से भय नहीं लगता ॥ ४४ ॥

९ सूक्त [पाँचवाँ अनुवाक]

(ऋषि—अथर्वा । देवता—शतौदना । छन्द—त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्, पङ्क्ति; जगती, शक्वरी)

अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम् ।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः ।।१।।
वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते ।
एषा त्वा रशनाग्रभीद् ग्रावा त्वैषोऽधि नृत्यतु ।।२।।

वालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं माष्ट्र्वघ्न्ये ।
शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ३ ॥
यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते ।
प्रीता ह्यस्य ऋत्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥ ४ ॥
स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः ।
अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ५ ॥
स ताँल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ६ ॥
ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने ॥ ७ ॥
वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा ।
आदित्याः पश्चाद् गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव ॥८॥
देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव ॥९॥
अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान् मरुतो दिशः ।
लोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम् ॥ १० ॥

यह शत्रु का नाश करने वाली, यजमान को स्वर्ग प्राप्त कराने वा धेनु इन्द्र प्रदत्त है। हिंसा-रूप पाप करने वाले शत्रुओं के मुख को बंद कर हुई यह धेनु उनमें वज्र-प्रेरण करे ॥ १ ॥ तेरे लोम कुशारूप हों, चर्मवेदी हो। तू इस रस्सी द्वारा पकड़ी हुई है, ग्रावा तेरे ऊपर नृत्य करे ॥ २ हे अघ्न्ये! तेरी जिह्वा मार्जन करे। हे अज! तेरे वाल प्रोक्षणी हों हे शतौदने! तू शुद्ध यज्ञीय होता हुआ स्वर्ग को गमन करेगा ॥३॥ शतौद को प्रस्तुत करने वाला, इच्छा पूर्ति में समर्थ होता है और इससे प्रसन्न हु ऋत्विज चले जाते हैं ॥ ४ ॥ शतौदना को अपूप नाभि करके देने वाल अन्तरिक्षस्थ स्वर्ग को गमन करता है ॥ ५ ॥ स्वर्ण से अलंकृत कर गौ को दे

वाला, दिव्य और पार्थिव लोकों को प्राप्त करता है ॥ ६ ॥ हे देवि ! तेरा रखने और गमन करने वाले, तेरे रक्षक होंगे, तू इनसे भयभीत न हो ॥ ७ ॥ दक्षिण की ओर से वसु और उत्तर की ओर से मरुत् तेरी रक्षा करेंगे पीछे से सूर्य तेरे रक्षक होंगे। इसलिए तू अग्निष्टोम की ओर गमन कर ॥ ८ ॥ [मनुष्य, पितर, देवगण, गन्धर्व और अप्सराएं तेरी रक्षा करेंगे, तू अतिरात्र की ओर गमन कर ॥ ९ ॥ शतौदना का दान करने वाला, अन्तरिक्ष, द्युलोक, पृथिवी, समुद्र और दिशा इन सब के लोकों को प्राप्त करता है ॥ १० ॥

घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति ।
पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ११ ॥
ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ये चेमे भूम्यामधि ।
तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १२ ॥
यत् ते शिरो यत् ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १३ ॥
यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेऽक्षिणी ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १४ ॥
यस्ते क्लोमा यद्धृदयं पुरीतत् सहकण्ठिका ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १५ ॥
यत् ते यकृद् ये मतस्ने यदान्त्रं याश्चते गुदाः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १६ ॥
यस्ते प्लाशिर्यो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १७ ॥
यत्ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यच्च लोहितम् ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १८ ॥
यौ ते बाहू ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत् ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १९ ॥

वालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं माष्ट्‌र्वघ्न्ये ।
शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ३ ॥
यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते ।
प्रीता ह्यस्य ऋत्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥ ४ ॥
स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः ।
अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ५ ॥
स तांल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ६ ॥
ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने ॥ ७ ॥
वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा ।
आदित्याः पश्चाद् गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव ॥८॥
देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव ॥९॥
अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान् मरुतो दिशः ।
लोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम् ॥ १० ॥

यह शत्रु का नाश करने वाली, यजमान को स्वर्ग प्राप्त कराने वाली धेनु इन्द्र प्रदत्त है। हिंसा-रूप पाप करने वाले शत्रुओं के मुख को बंद करती हुई यह धेनु उनमें वज्र-प्रेरण करे ॥ १ ॥ तेरे लोम कुशारूप हों, चर्मवेदी रूप हो। तू इस रस्सी द्वारा पकड़ी हुई है, ग्रावा तेरे ऊपर नृत्य करे ॥ २ ॥ हे अघ्न्ये ! तेरी जिह्वा मार्जन करे । हे अज ! तेरे वाल प्रोक्षणी हों । हे शतौदने ! तू शुद्ध यज्ञीय होता हुआ स्वर्ग को गमन करेगा ॥३॥ शतौदना को प्रस्तुत करने वाला, इच्छा पूर्ति में समर्थ होता है और इससे प्रसन्न हुए ऋत्विज चले जाते हैं ॥ ४ ॥ शतौदना को अपूप नाभि करके देने वाला अन्तरिक्षस्थ स्वर्ग को गमन करता है ॥ ५ ॥ स्वर्ण से अलंकृत कर गौ को देने

वाला, दिव्य और पार्थिव लोकों को प्राप्त करता है ॥ ६ ॥ हे देवि ! तेरा रखने और शमन करने वाले, तेरे रक्षक होंगे, तू इनसे भयभीत न हो ॥ ७ ॥ दक्षिण की ओर से वसु और उत्तर की ओर से मरुत् तेरी रक्षा करेंगे पीछे से सूर्य तेरे रक्षक होंगे। इसलिए तू अग्निष्टोम की ओर गमन कर ॥ ८ ॥ [मनुष्य, पितर, देवगण, गन्धर्व और अप्सराएं तेरी रक्षा करेंगे, तू अतिरात्र की ओर गमन कर ॥ ९ ॥ शतौदना का दान करने वाला, अन्तरिक्ष, द्युलोक, पृथिवी, मरुद्गण और दिशा इन सब के लोकों को प्राप्त करता है ॥ १० ॥

घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति ।
पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ११ ॥
ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ये चेमे भूम्यामधि ।
तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १२ ॥
यत् ते शिरो यत् ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १३ ॥
यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेऽक्षिणी ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १४ ॥
यस्ते क्लोमा यद्धृदयं पुरीतत् सहकण्ठिका ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १५ ॥
यत् ते यकृद् ये मतस्ने यदान्त्रं याश्चते गुदाः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १६ ॥
यस्ते प्लाशिर्यो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १७ ॥
यस्ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यच्च लोहितम् ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १८ ॥
यौ ते बाहू ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत् ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १९ ॥

यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पर्शवः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २० ॥

हे शतौदने ! तू घृत का प्रोक्षण करती हुई देवगण को प्राप्त होगी। तू पका की हिंसा न करती हुई, स्वर्ग को गमन करेगी ॥ ११ ॥ पृथिवी, स्वर्ग और अन्तरिक्ष में वास करने वाले देवताओं के लिए तू दूध घृत और मधु का सदा दोहन करती रह ॥ १२ ॥ तेरा शिर, मुख, कान, ठोड़ी दाता के लिए आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ॥ १३ ॥ तेरे ओष्ठ, नासिका, सींग और चक्षु दानदाता यजमान के लिये आमिक्षा, दूध, घृत और शहद का दोहन करें ॥ १४ ॥ तेरा क्लोम पुरीतत् हृदय और कण्ठनाड़ी दान देने वाले के लिए आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ॥ १५ ॥ तेरा यकृत, अन्तड़ियाँ और गुदा की नसें दाता के निमित्त आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ॥ १६ ॥ तेरा प्लाशि, वनिष्ठु कुक्षियाँ और चर्म दाता के निमित्त आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ॥ १७ ॥ तेरी मज्जा, हड्डी, मांस और रक्त दान करने वाले के लिए आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ॥ १८ ॥ तेरी भुजा, अंस और ककुद् दान देने वाले के लिए आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ॥ १९ ॥ तेरी ग्रीवा, कंधे, पृष्ठि पसलियाँ दाता के लिए आमिक्षा, दूध, घृत और मधु का दोहन करें ॥ २० ॥

यौ त ऊरू अष्ठीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भसत् ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २१ ॥
यत् ते पुच्छं ये ते वाला यदूधो ये च ते स्तनाः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २२ ॥
यास्ते जङ्घा याः कुष्ठिका ऋच्छरा ये च ते शफाः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २३ ॥
यत् ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यघ्न्ये ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४ ॥
क्रोडौ ते स्तां पुरोडाशावाज्येनाभिघारितौ ।

तौ पक्षौ देवि कृत्वा ना पक्तारं दि वह ॥ २५ ॥
उलूखले मुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः।
यं वा वा ा मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ।२६
अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहं तन्मे सर्वं सं पद्यतां वयं स्याम
पतयो रयीणाम् ॥ २७ ॥

तेरे ऊरु, अष्ठीवान्, श्रोणी और कटि दान करने वाले के लिए आमिषा, दूध, घृत और मधु देने वाले हों ॥ २१ ॥ तेरी पूँछ, बाल, ऐन और थन दानी के लिए आमिषा, दूध, घृत और मधु देने वाले हों ॥ २२ ॥ तेरी जाँघें, कुष्ठिका, शुम और अच्छर दान देने वाले के लिए आमिषा, दूध, घृत और मधु देने वाले हों ॥ २३ ॥ हे शतौदने! तेरा चर्म और तेरे लोम दानी के निमित्त आमिषा, दूध, घृत और मधु देने वाले हों ॥ २४ ॥ हे देवि, तेरे कोड घृत से युक्त पुरोडाश हों। तू उन्हें पंख बना कर पक्ता के साथ स्वर्ग को प्राप्त कर ॥ २५ ॥ जो धान्य-कण उलूखल, मूसल, चर्म, छाज में रहा है और मातरिश्वा ने जिसका मंथन कर शुद्ध किया है उसे होतागण अग्नि में सुहुत करें ॥ २६ ॥ घृत के समान सार को देने वाली मधुमयी जलदेवियों को ब्राह्मणों के हाथों में पृथक्-पृथक् देता हूँ। हे ब्राह्मणो! जिस अभीष्ट के निमित्त मैं तुम्हें सींचता हूँ वह सब धन से सम्पन्न हों ॥ २७ ॥

१० सूक्त

(ऋषि—कश्यपः। देवता—वशा। छन्द-अनुष्टुप्; बृहती; पङ्क्तिः गायत्री)

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः।
वालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः ॥ १ ॥
यो विद्यात् सप्त-प्रवतः सप्त विद्यात् परावतः।
शिरो यज्ञस्य यो विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ॥ २ ॥
वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः ।

शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥ ३ ॥
यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः ।
वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥ ४ ॥
शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः ।
ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा ॥ ५ ॥
यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका ।
वशा पर्जन्यपत्नी देवाँ अप्येति ब्रह्मणा ॥ ६ ॥
अनु त्वाग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा ।
ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥ ७ ॥
अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे ।
तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥ ८ ॥
यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि ।
इन्द्रः सहस्रं पात्रान्त्सोमं त्वापाययद् वशे ॥ ९ ॥
यदनूचीन्द्रमैरात् त्व ऋषभोऽह्वयत् ।
तस्मात् ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धोऽहरद् वशे ॥ १० ॥

हे अघ्न्ये ! तुझ उत्पन्न होने वाली को नमस्कार, तेरे बालों और खुरों के लिए नमस्कार ॥ १ ॥ जो वशा गौ की सात वस्तुओं तथा वशा से दूर करने वाली सात वस्तुओं को जानता है और जो यज्ञ के शीर्ष का ज्ञाता है, वह वशा को ग्रहण करने में समर्थ है ॥ २ ॥ मैं सात प्रवर्तों, सात परावर्तों, यज्ञ के शीर्ष और उसमें निहित सोम को भी जानता हूँ ॥ ३ ॥ आकाश, पृथिवी और यह जल जिस वशा द्वारा रक्षित हैं, उस सहस्रधार वाली वशा से हम सामने होकर मंत्र द्वारा वार्तालाप करते हैं ॥ ४ ॥ इसकी पीठ में दूध पीने के सौ पात्र और सौ दोग्धा हैं। इसमें प्राणन करने वाले विद्वान् वशा को एक प्रकार से जानते हैं ॥ ५ ॥ यज्ञपदी, इरा, क्षीरा, स्वधाप्राणा तथा पर्जन्य की पत्नी रूप वशा मंत्र-शक्ति से देवताओं को संतुष्ट करती है ॥ ६ ॥

हे वशे ! तुझमें सोम और अग्नि ने प्रवेश किया है । पर्जन्य तेरा थन और विद्युत रूप तेरे स्तन हैं ॥ ७ ॥ हे वशे ! तू जल प्रदायिनी है, उर्वर वस्तुओं को भी देती है, तृतीय राष्ट्र को देती हुई अन्न, दुग्धादि प्रदान करती है ॥ ८ ॥ तू आदित्यों द्वारा बुलाई जाने पर उनके पास गई थी, तब तुझे इन्द्र ने सहस्र पात्रों से सोम पिलाया था ॥ ९ ॥ जब तू इन्द्र के समीप थी तब ऋषभ ने तेरा आह्वान किया था और वृत्रहा ने रुष्ट होकर तेरे दूध को हर लिया था ॥ १० ॥

यत् ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद् वशे ।
इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥ ११ ॥
त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्य हरद् वशा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १२ ॥
सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता ।
वशा समुद्रमध्यष्ठाद् गन्धर्वैः कलिभिः सह ॥ १३ ॥
सं हि वातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः ।
वशा समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती ॥ १४ ॥
सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा ।
वशा समुद्रमत्यख्यद् भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती ॥ १५ ॥
अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि ।
अश्वः समुद्रो भूत्वाध्यस्कन्दद् वशे त्वा ॥ १६ ॥
तद् भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथो स्वधा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १७ ॥
वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव ।
वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥ १८ ॥
ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरद् ब्रह्मणः ककुदादधि ।

ततस्त्वं जज्ञिपे वशे ततो होताजायत ॥ १९ ॥
आस्नस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं वशे ।
पाजस्याज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव ॥ २० ॥

रुष्ट धनपति ने तेरे जिस दुग्ध को हर लिया था, उसे तीन पात्रों में रख स्वर्ग रक्षा कर रहा है ॥ ११ ॥ देवी वशा ने उस सोम को तीन पात्रों में भरा, वहाँ सुन्दर कुशा पर अथर्वा विराजमान हुए ॥ १२ ॥ सोम और सब पादयुक्तों के साथ सुसंगत हुई वशा कलि और गंधर्वों सहित जल पर प्रतिष्ठित है ॥ १३ ॥ वह वशा वायु और सब पादयुक्तों के साथ सुसंगत होती हुई ऋचा और सामों को धारण करती हुई समुद्र में नृत्य करती है ॥ १४ ॥ सूर्य तथा सब के नेत्रों से सुसंगत हुई, ज्योतियों को धारण करने वाली वशा ने सिंधु से भी अधिक प्रशस्ति को प्राप्त किया ॥ १५ ॥ हे वशे ! तू सुवर्ण से विभूषित हुई खड़ी थी तब द्रुतगामी समुद्र अधिस्कन्दित हो गए थे ॥ १६ ॥ जहाँ दीक्षित अथर्वा कुशाओं पर बैठते हैं वहाँ वशा देवी और स्वधा मङ्गल करने वाली हो जाती हैं ॥१७॥ हे स्वधे ! वशा क्षत्रिय की उत्पन्न करने वाली है वैसे ही तेरी भी रचने वाली है । वशा का शस्त्र यज्ञ है फिर चित्त उत्पन्न हुआ है ॥ १८ ॥ हे वशे ! ब्रह्म के ककुद से उभरने वाले एक बिन्दु से तू उत्पन्न हुई और फिर होता उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ हे वशे ! गाथाएँ तेरे मुख से निकलीं, उष्णिहा नाड़ियों से बल उत्पन्न हुआ, बल से यज्ञ हुआ और तेरे स्तनों से किरणें उत्पन्न हुईं ॥ २० ॥

ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव ।
आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ॥ २१ ॥
यदुदरं वरुणस्यानुप्राविशथा वशे ।
ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत् स हि नेत्रमवेत् तव ॥ २२ ॥
सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्वः ।
ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभिः क्लृप्तः स ह्यस्या बन्धुः ॥२३॥

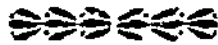
युध एकः सं सृजति यो अस्या एक इद् वशी ।
तरांसि यज्ञा अभवन् तरसां चक्षुरभवद् वशा ॥ २४ ॥
वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद् वशा सूर्यमधारयत् ।
वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह ॥ २५ ॥
वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते ।
वशेदं सर्वमभवद् देवा मनुष्या असुराः पितर ऋषयः ॥२६॥
य एवं विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ।
तथा हि यज्ञः सर्वपाद् दुहे दात्रेऽनपस्फुरन् ॥ २७ ॥
तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि ।
तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥ २८ ॥
चतुर्धा रेतो अभवद् वशायाः ।
आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् ॥ २९ ॥
वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः ।
वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥ ३० ॥
वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये ।
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥ ३१ ॥
सोममेनामेके दुह्रे घृतमेक उपासते ।
य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥ ३२ ॥
ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वाँल्लोकान्त्समश्नुते ।
ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्मायो तपः ॥ ३३ ॥
वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्याउत ।
वशेदं सर्वमभवद् यावत् सूर्यो विपश्यति ॥ ३४ ॥

हे वशे ! तेरे मर्यों और सक्थियों से यज्ञ हुआ, ...

उदर से लताएँ उत्पन्न हुईं ॥ २१ ॥ हे वशे ! तू वरुण के उदर में घुस गई थी, वहाँ से ब्रह्मा ने तुझे निकाला, वही तेरे नेत्र को जानने वाला हुआ ॥२२॥ जो प्राणी उत्पन्न होते हैं, वे सभी गर्भ से भयभीत होते हैं। यह वशा ही उन्हें जन्म देती है और मन्त्रों से समर्थ होने वाला कर्म ही इसका भ्राता है ॥ २३ ॥ एक मात्र युध ही रचने वाला है, वही इसका वशी है। तरस् यज्ञ है और यज्ञ वालों का चक्षु वशा है ॥ २४ ॥ यज्ञ का प्रतिग्रहण वशा करती है, वही सूर्य को यथास्थान रखती है, ब्रह्म सहित ओदन भी वशा में निहित है ॥ २५ ॥ वशा ही अमृत कहलाती है, मृत्यु रूप से भी वह उपास्य है। देवता, पितर, ऋषि और मनुष्य सभी वशा से युक्त थे ॥ २६ ॥ इस प्रकार जानने वाला वशा का प्रतिग्रहण करने वाला है। सब पादों से सम्पूर्ण यज्ञ दाता को उसके कर्म का फल देने में कभी आनाकानी नहीं करता ॥ २७ ॥ वरुण के मुख में तीन जिह्वाएँ चमकती हैं उनमें जो बीच की जिह्वा सुशोभित है, वही वशा है ॥ २८ ॥ वशा का रज चार भागों में विभक्त है—एक भाग जल, एक भाग अमृत, एक भाग पशु और एक भाग यज्ञ है ॥ २९ ॥ वशा ही द्यौ और पृथिवी है, वशा ही विष्णु और प्रजापति है। साध्य और वसु वशा का ही दुग्ध पान करते हैं ॥ ३० ॥ वशा के दूध को पीने वाले साध्य और वसु सूर्य मंडल में स्थित देव के आकाश में दुग्ध की ही आराध करते हैं ॥ ३१ ॥ एक सोम का दोहन करते, दूसरे घृत प्राप्त करते हैं, ए जानने वाले को जिन्होंने वशा दी, वे स्वर्ग में पहुँच गये ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणों वशा देने वाला सब लोकों के भोगों को भोगता है। सत्य ब्रह्म और तप वशा के आश्रित हैं ॥ ३३ ॥ वशा के द्वारा देवगण जीविका देते तथा म भी उसके द्वारा जीविका दे सकते हैं। यह सब संसार, जहाँ तक सू सकता है, वह सब स्थान वशा रूप ही है ॥ ३४ ॥

॥ दशम काण्ड समाप्तम् ॥

एकादश काण्ड



१ सूक्त [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—ब्रह्मौदन । छन्द—पङ्क्ति; त्रिष्टुप्; जगती; उष्णिक्; गायत्री)

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥ १ ॥
कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून् ॥ २ ॥
अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्नस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ।३
समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान् देवान् यज्ञियाँ एह वक्षः ।
तेभ्यो हविः श्रपयञ्जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४ ॥
त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितॄणां मर्त्यानाम् ।
अंशाञ्जानीध्वं वि भजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति ॥५॥
अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान् ।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु ।६।
साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय ।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति ॥७॥
इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म पृथिवी देवी सुमनस्यमाना ।
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ ८ ॥

एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि निर्भिन्ध्यंशून् यजमानाय साधु ।
अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजामुद्भरन्त्युदूह ॥ ९ ॥
गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमगुः ।
त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह राधयामि ॥ १० ॥

यह देवमाता अदिति पुत्र की कामना करती हुई ब्रह्मौदन करना चाहती है। हे अग्ने! तुम मंथन से उत्पन्न होओ। मरीचि आदि सप्तर्षि भूतों के उत्पन्न करने वाले हैं, वे इस देव यज्ञ में यजमान के पुत्र पौत्रादि सहित मंथन द्वारा प्रकट करें ॥ १ ॥ हे सप्तर्षियो! तुम संसार के मित्र रूप एवं अभीष्ट वर्षक हो। मंथन के द्वारा धूम को पुष्ट करो। यह अग्नि यजमानों के रक्षक हैं। यह ऋचा रूप स्तुतियों से शत्रु-सेना को वश करते हैं। देवताओं ने अपने क्षय करने वाले शत्रु असुरों को इन्हीं के द्वारा वश किया था ॥ २ ॥ हे अग्ने! तुम उत्पन्न प्राणियों के ज्ञाता हो। तुम मंथन द्वारा प्रकट होते हो। तुम दाह-पाक में समर्थ हो। मुझे अत्यन्त वीर्य प्रदान करने के लिए मन्त्र शक्ति से प्रदीप्त होते हो। तुम्हें सप्तर्षियों ने ब्रह्मौदन के निमित्त प्रकट किया है। इस लिए तुम इस पत्नी को पुत्र पौत्रादि धन प्रदान करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने! तुम समिधाओं से दीप्त होकर यज्ञ योग्य देवताओं को यहाँ लाओ। उन देवताओं के लिए हवि पकाओ और इस यजमान के देहावसान पर इसे स्वर्ग में स्थित करो ॥ ४ ॥ हे देवताओ! अग्नि आदि, पिता, पितामह प्रपितामह आदि तथा ब्राह्मणादि का जो भाग, तीन भागों में बाँट कर रखा था, उस अपने अपने अंश को जान लो। इनमें देव-भाग अग्नि में जाकर यजमान की इस पत्नी को अभीष्ट फल देने वाला हो ॥ ५ ॥ हे अग्ने! तुम शत्रुओं को वश करने वाले बल से युक्त हो। तुम हमारे शत्रुओं को नीचे गिराओ। हे यजमान! यह शाला द्रव्य की भेंट लेने वाले पुत्रादि को तुझे प्राप्त करावे ॥ ६ ॥ हे यजमान! तू वृद्धि को प्राप्त हो। इस को अधिक पराक्रम के लिए उन्नत कर और देहावसान के पश्चात् उन्नत स्वर्ग में आरोहण कर ॥ ७ ॥ सम्मुख वर्तमान यज्ञभूमि चर्म को स्वीकृत करे। यह पृथिवी अजिन के फैलने पर हम पर कृपा करने वाली हो। इसकी कृपा के

प्राप्त कर हम यज्ञ आदि से उत्पन्न पुण्यफल के कारणरूप लोक को प्राप्त करें ॥ ८ ॥ हे ऋत्विक्! तुम इन उलूखल, मूसल को इस फैले हुए अग्नि में स्थापित करो और यजमान के लिये धानों को सुन्दर बनाओ। हे पत्नि! हमारी प्रजा को नष्ट करने वाले शत्रुओं को रोक और अवहनन के पश्चात् मूसल को उठाती हुई हमारी संतान को श्रेष्ठ पद प्राप्त करा ॥ ९ ॥ हे अध्वर्यो! तुम उत्तम कर्म वाले हाथों में ओखली-मूसल को ग्रहण करो। देवता तुम्हारे यज्ञ में आगए हैं। हे यजमान! तू जिन तीन वरों की याचना करना चाहता है उन कर्म की समृद्धि,फल की समृद्धि और परलोक की समृद्धि इन तीनों को इस यज्ञ द्वारा सिद्ध करता हूँ ॥१०॥

इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा ।
परा पुनीहि य इमां पृतन्यवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥ ११ ॥
उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं वि विच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥ १२ ॥
परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद् भराय ।
तासां गृह्णीताद् यतमा यज्ञिया असन् विभाज्य धीरीतरा जहीतात् ॥१३
एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व ।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय ॥१४॥
ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः ।
अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित् प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु ॥१५
अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम् ।
आर्षेया दैवा अभिसङ्गत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु ॥१६॥
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा अपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः ।
अदुः प्रजां बहुलां पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ॥१७॥
ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे ।
अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम् ।

उरुःप्रथस्व महता महिम्ना सहस्र पृष्ठः सुकृतस्य लोके ।
पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि ॥ १६ ॥
सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः ।
अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव ॥२०

हे सूप ! चावलों से तुषों को फटकना ही तेरा कार्य है। तुझे मित्रा-वरुण, धाता आदि की माता अदिति परापवत के हाथ में ले। इस स्त्री की हत्या के निमित्त जो शत्रु सैन्य संग्रह करना चाहते हैं, उन्हें पतित करने के के लिए धानों को भुसी से अलग कर और इस पत्नी को पुत्र-पौत्रादि युक्त धन प्रदान कर ॥ ११ ॥ हे चावलो ! तुम्हें सत्य फल रूप कर्म के निमित्त प्रभूत करता हूँ। तुम सूप में बैठ कर तुषों से पृथक् हो जाओ। तुमसे प्राप्त हुई लक्ष्मी द्वारा हम भी अपने शत्रुओं के पार हों और उन्हें पाँवों से रौंद डालें ॥ १२ ॥ हे स्त्री ! तू जलाशय से जल लेकर शीघ्र लौट आ। जिसमें गौएँ जल पीती हैं, वह गोष्ठ भरण करने के लिए तेरे शिर पर चढ़े। उन जलों में से यज्ञ-योग्य जलों को ग्रहण करती हुई अयज्ञिय जलों को मत लेना ॥ १३ ॥ हे अलङ्कारों से सुसज्जित पत्नी ! यह जल लाने वाली स्त्रियाँ आ गई हैं, तू आसन से उठ कर इन्हें ग्रहण कर। तू सुन्दर पति वाली पुत्र-पौत्रादि से युक्त सौभाग्यवती हो। तू जल के कलश को ग्रहण कर। यह यज्ञ तुझे जल रूप से प्राप्त हो ॥ १४ ॥ हे जलो ! ब्रह्मा ने जो सारभूत भाग तुममें कल्पना की थी, वही यहाँ लाया जायगा। हे भार्ये ! तू इन जलों को धर्म पर स्थापित कर। यह ब्रह्मौदन यज्ञ-मार्ग को प्राप्त कराने, बल देने पुत्र-पौत्र, गवादि पशुओं को प्रदान कराने वाला है। हे यजमान की आदि, यह यज्ञ तुम्हें इन्हीं फलों का देने वाला हो ॥ १५ ॥ हे अग्ने पकाने के लिए तुम पर चरुस्थाली चढ़े और तुम अपने तेज से इसे त गोत्र-प्रवर्तक ऋषियों के ज्ञाता आर्षेय ब्राह्मण तथा इन्द्रादि से स देवता अपने-अपने भाग को पाकर इसे तपायें ॥१६॥ यह यज्ञ के योग चरुस्थाली में प्रविष्ट हों। यह जल हमको पुत्रादि तथा पशुओं को हों। ब्रह्मौदन पकाने वाला यजमान सुख के स्थान स्वर्ग को प्राप्त हो

मन्त्र से शुद्ध और घृत से पक कर दोष रहित होने वाले यह चावल सोम के अंश रूप हैं ! हे चावलो ! तुम यज्ञ के योग्य हो अतः चरुस्थाली में रखे हुए जलों में प्रविष्ट होओ । इस ब्रह्मौदन को पकाने वाला यजमान पुण्य लोक को प्राप्त हो ॥ १८ ॥ हे ओदन ! तू सहस्रों अवयवों वाला हो । तेरे द्वारा पिता, पितामह आदि सात पुरुष तृप्ति को प्राप्त करते हैं । पुत्र-पुत्री तथा उनकी भी सन्तान सात पीढ़ी तक तुझसे ही तृप्ति पाते हैं । इनके अतिरिक्त पकाने वाला मैं भी तृप्ति को प्राप्त करूँ ॥ १९ ॥ हे यजमान ! तेरा यज्ञ सहस्रों पृष्ठ वाला तथा सैंकड़ों धारों से युक्त है । यह कभी क्षय को प्राप्त नहीं होता । कर्म करने वाले जिसके द्वारा इन्द्रादि देवताओं को प्राप्त होते हैं । हे यज्ञ ! मैं इन सजातीयों को तेरे निमित्त उपस्थित करता हूँ तू इन्हें पुत्र पौत्रादि से युक्त करता हुआ, मुझे सुख देने वाला हो ॥ २० ॥

उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥ २१ ॥
अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङेनां देवताभिः सहैधि ।
मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज ॥२२॥
ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।
अंसद्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम् ॥२३॥
अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो यामकृण्वन् ।
सा गात्राणि विदुष्योदनस्य दर्विर्वेद्यामध्येनं चिनोतु ॥ २४ ॥
शृतं त्वा हव्यमुप सीदन्तु दैवा निःसृप्याग्नेः पुनरेनान् प्र सीद ।
सोमेन पूतो जठरे सीद ब्रह्मणामार्षेयस्ते मा रिषन् प्राशितारः ॥२५॥
सोम राजन्त्संज्ञानमा वपैभ्यः सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
ऋषीनार्षेयांस्तपसोऽधि जातान् ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि ॥ २६ ॥
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक्सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे ॥ ७ ॥

इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा म एषा ।
इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥ २८ ॥
अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूकाँ अप मृड्ढि दूरम् ।
एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम् ॥ २९ ॥
श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गमधि रोहयैनम् ।
येन रोहात् परमापद्य यद् वय उत्तमं नाकं परमं व्योम ॥ ३० ॥

हे पके हुए ओदन ! तू वेदी में हवि रूप से स्थित होने को आ अ इस पत्नी को संतानादि से समृद्ध कर । यज्ञ-हिंसक असुर को यहाँ से भग हम समान पुरुषों से अधिक सम्पत्ति वाले हों । मैं वैरियों को औंधे मु डालता हूँ ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मौदन ! तू यजमान आदि के सामने पशुवान हो पूज्य देवताओं के सहित आ । हे यजमान दम्पत्ति, तुम्हें अन्यों का आक्र प्राप्त न हो । अन्य द्वारा प्रेरित मारण-कर्म तेरे पास न आवे । तुम रोग-र रहते हुए ऐश्वर्यों को भोगने वाले होओ ॥ २२ ॥ ब्रह्मा ने इस वेदी रचना की । हिरण्यगर्भ ने इसे स्थापित किया । ऋषियों ने ब्रह्मौदन के लि इस वेदी की कल्पना की थी । हे स्त्री ! तू देवता, पितर और मनुष्यों आश्रय देने वाली इस वेदी के पास आ और उस पर ओदन को रख ॥ २३ देवमाता अदिति के द्वितीय हाथ रूप स्रुवे को सप्तर्षियों ने बनाया । स्रुवा दर्वी ओदन के पके हुए शरीरों को जानती हुई वेदी पर ब्रह्मौदन चढ़ावे ॥ २४ ॥ हे ओदन ! तेरे समीप पूज्य देवता आवें । तू अग्नि से निक कर उन्हें प्राप्त हो । दूध, दही आदि सोम रस से शुद्धि को प्राप्त हुआ तू ब्राह्मणों के पेट में जा । यह अपने-अपने गोत्र प्रवर के ज्ञाता भोजन क हिंसा को प्राप्त न हों ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मौदन ! तू सोम से सम्बन्धित है । ब्राह्मणों को मोह में मत डाल, इन्हें ज्ञान दे । जो ब्राह्मण तेरे समीप स्थि हैं उन ऋषियों को मैं तपोत्पन्न सुन्दर आह्वान वाली पत्नी ब्रह्मौदन के निमि आहूत करती हूँ ॥ २६ ॥ मैं यज्ञ के उपयुक्त, निर्मल, पवित्र करने वाले, प रहित जलों को ब्राह्मणों के हाथ पर डालता हूँ । हे जलो ! मैं जिस अभ

लिए तुम्हें अभिसिंचित करता हूँ मेरे उस अभीष्ट को मरुतों सहित इन्द्र
रा करें ॥ २७ ॥ यह शुद्ध ओदन धान जौ आदि शुक्त क्षेत्र से प्राप्त कामधेनु
और यह स्वर्ण मेरे स्वर्ग पथ में कभी भी न बुझने वाला दीपक है । मैं
स धन को दक्षिणा रूप में ब्राह्मणों को दे रहा हूँ, यह स्वर्ग में करोड़ गुणा
। पितरों का जो इच्छित स्वर्ग है, इसके द्वारा मैं उसका मार्ग बनाता हूँ
॥ २८ ॥ हे ऋत्विक् ! ब्रह्मौदन के चावलों से अलग किये तुषों को अग्नि में
ालो और फलीकरणों को पैर से पृथक् करो । यह फलीकरण वास्तु नाग का
ाग कहा जाता है तथा यह पाप देवता निऋ॔ति का भी भाग रूप है ॥२९॥
ः ब्रह्मौदन ! तुम तप करने वाले, ब्रह्मौदन पाक वाले, सवयज्ञ रूप
ोमाभिषव वाले यजमानों को जान कर स्वर्ग के मार्ग पर चढ़ाओ । यह श्येन
क्षी के समान जैसे भी स्वर्ग पर पहुँच सकें, वैसा ही कार्य करो ॥३०॥

वभ्रे रक्षः वर्षो मुखमेतद् वि मृड्ढ्याज्याय लोकं कृणुहि प्रविद्वान् ।
घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥३१॥
वभ्रे रक्षः समदमा वपैभ्योऽब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदात् ।
पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्तादार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः ॥ ३२ ॥
आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र ।
अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पक्वम् ॥३३॥
यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम् ।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥ ३४ ॥
वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान् गच्छ ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम् ॥ ३५ ॥
समाचिनुष्वानुसंप्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान् ।
एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ ॥ ३६ ॥
येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥ ३७ ॥

हे ऋत्विक् ! इस ओदन के मुख को शुद्ध करो, फिर ओदन के मध्य में घृत के लिए गड़ा बनाओ और सब अवयवों को घृत से सींचो । जो मार्ग स्वर्ग में पितरों के समीप जाता है, उसी को ओदन के द्वारा बनाता हूँ ॥२१॥ हे ब्रह्मौदन ! ब्राह्मण के अतिरिक्त, प्राशन हेतु जो क्षत्रिय तेरे पास बैठें उन्हें युद्ध-कलह प्रदान कर । जो गोत्र प्रवर आदि के ज्ञाता ऋषि बैठें वे पशु आदि से सम्पन्न हों । वे प्राशन करने वाले ब्राह्मण नाश को प्राप्त न हों ॥ २२ ॥ हे ओदन ! मैं तुझे आर्षेय ब्राह्मणों में स्थित करता हूँ इस ब्रह्मौदन में अनार्षेयों की संभावना नहीं है । अग्नि, मरुद्गण, मित्रावरुण अर्यमा आदि सब देवता सब ओर से इस ब्रह्मौदन की रक्षा करने वाले हैं ॥ २३ ॥ यह ब्रह्मौदन यज्ञों को उत्पन्न करने वाला, प्रवृद्धोधस्क, धनों का घर और पुंगव रूप है । हे ब्रह्मौदन ! हम तेरे द्वारा पुत्र, पौत्रादि धन-पुष्टि और दीर्घ आयु को प्राप्त करने वाले हों ॥ २४ ॥ हे काम्य वर्षक ब्रह्मौदन ! तू स्वर्ग-प्राप्त कराने वाला है अतः आर्षेय ब्राह्मणों को मेरे द्वारा प्राप्त हो और फिर पुण्यात्माओं के फलभूत स्वर्ग में जा । वहाँ हमारा तेरा संस्कार पूर्ण होगा ॥ २५ ॥ हे ओदन ! तू समाचयन करता हुआ गन्तव्यों को प्राप्त हो हे अग्ने ! इस ओदन के गमन के लिए देवमार्ग पर जाने वाले यानों को बनाओ और हम भी इन मार्गों से ही स्वर्ग में स्थित यज्ञ के अनुगामी हों ॥ २६ ॥ ब्रह्मौदन कर्म द्वारा ही इन्द्रादि देवता देवयान मार्ग से स्वर्ग को गए । इस लिए जिसका नाम देवयान मार्ग हुआ, हम भी अपने पुण्यकर्म द्वारा उसी मार्ग से उसी लोक को प्राप्त हों । हम पहले स्वर्ग में चढ़ें और फिर नाकपृष्ठ नामक स्थान में स्थित हों ॥ २७ ॥

२ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-भवादयो मन्त्रोक्ताः । छन्द-जगती; उष्णिक्; अनुष्टुप्; बृहती; गायत्री; त्रिष्टुप्; शक्वरी)

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम् ।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥

शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः । मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥ २ ॥
क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः ।
नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥ ३ ॥
पुरस्तात् ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत ।
अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥ ४ ॥
मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव ।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥ ५ ॥
अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते ।
दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥ ६ ॥
अस्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना ।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥ ७ ॥
स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परि वृणक्तु नो भवः ।
मा नोऽभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥ ८ ॥
चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दशकृत्वः पशुपते नमस्ते ।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥९॥
तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु ॥ १० ॥

हे भव, शर्व देवताओ ! तुम हम को सुख दो । रक्षा के लिए मेरे सामने चलो । हे भूतेश्वरो ! तुम गवादि पशुओं के पालक हो मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ । इससे प्रसन्न हुए तुम मेरी ओर अपने बाण को मत छोड़ो और हमारे दुपाये, चौपायों का भी संहार मत करो ॥ १ ॥ हे भव, शर्व ! हमारे देहों को मांस भक्षी गिद्धों, कुत्तों, गीदड़ों के लिए मत करो । तुम्हारी जो मक्षिकाएं और पक्षी हैं, वे खाद्य के रूप मुझे प्राप्त न करें ॥ २ ॥ हे भव ! तुम्हारे प्राण वायु और क्रन्दन शब्द को हमारा नमस्कार है । तुम्हारे माया-

हे ऋत्विक् ! इस ओदन के मुख को शुद्ध करो, फिर ओदन के मध्य में घृत के लिए गड्ढा बनाओ और सब अवयवों को घृत से सींचो । जो मार्ग स्वर्ग में पितरों के समीप जाता है, उसी को ओदन के द्वारा बनाता हूँ ॥३१॥ हे ब्रह्मौदन ! ब्राह्मण के अतिरिक्त, प्राशन हेतु जो क्षत्रिय तेरे पास बैठें उन्हें युद्ध-कलह प्रदान कर । जो गोत्र प्रवर आदि के ज्ञाता ऋषि बैठें वे पशु आदि से सम्पन्न हों । वे प्राशन करने वाले ब्राह्मण नाश को प्राप्त न हों ॥ ३२ ॥ हे ओदन ! मैं तुझे आर्षेय ब्राह्मणों में स्थित करता हूँ इस ब्रह्मौदन में अनार्षेयों की संभावना नहीं है । अग्नि, मरुद्गण, मित्रावरुण, अर्यमा आदि सब देवता सब ओर से इस ब्रह्मौदन की रक्षा करने वाले हों ॥ ३३ ॥ यह ब्रह्मौदन यज्ञों को उत्पन्न करने वाला, प्रवृद्धोधस्क, धनों का घर और पुंगव रूप है । हे ब्रह्मौदन ! हम तेरे द्वारा पुत्र, पौत्रादि धन-पुष्टि और दीर्घ आयु को प्राप्त करने वाले हों ॥ ३४ ॥ हे काम्य-वर्षक ब्रह्मौदन ! तू स्वर्ग-प्राप्त कराने वाला है अतः आर्षेय ब्राह्मणों को मेरे द्वारा प्राप्त हो और फिर पुण्यात्माओं के फलभूत स्वर्ग में जा । वहाँ हमारा तेरा संस्कार पूर्ण होगा ॥ ३५ ॥ हे ओदन ! तू समाचयन करता हुआ गन्तव्यों को प्राप्त हो । हे अग्ने ! इस ओदन के गमन के लिए देवमार्ग पर जाने वाले यानों को बनाओ और हम भी इन मार्गों से ही स्वर्ग में स्थित यज्ञ के अनुगामी हों ॥ ३६ ॥ ब्रह्मौदन कर्म द्वारा ही इन्द्रादि देवता देवयान मार्ग से स्वर्ग को गए । इस लिए जिसका नाम देवयान मार्ग हुआ, हम भी अपने पुण्यकर्म द्वारा उसी मार्ग से उसी लोक को प्राप्त हों । हम पहले स्वर्ग में चढ़ें और फिर नाकपृष्ठ नामक स्थान में स्थित हों ॥ ३७ ॥

२ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-भवादयो मन्त्रोक्ताः । छन्द-जगती; उष्णिक्; अनुष्टुप्; बृहती; गायत्री; त्रिष्टुप्; शक्करी)

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम् ।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥

शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा
अविष्यवः । मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥ २ ॥
क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः ।
नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥ ३ ॥
पुरस्तात् ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत ।
अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥ ४ ॥
मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव ।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥ ५ ॥
अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते ।
दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥ ६ ॥
अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना ।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥ ७ ॥
स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आपइवाग्निः परि वृणक्तु नो भवः ।
मा नोऽभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥ ८ ॥
चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दशकृत्वः पशुपते नमस्ते ।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥९॥
तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु ॥ १० ॥

हे भव, शर्व देवताओ ! तुम हम को सुख दो । रक्षा के लिए मेरे सामने चलो । हे भूतेश्वरो ! तुम गवादि पशुओं के पालक हो मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ । हमसे प्रसन्न हुए तुम मेरी ओर अपने बाण को मत छोड़ो और हमारे दुपाये, चौपायों का भी संहार मत करो ॥ १ ॥ हे भव, शर्व ! हमारे देहों को मांस भक्षी गिद्धों, कुत्तों, गीदड़ों के लिए मत करो । तुम्हारी जो मक्षिकाएँ और पक्षी हैं, वे खाद्य के रूप मुझे प्राप्त न करें ॥ २ ॥ हे भव ! तुम्हारे प्राण वायु और क्रन्दन शब्द को हमारा नमस्कार है । तुम्हारे माया-

मय शरीरों को नमस्कार है। हे संसार के सात्तिदेव ! तुम अमरणधर्म वाले को हमारा नमस्कार है ॥ ३ ॥ हे रुद्र ! पूर्व, उत्तर और दक्षिण दिशाओं में हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। तुम आकाश के मध्य में सब के नियंता रूप से प्रतिष्ठित हो। हमारा नमस्कार है ॥ ४ ॥ हे भवदेव ! तुम्हारे मुख, चक्षु, त्वचा और नील पीतवर्ण को नमस्कार है। तुम्हारी समान रूप वाली दृष्टि को नमस्कार है। हे देव ! मेरा नमस्कार ग्रहण करो ॥ ५ ॥ तुम्हारे उदर, जिह्वा, दाँत, घ्राणेन्द्रिय तथा अन्य अङ्गों के लिए हम नमस्कार करते हैं ॥ ६ ॥ नीले केश, सहस्राक्ष, अश्व के समान वेग वाले, आधी सेना का शीघ्र नाश कर देने वाले रुद्र के द्वारा हम कभी आहत न किये जाँय ॥ ७ ॥ जिन भव की महिमा प्रत्यक्ष है वे हमें सब उत्पातों से पृथक् रखें। अग्नि जैसे जल को छोड़ता है, वैसे ही रुद्र हम को छोड़ दें। भवदेव को नमस्कार है। वे मुझे पीड़ित न करें ॥ ८ ॥ शर्वदेव को चार वार नमस्कार, भवदेव को आठ वार नमस्कार है। हे पशुपते ! तुम्हें दश वार नमस्कार है। विभिन्न जाति वाले गवादि जीवों और पुरुषों की रक्षा करो ॥ ९ ॥ हे रुद्र ! तुम प्रचण्ड वल वाले हो। यह चारों दिशाएं तुम्हारी ही हैं। यह स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष, सब दिशाएं तुम्हारा शरीर रूप ही हैं। तुम सब पर कृपा करने वाले और पूजनीय हो ॥ १० ॥

उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः ।
स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः
परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥ ११ ॥
धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन् ।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ १२ ॥
योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।
पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥ १३ ॥
भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय ।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ १४ ॥

नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ १५ ॥
नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥ १६ ॥
सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम् ।
मोपाराम जिह्वयेयमानम् ॥ १७ ॥
श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम् ।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥ १८ ॥
मा नोऽभि स्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते ।
अन्यत्रास्मद् दिव्यां शाखां वि धूनु ॥ १९ ॥
मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः ।
मा त्वया समरामहि ॥ २० ॥

हे पशुपते ! निवास के कारण रूप कर्म जहाँ किये जाते हैं वह अण्डकटाहात्मक कोश तुम्हारा ही है। इसी में सब भूत निवास करते हैं। तुम हम को सुख दो। तुम्हें नमस्कार है। मांस भक्षक सियार, कुत्ते आदि हम से दूर हों। अमङ्गलकारिणी पिशाचिनी भी अन्यत्र गमन करें ॥ ११ ॥ हे रुद्र ! तुम प्रलयकाल में संहारात्मक धनुष धारण करते हो। वह हरित सुवर्ण निर्मित धनुष सहस्रों को एक ही बार में समाप्त कर देता है। [तुम्हारे ऐसे धनुष को प्रणाम ! रुद्र का बाण सब ओर-अबाध गति से जाता है, वह बाण जिस दिशा में हो, उसी दिशा में उस बाण को हम प्रणाम करते हैं ॥ १२ ॥ हे रुद्र ! जो पुरुष असमर्थ होकर तुम्हारे सामने से भाग जाता है, उस अपराधी को तुम उचित दण्ड देने में समर्थ हो। जैसे आहत पुरुष छिपे हुए पुरुष के पद-चिह्नों द्वारा पहुँच कर उसे पकड़ कर मारता है (वैसा ही तुम करते हो) ॥ १३ ॥ भव और रुद्र समान मति वाले मित्र रूप हैं। वे प्रचंड पराक्रमी किसी से न दबते हुए, अपना शौर्य प्रकट करते हुए घूमते हैं। उन को नमस्कार है। वे जिस दिशा में विराजमान हों, उसी दिशा में उनको

हमारा प्रणाम प्राप्त हो ॥ १४ ॥ हे रुद्र ! हमारे सामने आते हुए तुम्हें नमस्कार है। हम से लौट कर जाते हुए तुम्हें नमस्कार है। तुम्हें बैठे हुए और खड़े हुए भी हमारा नमस्कार है ॥ १५ ॥ हे रुद्र ! तुम्हें सायंकाल, प्रातःकाल रात्रि और दिन में भी हम नमस्कार करते हैं। भव और शर्व दोनों देवताओं को हमारा नमस्कार है ॥ १६ ॥ अत्यन्त सूक्ष्मदर्शी, सहस्रों नेत्र वाले, मेधावी, असंख्य बाण छोड़ने वाले और संसार को व्याप्त करते हुए रुद्र के पास हम न जाँय ॥ १७ ॥ श्यावाश्व वाले, कृष्ण परिच्छद को मथने वाले, जिन्होंने केशी नामक दैत्य के रथ को गिरा दिया था, जिनसे संसार डरता है उन रुद्र को अपने रक्षक रूप से अन्य स्तोताओं से भी पहले से जानते हैं। उनको हमारा नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे रुद्र ! हम मरणधर्म वालों पर अपने बाण मत चलाओ। हम पर क्रोध न करो। दिव्य शाखा के समान अपने दिव्यास्त्र को हम से पृथक् छोड़ो। तुम्हारे लिये हम नमस्कार करते हैं ॥१६॥ हे रुद्र ! हमारे प्रति हिंसात्मक भाव मत रखो। हमको अपनी कृपा के योग्य मानो। हम पर क्रोध मत करो। तुम्हारा शस्त्र हमसे पृथक् रहे। हम आपके क्रोधित भाव से पृथक् ही रहें ॥ २० ॥

मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु।
अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि ॥ २१ ॥
यस्य तक्मा कासिका हेतिरेकमश्वस्येव वृषणः क्रन्द एति।
अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ॥ २२ ॥
योऽन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून्।
तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः ॥ २३ ॥
तुभ्यमारण्या पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि।
तव यक्षं पशुपते अप्स्वन्तस्तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे ॥ २४ ॥
शिशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान् परि पश्यसि भूमिं
पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन् समुद्रे ॥ २५ ॥

मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना ।
अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयैताम् ॥ २६ ॥
भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्वन्तरिक्षम् ।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ २७ ॥
भव राजन् यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ ।
यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड ॥ २८ ॥
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः ।
मा नो हिंसीः पितरं मातरं च स्वां तन्वं रुद्र मा रीरिषो नः ॥२९॥
रुद्रस्यैलबकारेभ्योऽसंसूक्तगिलेभ्यः ।
इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ॥ ३० ॥
नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः ।
नमो नमस्कृताभ्यो नमः सम्भुञ्जतीभ्यः ।
नमस्ते देव सेनाभ्यः स्वस्ति नो अभयं च नः ॥ ३१ ॥

हे रुद्र ! हमारे गौ, पुत्र, भृत्यादि की हिंसा-कामना न करो । हमारे भेड़ बकरों की हिंसा-कामना मत करो । तुम अपने शस्त्रों को देव-विरोधियों पर छोड़ कर उनकी संतान को ही नष्ट करो ॥ २१ ॥ जिन रुद्रदेव के आयुध रूप पीड़ामय कास और ज्वरादि व्याधि हैं, वे सेचन समर्थ घोड़े की हुँकार के समान अपराधियों को प्राप्त होते हैं वह आयुध, कर्म को लक्ष्य में करता हुआ जो उसके योग्य होता है, उसी का नाश करता है । ऐसे उन रुद्र देवता के लिये हमारा नमस्कार है ॥ २२ ॥ जो रुद्र अन्तरिक्ष में स्थित रहते हुए अयाज्ञिकों का संहार करते रहते हैं, हम उन रुद्र को हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हैं ॥ २३ ॥ हे पशुपते ! वन में सिंह, हरिण, बाज, हंस तथा अन्य वनचर और पक्षियों को तुम्हारे निमित्त विधाता ने बनाया है, उन्हीं को अपने इच्छानुसार स्वीकार करो, इन गाँव के पशुओं की हिंसा मत करो । तुम्हारा पूजनीय रूप जल में स्थित है, इसलिये तुम्हें अभिषिक्त करने को दिव्य जल

प्रवाहमान रहते हैं ॥ २४ ॥ हे रुद्र ! शिशुमार, अजगर, पुरीकय, जष, मत्स्य आदि जलचर भी तुम्हारे निमित्त हैं, उनके लिये तुम अपने तेज अस्त्र को फेंकते हो। हे भव ! तुम से दूर कुछ नहीं है, तुम क्षण भर में सम्पूर्ण पृथिवी देखते और पूर्व से उत्तर में पहुँच जाते हो ॥ २५ ॥ हे रुद्र ! तुम हमको ज्वरादि रोग रूप अस्त्र से मत मिलाओ और स्थावर जङ्गम के विष से भी मत मिलाओ। आकाश विद्युत रूप अग्नि से भी हम को मत मिलाओ। इस विद्युत रूप अस्त्र को जङ्गली पशु आदि पर हमसे दूर डालो ॥ २६ ॥ भवदेवता द्युलोक और पृथिवी के अधिपति हैं, आकाश-पृथिवी के मध्य में स्थित अन्तरिक्ष को वही अपने तेज से युक्त करते हैं, वे भवदेव जिन दिशाओं में हो, उनको वहीं नमस्कार है ॥ २७ ॥ हे भव, हे राजन् ! तुम पाँच प्रकार के पशुओं के स्वामी हो, जो तुम्हारे निमित्त यज्ञ करता है, उस यजमान को सुख दो। जो पुरुष इन्द्रादि देवताओं को अपना रक्षक मानता है उसके चौपायों, दुपायों को सुख प्रदान करो ॥ २८ ॥ हे रुद्र ! हमारे बड़े, मध्यम अथवा छोटों का संहार न करो। हमारे माता पिता को मत मारो। हम को वहन करने वाले पुरुषों की हत्या न करो और हमारे शरीर की भी हिंसा न करो ॥२९॥ रुद्र के प्रेरणा युक्त कर्म वाले प्रथम गणों को नमस्कार करता हूँ, कटुभाषी गणों को प्रणाम करता हूँ। मृगया के निमित्त किरात वेश धारी भव के श्वानों को नमस्कार करता हूँ ॥ ३० ॥ हे रुद्र ! तुम्हारी प्रभूत घोष वाली, केशिनी, चण्डेश्वर आदि सेनाओं को नमस्कार है, सहभोजन करने वाली या अन्य सेनाओं को भी नमस्कार है। तुम्हारी कृपा से हमारा कुशल हो और हम भय रहित हों ॥ ३१ ॥

३ सूक्त (१) [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि—अथर्वा। देवता—बार्हस्पत्यौदनः। छन्दः—गायत्री; पंक्ति; अनुष्टुप्; उष्णिक्; जगती; बृहती; त्रिष्टुप्)

तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् ॥ १ ॥

द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्तऋषयः प्राणापानाः ॥२॥

चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम् ॥ ३ ॥
दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोऽपाविनक् ॥४॥
अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः ॥ ५ ॥
कब्रु फलीकरणाः शरोऽभ्रम् ॥ ६ ॥
श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥ ७ ॥
त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥ ८ ॥
खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ॥ ९ ॥
आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः ॥ १० ॥

इस ओदन के शिर बृहस्पति हैं और उसके कारणभूत ब्रह्म उसके मुख हैं ॥ १ ॥ आकाश पृथिवी इसके कान, सूर्य चन्द्र नेत्र और मरीच्यादि महर्षि उसके प्राणापान हैं ॥ २ ॥ इस ओदन के उपादान रूप मूसल इसका नेत्र है, और उलूखल इसकी कामना है ॥ ३ ॥ दिति ही सूप है और जो सूप से छरती है वह अदिति है तथा वायु धान और चावलों का विवेचन करने वाला है ॥ ४ ॥ ओदन के कण अश्व हैं, तण्डुल गौ हैं और पृथक् की हुई भुसी मच्छर रूप हैं ॥ ५ ॥ फलीकरणों का शिर जिसकी भ्रू हैं वह कभ्रु है, मेघ शिर है ॥ ६ ॥ कुदाली आदि का उपादान काले रङ्ग का लोह इस ओदन का मांस और लाल रंग वाला ताँबा इसका रक्त है ॥ ७ ॥ ओदन पकने के पश्चात् जो राख होती है, वह सीसा है, जो ओदन का वर्ण है वह सुवर्ण है, ओदन की गन्ध कमल है, सूप इसका पात्र है, गाड़ी के अवयव इसके अंश हैं, ईशाएं अनूक्य हैं, वृषभों के कण्ठ में बाँधी हुई रस्सियाँ इसकी आँतें हैं और चमड़े के बंधन गुदा हैं ॥ ८, ९, १० ॥

इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ॥११॥
सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम् ॥ १२ ॥
ऋतं हस्तावनेजनं कुल्यो पसेचनम् ॥ १३ ॥
ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ॥ १४ ॥

ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ॥ १५ ॥
बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः ॥ १६ ॥
ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते ॥ १७ ॥
चरुं पञ्चबिलमुखं घर्मोऽभीन्धे ॥ १८ ॥
ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥ १९ ॥
यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं श्रिताः ॥ २० ॥

यह पृथिवी ही ओदन-पाक के लिये कुंभी है, आकाश इसका ढक्कन है ॥ ११ ॥ लांगलपद्धतियाँ इसकी पसली और नदी आदि में जो रज है वह ऊवध्य है ॥ १२ ॥ सम्पूर्ण साँसारिक-जल, इसमें हाथ धोने का जल है और छोटी नदियाँ इसका उपसेचन रूप है ॥१३॥ उक्त लक्षण वाली कुम्भी ऋग्वेद रूप अग्नि पर चढ़ी है, इसे अथर्ववेद द्वारा स्थित किया है और सामवेद रूप अङ्गार इसके चारों ओर लगे हैं ॥१४,१५॥ जल में डाले हुए चाँवलों को मिलाने का काष्ठ बृहत्साम और करछली रथन्तर साम है ॥ १६ ॥ ऋतुएँ इस ओदन के पकाने वाली हैं। अखिल विश्वमय ओदन का पकाना समय के वश की ही बात है, उसके सिवा उसे कोई नहीं पका सकता। दिन-रात ही इसे प्रज्वलित करने में समर्थ हैं ॥ १७ ॥ चरु को ओदन कहते हैं, उसे पकाने की स्थाली भी चरु कहाती है। उस चरु को तेजस्वी सूर्य तपाता है ॥ १८ ॥ अग्निष्टोम आदि यज्ञों के द्वारा जिन लोकों की प्राप्ति बताई जाती है, वे सब लोक इस उत्पन्न प्रभाव वाले पके हुए ओदन के द्वारा प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ जिस ओदन के नीचे ऊपर पृथिवी, समुद्र, आकाश स्थित हैं यह वही है ॥२० ॥

यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः ॥ २१ ॥
तं त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् ॥ २२ ॥
स य ओदनस्य महिमानं विद्यात् ॥ २३ ॥
नाल्प इति ब्रूयान्नानुपसेचन इति नेदं च किं चेति ॥ २४ ॥
यावद् दाताभिमनस्येत तन्नाति वदेत् ॥ २५ ॥

ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं प्राशीः प्रत्यञ्चामिति ॥२६॥
त्वमोदनं प्राशीस्त्वामोदना इति ॥ २७ ॥
पराञ्चं चैनं प्राशीः प्राणास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २८ ॥
प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २६ ॥
नैवाहमोदनं न मामोदनः ॥ ३० ॥
ओदन एवौदनं प्राशीत् ॥ ३१ ॥

जिस ओदन के यज्ञ से बचे हुए अंश में चार सौ अस्सी देवता समर्थ हुए, उस ओदन से सभी लोकों की प्राप्ति सम्भव है ॥ २१ ॥ इस ओदन की जो महान् महिमा है उसे मैं तुमसे पूछता हूँ ॥ २२ ॥ इसकी महिमा को जो गुरु जानता हो, वह महिमा को अल्प न बतावे और यह भी न कहे कि इसमें दूध, घृत आदि की आवश्यकता नहीं है। केवल इसके महात्म्य को ही कहे ॥२३, २४॥ 'वसयज्ञ' का अनुष्ठान करने वाला दानी अपने मन मे जितने फल की कामना करे, उससे अधिक न कहे ॥ २५ ॥ ब्रह्मवादी महर्षि परस्पर कहते हैं कि तू इस पराङ्मुख अथवा आत्माभिमुख ओदन का प्राशन कर चुका है। तूने ओदन को खाया है या ओदन ने तेरा प्राशन कर लिया है ॥ २७ ॥ यदि तूने पीछे स्थित ओदन का भक्षण किया है तो प्राण वायु तुझसे पृथक् हो जायगा इस प्रकार प्राशिता से कहना चाहिये ॥ २८ ॥ यदि तूने प्रति मुख ओदन का भक्षण किया है तो अपान वायु तेरा त्याग करेगा— इस प्रकार प्राशिता से कहना चाहिये ॥ २६ ॥ ओदन का प्राशन मैंने नहीं किया और न ओदन ने मेरा प्राशन किया है ॥ ३० ॥ यह ओदन प्रपंचात्मक है। ओदन करने वाले ने इसका प्राशन स्वात्मरूप से किया ॥ ३१ ॥

३ (२) सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ताः। छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री; जगती अनुष्टुप्; पंक्ति,- बृहती; उष्णिक्)

ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्

ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
बृहस्पतिना शीर्ष्णा । तेनैतं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एषा वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३२ ॥
ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
बधिरो भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम् ।
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांगः सर्वपरु सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३३ ॥
ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
अन्धो भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम् ।
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३४ ॥
ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
ब्रह्मणा मुखेन । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।

सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥३५॥
ततश्चैनमन्यया जिह्वया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
अग्नेर्जिह्वया । तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३६ ॥
ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
ऋतुभिर्दन्तैः तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥३७॥
ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सप्तऋषिभिः प्राणापानैः । तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३८ ॥
ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
अन्तरिक्षेण व्यचसा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांगः सर्वपरुः सर्वतनूः ।

सर्वाग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३९ ॥
ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
दिवा पृष्ठेन । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांगः सर्वपरुः सर्वतनुः ।
सर्वाग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४० ॥

"पूर्व अनुष्ठाताओं ने जिस शिर से ओदन का प्राशन किया था, उसके अतिरिक्त अन्य शिर से तूने प्राशन किया है तो वड़े से लेकर क्रमशः तेरी संतान नष्ट होने लगेगी।" अभिज्ञ पुरुष प्राशिता से ऐसा कहे। मैंने उस ओदन को अभिमुख और पराङ्मुख होने पर भी नहीं खाया। ऋषियों ने बृहस्पति से सम्बन्धित शिरसे इसका प्राशन किया था,मैंने भी ओदन-सम्बन्धी शिर से उसी प्रकार प्राशन किया है। मुक्त ओदन ने ही ओदन को खाया है। इस प्रकार प्राशित यह ओदन सब अङ्गों से पूर्ण शरीर वाला होकर सर्वाङ्ग फल को कहता है। इस प्रकार ओदन के प्राशन का ज्ञाता पुरुष सर्वाङ्ग फल पाता हुआ, स्वर्गादि लोकों में पहुँचता है ॥ ३२ ॥ "पूर्व ऋषियों की विधि के अतिरिक्त अन्य सुनी हुई विधियों से प्राशन किया है तो तू वधिर होगा।" मैंने द्यावा पृथिवी रूप श्रोत्रों से इस ओदन का प्राशन किया है, लौकिक श्रोत्रों से नहीं किया। इस प्रकार से प्राशित ओदन सर्वाङ्ग पूर्ण होता हुआ फल देता है। ओदन प्राशन को इस प्रकार जानने वाला पुरुष सर्वाङ्ग फल पाता हुआ स्वर्गादि पुण्य लोक प्राप्त करता है ॥ ३३ ॥ "पूर्व ऋषियों ने जिन नेत्रों से प्राशन किया था, तूने उसके अतिरिक्त लौकिक नेत्रों से इसका प्राशन किया है तो तू अंधा हो जायगा।" मैंने सूर्य चन्द्र रूपी नेत्रों से प्राशन किया है, इस प्रकार का ओदन प्राशन सर्वाङ्ग देह युक्त फल कहने वाला है। जो इस प्रकार जानता है वह सर्वाङ्गात्मक फल को प्राप्त करता हुआ स्वर्गादि लोक में अवस्थित होता है ॥ ३४ ॥ "जिस ब्रह्मात्मक मुख से ऋषियों ने ओदन-प्राशन

किया था, यदि तूने उसके अतिरिक्त लौकिक मुख से इसका प्राशन किया है तो तेरी संतान तेरे सामने ही नाश को प्राप्त होने लगेगी।" मैंने ब्रह्म रूपी मुख से ओदन का प्राशन किया है जो सर्वाङ्गपूर्ण फल का कहने वाला है। जो पुरुष ओदन के प्राशन को इस प्रकार जानने वाला है, वह सर्वाङ्ग फल से पूर्ण होकर पुण्य-फल के धाम स्वर्ग को पाता है ॥ ३५ ॥ "ऋषियों ने जिस जिह्वा से प्राशन किया था, उसके अतिरिक्त लौकिक जिह्वा से तूने ओदन-प्राशन किया है तो तेरी जिह्वा निरर्थक हो जायगी।" इस ओदन की अवयव-भूत अग्नि रूप जिह्वा से मैंने ओदन का प्राशन किया है, जो सर्वाङ्ग फल को कहने वाला है। इस प्रकार जानने वाला पुरुष सर्वाङ्ग फल को प्राप्त करता हुआ स्वर्गादि में स्थित होता है ॥ ३६ ॥ "पूर्व ऋषियों की विधि के अतिरिक्त लौकिक दाँतों से यदि तूने प्राशन किया है तो तेरे दाँत नष्ट होंगे।" मैंने ऋतु रूप दाँतों से ओदन को खाया है, इस प्रकार किया हुआ प्राशन सर्वाङ्ग फल को कहता है। जो इस प्राशन को इस प्रकार जानता है, वह सर्वांग फल को प्राप्त करता हुआ स्वर्गादि में स्थित होता है ॥ ३७ ॥ "जिन प्राणापानों से पूर्व पुरुषों ने ओदन-प्राशन किया था, तूने उससे भिन्न लौकिक प्राणापानों से इसका प्राशन किया है तो तेरे प्राणापान रूप वायु तुझे त्याग देंगे।" मैंने सप्तर्षि रूप प्राणापानों से इसे खाया है। इस प्रकार खाया हुआ ओदन पूर्ण शरीर होता है। इस प्रकार ओदन-प्राशन का ज्ञाता पुरुष सर्वांग फल पाता हुआ स्वर्गादि में स्थित होता है ॥ ३८ ॥ "जिस विधि से पूर्व ऋषियों ने इसका प्राशन किया था, तूने यदि उससे भिन्न, लौकिक विधि से प्राशन किया है तो तुझे यक्ष्मादि रोग नष्ट कर देंगे।" मैंने उसी अंतरिक्षात्मक विधि से इसका प्राशन किया है, जिससे यह सर्वांग पूर्ण हो जाता है। जो पुरुष ओदन-प्राशन को इस प्रकार जानता है, वह सर्वांग फल वाला होकर स्वर्ग में स्थित होता है ॥ ३९ ॥ "पूर्व ऋषियों ने जिस पृष्ठ से प्राशन किया था, तूने उसके अतिरिक्त अन्य पृष्ठ से यदि ओदन का प्राशन किया है तो विद्युत तेरा संहार करेगी।" मैंने द्यौ रूप पृष्ठ से इसका प्राशन कर यथा-स्थान पहुँचाया है। इस प्रकार प्राशित यह ओदन सर्वांग पूर्ण हो जाता है। जो पुरुष

प्राशन को इस प्रकार जानता है, वह सर्वांग फल से युक्त स्वर्गादि लोक में स्थित होता है ॥ ४० ॥

ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
पृथिव्योरसा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४१ ॥

ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सत्येनोदरेण । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्ग सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४२ ॥

ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
अप्सु मरिष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
समुद्रेण वस्तिना । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४३ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यामूरुभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
ऊरू ते मरिष्यत इत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
मित्रावरुणयोरूरुभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।

एष वा ओदनः सर्वांगः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४४ ॥
ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
स्रामो भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांगः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४५ ॥
तश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
हुचारी भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
अश्विनोः पादाभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४६ ॥
ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सवितुः प्रपदाभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगममम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४७ ॥
ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
ऋतस्य हस्ताभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।

एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४८ ॥
ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
अप्रतिष्ठानो ऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । सत्ये प्रतिष्ठाय ।
तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४९ ॥

'जिस वक्ष से पूर्व ऋषियों ने इस ओदन का प्राशन किया था तूने यदि वक्ष से नहीं किया है तो तुझे कृषि में सफलता प्राप्त नहीं होगी।' मैंने पृथि रूप वक्षस्थल द्वारा इसका प्राशन किया है, उसी से इसे यथास्थान पहुंच है। वह प्राशन सर्वाङ्ग फल वाला होता है। जो पुरुष इसे इस प्र जानता है वह सर्वाङ्गफल युक्त स्वर्गादि लोक में स्थित होता है ॥ ४ 'पूर्व ऋषियों ने जिस उदर से ओदन का प्राशन किया था, तूने यदि प्रकार नहीं किया है तो तू अतिसार आदि से ग्रस्त होकर मृत्यु को होगा।' मैंने सत्यरूप उदर से इसका प्राशन कर यथास्थान पहुंचाया है। प्रकार का प्राशन सर्वाङ्ग फल वाला हो जाता है। जो इसे जानता है स फल से सम्पन्न हुआ स्वर्गादि लोक में स्थित होता है ॥ ४२ ॥ 'पूर्व ऋ ने जिस वस्ति द्वारा ओदन का प्राशन किया था, तूने उस वस्ति से किया है तो तू जल में मृत्यु को प्राप्त होगा।' मैंने समुद्र रूप वस्ति प्राशन किया है और उसीसे इसे यथा स्थान पहुँचाया है। इस प्रका ओदन सर्वाङ्ग फल वाला होता है। जो इसे जानता है वह सर्वाङ्गफ सम्पन्न होकर स्वर्गादि पुण्य लोकों में स्थित होता है ॥ ४३ ॥ 'पूर्व ऋ ने जिन ऊरुओं से प्राशन किया था, तूने यदि वैसा नहीं किया है त ऊरु नष्ट हो जायँगी।' मैंने मित्रावरुण रूप ऊरुओं से प्राशन क

यथास्थान पहुँचाया है। इस प्रकार प्राशित यह ओदन सर्वाङ्ग पूर्ण होता है। जो इस प्रकार जानता है वह सर्वाङ्ग फल से युक्त होकर स्वर्गादि लोकों में स्थित होता है ॥ ४४ ॥ 'पूर्व ऋषियों ने जिन अस्थियुक्त जाँघों से ओदन का प्राशन किया था, यदि तूने उससे भिन्न किया है तो तेरी जङ्घाएं सूख जायगी।' मैंने त्वष्टा की जङ्घाओं से इसका प्राशन किया है और यथास्थान पहुंचाया है। ऐसा यह प्राशन सर्वाङ्ग फल वाला होता है। जो इस प्राशित ओदन को इस प्रकार जानता है, वह स्वर्गादि पुण्य लोकों में स्थित होता है ॥ ४५ ॥ 'पूर्व ऋषियों ने जिन पाँवों से ओदन का प्राशन किया था, तूने यदि उससे भिन्न किया है तो तू बहुचारी हो जायगा।' मैंने अश्विद्वय के पादों से प्राशन किया है और उन्हीं से यथास्थान पहुंचाया है। इस प्रकार प्राशित यह ओदन सर्वाङ्ग फल वाला होता है। जो इसे इस प्रकार जानता जानता है, वह स्वर्गादि पुण्य लोकों में स्थित होता है ॥ ४६ ॥ 'पूर्व ऋषियों ने जिन पदाग्रों से इसका प्राशन किया था, तूने यदि उससे भिन्न किया है, तो तुझे सर्प डस लेगा।' मैंने सविता के पादाग्रों से इस ओदन का प्राशन किया है और उनके द्वारा ही इसे यथा स्थान पहुँचाया है। इस प्रकार का यह ओदन-प्राशन सर्वाङ्ग पूर्ण होता है। जो पुरुष इसे इस प्रकार जानता है वह सर्वाङ्ग फल दाता स्वर्ग में स्थित होता है ॥४७॥ 'पूर्व ऋषियों ने जिन हाथों से इसका प्राशन किया है, यदि तूने उससे विपरीत किया है तो ब्रह्म हत्या दोष का तू भागी होगा।' मैंने परब्रह्म के हाथों से प्राशन कर उसे यथास्थान पहुँचाया है। ऐसा ओदन प्राशन सर्वाङ्ग पूर्ण होता है और ओदन-प्राशन के ज्ञाता पुरुष को स्वर्ग में स्थित करता है ॥ ४८ ॥ 'प्राचीन ऋषियों ने जिस सत्य ब्रह्मात्मिका प्रतिष्ठा से ओदन का प्राशन किया था, तूने यदि उसके विपरीत किया है तो तू प्रतिष्ठा रहित हो जायगा।' मैंने ब्रह्म में प्रतिष्ठित होकर उस जगप्रतिष्ठात्मक ब्रह्म से ही ओदन-प्राशन किया है और स्वर्ग में पहुँचाया है। ऐसा यह प्राशित ओदन सर्वाङ्ग फल वाला होता है। इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष सर्वाङ्गपूर्ण हुआ स्वर्ग में स्थित होता है ॥ ४६ ॥

३ (३) सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ताः । छन्द—अनुष्टुप्; उष्णिक्; त्रिष्टुप्; बृहती)

एतद् वै ब्रध्नस्य विष्टपं यदोदनः ॥ ५० ॥
ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते य एवं वेद ॥५१॥
एतस्माद् वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान्
निरमिमीत प्रजापतिः ॥ ५२ ॥
तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ॥ ५३ ॥
स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ॥ ५४ ॥
न च प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते ॥ ५५ ॥
न च सर्वज्यानिं जीयते पुरैनं जरसः प्राणो जहाति ॥ ५६ ॥

पूर्वोक्त महिमा से युक्त यह ओदन, अपनी महिमा से विश्व के रचयिता एवं सूर्य मंडल में वर्तमान ईश्वर का मण्डल रूप ही है ॥ ५० ॥ जो पुरुष ओदन के सूर्य मंडलात्मक रूप का ज्ञाता है, वह सूर्य लोक को प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ प्रजापति ने इस सूर्यात्मक ओदन द्वारा अष्टावसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, प्रजापति और वषट्कार इन तेंतीस देवताओं की सृष्टि करते हुए उनके लोकों को भी बनाया ॥ ५२ ॥ उन लोकों के सुखों का ज्ञान कराने के लिये ही इस यज्ञ का विधान किया गया ॥ ५३ ॥ इस प्रकार जानने वाले उपासक का जो पुरुष उपद्रष्टा होता है, वह उपरोधक अपने शरीर में स्थित अपने प्राण की गति को रोक देता है, क्योंकि वह उपासक की इच्छा के विरुद्ध आचरण करता है ॥ ५४ ॥ उसके प्राण का ही अवरोध नहीं होता, परन्तु संतान पशु आदि से हीन हुआ वह पतित हो जाता है ॥ ५५ ॥ उसकी सर्वस्व हानि के साथ ही उसके प्राण उसे वृद्धावस्था से पूर्व ही त्याग देते हैं ॥ ५६ ॥

४ सूक्त

(ऋषि—भार्गवो वैदर्भिः। देवता—प्राणः । छन्द—अनुष्टुप्; पङ्क्तिः; त्रिष्टुप्; जगती)

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ।। १ ।।
नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ।। २ ।।
यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः ।
प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते ।। ३ ।।
यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः ।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ।। ४ ।।
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ।। ५ ।।
अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् ।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ।। ६ ।।
नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ।। ७ ।।
नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते ।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः ।८।
या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी ।
अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ।। ९ ।।
प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ।। १० ।।

सम्पूर्ण प्राणियों के शरीरों में व्याप्त सचेष्ट प्राण को प्रणाम है, जिसके

वश में यह संसार रहता है। वह भूतकाल से अविच्छिन्न है। वह प्राणियों का ईश्वर है, उसमें सब संसार प्रतिष्ठित है। ऐसे उस प्राण के लिए नमस्कार है ॥ १ ॥ हे प्राण! तुम ध्वनि करने वाले हो, तुम मेघ-जल में प्रविष्ट एवं गर्जनशील हो, तुमको प्रणाम है। तुम विद्युत रूप में चमकते हो, वर्षा करने वाले हो। तुमको नमस्कार है ॥ २ ॥ सूर्यात्मक मेघ ध्वनि से जब प्राण औषधि आदि को अभिलक्षित करता हुआ गर्जता है, तब वे औषधि आदि गर्भ-धारण में समर्थ होती हैं ॥ ३ ॥ वर्षा ऋतु की प्राप्ति पर जब प्राण औषधियों के प्रति गर्जन करता है तब सब हर्षित होते हैं। पृथिवी के सभी प्राणी आनंद में भर जाते हैं ॥ ४ ॥ जब प्राण विस्तृत पृथिवी को वर्षा द्वारा सब ओर से सींचते हैं तब गवादि पशु प्रसन्न होते हैं ॥ ५ ॥ प्राण द्वारा सींची गई औषधियाँ उससे कहती हैं कि 'हे प्राण! तू हमको सुन्दर गंध वाली बना और हमारे जीवन की वृद्धि कर ॥ ६ ॥ हे प्राण! तुझ सम्मुख आते और फिर कर जाते हुए को नमस्कार है। तू जहाँ कहीं स्थित हो, वहीं स्थित को नमस्कार है ॥ ७ ॥ हे प्राण! तुम प्राणन व्यापार वाले और अपानन व्यापार वाले को नमस्कार है। परागमन स्वभाव से स्थित, प्रतीचीन गमन वाले और सब व्यापारों के कर्त्ता तुमको नमस्कार है ॥ ८ ॥ हे प्राण! यह शरीर तुम्हारा प्रिय है। तुम्हारी अग्नीषोमात्मक प्रेयसी और अमरतत्व से युक्त जो औषधि हैं, उन सब के पास से अमृत गुण देने वाली भेषज को प्रदान कर ॥ ९ ॥ जैसे पिता अपने पुत्र को ढकता है वैसे ही प्राण मनुष्यादि को ढकते हैं। जो जंगमात्मक वस्तु प्राणन व्यापार करने वाली है और जो स्थावरात्मक वस्तु प्राणन व्यापार से रहित है, परन्तु प्राण उनमें निरुद्धगति से वास करता है। इन सब जंगमस्थावर जीवों से युक्त संसार का स्वामी प्राण ही है ॥१०॥

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते ।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११ ॥
प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ १२ ॥

प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते ।
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ॥ १३ ॥
अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥ १४ ॥
प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥
आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत ।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥ १६ ॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवी महीम् ।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥ १७ ॥
यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिश्चासि प्रतिष्ठितः ।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिँल्लोक उत्तमे ॥ १८ ॥
यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः ।
एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः ॥ १९ ॥
अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूत. स उ जायते पुनः ।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिया पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥२०॥

प्राण ही शरीर से निकल कर मृत्यु उपस्थित करता है । प्राण ही जीवन को दुःख देने वाले ज्वरादि रूप तस्मा है । देह में वर्तमान उसी प्राण की आराधना इन्द्रियाँ करती हैं । वही प्राण सदाचरण वाले को श्रेष्ठ लोक में स्थित करता है ॥ ११ ॥ प्राण ही विराट् है, वही देष्ट्री है, उसे प्राण की सभी सेवा करते हैं । वही सब को प्रेरणा देने वाला सूर्य है, वही सोम है, ज्ञानीजन उस प्राण को ही प्रजापति कहते हैं ॥ १२ ॥ प्राणापान प्राण की ही वृत्ति हैं, वही व्रीहि और जौ हैं । वृत्तिमान् प्राण अनड्वान कहाता है । स्रष्टा ने जौ में प्राणवृत्ति और व्रीहि में अपानवृत्ति वाला प्राण स्थापित किया है। इन दोनों से ही सब प्राणी अपना कार्य चलाते हैं । इसलिये व्रीहि, जौ

और अनड्वान् रूप से प्राण को ही कहते हैं ॥ १३ ॥ हे प्राण! शरीर धारण करने वाला मनुष्य स्त्री के गर्भ में तुम्हारे प्रवेश से ही अपान व्यापार और प्राणन व्यापार को करता है । तुम गर्भस्थ शिशु को माता द्वारा भोजन किये आहार से ही पुष्ट करते हो। फिर वह पुरुष पुण्य पाप का फल भोगने के लिए भूमि पर जन्म लेता है ॥ १४ ॥ मातरिश्वा वायु को प्राण कहते हैं। संसार का आधारभूत वायु ही प्राण है। संसार के आधारभूत प्राण में भूतकाल में उत्पन्न संसार और भविष्य में उत्पन्न होने वाला संसार आश्रय रूप से रहता है । सम्पूर्ण विश्व ही इस प्राण में प्रतिष्ठित है ॥ १५ ॥ हे प्राण! जब तुम वर्षा द्वारा तृप्त करते हो तब अथर्वा, अंगरागोत्र वालों और देवताओं द्वारा रची गई तथा मनुष्यों द्वारा प्रकट की जाने वाली सब औषधियाँ उत्पन्न होती हैं ॥ १६ ॥ जब प्राण वर्षा के रूप से पृथिवी पर बरसता है, उसके पश्चात् ही व्रीहि, जौ तथा लता रूप औषधियाँ उत्पन्न होती हैं ॥ १७ ॥ हे प्राण! तू जिस विद्वान में प्रविष्ट होता है और जो तेरी उक्त महिमा को जानता है, सब देवता उस विद्वान् को श्रेष्ठ स्वर्ग में अमृतत्व प्रदान करते हैं ॥ १८ ॥ हे प्राण! देवता, मनुष्यादि जैसे तुम्हारे उपभोग के योग्य अन्न को लाते हैं, वैसे ही तुम्हारी महिमा जानने वाले विद्वान् के लिए भी वे लावें ॥ १९ ॥ मनुष्यों में ही नहीं, देवताओं में भी प्राण गर्भ रूप से घूमता है। सब ओर व्याप्त होकर वही उत्पन्न होता है। इस नित्य वर्तमान प्राण ने भूतकाल की और भविष्य की वस्तुओं में भी, पिता का पुत्र में अपने अवयवों से प्रविष्ट होने के समान, अपनी शक्ति से प्रवेश कर लिया है ॥ २० ॥

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन् ।
यदङ्ग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः
स्यान्न व्युच्छेत् कदा चन ॥ २१ ॥
अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥२२॥
यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः ।

अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तुते ॥ २३ ॥
यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः ।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥ २४ ॥
ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते ।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥ २५ ॥
प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥ २६ ॥

शरीर में व्याप्त प्राण को हंस कहते हैं । वह पंचभूतात्मक देह से प्राणवृत्ति द्वारा ऊपर उठता हुआ अपानवृत्ति वाले एक पाद को नहीं उठाता । यदि वह अपानवृत्ति वाले पाद को उठाले तो शरीर से प्राण के निकल जाने पर शरीर का काल विभाग न हो और अन्धकार भी दूर न हो । इसलिए संसार को प्राण युक्त रखने के लिए वे अपने एक पाद को स्थिर रखते हैं ॥ २१ ॥ अष्ट धातु रूप जो चक्र हैं, उनसे युक्त शरीर प्राण रूप एक नेमि वाला कहा जाता है । यह चक्र अनेक अक्षों से युक्त है । ऐसे रथात्मक शरीर को पहले पूर्व भाग में, फिर अपर भाग में व्याप्त होकर वर्तता है । वह प्राण आधे अंश से प्राणियों को उत्पन्न करता है और उसके दूसरे भाग का रूप निर्धारण शक्ति से परे है ॥ २२ ॥ जो प्राण जन्म धारण करने वाले सचराचर विश्व का अधिपति है, वह देहधारियों के देह में शीघ्रता से प्रतिष्ठित होता है । ऐसी महिमा वाले हे प्राण ! तुम्हें नमस्कार है ॥ २३ ॥ जो प्राण संसार का अधिपति है, वह प्रमाद रहित होकर सर्वत्र चेष्टावान् रहता है । वह प्राण अनविच्छिन्न रूप से मेरे शरीर में वर्तमान रहे ॥ २४ ॥ हे प्राण ! निद्रा से पराधीन हुए प्राणियों में उनके रक्षार्थ तुम चैतन्य रहो । प्राणी सोता है, परन्तु प्राण का सोना किसी ने नहीं सुना ॥ २५ ॥ हे प्राण ! तुम मुझसे मुख मत फिराओ, मुझसे अन्यत्र न होओ । मैं जीवन के निमित्त तुम्हें अपने शरीर में रोकता हूँ । वैश्वानर अग्नि को जैसे देह में धारण करते हैं, वैसे ही मैं तुम्हें देह में धारण करता हूँ ॥ २६ ॥

५ सूक्त [तीसरा अनुवाक]

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—ब्रह्मचारी । छन्द—त्रिष्टुप्, शक्वरी. बृहती; जगती; अनुष्टुप्; उष्णिक्)

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥१॥
ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः
सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥ २ ॥
आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥३॥
इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥४॥
पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥५॥
ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥६॥
ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् ।
गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस्ततर्ह ॥ ७ ॥
आचार्य स्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च ।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः समनसो भवन्ति ॥८॥
इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च ।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥९॥
अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य ।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥१०॥

आकाश-पृथिवी दोनों लोकों को तप से व्याप्त करने वाले ब्रह्मचारी को सब देवता समान मन वाले होते हैं। वह अपने तप से आकाश का पोषण करता और अपने गुरु का भी पोषण करता है ॥ १ ॥ ब्रह्मचारी के रक्षार्थ पितर, देवता और इन्द्रादि उसके अनुगत होते हैं। विश्वावसु आदि भी इसके पीछे चलते हैं। तैंतीस देवता, इनकी विभूति रूप तीन सौ तीन देवता और छः सहस्र देवता इन सबका ब्रह्मचारी अपने तप द्वारा पोषण करता है ॥ २ ॥ उपनयन करने वाला आचार्य, विद्यामय शरीर के गर्भ में उसे स्थापित करता हुआ, तीन रात तक ब्रह्मचारी को अपने उदर में रखता है, चौथे दिन देवगण उस विद्या देह से उत्पन्न ब्रह्मचारी के सम्मुख आते हैं ॥ ३ ॥ पृथिवी इस ब्रह्मचारी की प्रथम समिधा है और आकाश द्वितीय समिधा है। आकाश-पृथिवी के मध्य अग्नि में स्थापित हुई समिधा से ब्रह्मचारी संसार को सन्तुष्ट करता है। इस प्रकार समिधा, मेखला, मौञ्जी, श्रम, इन्द्रियनिग्रहात्मक खेद और देह को संताप देने वाले अन्य नियमों को पालता हुआ पृथिव्यादि लोकों का पोषण करता है ॥ ४ ॥ ब्रह्मचारी ब्रह्म से भी पहले प्रकट हुआ, वह तेजोमय रूप धारण कर तप से युक्त हुआ। उस ब्रह्मचारी रूप से तपते हुए ब्रह्म द्वारा श्रेष्ठ वेदात्मक ब्रह्म प्रकट हुआ और उसके द्वारा प्रतिपादित अग्नि आदि देवता भी अपने अमृतत्व आदि गुणों के सहित प्रकट हुए ॥ ५ ॥ प्रातः सायं अग्नि में रखी समिधा और उससे उत्पन्न हुए तेज से तेजस्वी, मृगचर्म धारी ब्रह्मचारी अपने भिक्षादि नियमों का पालन करता है, वह शीघ्र ही पूर्व समुद्र से उत्तर समुद्र पर पहुँचता है और सब लोकों को अपने समक्ष करता है ॥ ६ ॥ ब्रह्मचर्य से महिमा युक्त ब्रह्मचारी ब्राह्मण जाति को उत्पन्न करता है। वही गंगा आदि नदियों को प्रकट करता है, स्वर्ग, प्रजापति, परमेष्ठी और विराट् को उत्पन्न करता है। वह अमरणशील ब्रह्म की सत् रज-तम गुण से युक्त प्रकृति में गर्भ रूप होकर सब वर्णन किये हुए प्राणियों को प्रकट करता और इन्द्र होकर राक्षसों का नाश करता है ॥ ७ ॥ यह आकाश और पृथिवी विशाल हैं। इन पृथिवी और आकाश के उत्पादक आचार्य की भी ब्रह्मचारी रक्षा करता है। सब

देवता ऐसे ब्रह्मचारी पर कृपा रखते हैं ॥ ८ ॥ पृथिवी और आकाश को ब्रह्मचारी ने भिक्षा रूप में ग्रहण किया फिर उसने उन आकाश पृथिवी को समिधा बना कर अग्नि की आराधना की। संसार के सब प्राणी उन्हीं आकाश-पृथिवी के आश्रय में रहते हैं ॥ ९ ॥ पृथिवी लोक में आचार्य के हृदय रूप गुहा में एक वेदात्मक निधि है। दूसरी देवात्मक निधि उपरि स्थान में है। ब्रह्मचारी इन निधियों की अपने तप से रक्षा करता है। वेद-विद् ब्राह्मण शब्द और उसके अर्थ से सम्बन्धित दोनों निधियों को ब्रह्म रूप करता है ॥ १० ॥

अर्वागन्यः इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे ।
तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास्नाना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ॥११॥
अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिंगो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार ।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥१२
अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचार्यप्सु समिधमा दधाति ।
तासामर्चीषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः ॥१३॥
आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः ।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्वराभृतम् ॥ १४ ॥
अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान्मित्रो अध्यात्मनः ॥ १५ ॥
आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी ॥ १६ ॥
ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ १७ ॥
ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीषति ॥ १८ ॥
ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।

इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥ १९ ॥
ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ २० ॥

उदय न हुआ सूर्य रूप अग्नि पृथिवी से नीचे रहते हैं। पार्थिव अग्नि पृथिवी पर रहते हैं। सूर्योदय होने पर आकाश-पृथिवी के मध्य यह दोनों अग्नियाँ संयुक्त होती हैं। दोनों की किरणें संयुक्त होकर दृढ़ होती हुई आकाश-पृथिवी की आश्रित होती हैं। इन दोनों अग्नियों से सम्पन्न ब्रह्मचारी अपने तेज से अभिदेवता होता है ॥ ११ ॥ जल पूर्ण मेघ को प्राप्त हुए वरुणदेव अपने वीर्य को पृथिवी में सींचते हैं। ब्रह्मचारी अपने तेज से उस वरुणात्मक वीर्य को ऊँचे प्रदेश में सींचता है। उससे चारों दिशाएं समृद्ध होती हैं ॥ १२ ॥ ब्रह्मचारी, पार्थिव अग्नि में, चन्द्रमा, सूर्य, वायु और जल में समिधाएं डालता है। इन अग्नि आदि का तेज पृथक्-पृथक् रूप से अन्तरिक्ष में रहता है। ब्रह्मचारी द्वारा समिद्ध अग्नि वर्षा, जल,घृत, प्रजा आदि कार्य को करते हैं ॥ १३ ॥ आचार्य ही मृत्यु हैं, वही वरुण हैं; वही सोम हैं। दुग्ध, ब्रीहि; यव और औषधियाँ आचार्य की कृपा से ही प्राप्त होते हैं। अथवा यह स्वयं ही आचार्य हो गए हैं ॥ १४ ॥ आचार्य रूप से वरुण ने जिस जल को अपने पास रखा, वही वरुण प्रजापति से जो फल चाहते थे, वही मित्र ने ब्रह्मचारी होकर आचार्य को दक्षिणा रूप से दिया ॥ १५ ॥ विद्या का उपदेश देकर आचार्य ब्रह्मचारी रूप से प्रकट हुए हैं। वही तप से महिमावान हुए प्रजापति बने। प्रजापति से विराट् होते हुए वही विश्व के स्रष्टा परमात्मा होगए ॥ १६ ॥ वेद को ब्रह्म कहते हैं। वेदाध्ययन के लिए आचरणीय कर्म ब्रह्मचर्य है। उसी ब्रह्मचर्य के तप से राजा अपने राज्य को पुष्ट करता है और आचार्य भी ब्रह्मचर्य से ही ब्रह्मचारी को अपना शिष्य बनाने की इच्छा करता है ॥ १७ ॥ जिसका विवाह नहीं हुआ है, ऐसी स्त्री ब्रह्मचर्य से ही श्रेष्ठ पति प्राप्त करती है। अनड्वान् आदि भी ब्रह्मचर्य से ही श्रेष्ठ स्वामी को प्राप्त करता है। अश्व ब्रह्मचर्य से ही भक्षण योग्य तृणों की इच्छा करता है ॥ १८ ॥ अग्नि आदि देवताओं ने ब्रह्मचर्य से ही मृत्यु

को दूर किया। ब्रह्मचर्य से ही इन्द्र ने देवताओं को स्वर्ग प्राप्त कराया ॥१९॥ व्रीहि, जौ आदि औषधियाँ, वनौषधियाँ, दिन-रात्रि, चराचरात्मक विश्व, षट् ऋतु और द्वादश मास वाला वर्ष ब्रह्मचर्य की महिमा से ही गतिमान हैं ॥ २० ॥

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये ।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ २१ ॥
पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥ २२ ॥
देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥ २३
ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः ।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥२४॥
चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥ २५ ॥
तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे ।
स स्नातो बभ्रुः पिंगलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥ २६ ॥

आकाश के प्राणी, पृथिवी के देहधारी पशु आदि, पंख वाले और बिना पंख वाले यह सभी ब्रह्मचर्य के प्रभाव से ही उत्पन्न हुए हैं ॥ २१ ॥ प्रजापति के बनाये हुए देवता मनुष्य आदि सब प्राणों को धारण-पोषण करते हैं। आचार्य के मुख से निकला वेदात्मक ब्रह्म ही ब्रह्मचारी में स्थित होता हुआ सब प्राणियों की रक्षा करता है ॥ २२ ॥ यह परब्रह्म देवताओं से परोक्ष नहीं है। वह अपने सच्चिदानंद रूप से दीप्तिवान रहता है, उनसे श्रेष्ठ कोई नहीं है, उन्हीं से ब्राह्मण का सर्व श्रेष्ठ धन वेद प्रकट हुआ है और उससे प्रतिपाद्य देवता भी अमृतत्त्व सहित प्रकट हुए हैं ॥ २३ ॥ ब्रह्मचारी वेदात्मक ब्रह्म को धारण करता और सब प्राणियों के प्राणापानों को प्रकट करता है। फिर व्यान नामक वायु को, शब्दात्मिका वाणी को, अंतः-

करण और उसके आवास रूप हृदय को, वेदात्मक मन्त्र और विद्यात्मिका बुद्धि को वही ब्रह्मचारी उत्पन्न करता है ॥ २४ ॥ हे ब्रह्मचारिन् ! तुम हम स्तुति करने वालों में रूप-ग्राहक नेत्र, शब्द ग्राहक श्रोत्र, यश और कीर्ति की स्थापना करो। अन्न, वीर्य रक्त, उदर आदि की कल्पना करता हुआ ब्रह्मचारी तप में लीन रहता और स्नान से सदा पवित्र रहता है और वह अपने तेज से दमकता है ॥ २५, २६ ॥

६ सूक्त

(ऋषि—शन्तातिः। देवता—अग्न्यादयो मंत्रोक्ता। छन्द—अनुष्टुप्)

अग्निं ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुध.।
इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १ ॥
ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम्।
अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २ ॥
ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम्।
त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ३ ॥
गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम्।
अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ४ ॥
अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा।
विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ५ ॥
वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः।
आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ६ ॥
मुञ्चन्तु मा शपथ्या दहोरात्रे अथो उषाः।
सोमो मा देवो मुञ्चन्तु यमाहुश्चन्द्रमा इति ॥ ७ ॥
पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः।
शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ८ ॥

भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः ।
इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः ॥ ९ ॥
दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १० ॥

हम अग्निदेव की स्तुति करते हुए अभीष्ट फल माँगते हैं । हम महावृक्षों की, व्रीहि, यव, वनौषधि आदि की स्तुति करते हैं । इन्द्र, बृहस्पति और आदित्य की भी हम स्तुति करते हैं, वे पाप से हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥ वरुण देवता की, मित्र, विष्णु, भग, अंश और विवस्वान् की हम स्तुति करते हैं, वे हमें पाप से छुड़ावें ॥ २ ॥ सर्वप्रेरक सूर्य, धाता, पूषा और त्वष्टादेव की स्तुति करते हैं, वे हमें पाप से छुड़ावें ॥ ३ ॥ हम गंधर्व और अप्सराओं की स्तुति करते हैं । अश्विद्वय, वेदपति ब्रह्मा और अर्यमा की स्तुति करते हैं, वे देवता हम को पाप से छुड़ावें ॥ ४ ॥ दिन और रात्रि के अधिष्ठात्री देवता सूर्य-चंद्र और अदिति के सब पुत्रों की हम स्तुति करते हैं, वे हमें पाप से छुड़ावें ॥ ५ ॥ वायु, पर्जन्य, दिशा-विदिशा के देवताओं की भी हम स्तुति करते हैं, वे हमें पाप से छुड़ावें ॥ ६ ॥ दिन और रात्रि के अभिमानी देवता मुझे शपथात्मक पाप से मुक्त करें, उषाकाल के अभिमानी देवता, चन्द्रमा रूप सोम मुझे शपथ के कारण लगे पाप से छुड़ावें ॥ ७ ॥ आकाश के प्राणी, पृथिवी के देहधारी, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि की भी हम स्तुति करते हैं, वे हम को पाप से छुड़ावें ॥ ८ ॥ भव और शर्व की ओर देखते हुए हम यह कहते हैं । रुद्र और पशुपतिदेव की हम स्तुति करते हैं । इनके जिन बाणों के हम ज्ञाता हैं, वे बाण हमारे लिए सुख देने वाले हों ॥ ९ ॥ हम आकाश, नक्षत्र, पृथिवी, पुण्य क्षेत्र, पर्वत, समुद्र, नदी, सरोवर आदि की स्तुति करते हैं, वे हमको पाप छुड़ावें ॥१०॥

सप्तऋषीन् वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम् ।
पितॄन् यमश्रेष्ठान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ११ ॥
ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ।

पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १२ ॥
आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः ।
अंगिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १३ ॥
यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा ।
यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १४ ॥
पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः ।
दर्भो भङ्गो यवः सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १५ ॥
अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
मृत्यूनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १६ ॥
ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १७ ॥
एत देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्च उदेत ।
पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वे देवाः समेत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१८॥
विश्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
विश्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १९ ॥
सर्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
सर्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २० ॥
भूतं ब्रूमो भूतपतिं भूतानामुत यो वशी ।
भूतानि सर्वा संगत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २१ ॥
या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः ।
संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवाः ॥ २२ ॥
यन्मातली रथक्रीतममृतं वेद भेषजम् ।
तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत् तदापो दत्त भेषजम् ॥ २३ ॥

हम इस स्तुति को मत्तर्षियों से कहते हैं । हम जल देव

प्रजापति की और पितरों की स्तुति करते हैं, वे हमको पाप से छुड़ावें ॥११॥ आकाश के देवता, अन्तरिक्ष के देवता और पृथिवी के जो शक्तिशाली देवता हैं, वे हमें पाप से मुक्त करें ॥ १२ ॥ द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, अष्टावसु यह द्यु लोक के देवता, अथर्व के द्रष्टा महर्षि अथर्वा, आंगिरस आदि मनीषी हमारी स्तुति से संतुष्ट होकर हमें पाप से छुड़ावें ॥ १३ ॥ हम यज्ञों की स्तुति करते हैं, उनके फल प्राप्त करने वाले यजमान की स्तुति करते हैं, यज्ञ में विनियुक्त ऋचाओं की स्तुति करते हैं। स्तोत्रों को सम्पन्न करने वाले सामों की, औषधियों की, और होत्रों की हम स्तुति करते हैं, वे हमें पाप से छुड़ावें ॥ १४ ॥ पत्र, काण्ड, फल, पुष्प और मूल इन पाँच राज्य वाली औषधियों में श्रेष्ठ सोमलता है उसको दर्भ, भंग, यव और सहदेवी आदि औषधियों की हम स्तुति करते हैं, यह हमको पापों से छुड़ावे ॥ १५ ॥ दान में बाधा देने वाली हिंसकों की, पीडक राक्षसों की, पिशाचों की, सर्पों की और पितरों की तथा एक सौ एक मृत्युओं के अधिष्ठात्र देवताओं की हम स्तुति करते हैं ॥ १६ ॥ वसंतादि ऋतुओं की, ऋतुपति देवता वसु,रुद्र, आदित्य, ऋभु और मरुतों को तथा ऋतुओं में उत्पन्न पदार्थों की, चन्द्र संवत्सरों और सौर संवत्सरों की और चैत्रादि मासों की हम स्तुति करते हैं, यह हमको पाप से छुड़ावें ॥ १७ ॥ हे देवगण ! तुम दक्षिण दिशा में स्थित, उत्तर, पूर्व या पश्चिम दिशाओं में स्थित हो। अपनी-अपनी दिशाओं से शीघ्र आकर हमको पाप से छुड़ाओ ॥ १८ ॥ हम पत्नियों सहित विश्वेदेवाओं की स्तुति करते हुए याचना करते हैं कि वे हमें पाप से छुड़ावें ॥ १९ ॥ हम यज्ञ की वृद्धि करने वाले देवताओं की, उनकी पत्नियों सहित स्तुति करते हुए पाप से मुक्त करने की याचना करते हैं ॥२०॥ भूत, भूतों के ईश्वर और भूतों के नियामक देवता की स्तुति करते हैं। र एकत्रित होकर यहाँ आवें और हमें पाप से छुड़ावें ॥ २१ ॥ पाँच दिशा बारह मास और संवत्सर तथा दुष्ट हिंसात्मक दाढ़ों की हम स्तुति करते हैं वे हमारे लिए सुख देने वाले हों ॥ २२ ॥ इन्द्र का सारथि मातलि जि अमृतत्व वाली औषधि को जानता है, उसे रथ के स्वामी इन्द्र ने जल

ाल दिया था। हे जलो ! तुम मातलि द्वारा प्राप्त और इन्द्र द्वारा जल में
वित भेषज को हमें प्रदान करो ॥ २२॥

७ सूक्त [चौथा अनुवाक]

(ऋषि-अथर्वा। देवता-उच्छिष्टः, अध्यात्मम्। छन्द-अनुष्टुप्; उष्णिक्; बृहती)

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः।
उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् ॥ १ ॥
उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम्।
आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः ॥ २ ॥
सन्नुच्छिष्टे असंश्चोभौ मृत्युर्वाजः प्रजापतिः।
लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि ॥ ३ ॥
दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश।
नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः ॥ ४ ॥
ऋक् साम यजुरुच्छिष्ट उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम्।
हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः साम्नो मेडिश्च तन्मयि ॥५॥
ऐन्द्राग्नं पावमानं महानाम्नीर्महाव्रतम्।
उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भइव मातरि ॥ ६ ॥
राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः।
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥ ७ ॥
अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्दसा सह।
उत्सन्ना यज्ञाः सत्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥ ८ ॥
अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः।
दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥ ९ ॥
एकरात्रो द्विरात्रः सद्यःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः।
ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥ १० ॥

(हवन के पश्चात् बचा हुआ, प्राशन के लिए रखा ओदन उच्छिष्ट कहलाता है) उस उच्छिष्ट में पृथिव्यादि लोक समाये हुए हैं, उसी में स्वर्गपति इन्द्र और पृथिवी के स्वामी अग्नि स्थित हैं, और उसी उच्छिष्ट के मध्य ईश्वर द्वारा अखिल जगत् ही स्थापित किया हुआ है ॥ १ ॥ आकाश पृथिवी उसी उच्छिष्ट में आहित हैं, उनमें वास करने वाले जीव भी उसी उच्छिष्ट में समाये हुए हैं। जल, समुद्र, चन्द्रमा और वायु यह सभी देवता उसी उच्छिष्ट रूप ब्रह्म में समाहित हैं ॥ २ ॥ सत् और असत् उसी उच्छिष्ट में हैं। सत्-असत् से सम्बन्धित मारक मृत्यु देवता, उनका बल और उनके रचयिता प्रजापति, लोकों की प्रजाएं, वरुणदेवता और अमृतत्व से युक्त सोम यह सभी उस ओदन के आश्रित हैं। उसी के प्रभाव से सम्पत्ति मेरे आश्रित हो ॥ ३ ॥ दृढदेह वाला देवता, स्थिर किया गया लोक और वहाँ के प्राणी, विश्व के कारण रूप ब्रह्म, विश्व रचयिता नौ ब्रह्म और उनका भी रचयिता दशम ब्रह्म, जैसे रथ चक्र की नाभि सब ओर से आश्रय बनती है, वैसे ही इस उच्छिष्ट के आश्रित रहते हैं ॥ ४ ॥ उद्गीथ (गाया जाने वाला भाग), प्रस्तुव (स्तुति का जिससे प्रारम्भ होता है), स्तुत (स्तोत्र कर्म) और हिंकार युक्त ऋक्, साम, यजुर्वेद के मन्त्र उच्छिष्यमाण ब्रह्म में समाहित हैं ॥ ५ ॥ इन्द्राग्नि की स्तुति वाला स्तोत्र, पवमान सोम का स्तोत्र पावमान, महानाम्नी ऋचाएं, महाव्रत यज्ञ के यह अङ्ग माता के गर्भ में स्थित जीव के समान उच्छिष्ट में रहते हैं ॥ ६ ॥ राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम, अध्वर, अर्क और अश्वमेध और जीवबर्हि यह सभी प्रकार के यज्ञ उच्छिष्ट में ही समाहित हैं ॥ ७ ॥ अग्न्याधेय, दीक्षा, उत्सन्न यज्ञ और सोमयागात्मक सत्र यह सब ओदन में समाहित हैं ॥ ८ ॥ अग्निहोत्र, श्रद्धा, वषट्कार, व्रत, तप, दक्षिणा और अभीष्टपूर्ति यह सभी उस उच्छिष्ट में समाहित हैं ॥ ९ ॥ एक रात्रि और दो रात्रियों में होने वाले सोमयाग, सद्याक्री, प्रक्री और उक्थ यह सभी उच्छिष्ट में बंधे हुए यज्ञ के सूक्ष्म रूपों सहित ब्रह्म के आश्रित रहते हैं ॥ १० ॥

चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह ।

षोडशी सप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः॥११
प्रतीहारो निधनं विश्वजिच्चाभिजिच्च यः ।
साह्नातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोऽपि तन्मयि ॥ १२ ॥
सूनृता संनतिः क्षेमः स्वधोर्जामृतं सहः ।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः कामाः कामेन तातृपुः ॥ १३ ॥
नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिवः ।
आ सूर्यो भात्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन्मयि ॥ १४ ॥
उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः ।
बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता ॥ १५ ॥
पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसोः पौत्रः पितामहः ।
स क्षियति विश्वस्येशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्यः ॥ १६ ॥
ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च ।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥ १७ ॥
समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः ।
संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥ १८ ॥
चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः ।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास्तदिष्टयः ॥ १९ ॥
अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह ।
उच्छिष्टे घोषिणीरापः स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही ॥ २० ॥

चतुरात्र, पंचरात्र, षड्रात्र और इनके दूने दिनों वाले, षोडशी और सप्तरात्र यज्ञ और अन्य सभी अमृतमय फल प्रदान करने वाले यज्ञ इस उच्छिष्ट से ही प्रकट हुए हैं ॥ ११ ॥ प्रतिहार, निधन, ,
साह्न, अतिरात्र, द्वादशाह यह सभी यज्ञ उसी उच्छिष्ट रूप ब्रह्म के आश्रित हैं। यह सब यज्ञ मुझमें स्थित हों ॥ १२ ॥ सूनृता, संनति, क्षेम, ∕

ऊर्जा, अमृत, सह यह सभी कामना योग्य फल ब्रह्माश्रित हैं। यह सभी काम्य फल सहित यजमान की तृप्ति करने वाले हैं ॥ १३ ॥ नौखण्ड वाली पृथिवी, सप्त समुद्र और आकाश उस उच्छिष्ट रूप ब्रह्म में समाहित हैं। सूर्य भी उसी ब्रह्म के आश्रित हुए दमकते हैं, दिन-रात्रि भी उसी के आश्रय में हैं। यह सब मुझमें हों ॥ १४ ॥ उपहव्य, विषूवान् और अज्ञात यज्ञों को भी यह उच्छिष्ट रूप ब्रह्म धारण करते हैं। वही ओदन संसार का पोषक और अनुष्ठाता का जनक है ॥ १५ ॥ यह उच्छिष्ट अपने उत्पादनकर्त्ता को अन्य लोक में दिव्य शरीर दिलाने वाला होने से उसका जनक है। यही ओदन प्राण का पौत्र रूप है, परन्तु अन्य लोक में प्राण पितामह है। अतः वह उच्छिष्ट सब का ईश्वर है और अभीष्ट देता हुआ पृथिवी में रहता है ॥ १६ ॥ ऋत, सत्य, तप, राष्ट्र, श्रम, धर्म, कर्म, भूत, भविष्य, वीर्य, लक्ष्मी और बल यह सब उस उच्छिष्टात्मक ब्रह्म के आश्रित हैं ॥ १७ ॥ समृद्धि, ओज, आकूति, क्षात्र तेज, राष्ट्र, संवत्सर और छै उर्वियाँ यह सभी मेरे रक्षक हों। इडा, प्रैष, ग्रह, हवि यह सभी उस उच्छिष्ट में समाहित हैं ॥ १८ ॥ चतुर्होता, आप्रिय, चतुर्मासात्मक वैश्वदेव यह सभी उच्छिष्यमाण ब्रह्म में समाहित हैं ॥ १९ ॥ आधा महीना, महीने, ऋतुएं, आर्तव, घोषयुक्त जल, गर्जनशील मेघ, पवित्र पृथिवी यह सभी उस उच्छिष्यमाण ब्रह्म में समाहित हैं ॥ २० ।

शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा।
अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥ २१ ॥
राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिर्व्याप्तिर्मह एधतुः।
अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिश्चाहिता निहिता हिता ॥ २२ ॥
यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २३ ॥
ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २४ ॥
प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च या।

उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २५ ॥
आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २६ ॥
देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २७ ॥

शर्करा, रेत, पाषाण, औषधि, लता, तृण, मेघ, विद्युत और सभी समवेत पदार्थ उसी उच्छिष्यमाण यज्ञ में आश्रित हैं ॥ २१ ॥ राद्धि, प्राप्ति, समाप्ति, व्याप्ति, तेज, अभिवृद्धि, समृद्धि, अत्यार्ति यह सभी उच्छिष्यमाण यज्ञ में आश्रित हैं ॥ २२ ॥ प्राणन व्यापार वाले जीव, नेत्रेन्द्रिय से देखने वाले प्राणी, स्वर्ग में स्थित देवता, पृथिवी के देवता यह सभी उस उच्छिष्यमाण यज्ञ से ही उत्पन्न हुए ॥ २३ ॥ ऋक्, साम, छन्द, पुराण, यजुर्वेद, आकाश के देवता यह सभी उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए ॥ २४ ॥ प्राण, अपान, चक्षु, कान, अक्षय और दिव्यलोक के सभी देवता उच्छिष्ट से ही प्रादुर्भूत हुए ॥ २५ ॥ आनन्द, मोद, प्रमोद, अभिमोदमुद और स्वर्ग के निवासी देवता यह सभी उच्छिष्ट से प्रादुर्भूत हुए ॥ २६ ॥ देवता, पितर, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा और सब द्युलोक के देवता इस उच्छिष्ट से ही उत्पन्न हुए ॥ २७ ॥

८ सूक्त

(ऋषि—कौरुपथिः । देवता—मन्युः अध्यात्मम् । छन्द—अनुष्टुप्, पंक्ति)

यन्मन्युर्जायामावहत् संकल्पस्य गृहादधि ।
क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥ १ ॥
तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
त आसं जन्यास्ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥ २ ॥
दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद् वदेत् ॥ ३ ॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ् मनस्ते वा आकूतिमावहन् ॥ ४ ॥
अजाता आसन्नृतवोऽथो धाता बृहस्पतिः ।
इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठमुपासत ॥ ५ ॥
तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत् ते ज्येष्ठमुपासत ॥ ६ ॥
येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद् विदुः ।
यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित् ॥ ७ ॥
कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत ।
कुतस्त्वष्टा समभवत् कुतो धाताजायत ॥ ८ ॥
इन्द्रादिन्द्रः सोमात् सोमो अग्नेरग्निरजायत ।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताजायत ॥ ९ ॥
ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥ १० ॥

मन्यु ने जाया को संकल्प के घर से विवाहा। उससे पहिले सृष्टि न
ने से वर पक्ष कौन हुआ और कन्या पक्ष कौन हुआ ? कन्या के वरण
ाने वाले वराती कौन थे और उद्वाहक कौन था ? ॥ १ ॥ तप और कर्म
वरपक्ष और कन्यापक्ष वाले थे, यही वराती थे और उद्वाहक स्वयं ब्रह्म था
२ ॥ पहले दश देवता उत्पन्न हुए। जिसने इन देवताओं को प्रत्यक्ष रूप से
न लिया वही ब्रह्म का उपदेश करने में समर्थ है ॥ ३ ॥ प्राण, अपान
क वृत्तियाँ, चक्षु, कान, अक्षिति, क्षिति, व्यान, उदान, वाणी, मन,
ृति यह सभी कामनाओं को अभिमुख करते हुए उन्हें पूर्ण कराते हैं
॥ सृष्टि काल में ऋतुऐं उत्पन्न नहीं हुई थीं, धाता, बृहस्पति, इन्द्र,
और अश्विनीकुमार भी उत्पन्न नहीं हुए थे। तब इन धाता आदि ने
बड़े कारणभूत उत्पादक की अभ्यर्थना की ? ॥ ५ ॥ तप और कर्म ही

उपकरण रूप थे। कर्म से तप उत्पन्न हुआ था। इसलिए वे धाता आदि अपने द्वारा किये हुए महान् कर्म की ही अपने उत्पादन के लिए प्रार्थना करते हैं ॥ ६ ॥ वर्तमान पृथिवी से पूर्व विगत युग की जो पृथिवी थी, उसे तप द्वारा सर्वज्ञ होने वाले महर्षि ही जानते हैं। जो विद्वान् विगत युग की पृथिवी में स्थित वस्तुओं के नाम को जानने वाला है, वही इस वर्तमान पृथिवी को जानने में समर्थ है ॥ ७ ॥ इन्द्र किस कारण से उत्पन्न हुआ, सोम, अग्नि, त्वष्टा और धाता किस किस कारण से उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ विगत युग में जैसा इन्द्र था वैसा ही इस युग में हुआ है। जैसे सोम, अग्नि, त्वष्टा और धाता पुरातन युग में थे, वैसे ही इस युग में भी हुए ॥६॥ जिन अग्नि आदि देवताओं से प्राणापान रूप दश देवता उत्पन्न हुए, वे अपने पुत्रों को अपना स्थान देकर किस लोक में निवास करते हैं ? ॥१०॥

यदा केशानस्थि स्नाव मांसं मज्जानमाभरत् ।
शरीरं कृत्वा पादवत् कं लोकमनु प्राविशत् ॥ ११ ॥
कुतः केशान् कुतः स्नाव कुतो अस्थीन्याभरत् ।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आभरत् ॥ १२ ॥
संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवा पुरुषमाविशन् ॥ १३ ॥
ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम् ।
पृष्टीर्बर्जह्ये पार्श्वे कस्तत् समदधादृषिः ॥ १४ ॥
शिरो हस्तावथो मुख जिह्वा ग्रीवाश्च कीकसाः ।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत् संधा समदधान्मही ॥ १५ ॥
यत्तच्छरीरमशयत् संधया संहितं महत् ।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाभरत् ॥ १६ ॥
सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदजानाद् वधूः सती ।
ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत् ॥ १७ ॥

यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः ।
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १८ ॥
स्वप्नो वै तन्द्रीर्निर्ऋतिः पाप्मानो नाम देवताः ।
जरा खालत्यं पालित्यं शरीरमनु प्राविशन् ॥ १९ ॥
स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत् ।
बलं च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥ २० ॥

सृष्टि के समय जब विधाता ने बाल, अस्थि, नसें, मांस, मज्जा को संचित किया तो उनसे शरीर की रचना कर उसने किस लोकमें प्रवेश किया ॥ ११ ॥ किस उपादान से केश संग्रहीत किये ? स्नाव कहाँ से प्रकट हुआ अस्थियाँ कहाँ से आईं, मज्जा और मांस कहाँ से मिला ? यह सब अप में से ही इकट्ठा किया, ऐसा अन्य कौन कर सकता है ? ॥ १२ ॥ संसि नाम के देवता मरणशील देह को रक्त से भिगो कर उसे पुरुषाकृति में बना उसी में प्रविष्ट होगए ॥ १३ ॥ घुटनों पर वर्तमान जंघाएं, घुटनों के नी पाँव, जांघों और पावों के मध्य घुटने, शिर, हाथ, मुख, वर्जत्य, पसलिय और पीठ इन सब को किसने परस्पर मिलाया ? ॥ १४ ॥ शिर, हाथ, मुख जीभ, कंठ और हड्डियों को चर्म से आवृत्त कर देवताओं ने अपने-अपने क में प्रवृत्त किया ॥ १५ ॥ संधात्री देव के द्वारा जिसके अवयव इस प्रक जुड़े हैं, वह देहों में वर्तमान है, वह देह जिस श्याम-गौर वर्ण से युक्त है, उस किस देवता ने वर्ण की स्थापना की ? ॥ १६ ॥ इस शरीर के समीप स देवता रहना चाहते थे इसलिये वधू बनने वाली आद्या ने देवताओं की इ इच्छा को जान कर छै कोश देह में नील, पीत, गौर आदि रङ्गों की स्थाप की ॥ १७ ॥ इस संसार के रचयिता ने जब नेत्र, कान आदि छिद्रों व बनाया तब त्वष्टा के द्वारा बहुत से छेद वाले पुरुष देह को घर बना प्राण, अपान और इन्द्रिय ने प्रवेश किया ॥ १८ ॥ स्वप्न, निद्रा, आलस निर्ऋति, पाप इस पुरुष देह में घुस गए और आयु हरण करने वाली ज घष्ठ, मन, खालित्य, पालित्य आदि के अभिमानी देवता भी उसमें प्र

होगए ॥ १९ ॥ चोरी, दुष्कर्म, पाप, सत्य, यज्ञ, यश, महान् बल, क्षात्र-धर्म और ओज भी मनुष्य-देह में प्रविष्ट होगए ॥२०॥

भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः ।
क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥ २१ ॥
निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।
शरीरं श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा चानु प्राविशन् ॥ २२ ॥
विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः ॥ २३ ॥
आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् ॥ २४ ॥
आलापाश्च प्रलापाश्चाभीलापलपश्च ये ।
शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः ॥ २५ ॥
प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ्मनः शरीरेण त ईयन्ते ॥ २६ ॥
आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः ।
चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन् ॥ २७ ॥
आस्नेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।
गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन् ॥ २८ ॥
अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन् ।
रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ २९ ॥
या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ॥ ३० ॥
सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ॥ ३१ ॥

तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मे ति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठइवासते ॥ ३२ ॥
प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ् वि गच्छति ।
अदएकेन गच्छत्यद एकेन गच्छतीहैकेन नि षेवते ॥ ३३ ॥
अप्सु स्तीमासु वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम् ।
तस्मिञ्छवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते ॥ ३४ ॥

समृद्धि, असमृद्धि, शत्रु, मित्र, भूख, प्यास आदि सब इस मनुष्य देह में घुस गए ॥ २१ ॥ निन्दा, अनिन्दा, हर्षोत्पादक वस्तु, अहर्षोत्पादक, श्रद्धा, धन, समृद्धि, दक्षिणा, अश्रद्धा आदि भी पुरुष-देह में प्रविष्ट हुए ॥ २२ ॥ ज्ञान, अज्ञान, उपदेश्य, ऋक्, साम, यजुर्वेद आदि सब ने इस मनुष्य देह में प्रवेश किया ॥ २३ ॥ आनन्द, मोद, प्रमोद, हास्य, शब्द, स्पर्श, विष, नर्तन यह सब मनुष्य देह में प्रविष्ट हुए ॥ २४ ॥ आलाप, प्रलाप, अभिलाप, आयोजन, प्रयोजन, योजन, इन सभी ने पुरुष देह में प्रवेश किया ॥ २५ ॥ प्राण, अपान, नेत्र, कान, अक्षिति, क्षिति, व्यान, उदान, मन, वाणी यह सभी पुरुष देह में प्रविष्ट होते और अपने अपने कर्मों में लगते हैं ॥ २६ ॥ आशिष, प्राशिष, शासन तथा मन की सब वृत्तियों ने पुरुष देह में प्रवेश किया ॥ २७ ॥ स्नान-जल, प्राण-स्थिर रखने वाले जल, त्वरणजल, अल्प जल, गुहास्थित जल, वीर्य रूपी थल, स्थूल जल और सर्व व्यवहारास्पद जल सभी अपने कर्म सहित शरीर में प्रविष्ट हुए ॥ २८ ॥ प्राणियों की हड्डियों को समिन्धन-साधन बनाकर आठ जलों ने शरीर में प्रतिष्ठित किया और उसमें वीर्य रूप घृत को बनाया इस प्रकार इन्द्रियों और उनके अधिष्ठात्र देवताओं ने पुरुष देह में प्रवेश किया ॥ २९ ॥ पूर्वोक्त जल, इन्द्राभिमानी देवता, विराट् संज्ञक देवता, ब्रह्मतेज वाले देवता शरीर में प्रविष्ट हुए । फिर संसार के कारणभूत ब्रह्म भी अलक्षित रूप से प्रविष्ट हुए । उस शरीर में पुत्रादि का उत्पादक जीव स्थित रहता है ॥ ३० ॥ सूर्य ने नेत्रेन्द्रिय को स्वीकार किया वायु ने घ्राणेन्द्रिय को ग्रहण किया और इसके छै कोश वाले

शरीर को सब देवता अग्नि को भाग रूप में प्रदान करते हैं ॥ ३१ ॥ इसलिए ज्ञानी पुरुष शरीर को भीतर बाहर व्याप्त होकर ब्रह्म ही मानता है। क्योंकि गौओं के गोष्ठ में रहने के समान सब देवता इस शरीर में रहते हैं ॥ ३२ ॥ पहले उत्पन्न देह के अवसान पर वह त्यक्तदेह आत्मा तीन प्रकार से नियमों में बंध जाता है। पुण्य से स्वर्ग को प्राप्त करता और पाप से नरक को पाता है और पुण्य पाप दोनों के योग से इस पृथिवी में उत्पन्न होकर सुख दुःख रूप भोगों को भोगता है ॥ ३३ ॥ शुष्क संसार को गीला करने वाले प्रवृद्ध जलों में ब्रह्माण्ड सम्बन्धी देह स्थित है। उसके भीतर और ऊपर परमेश्वर रहता है। वह देह से अधिक होने के कारण सूत्रात्मा कहाता है ॥ ३४ ॥

९ सूक्त (पाँचवा अनुवाक)

(ऋषिः—काङ्कायनः। देवता—अर्बुदिः। छन्दः शक्वरी; अनुष्टुप; उष्णिक्; जगती; पंक्ति; त्रिष्टुप; गायत्री)

ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च।
असीन् परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि।
सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥ १ ॥
उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम्।
संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे ॥ २ ॥
उत्तिष्ठतमा रभेथामादानसंदानाभ्याम्।
अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ॥ ३ ॥
अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः।
याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं च पृथिवी मही।
ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्यामहं जितमन्वेमि सेनया ॥ ४ ॥
उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह।

भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परि वारय ॥ ५ ॥
सप्त जातान् न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन् ।
तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठ सेनया ॥ ६ ॥
प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
विकेशी पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥ ७ ॥
संकर्षन्ती करूकरं मनसा पुत्रमिच्छन्ती ।
पतिं भ्रातरमात् स्वान् रदिते अर्बुदे तव ॥ ८ ॥
अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ।
ध्वाङ्क्षाः शकुनयस्तृप्यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥९॥
अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः ।
पौरुषेयेऽधि कुणपे रदिते अर्बुदे तव ॥ १० ॥

शस्त्रों को उठाने में समर्थ हमारे वीरों के जो हाथ हैं, वे खड्ग, फरसा, धनुष-बाण आदि धारण किये हुए हैं। हे अर्बुद ! तू उन्हें हमारे शत्रुओं को दिखा, जिससे वे भयभीत हो जायें ॥ १ ॥ हे देवताओ तुम हमारी विजय में प्रवृत्त होने वाले हो। अब संग्राम को तैयार होओ। तुम्हारे द्वारा हमारे वीर भले प्रकार रक्षा को प्राप्त हों ॥ २ ॥ हे अर्बुदे ! तुम और न्यर्बुदि दोनों अपने स्थान से उठकर संग्राम करो और आदान-संदान नामक रस्सियों से शत्रु-सेना को वशीभूत करो ॥ ३ ॥ अर्बुदि और न्यर्बुदि नामक जो सर्प देवता हैं, उनसे समस्त संसार घिरा हुआ है, उन्होंने अपने शरीर से सम्पूर्ण विश्व को और भूमि को भी बाँध रखा है। यह दोनों देवता युद्ध विजय के कार्य में सदा लगे रहते हैं ॥ ४ ॥ इन श्रेष्ठ अर्बुदि और न्यर्बुदि द्वारा विजित शत्रु के बल पर मैं अपनी सेना सहित आक्रमण करूँगा। हे अर्बुदे ! तुम अपनी सेना सहित उठो और शत्रुओं की सेना का संहार करते हुए अपने सर्प देह से उसे घेर लो ॥ ५ ॥ हे न्यर्बुदि नामक सर्प देव ! तुम दृष्टि को निर्बल करने वाले उत्पातों को शत्रु पर करते हुए हविर्दान के अनन्तर हमारी सेना के सहित उठ पड़ो ॥ ६ ॥ हे अर्बुदे ! जब तू मेरे शत्रु को डस कर मार डाले तब

उसकी ओर मुख करके उसकी स्त्री अपने वक्ष को कूटे और अश्रुपात करती हुई, आभूषण उतार कर बालों को खोलती हुई रुदन करे ॥ ७ ॥ हे अर्बुदे ! डसने के पश्चात् विष का आवेग होने पर शत्रु की स्त्री हाथ-पैर के जोड़ों की हड्डियों को दबाकर करुणामय शब्द कहे। फिर विष का प्रतिकार करने के लिए पुत्र, भाई आदि किससे कहे, इस प्रकार कर्त्तव्य-ज्ञान से रहित हो जाय ॥८॥ हे अर्बुदे ! तेरे द्वारा डसे जाने पर हमारे शत्रु के मरण की प्रतीक्षा करने वाले गिद्ध, श्येन, काक आदि पक्षी उसके मांस भक्षण द्वारा तृप्त हों ॥ ९ ॥ हे अर्बुदे ! गीदड़, व्याघ्र, मक्खी, और माँस के सड़ने पर उत्पन्न होने वाले कीड़े शत्रु को तेरे द्वारा काट लेने पर उसके शव पर पहुंचते हुए तृप्ति को प्राप्त करें ॥ १० ॥

आगृह्णीतं सं बृहतं प्राणापानान् न्यर्बुदे ।
निवाशा घोषाः सं यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥११
उद् वेपय सं विजन्तां भियामित्रान्त्सं सृज ।
उरुग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान् न्यर्बुदे ॥ १२ ॥
मुह्यन्त्वेषां बाहवश्चित्ताकूतं च यद्धृदि ।
मैषामुच्छेषि किं चन रदिते अर्बुदे तव ॥ १३ ॥
प्रतिघ्नानाः सं धावन्तूरः पटूरावाघ्नानाः ।
अघारिणीर्विकेश्यो रुदत्यः पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥ १४ ॥
श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे ।
अन्तःपात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम् ।
सर्वास्ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरुदारांश्च प्र दर्शय ॥ १५ ॥
खडूरेऽधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम् ।
य उदारा अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये । सर्पा इतरजना रक्षांसि ॥१६
चतुर्दंष्ट्राञ्छ्यावदतः कुम्भमुष्काँ असृङ्मुखान् ।
स्वभ्यसा ये चोद्भयमाः ॥ १७ ॥

उद् वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राणाममूः सिचः ।
जयांश्च जिष्णुश्चामित्राञ्जयतामिन्द्रमेदिनौ ॥ १८ ॥
प्रव्लीनो मृदितः शयां हतोमित्रो न्यर्बुदे ।
अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ॥ १९ ॥
तयार्बुदे प्रणुत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ।
अमित्राणां शचीपतिर्मामीषां मोचि कश्चन ॥ २० ॥

हे न्यर्बुदे ! हे अर्बुदे ! तुम दोनों, शत्रु के प्राणों को ग्रहण कर उसे समूल उखाड़ डालो । तेरे द्वारा दंशित होने पर शत्रु क्रंदन करने लगे ॥११॥ हे न्यर्बुदे ! तुम हमारे शत्रुओं को कम्पित करो । वे अपने स्थान से भ्रष्ट होते हुए व्यथित हों । उनको भयभीत करते हुए उन्हें हाथ-पाँवों की क्रियाओं से भी हीन कर दो ॥ १२ ॥ हे अर्बुदे ! तुम्हारे द्वारा दंशित होने पर शत्रु की भुजाएं विष के कारण निर्वीय हो जाँय । शत्रुओं की इच्छाएं विस्मृत हो जाँय । उनके पास रथ, अश्व, गज कुछ भी शेष न रहे ॥ १३ ॥ हे अर्बुदे ! तुम्हारे द्वारा दंशित होने पर शत्रुओं की स्त्रियाँ वक्ष कूटती हुई बालों को खोलकर पति के वियोग से रोती हुई अपने पति की ओर जाँय ॥ १४ ॥ हे अर्बुदि, तुम क्रीडार्थ श्वानों को साथ में रखने वाली अप्सराओं को, माया रूपी सेनाओं को शत्रुओं को दिखाओ, उल्कापात और विकृत दिखाई पड़ने वाले दैत्यों को हमारे शत्रुओं को दिखाओ ॥ १५ ॥ द्युलोक में दूर घूमने वाली माया रूपिणी का शत्रुओं को दिग्दर्शन कराओ । अपनी माया से अलक्षित यक्ष, राक्षस, गन्धर्वों को शत्रुओं को दिखाकर भयभीत करो ॥ १६ ॥ सर्प रूप देवता, इतरजन, काले दाँत वाले दैत्य, घटाण्डकोश वाले, रक्त से सने मुख वाले राक्षसों को भी अपनी राय द्वारा शत्रुओं को दिखाओ ॥ १७ ॥ अर्बुदि, तुम शत्रु-सेनाओं को विष के वेग से शोक करने वाली बनाओ और उसे कम्पायमान करो । तुम दोनों इन्द्र के मित्र हो । हमारे शत्रुओं को हराते हुए हमको विजय प्राप्त कराओ ॥ १८ ॥ हे न्यर्बुदि, भय से कम्पित हुआ हमारा शत्रु अङ्गों के टूटने पर मर कर सो जाय । अग्नि की धूमशिखा युक्त

सेनाएं हमारी सेना के साथ गमन करें ॥ १९ ॥ हे अर्बुदि, हमारे शत्रुओं में जो श्रेष्ठ हों उन्हें चुन-चुन कर इन्द्र छिन्न कर डालें। उनमें से कोई भी शेष न रहे ॥ २० ॥

उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु ।
शौष्कास्यमनु वर्ततामभित्रान् मोत मित्रिणः ॥ २१ ॥
ये च धीरा ये चाधीराः पराञ्चो बधिराश्च ये ।
तमसा ये च तूपरा अथो बस्ताभिवासिनः ॥ २२ ॥
अर्बुदिश्च त्रिषन्धिश्चामित्रान् नो वि विध्यताम् ।
यथैषामिन्द्र वृत्रहन् हनाम शचीपतेऽमित्राणां सहस्रशः ॥ २३ ॥
वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः ।
गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
सर्वांस्तौ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥२४॥
ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः ।
ईशां व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन् रदिते तव ॥ २५ ॥
तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ॥ २६ ॥

शत्रुओं के देह से अन्तःकरण और प्राण वायु पृथक् हों। भय के कारण ये सूख जाँय। हमारे मित्रों को यह भय जनित सूखा प्राप्त न हो ॥२१॥ धीर, कायर, युद्ध में पीठ दिखाने वाले, और कर्त्तव्य विमूढ़ जो योद्धा हमारे रण में हैं उन्हें हे अर्बुदे! अपनी माया से शत्रुओं की पराजय दिखाने में सामने करो ॥ २२ ॥ हे इन्द्र! हमारे शत्रुओं को जिन सहस्रों प्रकार से नष्ट कर सको, उन्हीं विधियों से उसे नष्ट करो। त्रिसंधि नामक देवता और अर्बुदि हमारे शत्रुओं को अनेक प्रकार से नष्ट करें ॥ २३ ॥ हे अर्बुदे! वृक्ष, वनौ-

निर्मित वस्तु: व्रीहि, जौ, लता, गन्ध, अप्सराएँ और पूर्व पुरुषों को हमारे शत्रुओं को दिखाओ और उन्हें अन्तरिक्ष के उत्पातों को दिखाते हुए भयभीत करो ॥ २४ ॥ हे शत्रुओ ! मरुद्गण तुम्हें दण्ड दें, इन्द्राग्नी नियन्त्रित करें, ब्रहणस्पति, धाता, मित्र, प्रजापति, अथर्वा, अङ्गिरा आदि तुम्हें शिक्षा दें। तुम्हारे द्वारा दंशित होने पर इन्द्रादि भी शत्रु को दण्ड देने वाले हों ॥२५॥ हे देवगण ! तुम हमारे मित्र रूप हो। हमारे शत्रुओं को शिक्षा देने को तैयार होओ और तुम इस युद्ध को जीतकर अपने-अपने स्थान को लौट जाओ ॥ २६ ॥

१० सूक्त

(ऋषि—भृग्वङ्गिराः। देवता—त्रिषन्धिः। छन्दः—बृहती, जगती; पंक्ति, अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्; शक्वरी; गायत्री;)

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह ।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥ १ ॥
ईशां वो वेदराज्यं त्रिषन्धे अरुणैः केतुभिः सह ।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये च मानवाः ।
त्रिषन्धेस्ते चेतसि दुर्णामान उपासताम् ॥ २ ॥
अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः ।
क्रव्यादो वातरंहस आ सजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिषन्धिना ॥३॥
अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणप बहु ।
त्रिषन्धेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे ॥ ४ ॥
उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
अयं बलिर्व आहुतस्त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ॥ ५ ॥
शितिपदी सं द्यतु शरव्येयं चतुष्पदी ।
कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषन्धेः सह सेनया ॥ ६ ॥

धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
त्रिषन्धेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः ॥ ७ ॥
अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति ।
श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ॥८॥
यामिन्द्रेण संधां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते ।
तयाहमिन्द्रसंधया सर्वान् देवानिह हुव इतो जयत मामुतः ॥९॥
बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः ।
असुरक्षयणं वधं त्रिषन्धि दिव्याश्रयन् ॥ १० ॥

हे सेनानायको ! तुम अपनी ध्वजाओं सहित इस संग्राम के लिए कटिबद्ध होओ । कवचादि धारण कर रणक्षेत्र के लिए कूच करो । हे देवताओ, हे राक्षसो ! तुम हमारे शत्रुओं को देखते हुए दौड़ो ॥ १ ॥ हे शत्रुओ ! त्रिसंधि नामक वज्र का अभिमानी देवता तुम्हारे राज्य को दण्डनीय माने । हे त्रिसंधे ! तुम अपनी अरुण ध्वजाओं सहित उठो और अंतरिक्ष, आकाश और पृथिवी में जो केतु उत्पात रूप वाले हैं, उनके सहित उठो ॥ २ ॥ हे त्रिसंधे ! तुम्हारे मन में जो दुष्ट जीवों का दल है वह हमारे शत्रु की कामना करे । वे जीव लौह-चोंच, सुई समान नोंक वाली चोंच, कँटीदार मुख वाले होते हैं । वे माँस भक्षी पक्षी तुम्हारी प्रेरणा से वायु के से वेग से शत्रुओं पर छा जाँय ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! आदित्य को आच्छादित करो । त्रिसंधि देवता की सेना भले प्रकार मेरे वशीभूत हो । हम अपने शत्रुओं पर उस सेना के द्वारा महान् विजय प्राप्त करें ॥ ४ ॥ हे अर्बुद देव ! अपनी सेना सहित उठो । यह आहुति तुम्हें तृप्त करने वाली हो । त्रिसंधि देव की सेना भी हमारी आहुति से तृप्त होती हुई हमारे शत्रुओं को नष्ट कर डाले ॥ ५ ॥ यह चार पाँव वाली गौ बाण-रूप होकर शत्रुओं पर गिरे । हे कृत्या रूप वाली श्वेत पदी धेनु ! शत्रुओं के निमित्त तू साक्षात् कृत्या बन और त्रिसंधि देवता की सेना भी तेरे इस कार्य में पूर्ण रूप से सहायक हो ॥ ६ ॥ मायामय धुएँ से शत्रु की सेना के नेत्र आच्छादित हो जाँय और फिर वह गिरने लगे । उसकी अनाग

शक्ति नगाड़ों के घोषों से नाश को प्राप्त हो। जब त्रिसंधि देवता शत्रु विजय की इच्छा से अपने केतु को रक्त वर्ण का करे तब शत्रु रोने लगें ॥ ७ ॥ शत्रु-दल के मरकर गिरने पर आकाश में उड़ने वाले पक्षी उनके मांस भक्षणार्थ नीचे हों। शृगाल और मक्खियाँ उन पर आक्रमण करें। कच्चा मांस खाने वाले गिद्ध उन्हें अपनी चोंचों और पंजों से कुरेद डालें ॥ ८ ॥ हे बृहस्पते! तुमने इन्द्र और उनके उत्पत्तिकर्त्ता ब्रह्मा से जो संधान क्रिया ली है, उससे मैं इन्द्रादि देवताओं को इस युद्ध में आहूत करता हूँ। हे देवताओ! हमारी सेनाओं को जिताओ और शत्रु-सेना को हराओ ॥ ९ ॥ अङ्गिरा-पुत्र बृहस्पति और अपने मंत्र से तेज को प्राप्त हुए अन्य महर्षि भी, राक्षसों का नाश करने वाले हिंसा-साधन वज्र की सहायता लेते हैं ॥ १० ॥

येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः ।
त्रिषन्धिं देवा अभजन्तौजसे च बलाय च ॥ ११ ॥
सर्वाँल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया ।
बृहस्पतिरांगिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ॥ १२ ॥
बृहस्पतिरांगिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ।
तेनाहममूं सेनां नि लिम्पामि बृहस्पतेऽमित्रान् हन्म्योजसा ॥१३॥
सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अश्नन्ति वषट्कृतम् ।
इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः ॥ १४ ॥
सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ।
संधां महतीं रक्षत ययाग्रे असुरा जिताः ॥ १५ ॥
वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु ।
इन्द्र एषां बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।
आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् ॥१६
यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥१७॥

रथ रहित, अश्वारोही, अश्व रहित जो शत्रु हैं, वे सब तुम्हारी कृपा से मृत्यु को प्राप्त हों और उन्हें गिद्ध आदि नोंच नोंच कर खा डालें ॥ २४ ॥ हमारी सेना के निकट आने वाली शत्रु-सेना बुरी तरह आहत हो और मृत्यु को प्राप्त होती हुई कुत्सित जन्म को प्राप्त करे ॥ २५ ॥ हमारी पृषदाज्य आहुति को लौटा कर जो शत्रु हम से संग्राम करने की इच्छा करता है, हमारे वाणों से उसका मर्म स्थान टूक टूक हो । वह रोता हुआ धराशायी हो और श्वान शृगाल उसे भक्षण कर डालें ॥ २६ ॥ जिस पृषदाज्य हवि को वज्र की उत्पत्ति के लिए देवगण करते हैं और जो हवि कभी व्यर्थ नहीं होती, उस हवि के द्वारा उत्पन्न हुए वज्र से देवाधिपति इन्द्र हमारे शत्रुओं का संहार करें ॥ २७ ॥

॥ एकादशं काण्डं समाप्तम् ॥

द्वादश काण्ड



१ सूक्त [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि-अथर्वा । देवता-भूमिः । छन्द-त्रिष्टुप्; जगती; पङ्क्तिः; अष्टि; शक्वरी, बृहती; अनुष्टुप्; गायत्री;)

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ १ ॥
असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥ २ ॥
यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।

यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥ ३ ॥
यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥ ४ ॥
यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भग वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥ ५ ॥
विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥ ६ ॥
यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमि पृथिवीमप्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ७ ॥
यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥ ८ ॥
यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ९ ॥
यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥ १० ॥

ब्रह्म, तप, सत्य, यज्ञ, दीक्षा और बृहत् जल पृथिवी के धारण करने वाले हैं। ऐसी यह भूत और भवितव्य जीवों की पालनकर्त्री पृथिवी हम को स्थान दे ॥ १ ॥ जिस पृथिवी के चढ़ाई, उतराई और समतल स्थान हैं, जो अनेक सामर्थ्यों से औषधियों को धारण करती है वह पृथिवी हमको भले प्रकार प्राप्त हो और हमारी कामनाओं को सफल करे ॥ २ ॥ समुद्र, नदियां और जल से सम्पन्न पृथिवी, जिसमें कृषि और अन्न होता है, जिससे यह प्राणवान् संसार तृप्त होता है, वह पृथिवी हम को फल रूप रस उपलब्ध होने वाले प्रदेश में प्रतिष्ठित करे ॥ ३ ॥ जिस पृथिवी में चार

दिखाएं हैं, जिसमें कृषि और अन्न होता है जो प्राणवान् संसार की आश्रय रूप है, वह पृथिवी हम को गौ और अन्न से युक्त करे ॥.४ ॥ पूर्व पुरुषों ने जिस पृथिवी में अनेक कर्म किए, जिस पृथिवी में देवताओं ने दैत्यों से संग्राम किया जो गौ, घोड़े और पक्षियों के आश्रय रूप हैं, वह पृथिवी वर्च (तेज) और ऐश्वर्य दे ॥ ५ ॥ जो पृथिवी धनों की धारणकर्त्री, संसार की भरणकर्त्री, सुवर्ण को वश में धारण करने वाली और विश्व की आश्रम रूपा है, वह वैश्वानर अग्नि को धारण करने वाली पृथिवी हमको द्रव्य दे ॥ ६ ॥ जिस पृथिवी की रक्षा देवता जागृत रहते हुए करते हैं, वह पृथिवी हमको प्रिय एवं मधुर धनों से और वर्च से युक्त करे ॥ ७ ॥ जो पृथिवी समुद्र में थी, विद्वान् जिस पृथिवी पर श्रम करते हुए विचरते हैं, जिसका हृदय आकाश में स्थित है, वह अमृतमयी पृथिवी हमको श्रेष्ठ राष्ट्र, बल और दीप्ति में प्रतिष्ठित करे ॥ ८ ॥ जिस पृथिवी में प्रवाहमान जल समान गति से दिन और रात्रि में भी गमन करते हैं ऐसी भूरि धारा पृथिवी हमको दूध के समान सार रूप फल और वर्च से युक्त करे ॥ ९ ॥ जिस पृथिवी को अश्विनीकुमारों ने बनाया, विष्णु ने जिस पर विक्रमण किया, इन्द्र ने जिसे अपने आधीन कर शत्रुओं से हीन किया, वह पृथिवी, माता द्वारा पुत्र को दूध पिलाने के समान दूध के समान सार रूप जल मुझे प्रदान करे ॥१०॥

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥ १४ ॥
त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥ १५ ॥
ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥१६॥
विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥ १७ ॥
महत् सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ॥१८॥
अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥ १९ ॥
अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् ।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥ २० ॥

हे पृथिवी ! तेरे पहाड़, पर्वत, हिम प्रदेश और जंगल हमारे लिए सुख देने वाले हों । अनेक रंग वाली इन्द्रगुप्त पृथिवी पर मैं क्षय रहित पराजय-रहित रूप से सदा प्रतिष्ठित रहूँ ॥ ११ ॥ हे पृथिवी ! तेरे मध्य भाग (नाभि के भाग) से शरीर को पुष्ट करने वाले जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उनमें मुझे प्रतिष्ठित करो । मेरी माता भूमि और पिता मेघ हम को पवित्र करते हुए पुष्ट करें ॥ १२ ॥ जिस पृथिवी में वेदी बना कर सम्पूर्ण कर्मों वाले यज्ञ को करते हैं, जिस पृथिवी पर आहुति देने से पूर्व ही यज्ञ स्तम्भ स्थित होते हैं, वह प्रवृद्ध पृथिवी हमारी वृद्धि करे ॥ १३ ॥ हे पृथिवी ! जो हमारा वैरी सेना एकत्र कर हम को क्रोध करता हुआ मारना चाहे, तुम हमारे निमित्त उन्हें नष्ट कर डालो ॥ १४ ॥ हे पृथिवी ! तुम पर जन्म लेने वाले प्राणी

तुम्हारे ऊपर ही घूमते रहते हैं। तुम जिन दुपाये पशु और चौपाये मनुष्यों का पोषण करती हो उन्हें सूर्य अपनी रश्मियों द्वारा जीवन पर्यन्त पदार्थों को प्रदान करते हैं। हे पृथिवी ! वे पंचजन भी तुम्हारे ही हैं ॥ १५ ॥ सूर्य-रश्मियाँ हमारे निमित्त प्रजा का और वाणियों का दोहन करें। हे पृथिवी ! मुझे मधुर पदार्थ प्रदान करो ॥ १६ ॥ हम औषधियों को उत्पन्न करने वाली, संसार की ऐश्वर्य रूपा, धर्म द्वारा आश्रित, कल्याणमयी, सुख देने वाली पृथिवी पर सदा विचरण करें ॥ १७ ॥ हे पृथिवी ! तू महती निवासभूमि है, तेरा वेग और कंपन भी महत्वपूर्ण है। वे इन्द्र तेरे रक्षक हों। तू हमें सब का प्रिय बना। जैसे सुवर्ण सब के लिए प्रिय होता है, वैसे ही हमारा द्वेषी कोई न हो ॥ १८ ॥ जल अग्नि को धारण करता है, पृथिवी में अग्नि है, जल में, पुरुषों में और गौ अश्वादि पशुओं में भी अग्नि है ॥ १९ ॥ स्वर्ग में अग्नि तपते हैं, अन्तरिक्ष में भी हैं और मरणधर्म वाले मनुष्य हव्यवाह अग्नि को प्रदीप्त करते हैं ॥२०॥

अग्निवासाः पृथिव्य सितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥२१॥
भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् ।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥२२॥
यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः ।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं
कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २३ ॥
यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे ।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं
कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २४ ॥
यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः ।
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु ।

कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज
मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २५ ॥
शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता ।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥ २६ ॥
यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥ २७ ॥
उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥ २८ ॥
विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥२९॥
शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं निदध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ॥ ३० ॥

जिस धूम में अग्नि का वास है, उस धूम को जानने वाली पृथिवी मुझे तेजस्वी बनावे ॥ २१ ॥ पृथिवी पर सुशोभित यज्ञों में देवताओं के लिये हवि दी जाती हैं, इसी पृथिवी पर मरणधर्म वाले जीव अन्न जल से जीवन व्यतीत करते हैं । यह पृथिवी हमको प्राण और आयु प्रदान करती हुई वृद्धावस्था तक जीवित रहने वाला बनावे ॥ २२ ॥ हे पृथिवी ! तेरे जिस गन्ध को औषधि और जल धारण किये हुए हैं, गन्ध को गन्धर्व और अप्सराएं सेवन करते हैं । मुझे उसी गन्ध से सुरभित बना । कोई मेरा वैरी न हो ॥ २३ ॥ हे पृथिवी ! तुम्हारी जो गन्ध कमल में है, जिस गन्ध को सूर्या के विवाहोत्सव में मरण धर्म वाले जीवों ने धारण किया था, उसी गन्ध से मुझे सुरभित कर । मुझसे द्वेष करने वाला कोई न रहे ॥ २४ ॥ हे पृथिवी ! तुम्हारी जो गन्ध स्त्री पुरुषों में, अश्वों में, वीरों में, मृग, हाथी और कन्या में है, उस सब से मुझे सम्पन्न करो । मुझसे द्वेष करने वाला कोई न हो ॥ २५ ॥ जो पृथिवी शिला, भूमि, पत्थर और धूल के रूपों को

धारण करती है। ऐसी पृथिवी हिरण्यवक्षा है, मैं उसे नमस्कार करता हूँ, ॥ २६ ॥ वनस्पति उत्पन्न करने वाले वृक्ष जिस भूमि पर अडिग रूप से खड़े रहते हैं, वे वृक्ष औषधादि के रूप में सब की सेवा करते हैं। ऐसी धर्म-धारिता पृथिवी का हम स्तवन करते हैं ॥ २७ ॥ हम अपने दाँये या बाँए पाँव से चलते हुए, बैठते या खड़े होते हुए कभी व्यथित न हों ॥ २८ ॥ क्षमा रूपिणी, परम पवित्र, मन्त्र द्वारा प्रवृद्ध पृथिवी का स्तवन करता हूँ। हे पृथिवी ! तू पोषक अन्न और बल के धारण करने वाली है। मैं तुझ पर घृताहुति देता हूँ ॥ २९ ॥ पवित्र जल हमारे देह को सींचे। हमारे शरीर पर होकर जाने वाले जल शत्रु को प्राप्त हों। हे पृथिवी ! मैं अपने देह को पवित्रे द्वारा पवित्र करता हूँ ॥३०॥

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥३१॥
मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥३२॥
यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ३३ ॥
यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिशेमहे ।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥ ३४ ॥
यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥ ३५ ॥
ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥३६॥
याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः ।
परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।

शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥ ३७ ॥
यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।
ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः ।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥ ३८ ॥
यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्त्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥ ३९ ॥
सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥ ४० ॥

हे पृथिवी ! तुम्हारी पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण रूप चारों दिशाएं मुझे विचरण-शक्ति दें। मैं इस लोक में रहता हुआ गिरने न पाऊँ ॥ ३१ ॥ हे पृथिवी ! मेरे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों ओर खड़ी रह । मुझे दस्यु प्राप्त न करें, विकराल हिंसा से मुझे बचाती हुई मंगल करने वाली हो ॥ ३२ ॥ मैं जब तक तुझे सूर्य के समक्ष देखता रहूँ तब तक मेरी दर्शन-शक्ति नष्ट न हो ॥ ३३ ॥ हे पृथिवी ! शयन करता हुआ मैं करवट लूँ या सीधा होकर सोऊँ, उस समय मैं हिंसित न होऊँ ॥ ३४ ॥ हे पृथिवी ! मैं तेरे जिस स्थल को खोदूँ वह शीघ्र ही यथावत् हो जाय। मैं तेरे मर्म को पूर्ण करने में समर्थ नहीं हूँ ॥ ३५ ॥ हे पृथिवी ! ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसंत यह छँओ ऋतु तथा दिन-रात, वर्ष यह सब हमको फल दुहने वाले हों ॥ ३६ ॥ जो पृथिवी सर्प के हिलने पर कम्पायमान होती है, विद्युत रूप से जल में रहने वाला अग्नि जिस पृथिवी में भी निवास करता है, जिसने वृत्रासुर को त्याग कर इन्द्र का वरण किया था, जो देवहिंसकों के लिए फल-दायिनी नहीं होती और जो सुपुष्ट वीर्यवान् पुरुष के आधीन रहती है ॥ ३७ ॥ जिस पृथिवी पर यज्ञ मंडप की रचना होती है, जिसमें यूप गड़े होते हैं, जिस पृथिवी पर ऋक्, साम, यजु के मन्त्रों द्वारा देव-पूजन और इन्द्र को सोम-पान कराने का कार्य होता है ॥ ३८ ॥ जिस पृथिवी पर भूतों के रचयिता ऋषियों ने सात सत्र वाले यज्ञयाग और स्तुति रूप

णियों से देव-पूजन किया था ॥ ३६ ॥ यह भूमि हमारा अभीष्ट धन दे । न्य हमको अरण्यप्रद हो और इन्द्र हमारे अग्रगण्य हों ॥ ४० ॥

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलवाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु॥४१॥
यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥ ४२ ॥
यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥४३॥
निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥४४॥
जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥४५॥
यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये ।
क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोप
सृपद् यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४६ ॥
ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे ।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं
यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४७ ॥
मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥४८॥
ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा
व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति ।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत्

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ॥ ५० ॥

जिस पृथिवी पर मनुष्य नाचते गाते हैं, जिस पृथिवी पर संग्राम होते हैं, जिस पर रुदन होता और दुंदुभि भी बजती है, वह पृथिवी मुझे शत्रु-हीन करे ॥ ४१ ॥ जिस पृथिवी की पाँच कृषियाँ हैं, जिस पृथिवी पर धान्यादि अन्न होते हैं, उस वर्षा रूप मेघ द्वारा पुष्ट की जाने वाली पृथिवी को नमस्कार है ॥ ४२ ॥ देवताओं द्वारा रचे गए हिंसक पशु जिस पृथिवी में अनेक क्रीड़ा करते हैं, जो सम्पूर्ण संसार को अपने में स्थित करती है, उस पृथिवी की दिशाओं को प्रजापति हमारे लिए मंगलमय करें ॥ ४३ ॥ निधियों को धारण करने वाली पृथिवी निवास, मणि, सुवर्ण आदि दे । वह धन प्रदान करने वाली हम पर प्रसन्न होती हुई वरदायिनी बने ॥ ४४ ॥ अनेक धर्म और अनेक भाषा वाले मनुष्यों को धारण करने वाली पृथिवी, अडिग धेनु के समान मेरे लिए धन की सहस्रों धाराओं का दोहन करे ॥ ४५ ॥ हे पृथिवी ! तुम में जो सर्प वास करते हैं, उन सर्पों का दंश प्यास लगाने वाला है, जो बिच्छू हैं वह हेमन्त में डंक नीचा किये गुफा में सोता रहता है, वर्षा ऋतु में यह प्रसन्नता से विचरने वाले प्राणी मेरे पास न आवें । कल्याण-कारी जीव ही मुझे प्राप्त हों, उनसे मुझे सुख दो ॥ ४६ ॥ हे पृथिवी ! मनुष्यों के चलने के तथा रथादि के चलने के जो मार्ग हैं, उन मार्गों पर धर्मात्मा और पापात्मा दोनों ही चलते हैं । जो चोर और शत्रुओं से रहित मार्ग है, वही कल्याणप्रद मार्ग हमें प्राप्त हो । उसी के द्वारा तुम हमें सुखी करो ॥ ४७ ॥ पुण्य और पाप कर्म वालों के शवों को तथा शत्रु को भी धारण करने वाली जिस पृथिवी को वराह ढूँढ रहे थे, वह उन वराह को ही प्राप्त हुई ॥ ४८ ॥ जो हिंसक पशु व्याघ्र आदि घूमते हैं उनको उल, वृक, ऋक्षीका और राक्षसों को हम से दूर करके बाधा दो ॥ ४९ ॥ हे पृथिवी ! गन्धर्व, अप्सरा, राक्षस, किमद्दिन, पिशाच आदि को हम से दूर कर ॥ ५० ॥

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।

यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् ।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥ ५१ ॥
यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये
धामनिधामनि ॥ ५२ ॥
द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ॥ ५३ ॥
अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥ ५४ ॥
अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।
आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥५५॥
ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥ ५६ ॥
अश्वइव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन्
पृथिवी यादजायत ।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥५७॥
यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ॥ ५८ ॥
शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥ ५९ ॥
यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः॥६०॥
त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य॥६१॥

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं वलिहृतः स्याम ॥६२

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥ ६३ ॥

जिस पृथिवी पर दो पाँव के पक्षी हंस, कौए, गिद्ध आदि घूमते हैं, जिस पृथिवी पर वायु धूल उड़ाते और वृक्षों को पतित करते हैं और वायु के तीक्ष्ण होने पर अग्नि भी उनके साथ चलते हैं ॥ ५१ ॥ जिस पृथिवी पर काले और लाल दिन-रात्रि मिले रहते हैं, जो पृथिवी वर्षा से आवृत होती है, वह पृथिवी हमको सुन्दर चित्तवृत्ति से हमारे प्रिय स्थान को प्राप्त करा ॥ ५२ ॥ आकाश, पृथिवी, अंतरिक्ष, अग्नि, सूर्य, जल, मेधा तथा स देवताओं ने मुझे गमन-सामर्थ्य प्रदान की है ॥ ५३ ॥ मैं शत्रु-तिरस्क वाला श्रेष्ठ रूप में पृथिवी पर प्रसिद्ध हूँ, मैं शत्रुओं को सामने जाय दबाऊँ । मैं हर दिशा में रहने वाले शत्रु को भले प्रकार वश में कर ॥ ५४ ॥ हे पृथिवी ! तुम्हारे विस्तृत होने से पहिले देवताओं ने तुम विस्तार युक्त होने को कहा था, उस समय तुम में भूतों ने प्रवेश कि तभी चार दिशाएं बनाई गईं ॥ ५५ ॥ पृथिवी पर जो गाँव, जंगल औ सभाएं हैं, जो युद्ध की मंत्रणाएं तथा युद्ध होते हैं उन सब में हम, हे भूमि तेरी वंदना करते हैं ॥ ५६ ॥ पृथिवी में उत्पन्न हुए पदार्थ पृथिवी पर रहते हैं, उन पर अश्व के समान धूल उड़ाते हैं । यह भूमि मंद्रा औ हमारी है तथा वनस्पति और ओषधियों के आश्रय से लोक का पालन क वाली है ॥ ५७ ॥ मैं जो कुछ कहूँ वह मिष्ट हो, जिसे देखूँ वही मेरा प्रि हो । मैं यशस्वी और वेग वाला होऊँ, दूसरों का रक्षक होता हुआ, जो मु कम्पित करें, उनका संहार कर डालूँ ॥ ५८ ॥ सुख शान्ति देने वाली, अन्न और दूध वाली पृथिवी दूध के समान सार पदार्थ वाली होती हुई मेरे पक्ष रहे ॥ ५९ ॥ जिस पृथिवी को राक्षसों के चक्कर से हवि द्वारा निकालने व विश्वकर्मा ने इच्छा की वो गुप्त रहने वाला सुनिश्चय पात्र (अन्न) उपभो

समय दिखाई पड़ने लगा ॥ ६० ॥ हे पृथिवी ! तू कामनाओं को पूर्ण करने
वाली है, इस विश्व की प्रेरक एवं विस्तार वाली है। तेरे कम होने वाले
ग को प्रजापति पूरा करते हैं ॥ ६१ ॥ तेरे द्वीप भी हमारे लिए यक्ष्मा-
ग से रहित रहें। हम अपनी दीर्घ आयु से युक्त हुए तुझे हवि देने वाले
हों ॥ ६२ ॥ हे पृथिवी माता ! मुझे मङ्गलमयी प्रतिष्ठा में रखो। हे विज्ञ !
के लक्ष्मी और विभूति में स्थित रखते हुए स्वर्ग की प्राप्ति कराओ ॥ ६३ ॥

२ सूक्त [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि—भृगुः। देवता—अग्निः; मन्त्रोक्ताः; मृत्युः। छन्दः—त्रिष्टुप्,
अनुष्टुप्; पङ्क्तिः; जगती, बृहती; गायत्री)

इमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि ।
गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि ॥ १ ॥
अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च ।
यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि ॥ २ ॥
रितो मृत्युं निर्ऋतिं निररातिमजामसि ।
नो द्वेष्टि तमद्ध्यग्ने अक्रव्याद् यमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि ॥३॥
अग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशा योकाः ।
मापाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् ॥ ४ ॥
यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते ।
सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि ॥ ५ ॥
पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।
पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ६ ॥
यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे ॥ ७ ॥
क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।

इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ८
क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृहन्तं वज्रेण मृत्युम् ।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितॄणां लोके अपि भागो अस्तु ॥ ९
क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।
मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥ १० ॥

हे क्रव्याद् अग्ने ! तू नड पर आरोहण कर । जो यक्ष्मा मनुष्यों या जो यक्ष्मा गौ में है तू उसके साथ ही यहाँ से दूर जा । तू अपने भा सीमा पर आ ॥ १ ॥ पाप और दुर्भावनाओं का नाश करने वाले कर अ अनुकर से यक्ष्मा को पृथक् करता हूँ और मृत्यु को भी दूर भगाता हूँ ॥ २ हे अक्रव्याद् अग्ने ! हम पाप देवता निर्ऋति और मृत्यु को दूर करते अपने शत्रुओं को भी दूर करते हैं । जो हमारे वैरी हैं, उन्हें तुम्हारी भेजते हैं, तुम उनका भक्षण करो ॥ ३ ॥ यदि क्रव्याद् अग्नि ने वा व्याघ्र हमारे गोष्ठ में प्रवेश किया है तो मैं उसे माष आज्य द्वारा दूर करता हूँ, जल में वास करने वाली अग्नियों को प्राप्त हो ॥ ४ ॥ पुरुष की मृत्यु के का क्रोधित हुए प्राणियों ने तुम्हें प्रदीप्त किया, वह कार्य पूर्ण हो गया इसलि तुम्हें तुम से ही प्रदीप्त करते हैं ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! वसु, ब्रह्मणस्पति, ब्रह्मा, सूर्य और यसुभीति ने तुम्हें, सौ वर्ष का जीवन प्राप्त करने के लिए पुनः प्र किया था ॥ ६ ॥ अन्य अग्नियों के देखने के लिये यदि क्रव्याद् अग्नि ह घर में प्रविष्ट हुआ है तो पितृयज्ञ करने के लिये मैं उसे दूर करता हूं । परम आकाश में स्थित होकर धर्म को बढ़ावें ॥ ७ ॥ मैं क्रव्याद् अग्नि को करता हूँ, वह पाप को साथ लेता हुआ यम स्थान को प्राप्त हो । जात अग्नि यहाँ प्रतिष्ठित होकर देवताओं के लिए हवि वहन करें ॥ ८ ॥ मैं अ मन्त्र रूप वज्र से क्रव्याद् अग्नि को दूर करता हूँ । गार्हपत्य अग्नि के द्वार इस अग्नि का शासन करता हूँ, यह पितरों का भाग होता हुआ उनके लो स्थित होता हुआ उनके लोक में स्थित हो ॥ ९ ॥ उक्थ के प्रशंसक क्र अग्नि को मैं पितृयान मार्ग से भेजता हूँ । हे क्रव्याद् ! तू पितरों मे

प्रवृद्ध हो और वहीं जागता रह। देवयान मार्ग द्वारा पुनः यहाँ मत आ॥ १०॥

समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः।
जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ॥११॥
देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत।
मुच्यमानो निरेणसोऽमोगस्माँ अशस्त्याः॥ १२॥
अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत्॥ १३॥

संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः।
ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशन्॥ १४॥
यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु।
क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः॥ १५॥
अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा।
निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः॥ १६॥
यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत।
तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह॥ १७॥
समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः।
अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे॥ १८॥
सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वमग्नौ संकसुके च यत्।
अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे॥ १९॥
सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे।
अव्यामसिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः॥ २०॥

पवित्रताप्रद अग्निदेव शुद्ध होने के लिए शवभक्षक अग्नि को धरते हैं, तब वह अपने पाप का त्याग करता हुआ जाता है।

अग्नि शुद्ध करते हैं ॥ ११ ॥ शवभक्षक अग्नि स्वयं पाप से मुक्त होते और अमङ्गल से हमारी रक्षा करते हुए स्वर्ग पर चढ़ते हैं ॥ १२ ॥ इस शवभक्षक अग्नि में हम अपने पापों को शोधते हैं। हम शुद्ध हो गये, अब यह अग्नि हमको पूर्ण आयु बनावें ॥ १३ ॥ यक्ष्मा के ज्ञाता संकसुक, विकसुक, निर्ऋथ और निस्वर अग्नि यक्ष्मा के साथ ही सुदूर चले गये और वहाँ जाकर नाश को प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ जो क्रव्याद् हमारे अश्व, गौ, बकरी आदि पशुओं और पुत्र-पौत्रादि में प्रविष्ट हुआ है उसे हम भगाते हैं ॥ १५ ॥ जो क्रव्याद् जीवन के क्रम को बिगाड़ने वाला है उसे हम मंत्र बल से भगाते हैं। हे क्रव्याद् अग्ने! हम तुझे मनुष्यों, गौओं और अश्वों से दूर करते हैं ॥ १६ ॥ हे अग्ने! जिसमें देवता और मनुष्य शुद्ध होते हैं, उनमें शुद्ध होकर तू भी स्वर्गारोहण कर ॥ १७ ॥ हे गार्हपत्य अग्ने! तुम हमारा त्याग न करो। तुम भले प्रकार प्रदीप्त हो रहे हो, तुममें आहुतियाँ दी जा रही हैं। तुम सूर्य के चिरकाल तक दर्शन कराने के लिए प्रदीप्त होओ ॥ १८ ॥ हे पुरुषो! शिर रोग को सीसे में, नड नामक घास में, संकसुक में और भेड़ तथा घी में भी शुद्ध करो ॥ १९ ॥ हे पुरुषो! शिर के रोग को तकिये में स्थापित करो, मल को सीसे में और काली भेड़ में शुद्ध करके स्वयं शुद्ध होओ ॥ २० ॥

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एष इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु ॥ २१ ॥
इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ २२ ॥
इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥२३॥
आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ ।
तान् वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय ॥२४॥
यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥ २५ ॥

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ॥२६॥
उत्तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम्।
अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान् ॥२७॥
वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम ॥२८॥
उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोऽवरान् परेभिः।
त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन ॥२९॥
मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।
आसीना मृत्युं नुदता सधस्थेऽथ जीवासो विदथमा वदेम ॥३०॥

हे मृत्यो! तू देवयान से भिन्न मार्ग से जा। तू दर्शन और श्रवण शक्तियों युक्त है तो सुनले कि यहाँ हमारे पक्ष में वीर पुत्रादि रहेंगे ॥ २१ ॥ यह मनुष्य मृत्यु को दूर करने वाली शक्ति से युक्त हो गये। हम सुन्दर वीरों से सम्पन्न होकर नृत्य, गान, हास्य में रत हैं। हम यज्ञ की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि देवताओं को आहुति देना आज कल्याणकारी हो गया ॥ २२ ॥ हे मनुष्यो! तुम पत्थर से अपनी मृत्यु को दबाओ। मैं तुम्हें जो समय कर अवधि देता हूँ उसे कोई अन्य न प्राप्त करे। तुम सौ वर्ष तक जीवित रहो ॥२३॥ हे मनुष्यो! तुम वृद्धावस्था की दीर्घ आयु का वरण करो। तुम सुन्दर अन्न वाले और समान गति वाले हो। तुम्हें दीर्घ जीवन के लिये त्वष्टा पूर्ण आयु प्रदान करें ॥ २४ ॥ जैसे ऋतुएं एक के पीछे दूसरी आती हैं, जैसे दिन एक के पीछे दूसरे आते हैं, जैसे नया पहले का त्याग नहीं करता, वैसे ही हे धाता इन्हें आयुष्मान करो ॥ २५ ॥ हे मित्रो! यह पाषाण-युक्त नदी बह रही है। वीरता पूर्वक इससे पार होओ। अपने पापों को इसी में त्याग दो। फिर हम रोग-निवारक देवों को प्राप्त करें ॥ २६ ॥ मित्रो! यह पाषाण नदी शब्द कर रही है, उठकर वीर और अपने पापों को इसे उल्लंघित करो। हम इसके कल्याणकर और सुख देने वाले देवों के पास हैं

हे पवित्रताप्रद अग्नियो ! शुद्ध होने के समय सब देवताओं का स्तवन करो । ऋग्वेद के पदों से पापों को लाँघते हुए हम सौ हेमन्तों तक पुत्रादि सहित आनन्दित हों ॥ २८ ॥ परलोक गमन में वायु से पूर्ण उत्तरायण मार्ग में जाने वाले ऋषियों ने निकृष्ट मनुष्यों को लाँघा था । उन्होंने मृत्यु को भी इक्कीस बार पद्योपन द्वारा पार किया था ॥ २९ ॥ मृत्यु के लक्ष्य को भ्रमित करने वाले ऋषि आयु से परिपूर्ण हैं । तुम भी इस मृत्यु को भगाओ । फिर हम जीवन लोक में यज्ञ की स्तुति करें ॥३०॥

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥३१॥
व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि॥३२
यो नो अग्निः पितरो हृत्स्वन्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।
मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् ॥३३॥
अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा ।
प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ॥ ३४ ॥
द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या ।
अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ॥ ३५ ॥
यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते ।
सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः ॥ ३६ ॥
अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे ।
छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्त्तते ॥ ३७ ॥
मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्ति मर्त्यो नीत्य ।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥ ३८ ॥
ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः ।
ब्रह्मैव विद्वानेष्योऽयः क्रव्यादं निरादधत् ॥ ३९ ॥

यद् रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम् ।
आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः संकसुकाच्च यत् ॥ ४० ॥

यह स्त्रियाँ सुन्दर पति से युक्त रहें, विधवा न हों। यह अश्रुओं से रहित और घृत से युक्त हों। यह सुन्दर अलंकारों को धारण करने वाली हों और संतानोत्पत्ति के लिए मनुष्य योनि में ही रहो आवें ॥ ३१ ॥ मैं इन दोनों को मन्त्र शक्ति से सामर्थ्यवान् करता हूँ। पितरों की स्वधा को जीर्णतारहित करता हुआ इन्हें दीर्घ आयु वाला बनाता हूँ ॥ ३२ ॥ हे पितरो ! हमारे हृदय में नष्ट न होने वाले फल का देने वाला अग्नि व्याप्त है, वह हम से द्वेष करने वाला न हो। हम भी उसके प्रति द्वेष न करें ॥ ३३ ॥ हे प्राणियो ! मन्त्रों द्वारा गार्हपत्य अग्नि से दूर हटो और क्रव्याद् अग्नि से दक्षिण दिशा को प्राप्त होओ। वहाँ अपने और अपने पितरों के लिए जो प्रिय हो, वही कार्य करो ॥ ३४ ॥ जो पुरुष क्रव्याद् अग्नि को नहीं छोड़ता, वह अपने ज्येष्ठ पुत्र के तथा अपने धन को लेता हुआ पाप को प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ जो पुरुष क्रव्याद् अग्नि का सेवन न छोड़े, उसकी कृषि, सेवनीय वस्तु, समूल्य वस्तु आदि जो उसके पास हों वे शून्य के समान रह जाते हैं ॥ ३६ ॥ जो पुरुष क्रव्याद् अग्नि को नहीं छोड़ता वह यज्ञ करने का अधिकारी नहीं रहता, उसका तेज नष्ट हो जाता है और आहूत देवता उसके पास नहीं आते। क्रव्याद् जिसका साथी रहता है, उसे कृषि, गौ और ऐश्वर्य से वियुक्त करता है ॥ ३७ ॥ क्रव्याद् अग्नि जिसके पास रह कर वास देता है, वह पुरुष अत्यन्त व्यथा को प्राप्त होता है। उसे आवश्यक वस्तुओं के लिए बारम्बार दीन-वचन कहने पड़ते हैं ॥ ३८ ॥ जो क्रव्याद् अग्नि को पूर्णतः ग्रहण करता है, उसके लिए घर कारागार रूप बन जाते हैं और स्त्री का पति मृत्यु को प्राप्त होता है। उस समय विद्वान् का आदेश मानना चाहिए ॥ ३९ ॥ जो पाप हम कर चुके हैं उस पाप से और इस भयंकर अग्नि के स्पर्श-दोष से मुझे जल पवित्र करें ॥४०॥

ता अधरादुदीचीराववृत्रन् प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः ।

पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः ॥४१॥
अग्ने अक्रव्यान्निष्क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ॥ ४२ ॥
इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वगात् ।
व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ॥ ४३ ॥
अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणामग्निर्गार्हपत्य
उभयानन्तरा श्रितः ॥ ४४ ॥
जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये
मृताः । सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ॥४५
सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ॥४६॥
इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥ ४७ ॥
अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ॥४८॥
अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत् क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः ।
अनातुरान्त्सुमनसस्तल्प बिभ्रज्ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि ॥४९॥
ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा ।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादश्वइवानुवपते नडम् ॥ ५० ॥

जो जल देवयान मार्गों से दक्षिण से उत्तर के स्थान पर आ जाते हैं मौन होकर वर्षा रूप से पर्वत पर नदी रूप हो जाते हैं ॥ ४१ ॥ हे अक्रव्याद् गार्हपत्य अग्ने ! तुम क्रव्याद् को हमसे दूर करो। देव-पूजन की सामग्री को वहन करो ॥ ४२ ॥ इस पुरुष ने क्रव्याद् को प्रविष्ट कर लिया और उसी का अनुगामी होगया है। मैं इन दोनों को व्याघ्र के समान मानता हूँ। इस कल्याण से भिन्न क्रव्याद् अग्नि को मैं पृथक् करता हूँ ॥ ४३ ॥ देवताओं की अन्तर्धि और मनुष्यों की परिधि रूप गार्हपत्य अग्नि देवता और मनुष्यों के लिए मध्यस्थ हैं ॥ ४४ ॥ हे अग्ने ! जीवितों की आयु-वृद्धि करो।

मृतकों को पितरलोक भेजो। गार्हपत्य अग्नि शत्रुओं को जलावे। हे गार्हपत्य अग्ने! मंगलमयी उषा को हम में प्रतिष्ठित करो ॥ ४५ ॥ हे अग्ने! सब शत्रुओं को वशीभूत करते हुए उनके बल और धन को हम में प्रतिष्ठित करो ॥ ४६ ॥ इन ऐश्वर्यवान् वह्नि का स्तवन करो। यह तुम्हें पाप से मुक्त करें। उसके द्वारा रुद्र के बाण को दूर हटाते हुए अपनी रक्षा करो ॥ ४७ ॥ हवि रूप भार के वाहक नौका रूप वह्नि का स्तवन करो। वे पाप से तुम्हारी रक्षा करें। सविता की नौका पर चढ़ कर हम छै उर्वियों द्वारा अमिति को पार करें ॥ ४८ ॥ हे गार्हपत्य अग्ने! तुम दिन रात्रि के आश्रय रूप होते हुए प्राप्त होते हो। तुम कल्याण प्रद होते हुए पुत्र-पौत्रादि से युक्त करते हो। तुम्हारी आराधना सुगम है। तुम हमें निरोग रखते हुए और हर्ष युक्त मन से पर्यंक पर चढ़ाते हुए, दीर्घकाल तक प्रदीप्त होते रहो ॥ ४९ ॥ जिनके पास अश्व द्वारा घास को कुचलने के समान क्रव्याद् अग्नि कुचलता है वे पाप से अपनी जीविका चलाने वाले पुरुष देव-यज्ञों के घातक हैं ॥५०॥

येऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते ।
ते वा अन्येषां कुम्भी पर्यादधति सर्वदा ॥ ५१ ॥
प्रेव पिपतिपति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः ।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥ ५२ ॥
अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः ।
माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यमरण्यान्या गह्वरं सचस्व ॥५३॥
इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम् ।
तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ ॥ ५४ ॥
प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां वि ह्याविवेश ।
परामीषामसून् दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥ ५५ ॥

जो धन की इच्छा से क्रव्याद् अग्नि की सेवा करते हैं, वे पुरुष सदा अन्यों के घटादि ही उठाया करते हैं ॥ ५१ ॥ जिस पुरुष के पास [illegible] क्रव्याद् अग्नि रहता है वह बारम्बार आवागमन के [illegible]

और अधोगति को प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ हे क्रव्याद् अग्ने काली भेड़, सीसा और चन्द्रमा को विज्ञजन तेरा भाग बताते हैं और पिसे हुए उड़द भी तेरे हव्य रूप हैं। अतः तू घोर जंगल में पहुँच जा ॥ ५३ ॥ पुरानी सींक, दंडन, तिल्पिञ्ज और घास को इन्द्र ने ईंधन बनाया और उसके द्वारा यम की इस अग्नि को पृथक् कर दिया ॥ ५४ ॥ विद्वान् गार्हपत्य अग्नि सूर्य को अर्पित होकर देवयान मार्ग में प्रविष्ट हुए और जिनके प्राणों को दिया, मैं उन यजमानों को चिर आयु से युक्त करता हूँ ॥५५॥

३ सूक्त [तीसरा अनुवाक]

(ऋषिः—यमः। देवता—स्वर्गः, ओदनः, अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्; जगती; पंक्ति; बृहती; धृतिः)

पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मेहि तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते ।
यावन्तावग्रे प्रथमं समेयथुस्तद् वां वयो यमराज्ये समानम् ॥१॥
तावद् वां चक्षुस्तति वीर्याणि तावत् तेजस्ततिधा वाजिनानि ।
अग्निः शरीरं सचते यदैधोऽधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥२॥
समस्मिंल्लोके समु देवयाने सं स्मा समेतं यमराज्येषु ।
पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां यद्यद् रेतो अधि वां संबभूव ॥३॥
आपस्पुत्रासो अभि सं विशध्वमिमं जीवं जीवधन्याः समेत्य ।
तासां भजध्वममृतं यमाहुर्यमोदनं पचति वां जनित्री ॥४॥
यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः ।
स ओदनः शतधारः स्वर्ग उभे व्याप नभसी महित्वा ॥ ५ ॥
उभे नभसी उभयांश्च लोकान् ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः ।
तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम् ॥६॥
प्राचींप्राचीं प्रदिशमा रभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम् ॥७॥

दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत्।
तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः पक्वाय शर्म
बहुलं नि यच्छात् ॥ ८ ॥

प्रतीची दिशामियमिद् वरं यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च।
तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथामधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥९॥
उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद् दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम्।
पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम ॥१०॥

हे पुंसवान्! तू इस पशु-चर्म पर चढ़ और अपने प्रिय व्यक्तियों को भी बुलाले। पहिले जितने दम्पतियों ने इसे किया उनका और तुम्हारा एक-सा फल हो ॥ १ ॥ स्वर्ग में तुम्हारे शरीरों को यह अग्नि ही रचेगा, उस समय तुम पक्व ओदन के प्रभाव से इसी रूप में स्वर्ग में होगे। तुममें उत्पन्न शिशु की-सी दर्शन शक्ति और वैसा ही तेज होगा और शब्दात्मक यज्ञ को भी इसी प्रकार करने के योग्य होगे ॥ २ ॥ ओदन के प्रभाव से इस लोक में तुम दोनों साथ रहो, देवयान-मार्ग में तथा यम के राज्य में भी साथ ही रहो। इन पवित्र यज्ञों से तुम पवित्र हो चुके हो। तुमने जिस-जिस कार्य के लिए सिंचन किया, उन-उन कार्यों के फलों को प्राप्त करो ॥३॥ हे दम्पत्तियो! वीर्य रूपी जल के ही तुम पुत्र हो। तुम इस जीवन में धन्य होते हुए प्रविष्ट होओ। तुम्हारा उत्पादक जल ही ओदन को पकाता है, उसी जल के अमृतमय अंश का तुम सेवन करो ॥ ४ ॥ माता-पिता यदि वाणी जन्य पाप से या अन्य पाप से निवृत्त होने के लिए ओदन को पकाते हैं तो वह ओदन अपनी महिमा से स्वर्ग और द्यावा पृथिवी में व्याप्त होता है ॥ ५ ॥ हे पति-पत्नि! आकाश पृथिवी में यजमान जिन लोकों पर अधिकार पाते हैं, उनमें जो प्रकाशित और मधुमय लोक है, उस लोक या स्वर्ग और पृथिवी दोनों लोकों में तुम संतान से सम्पन्न हुए वृद्धावस्था तक जीवित रहो ॥ ६ ॥ हे दम्पत्ति! तुम पूर्व की ओर चलो उस स्वर्ग पर श्रद्धावान् ही चढ़ पाते हैं। तुमने जो पका हुआ ओदन अग्नि में रखा है उसकी रक्षा के निमित्त स्थित रहो ॥ ७ ॥

हे दम्पत्ति ! तुम दक्षिण की ओर जाकर इस पात्र की प्रदक्षिणा करते हुए आओ। उस समय पितरों से सहमत हुए यमराज तुम्हारे ओदन के लिए अनेक प्रकार के कल्याण प्रदान करें ॥ ८॥ पश्चिम दिशा में स्वामी और सुख देने वाले सोम हैं इस लिए यह दिशा श्रेष्ठ है। इसमें तुम पके हुए ओदन को रख कर पुण्य कर्मों का फल प्राप्त करो। फिर इस पके हुए ओदन के प्रभाव से पृथिवी और स्वर्ग में तुम दोनों प्रकट होओ ॥ ९ ॥ उत्तर दिशा प्रजाओं से युक्त है, यह श्रेष्ठ दिशा हमको श्रेष्ठता प्रदान करे। पंक्ति छन्द ओदन के रूप में प्रकट होता है। हम भी पृथिवी और स्वर्ग में अपने सभी अङ्गों सहित प्रकट हों ॥१०॥

ध्रुवेयं विराड्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु।
सा नो देव्यदिते विश्ववार इर्यइव गोपा अभि रक्ष पक्वम् ॥ ११ ॥
पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः शिवा नो वाता इह वान्तु भूमौ।
यमोदनं पचतो देवते इह तन्नस्तप उत सत्यं च वेत्तु ॥ १२ ॥
यद्यत् कृष्णः शकुन एह गत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद।
यद्वा दास्यार्द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भतापः ॥ १३ ॥
अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः।
आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ मा दम्पती पौत्रमघं नि गाताम्॥१
वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः।
स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वाञ्जयेम ॥१
सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन् य एषां ज्योतिष्माँ उत यश्चकर्श
त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्त्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष लोकम् ॥१६।
स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम।
गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥१
ग्राहिं पाप्मानमति ताँ अयाम तमो व्यस्य प्र वदासि वल्गु।
वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीर्मा तण्डुलं वि शरीर्देवयन्तम्॥१

विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ।
वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं तुषं पलावानप तद् विनक्तु ॥ १९ ॥
त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्यन्तरिक्षम् ।
अंशून् गृभीत्वान्वारभेथामा प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ॥२०॥

यह वरणीय, अखण्डनीया पृथिवी अटल है, विराट् है, यह हमारे लिये सुख देने वाली हो । हमारे पुत्रों का मंगल करे और नियुक्त रक्षक के समान यह इस पके हुए ओदन की रक्षा करे ॥ ११ ॥ हे पृथिवी ! जैसे पिता अपने पुत्रों का आलिंगन करता है, वैसे ही तुम इस ओदन का आलिंगन करो । यहाँ मंगलमय वायु प्रवाहित हो । तुम हमारे ओदन को तपाओ और हमारे यथार्थ संकल्प को जानो ॥ १२ ॥ काक ने कपट पूर्वक इसमें बिल बनाया हो अथवा दासी ने भीगे हुए हाथ से मूसल उलूखल का स्पर्श किया हो तो यह जल मंगल करने वाला हो ॥ १३ ॥ यह दृढ़ पाषाण हवि धारक है, यह पवित्र द्वारा शुद्ध होकर राक्षसों को नष्ट करे । हे ओदन ! तू धर्म पर आता हुआ कल्याणप्रद हो । इन दम्पति को इनके पौत्र सहित पाप न छू पावे ॥१४॥ यह राक्षसों और पिशाचों को रोकता हुआ वनस्पति देवताओं सहित हमको प्राप्त हुआ । यह उच्च स्वर वाला हमको सब लोकों पर विजय प्राप्त कराने वाला बनावे ॥ १५ ॥ इन धान्यों में जो धवला परन्तु अधिक दमकता हुआ है, ऐसे सात चावलों को पशु के समान लोगों ने ग्रहण किया है । यह तैंतीस देवताओं द्वारा सेवनीय है । यह ओदन हमको स्वर्ग में पहुँचावे ॥ १६ ॥ हे ओदन ! तू हमें स्वर्ग लिये जा रहा है, वहाँ हम स्त्री-पुरुषों सहित प्रकट हों । पाप देवता निर्ऋति और शत्रु वहाँ हमको वशीभूत न करें इस लिये तू मेरा अनुगमन कर मैं तेरे हाथ को पकड़ रहा हूँ ॥ १७ ॥ हे वनस्पते ! पाप से उत्पन्न शोक रूप तम को दूर करता हुआ तू मधुर शब्द कहता है । हम अपने पापों से पार हों । यह वानस्पत्य मेरी, और मुझे देवमार्ग प्राप्त कराने वाले चावल की भी हिंसा न करे ॥ १८ ॥ हे ओदन ! तू घृतपृष्ठ हुआ परलोक में हमारे साथ प्रकट होने को हमारे पास आ और वर्षा ऋतु में प्रवृद्ध उत्पन्न

वाले सूप को प्राप्त हो। वह तुमसे तुष को पृथक् करे। तू मन्त्र के द्वारा सत्कार करने योग्य है ॥ १९ ॥ आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनों लोकों को ब्राह्मण प्राप्त कराता है। हे दम्पति! तुम चावलों को फटकना प्रारम्भ करो। यह धान भी उछलते हुए सूप को प्राप्त हों ॥ २० ॥

पृथग् रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवसि सं समृद्ध्या।
एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलगइव वस्त्रा ॥२१॥
पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता त एषा।
यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन तेन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद् वपामि ॥२२
जनित्रीव प्रति हर्यासि सूनुं सं त्वा दधामि पृथिवीं पृथिव्या।
उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता ॥ २३ ॥
अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्तादिन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान्।
वरुणस्त्वा दृंहाद्धरुणे प्रतीच्या उत्तरात् त्वा सोमः सं ददातै ॥२४॥
पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्राद् दिवं च यन्ति पृथिवीं च लोकान्।
ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः पात्र आसिक्ताः पर्यग्निरिन्धाम् ॥२५॥
आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम्।
शुद्धाः सतीस्ता उ शुम्भन्त एव ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु ॥२६॥
उतेव प्रभ्वीरुत संमितास उत शुक्राः शुचयश्चामृतासः।
ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टा आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः ॥२७॥
संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः।
असंख्याता ओप्यमानाः सुवर्णाः सर्वं व्यापुः शुचयः शुचित्वम् ॥२८॥
उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः फेनमस्यन्ति बहुलांश्च बिन्दून्।
योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियायैतैस्तण्डुलैर्भवता समापः ॥ २९ ॥
उत्थापय सीदतो बुध्न एनानद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम्।
अमासि पात्रैरुदकं यदेतन्मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥३०॥

पशु विभिन्न रूप वाले होते हैं, परन्तु तू एक ही रूप वाला है। तू पाषाण के द्वारा अपनी भूसी का त्याग कर ॥ २१ ॥ हे मूसल! तू पृथिवी का बना है, इस लिए पृथिवी ही है। पृथिवी का और मेरा देह एक सा ही है। इस लिए मैं पृथिवी को ही पृथिवी पर मार रहा हूँ। हे ओदन! मूसल को प्राप्त होने से तेरे अङ्ग में जो पीड़ा हो रही है, उससे तू तुष से पृथक होकर छूट जा। मैं तुझे मंत्र द्वारा अग्नि में अर्पित करता हूँ ॥ २२ ॥ माता जैसे अपने पुत्र को प्राप्त करती है वैसे ही मैं तुझ मूसल रूप पृथिवी को पृथिवी से मिलाता हूँ। वेदी में भी ओखली रूप कुम्भी है, इस लिए व्यथित न हो। तू यज्ञ के आयुधों द्वारा घृत से युक्त की जा चुकी है ॥ २३ ॥ अग्नि पचन कर्म में तेरे रक्षक हों। इन्द्र पूर्व से, मरुद्गण दक्षिण से, वरुण पश्चिम से और सोम उत्तर दिशा की ओर से तेरी रक्षा करने वाले हों ॥२४॥ पुण्य कर्मों द्वारा शुद्ध हुए जल शुद्ध करने वाले हैं। वे मेघ द्वारा द्यौ में जाते और फिर पृथिवी में आकर मनुष्यों को प्राप्त होते हैं। प्राणों को सुखी करने वाले पात्र में यह स्थित होते हैं। अग्नि इन आसिक्त होने वाले जलों को सब ओर से दीप्त करे ॥ २५ ॥ द्यौ से आने वाले यह जल पृथिवी की सेवा करते हैं और पृथिवी से पुनः अन्तरिक्ष में पहुँचते हैं। यह पवित्र जल पवित्रताप्रद हैं, यह हमको भी स्वर्ग की प्राप्ति करावें ॥ २६ ॥ यह जल श्वेत रंग वाले, दमकते हुए, अमृत के समान, प्रभु रूप हैं। हे जलो! इस दम्पत्ति द्वारा डाले जाने पर ओदन को ओपते हुए पकाओ ॥ २७ ॥ प्राणापान के समान स्वरूप जल औषधियों से युक्त पृथिवी का सेवन करते हैं और शोभन पर्व वाले जीवों में प्रविष्ट असंख्य जल शुद्धता देते हुए सब में व्याप्त होते हैं ॥ २८ ॥ ताप देने पर यह जल शब्द करते, फेन और बूँदों को उछाते हुए गुड़-सा करते हैं। हे जलो! जैसे पति को देख कर स्त्री उससे युक्त होती है, वैसे ही तुम ऋतु में होने वाले यज्ञ के निमित्त चावलों में मिश्रित होओ ॥ २९ ॥ हे ओदन की अधिष्ठात्री देवि! मूसल की जड़ में स्थित होते इन चावलों को उठाओ। यह जल से मिलें। हे यजमान! तू जल को पात्रों द्वारा नाप रहा है, इधर यह चावल भी नप गए हैं, इन्हें जल में डालने की अनुज्ञा प्रदान कर ॥३०॥

प्र यच्छ पशुं त्वरया हरौषमहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।
यासां सोमः परि राज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥ ३१ ॥
नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत प्रियं हृदश्चक्षुषो वल्गवस्तु ।
तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्त्विमं प्राश्नन्त्वृतुभिर्निषद्य ॥ ३२ ॥
वनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिरग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः ।
त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ॥३३॥
षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् स्वः पक्वेनाभ्यश्नवातै ।
उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः ॥३४॥
धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु ।
तं त्वा दम्पती जीवन्तौ जीवपुत्रावुद् वासयातः पर्यग्निधानात् ॥३५॥
सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान् यावन्तः कामाः समतीतृपस्तान् ।
वि गाहेथामायवनं च दर्विरेकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ॥३६॥
उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद् घृतेन पात्रमभि घारयैतत् ।
वाश्रेवोस्रा तरुणं स्तनस्युमिमं देवासो अभिहिङ्कृणोत ॥३७॥
उपास्तरीरकरो लोकमेतमुरुः प्रथतामसमः स्वर्गः ।
तस्मिञ्छ्रयातै महिषः सुपर्णो देवा एनं देवताभ्यः प्र यच्छान् ॥३८॥
यद्यज्जाया पचति त्वत् परःपरः पतिर्वा जाये त्वत् तिरः ।
सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु संपादयन्तौ सह लोकमेकम् ॥३९॥
यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत् पुत्राः परि ये संबभूवुः ।
सर्वांस्तां उप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानाः शिशवः समायान् ॥४०॥

कलछे को चलाओ। जो पक चुके हैं उन्हें ले लो। यह किसी की हिंसा न करते हुए प्रत्येक पर्व में औषधि रूप फल को करें। जिन लताओं का राजा सोम है, वे लताएं क्षोभ करने वाली न हों ॥ ३१ ॥ ओदन के लिए नई कुशाएं फैला दो। यह कुशा का आसन हृदय और नेत्रों को

सुन्दर लगे। देवता उस पर अपनी शक्तियों सहित विराजमान होते हुए इस ओदन का सेवन करें ॥ ३२ ॥ हे वनस्पते ! कुशा बिछादी हैं, तुम बैठो। देवताओं ने तुम्हें अग्निष्टोम के सदृश समझा है। स्वधिति ने त्वष्टा के समान इसे शोभन रूप दिया है, वह अब पात्रों में दिखाई देता है ॥ ३३ ॥ इस निधि का रक्षक यजमान इस पक्व ओदन भक्ष्य का फल स्वर्ग में साठ वर्ष पश्चात् पावे। हे यज्ञ के अभिमानी देवता ! इस यजमान को स्वर्ग प्राप्त कराते हुए इसके पितर, पुत्र आदि को भी इसके पास रखो ॥ ३४ ॥ हे ओदन ! तू धारण करने वाला है इस लिए भूमि के धारक स्थान में प्रतिष्ठित हो। तुझ अच्युत को देवता च्युत न करें। तुझे जीवित पुत्रों वाले जीवित दम्पति अग्निधान के द्वारा पुष्ट करें ॥ ३५ ॥ तू सब लोकों पर विजय प्राप्त करता हुआ था। सभी इच्छाओं को भले प्रकार तृप्त कर। दम्पति कलछी को घुमाते हुए ओदन को निकाल कर पात्र में स्थित करें ॥३६॥ तुम इसे परोस कर फैलाया-सा करो, इसमें घृत डालो। हे देवगण ! दूध पीने वाले बछड़े को देख कर पयस्वती गौएं उसकी ओर शब्द करती हैं, वैसे ही इस तैयार ओदन की ओर शब्द करो ॥ ३७ ॥ हे यजमान ! ओदन परोस कर तूने इस लोक को फल युक्त कर लिया। इसके प्रभाव से स्वर्ग में यही ओदन अधिक बढ़ा हुआ प्राप्त हो। हे दम्पति ! यह सुन्दर महिमा वाला गमनशील ओदन तुम्हें स्वर्ग में वास दिलावे। देवता इस यजमान को देवताओं के पास पहुँचावें ॥ ३८ ॥ हे जाये ! तू इस ओदन को पकाती है। तू अपने पति से पहले चली जाय तो स्वर्ग में तुम दोनों मिल जाना। तुम एक ही लोक में रहो और वहाँ यह ओदन भी तुम्हारे साथ रहे ॥ ३९ ॥ इस स्त्री के सब पुत्रों को इन्द्र यज्ञ के रक्षक पुत्रात्मा के पालक अपनी नाभि को जानते हुए यहाँ लावें ॥४०॥

यशोर्वा धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः।
सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात्॥
निधिं निधिपा अभ्येनमिच्छादनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गस्त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गानरुक्षत्।

अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ॥४३
आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि ।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ॥४४॥
इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप ।
आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र॥४५
सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् ।
मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत्सृजता पुरा मत् ॥४६
अहं पचाम्यहं ददामि ममेदु कर्मन् करुणेऽधि जाया ।
कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रोन्वारभेथां वय उत्तरावत् ॥४७॥
न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममान एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ॥४
प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।
धेनुरनड्वान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ॥४९॥
समग्नयो विदुरन्यो अन्यं य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून् ।
यावन्तो देवा दिव्यातपन्ति हिरण्यं ज्योतिः पचतो बभूव ॥५०॥

वासक ओदन की मधु द्वारा मोटी हुई धारें घृत से भी युक्त हैं। ये अमृत की धाती रूप हैं, स्वर्ग में ये रुकी रहती हैं। निधि का रक्षक उसकी साठ वर्ष पश्चात् इच्छा करे ॥ ४१ ॥ यजमान इस निधि की कामना करे। हमारे द्वारा प्रदत्त धरोहर रूप वाला ओदन स्वर्गगामी होता हुआ अपने तीनों कांडों सहित स्वर्गारोही हो ॥ ४२ ॥ मेरे कर्म-फल में बाधक राक्षसों को अग्निदेव व्यथित करें। क्रव्याद् और पिशाच हमको न चूसें हम इस राक्षस को यहाँ आने से रोकते हुए भगाते हैं। आंगिरस और सू[र्य] इसे वश करें ॥ ४३ ॥ अङ्गिराओं और आदित्यों के लिए इस घृत युक्त म[धु] को प्रस्तुत करता हूँ। ब्राह्मण के पवित्र हाथ स्वर्ग में फल रूप से जाने वा[ले]

इसे स्वर्ग में पहुँचावें ॥ ४४ ॥ प्रजापति ने जिस स्थमान काण्ड द्वारा फल प्राप्त किया था, मैंने भी उस उत्तम काण्ड को प्राप्त किया है। इसे घृत से सींचो, यह घृत युक्त भाग हम अङ्गिरा ऋषियों का ही है ॥ ४५ ॥ सत्य के निमित्त इस ओदन रूप धरोहर को हम देवताओं को सौंपते हैं। परस्पर कर्म के आदान-प्रदान रूप द्यूत में और समिति में भी यह हमसे पृथक न हो। इसे अन्य पुरुषों के लिए मत करो ॥ ४६ ॥ पाक क्रिया करने वाला मैं ही इसे दानादि रूपों में कर रहा हूँ। हे यज्ञात्मक कर्म ! इस कार्य में मेरी पत्नी लगी है। हमारे यहाँ सुन्दर कुमारावस्था वाला पुत्र है। हम इस उत्तम यज्ञान्न का पाक और दान आदि कर्मों को करते हैं ॥ ४७ ॥ इस कर्म में कोई हेर फेर नहीं है, इसका कोई अन्य आधार भी नहीं है, यह अपने मित्रों सहित नापता हुआ भी नहीं आता। यह जो पूर्ण पात्र रखा गया है, वही पकाने वाले को फिर मिल जाता है ॥ ४८ ॥ हे यजमान ! प्रिय से भी प्रिय फल वाले कर्म को हम तेरे निमित्त करते हैं। तेरे द्वेषी पुरुष नर्क रूप तम को पावें। गौ, वृषभ, अश्व, आयु और पुरुषार्थ यह हमारे पास आते हुए, अपमृत्यु आदि को दूर भगावें ॥ ४९ ॥ औषधियों का भक्षक अग्नि और जलों का सेवनकर्त्ता अग्नि अन्योन्य को जानने वाले हैं। यह और अन्य अग्नि भी इस कर्म के ज्ञाता हैं। देवताओं के तप और सुवर्ण तथा अन्य चमचमाते हुए पदार्थ पाककर्त्ता को मिलते हैं ॥५०॥

एषा त्वचां पुरुषे सं बभूवानग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये ।
क्षत्रेणात्मानं परि धापयाथोऽमोतं वासो मुखमोदनस्य ॥५१॥
यदक्षेषु वदा यत् समित्यां यद्वा वदा अनृतं वित्तकाम्या ।
समानं तन्तुमभि संवसानो तस्मिन्त्सर्वं शमलं सादयाथः ॥५२॥
वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवांस्त्वचो धूमं पर्युत्पातयासि ।
विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ॥५३॥
तन्वं स्वर्गो बहुधा वि चक्रे यथा विद आत्मन्नन्यवर्णाम् ।
अपाजैत् कृष्णां रुशतीं पुनानो या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि ॥५४॥

प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५५ ॥

दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५६ ॥

प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५७ ॥

उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५८ ॥

ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र
ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५९ ॥

ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।

दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह सं भवेम ॥ ६० ॥

यह पशु चर्म से आच्छादित दिखाई पड़ते हैं, इनकी त्वचा पहिले पुरुष में थी। हे दम्पति ! यज्ञ शक्ति से तुम अपने को सम्पन्न करो और इस ओदन के मुख को वस्त्र से ढक दो ॥ ५१ ॥ द्यूत कर्म में अथवा युद्ध में धन की अभिलाषा से जो तुमने मिथ्या भाषण किया है, अतः समान तन्तुओं से निर्मित वस्त्र को ढकते हुए अपने दोष को उसमें प्रविष्ट करो ॥ ५२ ॥ तू जल की वर्षा करने वाला हो। तू देवताओं के पास जाकर अपनी त्वचा को धुँए के समान उड़ाव। तू पुनपश होता हुआ अनेक प्रकार से पूजित होता हुआ, समान उत्पत्ति वाला बन कर इस पुरुष को स्वर्ग में प्राप्त हो ॥ ५३ ॥ यह ओदन स्वर्ग में अपने को अनेक आकार का बना लेने में समर्थ होता है। जैसे आत्मा प्राणों को अनेक प्रकृति का बना लेता है और कृष्णा रशाओं को शुद्ध करता जाता है, वैसे ही मैं ठेरे रूप का अग्नि में होम करता हूँ ॥ ५४ ॥ हम तुझे पूर्व दिशा, अग्नि, असित सर्प और आदित्य को देते हैं। तुम हमारे यहाँ से जाने तक इसकी रक्षा करो। इसे वृद्धावस्था तक हम को भाग्य रूप में प्राप्त कराओ। हमारी वृद्धावस्था ही इसे मृत्यु दे। हम इस पके हुए ओदन सहित स्वर्गवासी होते हुए आनन्द को प्राप्त करें ॥५५॥ हम तुझे दक्षिण दिशा, इन्द्र, तिरश्चिराजि और यम को देते हैं। तुम हमारे यहाँ से जाने तक इसकी रक्षा करो। इसे वृद्धावस्था तक भाग्य रूप में हमें प्राप्त कराओ। हमारी वृद्धावस्था ही इसे मृत्यु दे। इस पके हुए ओदन सहित हम स्वर्ग के आनंद प्राप्त करें ॥५६॥ हम तुझे पश्चिम दिशा, वरुण, पृदाकु सर्प और अन्न को देते हैं। तुम हमारे यहाँ से प्रस्थान करने तक इसकी रक्षा करो। इसे वृद्धावस्था तक भाग्य रूप में हमें प्राप्त कराओ। हमारा बुढ़ापा ही इसे मृत्यु दे और मरने पर पके हुए इस ओदन सहित स्वर्ग में जाकर हम आनंद प्राप्त करें ॥ ५७ ॥ हम तुझे उत्तर दिशा, सोम, स्वज नामक सर्प और अशनि को देते हैं। तुम हमारे यहाँ से प्रस्थान करने तक इसकी रक्षा करो। इसे वृद्धावस्था तक सौभाग्य रूप में हमें प्राप्त कराओ।

हमारा बुढ़ापा ही इसे मृत्यु दे । मरने पर हम इस पके हुए ओदन के साथ स्वर्ग में जाकर आनंद प्राप्त करें ॥ ५८ ॥ हम तुझे ध्रुव दिशा, विष्णु, कल्माष ग्रीव सर्प और इषुमती औषधियों को देते हैं । तुम हमारे यहाँ से प्रस्थान करने तक इसकी रक्षा करो । इसे वृद्धावस्था तक सौभाग्य रूप में हमें प्राप्त कराओ । हमारा बुढ़ापा ही इसे मृत्यु प्रदान करे । मरने पर हम इस सुपक्व ओदन सहित स्वर्ग में पहुँच कर आनन्द प्राप्त करें ॥ ५९ ॥ हम तुझे ऊर्ध्व दिशा बृहस्पति, श्वित्र सर्प और इषुमान् वर्ष को देते हैं । हमारे यहाँ से प्रस्थान करने तक तुम इसकी रक्षा करो । इसे वृद्धावस्था तक सौभाग्य रूप में प्राप्त कराओ । हमारी वृद्धावस्था ही इसे मृत्यु दे । मरने पर हम इस सुपक्व ओदन सहित स्वर्गगामी हों और वहाँ आनंद भोगें ॥६०॥

४ सूक्त [चौथा अनुवाक]

(ऋषि—कश्यपः । देवता—वशा । छन्द—अनुष्टुप्)

ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत ।
वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस्तत् प्रजावदपत्यवत् ॥ १ ॥
प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति ।
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ॥ २ ॥
कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति ।
बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥ ३ ॥
विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम् ।
तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्युच्यसे ॥ ४ ॥
पदोरस्या अधिष्ठानाद् विक्लिन्दुर्नाम विन्दति ।
अनामनात् सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ॥ ५ ॥
यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते ।
लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम् ॥ ६ ॥
यदस्याः कस्मै चिद् भोगाय बालान् कश्चित् प्रकृन्तति ।

ततः किशोरा म्रियन्ते वत्साश्च घातुको वृकः ॥ ७ ॥
यदस्या गोपनी मत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत् ।
ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ॥ ८ ॥
यदस्याः पल्पूलनं शकृद् दासी समस्यति ।
ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्येष्यदेनसः ॥ ९ ॥
जायमानाभि जायते देवान्त्सब्राह्मणान् वशा ।
तस्माद् ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनम् ॥१०॥

माँगने वाले ब्राह्मणों को 'देता हूँ' कह कर उत्तर दे, फिर वह ब्राह्मण कहते हैं कि यह कर्म यजमान को सन्तानादि से सम्पन्न करने वाला हो ॥१॥ जो पुरुष ऋषि आदि पुत्र मांगने वाले ब्राह्मणों को देवताओं के निमित्त गोदान नहीं करता वह अपनी संतान का विक्रय करने वाला होता हुआ पशु-रहित हो जाता है ॥ २ ॥ वशा के कूटा (सींग रहित) नामक अङ्ग से अदानी के पदार्थ नष्ट हो जाते हैं अदानी श्लोणा (लंगड़ी) में 'काट' को पीड़ित करता है। बण्डा (विकल) में इसके गृह का दाह होता और काणा (एक आँख वाला) में धन चला जाता है ॥ ३ ॥ हे वशे ! तू शुरक्ष्मा कहाती है। गौ के स्वामी को वशा के अधिष्ठान में विलोहित शस्त्र और सम्बिध मिलता है ॥ ४ ॥ गौ के स्वामी को वशा के पाँवों के अधिष्ठान से विक्लिन्दु नाम की विपत्ति मिलती है। उसके सूँघने मात्र से बिना जाने ही इसके पदार्थ नष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥ इसके कानों का आक्षवण (दुख देना) करने वाला देवताओं में काटा जाता है। जो अपने को लक्ष्म (चिह्न) करने वाला मानता है वह अपने को छोटा बना लेता है ॥ ६ ॥ किसी भोग के निमित्त इसके बालों को काटता है तो इसके युवा पुत्र मृत्यु को प्राप्त होते हैं और भेड़िया इसके बछड़ों का संहार करता है ॥ ७ ॥ गौ के स्वामी की उपस्थिति में यदि गौ के लोम को कौआ अपमानित करता है तो इसके पुत्र नष्ट होते हैं और क्षय रोग प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ यदि इसके गोबर आदि को दासी फेंकती है तो पुरुष उस पाप से नहीं छूटता और कुरूप हो जाता है (

६ ॥ वशा देवताओं और ब्राह्मणों के लिए ही प्रकट होती है, इस लि
ब्राह्मणों को दान देना ही अपना रक्षण करना है ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥१०

य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा ।
ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां निप्रियायते ॥ ११ ॥
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ।
आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥ १२ ॥
यो अस्य स्याद् वशाभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः ।
हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति ॥ १३ ॥
यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।
तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ॥ १४ ॥
स्वमेतदच्छायन्ति यद् वशां ब्राह्मणा अभि ।
यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् ॥ १५ ॥
चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती ।
वशां च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः ॥ १६ ॥
य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम् ।
उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥ १७ ॥
यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत ।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद् वशाम् ॥ १८ ॥
दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति ।
नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्वा चिकीर्षति ॥ १९ ॥
देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः ॥ २० ॥

जो इसे परमप्रिय समझते हुए इसकी सेवा करते हैं उनके लिए य
ब्रह्मज्या होती है, यह विद्वानों का कथन है ॥ ११ ॥ जो पुरुष देवताओं क

गाय को ऋषि प्रवर युक्त ब्राह्मणों को नहीं देना चाहता, वह ब्रह्म-कोप के कारण देवताओं द्वारा नाश को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ यदि वशा इसके लिए उपभोग्य हो तो यह अन्य की कामना करे। जो पुरुष याचक को वशा नहीं देता तो यह अप्रदत्त वशा उसे नष्ट कर देती है ॥ १३ ॥ धरोहर के समान ही वशा ब्राह्मणों की होती है। वह चाहे जिसके घर प्रकट हो जाय, यह ब्राह्मण उसके सामने जाकर उसे मांगते हैं ॥ १४ ॥ वशा के सामने आने वाले ब्राह्मण अपने ही धन के सामने आते हैं। इन्हें वर्जित करना अपने ही को हानि पहुंचाने वाला है ॥ १५ ॥ हे नारद ! यह धेनु अविज्ञात गदा रूप में तीन वर्ष तक भक्षण करे फिर इस धेनु को वशा जानता हुआ ब्राह्मणों की खोज करे ॥ १६ ॥ इस देवताओं की धरोहर रूप वशा को जो अवशा कहता है, वह भव और शर्व के बाणों का लक्ष्य होता है ॥ १७ ॥ जो इसके स्तनों और पैरों को न जानता हुआ वशा का दान करता है तो यह उसे दोनों से फल देने वाली होती है ॥ १८ ॥ जो इसे माँगने पर भी नहीं देता है तो दुरदम्न दशा उसे जकड़ती है। जो इसे अपने पास ही रखना चाहता है उसके अभीष्ट पूर्ण नहीं होते ॥ १९ ॥ ब्राह्मण का मुख बना कर देवता वशा माँगते हैं, न देने वाला मनुष्य उनके क्रोध का लक्ष्य होता है ॥२०॥

हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद् वशाम् ।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते ॥ २१ ॥
यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥ २२ ॥
य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद् वशाम् ।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥ २३ ॥
देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत ।
तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥ २४ ॥
अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥ २५ ॥

अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ॥ २६ ॥
यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम् ।
चरेदस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ॥ २७ ॥
यो अस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत् ।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः ॥ २८ ॥
वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥ २९ ॥
आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति ।
अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याच्ञ्याय कृणुते मनः ॥ ३० ॥

जो पुरुष देवताओं के धरोहर रूप भाग को अपना अत्यन्त प्रिय समझता है, वह ब्राह्मणों को वशादान न करने के कारण पशुओं का क्रोध प्राप्त करता है ॥ २१ ॥ गौ के स्वामी से चाहे अन्य सैंकड़ों ब्राह्मण वशा माँगें, परन्तु वशा विद्वान् की ही होती है—ऐसी देवोक्ति है ॥ २२ ॥ जो पुरुष विद्वान् को गौ न देता हुआ, अन्य को देता है उसके लिए पृथिवी देवताओं सहित दुर्गम होती है ॥ २३ ॥ जिसके सामने वशा प्रकट होती है, देवता उससे वशा माँगते हैं। यह जान कर नारद भी देवताओं सहित वहाँ पहुंच गए ॥ २४ ॥ ब्राह्मणों द्वारा माँगी गई वशा को जो पुरुष अत्यन्त प्रिय मानता हुआ नहीं देता तो वही वशा उसे संतान-हीन और अल्प पशुओं वाला कर देती है ॥ २५ ॥ ब्राह्मण अग्नि के लिए, सोम, काम और मित्रा-वरुण के लिए माँगते हैं। वशा न देने पर उसे ही काटते हैं ॥ २६ ॥ गौ का स्वामी जब तक गौ के सम्बन्ध में कोई संकल्प न करे तब तक उसकी गौओं में विचरे, फिर उसके घर में वास न करे ॥ २७ ॥ जो संकल्प रूप वाणी के पश्चात् भी अपनी गौओं में विचरण करता है, वह देवताओं का अपमान करने वाला उनके ही द्वारा अपनी आयु और ऐश्वर्य को नष्ट करता है ॥ २८ ॥ देवताओं की निधि रूप वशा अनेक प्रकार विचरण करती हुई

जब स्थान को नष्ट करना चाहती है तब विभिन्न रूपों को प्रकट करती है ॥ ३१ ॥ जब वह अपने स्थान का नाश करने की इच्छा करती है तब वह ब्राह्मणों द्वारा माँगे जाने की इच्छा करती हुई अनेक रूप प्रकट करती है ॥३ ॥

मनसा सं कल्पयति तद् देवाँ अपि गच्छति ।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ।। ३१ ॥
स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः ।
दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गच्छति ॥ ३२ ॥
वशा माता राजन्यस्य वशा संभूतमग्रशः ।
तस्या आहुरनर्पणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।। ३३ ॥
यथाज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत् स्रुचो अग्नये ।
एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चतेऽददत् ॥ ३४ ॥
पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति ।
सास्मै सर्वान् कामान् वशा प्रददुषे दुहे ॥ ३५ ॥
सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे ।
अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥ ३६ ॥
प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा ।
वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ॥ ३७ ॥
यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम् ।
अप्यस्य पुत्रान् पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः ॥ ३८ ॥
महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि ।
अथो ह गोपतये वशाददुषे विषं दुहे ॥ ३९ ॥
प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।
अथो वशायास्तत् प्रियं यद् देवत्रा हविः स्यात् ॥ ४० ॥

यह जब इच्छा करती है तो उसकी इच्छा देवताओं के पास जाती

है, तब ब्राह्मण वशा को माँगने के लिए उसके पास आते हैं ॥ ३१ ॥ पितरों के लिए स्वधा करने से, देवताओं के लिए यज्ञ करने से और वशा-दान से क्षत्रिय माता का क्रोध नहीं पाता ॥ ३२ ॥ राजन्य की माता वशा है, इनका समूह पहले प्रकट हुआ था। ब्राह्मणों को दान करने से पहिले उसे अनर्पण कहते हैं ॥ ३३ ॥ ग्रहण किया घृत जैसे स्रुवा से अग्नि के लिए पृथक् होता है, वैसे ही ब्राह्मणों को वशा न देने वाला, अग्नि के लिए पृथक् होता है ॥ ३४ ॥ इस लोक में सुन्दरता से दुहाने वाली वशा इस यजमान के पास रहती है और दाता के सब अभीष्टों को प्रदान करती है ॥ ३५ ॥ यम के राज्य में यह वशा दाता की सब कामनाओं को देने वाली है और याचित वशा के न देने पर विद्वज्जन नरक-प्राप्ति की बात कहते हैं ॥ ३६ ॥ क्रोध में भरी हुई वशा गोपति को खाती हुई-सी घूमती है। वह कहती है कि मुझ गर्भघातिनी को अपनी जानने वाला मूर्ख मृत्यु के बन्धनों में पड़े ॥ ३७ ॥ जो गर्भघातिनी वशा को अपनी मानता या उसका पचन करता है, बृहस्पति उसके पुत्र, पौत्रादि को लेने की इच्छा करते हैं ॥ ३८ ॥ यह वशा अन्य गौओं में ताप बढ़ाती हुई घूमती है। यदि स्वामी इसका दान नहीं करता तो यह उसके लिए विष का दोहन करती है ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणों को वशा दे देने पर पशुओं का प्रिय होता है। वशा का भी वह प्रिय होता है। वह देवताओं में हवि रूप से प्रदान की जाती है ॥ ४० ॥

या वशा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य ।
तासां विलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः ॥ ४१ ॥

तां देवा अमीमांसन्त वशेयामवशेति ।
तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति ॥ ४२ ॥
कति नु वशा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजाः ।
तास्त्वा पृच्छामि विद्वांसं कस्या नाश्नीयादब्राह्मणः ॥ ४३ ॥
विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥४४॥

नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा ।
कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत् ॥ ४५ ॥
विलिप्ती या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥ ४६ ॥
नमो वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा ।
ताः प्र यच्छेद् ब्रह्मभ्यः सोऽनाव्रस्कः प्रजापतौ ॥ ४७ ॥
एतद् वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः ।
वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ॥ ४८ ॥
देवा वशां पर्यवदन् न नोऽदादिति हीडिताः ।
एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद् वै स पराभवत् ॥ ४९ ॥
उतैनां भेदो नाददाद् वशामिन्द्रेण याचितः ।
तस्मात् तं देवा आगसोऽवृश्चन्नहमुत्तरे ॥ ५० ॥
ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः ।
इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या ॥ ५१ ॥
ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति ।
रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परि यन्त्यचित्त्या ॥ ५२ ॥
यदि हुतां यद्यहुताममा च पचते वशाम् ।
देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा जिह्मो लोकान्निर्ऋच्छति ॥ ५३ ॥

यज्ञ से आकर देवताओं ने वशा को बनाया। नारद ने तब विलिप्ती भीमा को स्वीकार किया ॥ ४१ ॥ उस समय देवताओं ने कहा कि यह वशा अवशा है। परन्तु नारद ने उसे वशाओं में परमवशा बताया ॥ ४२ ॥ हे नारद ! तुम ऐसी कितनी वशाओं के ज्ञाता हो जो मनुष्यों में प्रकट होती हैं ? विद्वान् होने के कारण ही तुमसे पूछता हूँ । अब्राह्मण किसके प्राशन से बचे ? ॥४३॥ हे बृहस्पते ! जो अब्राह्मण ऐश्वर्य चाहे वह विलिप्ती, सूतवशा और वशा का प्राशन न करे ॥ ४४ ॥ हे नारद ! तुम्हें नमस्कार है।

विद्वान् की स्तुति के अनुकूल ही वशा है। इनमें भयंकर वशा कौन-सी है जिसका दान न करने पर पराजय प्राप्त होती है ॥ ४५ ॥ हे बृहस्पते ! ऐश्वर्य की प्रार्थना वाला अब्राह्मण विलिप्ती, सूतवशा और वशा का प्राशन न करे ॥ ४६ ॥ वशाओं के तीन भेद हैं विलिप्ती, सूतवशा और वशा। इन्हें ब्राह्मणों को दे दे तो वह प्रजापति के लिए क्षोभजनक नहीं होता ॥ ४७ ॥ दान न करने वाले के घर में यदि भीमा वशा है तो उस वशा की याचना करने पर यह मानें कि 'हे ब्राह्मणो ! तुम्हारे लिए यह हवि रूप है' ॥ ४८ ॥ क्रोधित देवताओं ने वशा से कहा कि इसने हमको दान नहीं किया इस लिए यह दान न करने वाला पराजित होता है ॥ ४९ ॥ इन्द्र की प्रार्थना करने पर भी यदि वशा को न दे तो उसके इस पाप के कारण देवता उसे अहंकार में व्याप्त कर मिटा देते हैं ॥ ५० ॥ जो वशा का दान न करने को कहते हैं वे मूर्ख इन्द्र के क्रोध से स्वयं को नष्ट करते हैं ॥ ५१ ॥ जो लोग गौ के स्वामी से न देने को कहते हैं वे मूर्ख रुद्र के आयुध के लक्ष्य होते हैं ॥ ५२ ॥ हुत या अहुत वशा का पचन करने वाला देवता और ब्राह्मणों का अपमान करने वाला होता है। वह इस लोक में बुरी गति को पाता है ॥ ५३ ॥

५ (१) सूक्त [पाँचवाँ अनुवाक]

(ऋषि-कश्यपः। देवता-ब्रह्मगवी। छन्द-अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्; पङ्क्तिः; उष्णिक्)

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तऋते श्रिता ॥ १ ॥
सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ॥ २ ॥
स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे-
प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥ ३ ॥
ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणोऽधिपतिः ॥ ४ ॥
तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥ ५ ॥
अप क्रामति सूनृता वीर्यं पुण्या लक्ष्मीः ॥ ६ ॥

तप के द्वारा रची हुई परब्रह्म में आश्रित इस धेनु को ब्राह्मण ने श्रम

से प्राप्त किया ॥ १ ॥ यह सत्य, सम्पत्ति और यश से परिपूर्ण रहती है ॥ २ ॥ यह श्रद्धा से 'पर्यू'ढ,' स्वधा से परिहित, दीक्षा द्वारा रक्षित तथा यज्ञ से प्रतिष्ठित रहती है। इसकी ओर क्षत्रिय का दृष्टिपात करना मृत्यु के समान है ॥ ३ ॥ इसके द्वारा ब्रह्मपद मिलता है। इस गौ का स्वामी ब्राह्मण ही है ॥ ४ ॥ ब्राह्मण की ऐसी गौ के अपहरणकर्त्ता और ब्राह्मण को व्यथित करने वाले क्षत्रिय की लक्ष्मी, वीर्य और प्रिय वाणी पलायन कर जाती है ॥ ५-६ ॥

५ (२) सूक्त

(ऋषि—कश्यपः। देवता—ब्रह्मगवी। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, उष्णिक्, पङ्क्ति)

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥ ७ ॥

ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ॥ ८ ॥

आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥ ९ ॥

पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च ऋतं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥ १० ॥

तानि सर्वाण्यप क्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥ ११ ॥

ओज, तेज, बल, वाणी, इन्द्रियाँ, लक्ष्मी और धर्म ॥७॥ वेद, क्षात्रशक्ति, राष्ट्र, दीप्ति, यश, वर्च और धन ॥ ८ ॥ आयु, रूप, नाम, कीर्ति, प्राणापान, नेत्र और कान ॥ ९ ॥ दूध, रस, अन्न, अग्नि, ऋत, सत्य, इष्ट, पूर्त और प्रजा ॥ १० ॥ उस क्षत्रिय के यह सभी छिन जाते हैं जो ब्राह्मण की गौ का अपहरण कर उसकी आयु को क्षीण करता है ॥ ११ ॥

५ (३) सूक्त

(ऋषि—कश्यपः । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द—गायत्री; अनुष्टुप्; उष्णिक्; जगती; बृहती)

सैषा भीमा ब्रह्मगव्यघविषा साक्षात् कृत्या कूल्वजमावृता ॥१२॥
सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ॥ १३ ॥
सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ॥ १४ ॥
सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्या दीयमाना मृत्योः पड्वीश आ द्यति ॥ १५ ॥
मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥ १६ ॥
तस्माद् वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता ॥ १७ ॥
वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता ॥ १८ ॥
हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवोपेक्षमाणा ॥ १९ ॥
क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥ २० ॥
मृत्युर्हिङ्कृण्वत्युग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥ २१ ॥
सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥२२॥
मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ॥ २३ ॥
सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥ २४ ॥
शरव्या मुखेऽपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ॥ २५ ॥
अघविषा निपतन्ती तमो निपतिता ॥ २६ ॥
अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥२७॥

ब्राह्मण की यह धेनु विकराल होती है, कूल्वज से ढके हुए हिंसात्मक पाप के विष से युक्त होती हुई यह कृत्या रूप हो जाती है ॥ १२ ॥ इसमें सभी विकराल कर्म और मृत्युदायक कारण व्याप्त रहते हैं ॥ १३ ॥ इसमें स प्रकार के क्रूर कर्म और पुरुषों के सब प्रकार के वध व्याप्त रहते हैं ॥ १४

ब्राह्मण से छीनी हुई ऐसी यह गौ ब्राह्मणत्व को अपमानित करने वाले व्यक्ति को मृत्यु के बंधन में बाँध देती है ॥ १५ ॥ जो ब्राह्मण की आयु को न्यून करने वाले के लिए पीयूषामद यह गौ सैकड़ों प्रकार से संहारात्मक वज्र होती है ॥ १६ ॥ इस लिए विद्वान् पुरुष ब्राह्मणों की धेनु को घोर रूप में जाने ॥ १७ ॥ यह अग्नि के समान ऊपर उठती और वज्र के समान दौड़ती है ॥ १८ ॥ यह खुरों का शब्द करती हुई महादेव की आयुध रूप हो जाती है ॥ १९ ॥ यह रंभाती हुई धेनु फड़कती है और तीक्ष्ण वज्र के समान हो जाती है ॥ २० ॥ हिं शब्द करती हुई यह धेनु मृत्यु के समान होती है और सब ओर पूँछ को घुमाती हुई उग्र रूप में हो जाती है ॥ २१ ॥ सब प्रकार से आयु को क्षीण करने वाली यह गौ कानों को हिलाती है। यह अपने मूत्र को त्यागती हुई यक्ष्म की उत्पादिका हो जाती है ॥ २२ ॥ जब दुही जाती है तब मारक अस्त्र के समान होती है और दुही जाने पर फिर रोग रूप वाली हो जाती है ॥ २३ ॥ परामृष्ट होने पर परस्पर युद्ध कराती और पास खड़ी होने पर विरोध करती है ॥ २४ ॥ घोटने पर दुर्गंधिमद तथा मुख ढकने पर विनाश करने वाली होती है ॥ २५ ॥ बैठती हुई यह गौ अपविपा होती है और बैठी हुई मृत्युदायक व्याधि उत्पन्न करती है ॥ २६ ॥ यह ब्राह्मण की गाय, ब्राह्मण की हानि करने वाले का अनुगमन करती हुई उसके प्राणों का वध करती है ॥ २७ ॥

५ (४) सूक्त

(ऋषि—कश्यपः। देवता—ब्रह्मगवी। छन्द—गायत्री; अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्, बृहती, उष्णिक्)

वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यमाना ॥ २८ ॥
देवहेतिर्ह्रियमाणा व्यृद्धिर्हृता ॥ २९ ॥
पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ॥ ३० ॥
विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ॥ ३१ ॥
अघं पच्यमाना दुःष्वप्न्यं पक्वा ॥ ३२ ॥

मूलवर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ॥ ३३ ॥
असंज्ञा गन्धेन शुगुद्धियमाणाशीविष उद्धृता ॥ ३४ ॥
अभूतिरुपह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता ॥ ३५ ॥
शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ॥ ३६ ॥
अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ॥ ३७ ॥
अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च ॥३८॥

यह ब्राह्मण की अपहृत गौ पुत्र पौत्रादि का बटवारा कराती हुई छेदन करने वाली है ॥ २८ ॥ हरण करते समय वह अस्त्र रूप तथा हरण किये जाने पर क्षीण करने वाली होती है ॥ २९ ॥ पाप रूप होने वाली वह धेनु कठोरता उत्पन्न करती है ॥ ३० ॥ प्रयस्यंती विष के समान और प्रयस्ता जीवन को संकट में डालने वाली होती है ॥ ३१ ॥ पचन काल में व्यसनप्रद और पकने पर दुःस्वप्न वाली होती है ॥ ३२ ॥ पर्याक्रियमाणा मूल से उखाड़ देती है और पर्याकृता क्षीण करती है ॥ ३३ ॥ उद्ध्रियमाणा शोक देने वाली होती है, उद्धृता सर्प के समान विष वाली होती है, गन्ध से चैतन्यता को हर लेती है ॥ ३४ ॥ उपहृता पराभूति होती है और उपह्रियमाणा अभूति होती है ॥ ३५ ॥ पिश्यमाना क्रोधित शर्व के समान होती है और पिशित शिमिदा होती है ॥ ३६ ॥ प्राशन की जाती हुई धेनु दरिद्रताप्रद और प्राशन किये जाने पर बुरीगति देने वाली पापदेवी निर्ऋति बन जाती है ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण को हानि पहुँचाने पर ब्राह्मण की धेनु इहलोक और परलोक दोनों से हीन कर देती है ॥ ३८ ॥

५ (५) सूक्त

(ऋषि—कश्यपः । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द—पंक्ति, अनुष्टुप्; बृहती)

तस्या आहननं कृत्या मेनिराशसनं वलग ऊबध्यम् ॥३९॥
अस्वगता परिह्णुता ॥ ४० ॥
अग्निः क्रव्याद् भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यात्ति ॥४१॥

सर्वास्याङ्गा पर्वा मूलानि वृश्चति ॥४२॥
छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ॥४३॥
विवाहां ज्ञातीन्त्सर्वानपि क्षापयति ब्रह्मगवी ब्रह्ज्यस्य
क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ॥ ४४ ॥
अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ॥४५॥
य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादत्ते ॥ ४६ ॥

इस धेनु का आशसन मारणास्त्र है, इसका आहनन कृत्या है और गोबर युक्त आधा पका हुआ पारा शपथ के समान है ॥ ३९ ॥ यह अपहृत धेनु अपने वश में नहीं रहती ॥ ४० ॥ ब्राह्मण की धेनु क्रव्याद् अग्नि बन कर ब्रह्मज्य में प्रविष्ट हो उसे खाती है ॥ ४१ ॥ इसके सब अङ्ग और जोड़ों को छिन्न करती है ॥ ४२ ॥ इसके पिता के बांधवों का भी छेदन करती और माता के बांधवों को अपमानित कराती है ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण की गाय, क्षत्रिय द्वारा न लौटाई जाने पर ब्रह्मज्य के सब विवाहित बंधुओं को नष्ट करती है ॥ ४४ ॥ यह इसे संतानहीन, गृह-हीन करती है यह अपरापरण होकर क्षय को प्राप्त हो जाता है ॥ ४५ ॥ उपरोक्त दशा उस क्षत्रिय की होती है जो विद्वान् ब्राह्मण की गौ का अपहरण कर लेता है ॥ ४६ ॥

५ (६) सूक्त

(ऋषि-कश्यपः । देवता-ब्रह्मगवी । छन्द-अनुष्टुप्; बृहती, उष्णिक्, गायत्री)

क्षिप्रं वै तस्याहनने गृध्राः कुर्वत ऐलवम् ॥ ४७ ॥
क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यन्ति केशिनीराघ्नानाः
पाणिनोरसि कुर्वाणाः पापमैलवम् ॥ ४८ ॥
क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलवम् ॥ ४९ ॥
क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत् तदासी३दिदं नु ता३दिति ॥५०॥
छिन्ध्या च्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ॥ ५१ ॥

आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥ ५२ ॥
वैश्वदेवी ह्यु्च्यसे कृत्या कूल्वजमावृता ॥ ५३ ॥
ओपन्ती समोपन्ती ब्रह्मणो वज्रः ॥ ५४ ॥
क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ॥ ५५ ॥
आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ॥ ५६ ॥
आदाय जीतं जीताय लोकेऽमुष्मिन् प्र यच्छसि ॥ ५७ ॥
अघ्न्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ॥ ५८ ॥
मेनिः शरव्या भवाघादघविषा भव ॥ ५९ ॥
अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥६०॥
त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ॥ ६१ ॥

जो क्षत्रिय उस धेनु को ले जाता है, उसकी नेत्रापत्ति गृद्ध करते हैं ॥ ४७ ॥ उसे भस्म करने वाली चिता के पास केश वाली स्त्रियाँ पहुंच कर उर को कूटती और अश्रुपात करती हैं ॥ ४८ ॥ उसके घरों में शीघ्र ही शृगाल अपने नेत्रों को घुमाते हैं ॥ ४९ ॥ उसके सम्बन्ध में यह कहा जाने लगता है कि उसका यह घर था ॥ ५० ॥ तू इस अपहरणकर्त्ता का छेदन कर और इसे नष्ट कर डाल ॥ ५१ ॥ हे आंगिरसि! तू इस अपहरणकर्त्ता ब्रह्मज्य का नाश कर ॥ ५२ ॥ तू कूल्वज से ढकी हुई विश्वदेवी कृत्या कही जाती है ॥ ५३ ॥ तू मंत्र रूपी वज्र से भले प्रकार नष्ट करने वाली है ॥ ५४ ॥ तू मृत्यु रूप होती हुई दौड़ ॥ ५५ ॥ तू अपहरणकर्त्ता के तेज, कामना, पूर्त और आशीर्वादात्मक शब्दों का हरण करती है ॥ ५६ ॥ उस ब्राह्मण की हानि करने वाले को न्यून आयु करने के लिए पकड़ कर परलोकगामी करती है ॥ ५७ ॥ हे अघ्न्ये! ब्राह्मण के शाप के कारण तू ब्रह्मज्य के पैरों के लिए बेड़ी रूप हो ॥ ५८ ॥ तू अस्त्र रूप बाणों के समूह को प्राप्त होती हुई उसके पाप के कारण अघविषा होजा ॥ ५९ ॥ हे अघ्न्ये! तू उस देवहिंसक अपराधी के कार्य को विफल करने के लिए उसके शिर

को काट डाल ॥ ६० ॥ तेरे द्वारा असूर्ण और मर्दन किए हुए उस पाप चित्त वाले को अग्नि भस्म कर डालें ॥ ६१ ॥

५ (७) सूक्त

(ऋषि—कश्यपः। देवता—ब्रह्मगवी। छन्दः—अनुष्टुप्; गायत्री; पङ्क्तिः; त्रिष्टुप्, उष्णिक्)

वृश्च प्र वृश्च सं वृश्च दह प्र दह सं दह ॥ ६२ ॥
ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्य आ मूलादनुसंदह ॥ ६३ ॥
यथायाद् यमसादनात् पापलोकान् परावतः ॥ ६४ ॥
एवा त्वं देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥६५॥
वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ॥ ६६ ॥
प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि ॥ ६७ ॥
लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय ॥ ६८ ॥
मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह ॥ ६९ ॥
अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि ॥ ७० ॥
सर्वास्याङ्गा पर्वाणि वि श्रथय ॥ ७१ ॥
अग्निरेनं क्रव्यान् पृथिव्या नुदतामुदोषतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिम्णः ॥ ७२ ॥
सूर्य एनं दिवः प्र णुदतां न्योषतु ॥ ७३ ॥

हे अघ्न्ये ! ब्रह्मज्य को काट, भस्म कर, उसे समूल भस्म कर ॥ ६२-६३ ॥ हे अघ्न्ये ! उस अपराधी देव-हिंसक, कार्य में बाधा रूप ब्रह्मज्य के कन्धों को और सिर को भी तीक्ष्ण धार वाले वज्र से काट डाल जिससे यह ब्रह्मज्य दूर के पापलोकों में गमन करे ॥६४-६५-६६-६७॥ इसके रोमों को काट कर चर्म को उधेड़ दे ॥ ६८ ॥ इसके मांस को काट और नसों को सुखा दे ॥ ६९ ॥ इसकी हड्डियों में दाह और मज्जा ं

व्याप्त कर ॥ ७० ॥ इसके अवयवों और जोड़ों को ढीला करदे ॥ ७१ ॥ वायु इसे अन्तरिक्ष और पृथिवी से भी खदेड़ दें और क्रव्याद् अग्नि इसे भस्म करदे ॥ ७२ ॥ सूर्य भी इसे स्वर्ग से धकेल दें और भस्म कर डालें ॥ ७३ ॥

॥ द्वादश काण्डं समाप्तम् ॥

त्रयोदश काण्ड



१ सूक्त [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः, मरुतः, अग्निः, अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः । छन्द-त्रिष्टुप्; जगती; पङ्क्तिः; गायत्री; उष्णिक्, अनुष्टुप्; बृहती)

उदेहि वाजिन् यो अप्स्वन्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत् ।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु ॥१
उद्वाज आ गन् यो अप्स्वन्तर्विश आ रोह त्वद्योनयो याः ।
सोमं दधानोऽप ओषधीर्गाश्चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह ॥२॥
यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
आ वो रोहितः शृणवत् सुदानवस्त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः॥३
रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम् ।
ताभिः संरब्धमन्वविन्दन् षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः ॥४॥
आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहार्षीद् व्यास्थन्मृधो अभयं ते अभूत् ।

तस्मै ते द्यावापृथिवी रेवतीभिः कामं दुहाथामिह शक्वरीभिः ॥५॥
रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान ।
तत्र शिश्रियेऽज एकपादोऽदृंहद् द्यावापृथिवी बलेन ॥६॥
रोहितो द्यावापृथिवी अदृंहत् तेन स्व स्तभितं तेन नाकः ।
तेनान्तरिक्षं विमिता रजांसि तेन देवा अमृतमन्वविन्दन् ॥७॥
वि रोहितो अमृशद् विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च ।
दिवं रूढ्वा महता महिम्ना सं ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन ॥८॥
यास्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।
तासां ब्रह्मणा पयसा वावृधानो विशि राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य ॥९॥
यास्ते विशस्तपसः संबभूवुर्वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः ।
तास्त्वा विशन्तु मनसा शिवेन संमाता वत्सो अभ्येतु रोहितः ॥ १० ॥

हे सूर्य ! तुम अन्तरिक्ष में छिपे हो, उदय होओ। प्रिय और सत्य वाणी से युक्त होकर इस राष्ट्र में आओ। ऐसे इन सूर्य ने इस संसार को प्रकाशित किया वह तुम्हें राष्ट्र के भरणकर्त्ता के रूप में पुष्ट करें ॥ १ ॥ जल में रहने वाली जो प्रजाएं और बलप्रद अन्न हैं, वे तुम्हारे पास आवें। तुम उन पर चढ़ो और सोम को धारण करते हुए, जल, औषधि और दुपायों चौपायों को इस राष्ट्र में प्रविष्ट करो ॥ २ ॥ हे मरुद्गण ! तुम इन्द्र के सखा हो। तुम शत्रु का नाश करो। तुम सुस्वादु पदार्थों से प्रसन्न होने वाले हो और सुन्दर वृष्टि को प्रदान करते हो। सूर्य तुम्हारी बात सुनें ॥ ३ ॥ सूर्य उदय होते हुए चढ़ रहे हैं। यह उत्पादकों के शरीरांग में पत्नियों के गर्भ रूप से उत्पन्न होते हैं। पुनः उर्वियों की प्राप्ति के लिए नित्य प्रति राष्ट्र को देखते हुए ये उर्वियों को प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ तेरे राष्ट्र पर सूर्य आगए इसलिए तू युद्ध का भय न कर। आकाश पृथिवी धन देने वाली ऋचाओं द्वारा तेरे निमित्त कामनाओं का दोहन करें ॥ ५ ॥ सूर्य ने आकाश पृथिवी को प्रकट किया, प्रजापति ने उसमें तन्तु को फैलाया। वहाँ एक पाद अज ने आश्रय लेकर आकाश पृथिवी को बल से युक्त किया ॥ ६ ॥ सूर्य ने

पृथिवी को दृढ़ किया उसने दुःख रहित स्वर्ग को स्थिर किया, उसी ने अन्तरिक्ष तथा अन्य सब लोकों को बनाया और देवताओं ने उसी से अमृतत्व प्राप्त किया ॥ ७ ॥ रुह और प्ररुह को भले प्रकार प्रकट करने वाले सूर्य ने सब शरीरों को छुआ। वह सूर्य अपने महत्व से तेरे राष्ट्र को घृत दूध से सम्पन्न करें ॥ ८ ॥ जो तुम्हारी रोहण, प्ररोहण और आरोहण शील प्रजा और लता आदि हैं, जिनके द्वारा तुम अन्तरिक्ष के प्राणियों का भरण-पोषण करते हो, उनके दूध के समान सार युक्त कर्म द्वारा मंत्र बल से वृद्धि को प्राप्त हुए तुम सूर्य के राष्ट्र में सचेत रहो ॥९॥ जो प्रजाएं तपोबल से प्रकट हुई हैं जो गायत्री रूप वत्स द्वारा यहाँ आई हैं, वह कल्याण करने वाले चित्त से तुम में रमें और इनका वत्स सूर्य तुम्हारे पास आगमन करे ॥१०॥

ऊर्ध्वो रोहितो अधि नाके अस्थाद् विश्वा रूपाणि
जनयन् युवा कविः ।
तिग्मेनाग्निर्ज्योतिषा वि भाति तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ।११
सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः ।
मा मा हासीन्नाथितो नेत् त्वा जहानि गोपोषं
च मे वीरपोषं च धेहि ॥ १२ ॥
रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च रोहिताय वाचा
श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
रोहितं देवा यन्ति सुमनस्यमानाः स मा रोहैः
सामित्यै रोहयतु ॥ १३ ॥
रोहितो यज्ञं व्य दधाद् विश्वकर्मणे तस्मात्
तेजांस्युप मेमान्यागुः ।
वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ १४ ॥
आ त्वा रुरोह बृहत्युत पङ्क्तिरा ककुव् वर्चसा जातवेदः ।
आ त्वा रुरोहोष्णिहाक्षरो वषट्कार आ त्वारुरोह रोहितो रेतसा सह१५

अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या दिवं वस्तेऽयमन्तरिक्षम् ।
अयं ब्रध्नस्य विष्टपि स्व र्लोकान् व्या नशे ॥ १६ ॥

वाचस्पते पृथिवी नः स्योना स्योना योनिस्तल्पा नः सुशेवा ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन्
पर्यग्निरायुषा वर्चसा दधातु ॥ १७ ॥

वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नो वैश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् परि
रोहित आयुषा वर्चसा दधातु ॥ १८ ॥

वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन्
पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि ॥ १९ ॥

परि त्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा ।
सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् ॥ २० ॥

जब वे सूर्य ऊँचे होकर स्वर्ग में प्रतिष्ठित होते हैं तब वे सब रूपों को प्रकट करते हैं। उनकी ही तीक्ष्ण ज्योति से अग्नि ज्योतिर्मान् हैं। वे तृतीय लोक में प्रिय फलों को प्रकट करते हैं ॥ ११ ॥ सहस्रों सींग वाले वृक्ष से आहुत, घृतों को पुष्ट वाले, सोम पृष्ठ, सुवीर, जातवेदा अग्नि मेरा त्याग न करें। मुझे गौओं और पुत्र पौत्रादि की पुष्टि में प्रतिष्ठित करें ॥ १२ ॥ सूर्य यज्ञ के प्रकट करने वाले और यज्ञ के मुख रूप हैं, वाणी श्रोत्र और मन से मैं उन सूर्य के लिए आहुति देता हूँ। प्रसन्न होते हुए सब देवता सूर्य के समीप जाते हैं। वे मुझे संग्राम के निमित्त ऊँचा उठावें ॥ १३ ॥ सूर्य ने विश्वकर्मा के लिए यज्ञ का पोषण किया, उस यज्ञ के द्वारा यह तेज मुझे प्राप्त हो रहे हैं। मैं तुम्हारी नाभि को लोक की मज्जा पर बताता हूँ ॥ १४ ॥ हे अग्ने! बृहती, पंक्ति और ककुप् छंदों ने तथा उष्णिहा और अक्षर ने तुम में प्रवेश किया है और वषट्कार भी तुम में प्रविष्ट हो गया ... भी ...

अपने तेज से प्रविष्ट होते हैं ॥ १५ ॥ सूर्य पृथिवी के गर्भ को, आकाश और अन्तरिक्ष को भी ढक लेते हैं । यह सब संसार के बंधक सभी स्वर्गों में व्याप्त होते हैं ॥ १६ ॥ हे वाचस्पते ! हमको पृथिवी, योनि, शय्या सुख देने वाली हों । प्राण हमसे मित्रता करता हुआ रमे ! हे प्रजापते ! अग्नि तुम्हें आयु और तेज से धारण करने वाले हों ॥ १७ ॥ हे वाचस्पते ! हमारे कर्म द्वारा जो पाँच ऋतुएं प्रादुर्भूत हुई उनमें हमारा प्राण मित्र भाव से स्थित रहे । हे प्रजापते ! तुम्हें सूर्य अपने तेज और आयु से धारण करें ॥१८॥ हे वाचस्पते ! हमारा मन प्रसन्नता से युक्त रहे । तुम हमारे गोष्ठ में गौओं को प्रकट करो, और हमारी योनियों में सन्तानों को उत्पन्न करो । हमारे साथ प्राण मित्र भाव से रहे । मैं आयु और तेज से तुम्हें धारण करता हूँ ॥१६॥ हे राजन् ! सविता तुम्हें सब ओर से पोषण दे । अग्नि, मित्र और वरुण तुम्हें पुष्ट करें । तुम सब शत्रुओं को वशीभूत करते हुए इस राष्ट्र में आकर सत्य प्रिय वाणी को पुष्ट करो ॥ २० ॥

यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित ।
शुभा यासि रिणन्नपः ॥ २१ ॥
अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः ।
तया वाजान् विश्वरूपां जयेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम ॥२२॥
इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति ।
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम् ॥२३॥
सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम् ।
घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीमा विवेश ॥२४॥
यो रोहितो वृषभस्तिग्मशृङ्गः पर्यग्निं परि सूर्यं बभूव ।
यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिवं च तस्माद् देवा अधि सृष्टीः सृजन्ते ॥२५॥
रोहितो दिवमारुहन्महतः पर्यर्णवात् ।
सर्वा रुरोह रोहितो रुहः ॥ २६ ॥
वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेषा ।

इन्द्रः सोमं पिबतु क्षेमो अस्त्वग्निः प्र स्तौतु वि मृधो नुदस्व ॥२७॥
समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः ।
अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान् हन्तु ये मम ॥ २८ ॥
हन्त्वेनान् प्र दहत्वरिर्यो नः पृतन्यति ।
क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि ॥ २९ ॥
अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान् ।
अधा सपत्नान् मामकानग्नेस्तेजोभिरादिषि ॥ ३० ॥

हे सूर्य ! तुम्हें पृथ्वी श्रेष्ठ रथ में धारण करती है, जलों में चलते हुए कल्याण के निमित्त गमन करते हो ॥ २१ ॥ चलते हुए रोहित की रोहिणी अनुव्रता है यह सुन्दर वर्ण वाली बृहती और सुन्दर तेज वाली है, उसी से हम विविध रूपों वाले प्राणियों पर विजय प्राप्त करते हैं। उसी से हम सब सेनाओं को वशीभूत करें ॥ २२ ॥ यह रोहिणी और रोहित का धाम है, इसी मार्ग से पृथ्वी गमन करती है, उसे गंधर्व ऊपर ले जाते हैं। कश्यप ऋषि इसकी सावधानी से रक्षा करते हैं ॥ २३ ॥ सूर्य के घोड़े वेगवान् और ज्ञान युक्त हैं, वे अमरत्व वाले रथ को सुगमता से खींचते हैं। उन फल से सम्पन्न करने वाले सूर्य पृथ्वी स्वर्ग में प्रविष्ट हुए ॥ २४ ॥ वे रोहित अभीष्ट वर्षक हैं, तीक्ष्ण रश्मियों से युक्त हैं। जो अग्निदेव सूर्य की ओर रहते और पृथिवी आकाश को स्थिर रखते हैं, उन्हीं के बल से देवता सृष्टि को रचते हैं ॥ २५ ॥ ये सूर्य समुद्र से आकाश पर चढ़ते और रोहणशील वस्तुओं पर भी चढ़ते हैं ॥ २६ ॥ तू देवताओं की पयस्वती पूजिता गौ का मान करने में अनपस्फुर् है। अग्नि कुशल-मंगल करें और इन्द्र सोम को पीवें। तब तू शत्रुओं को रणक्षेत्र में खदेड़ डाल ॥ २७ ॥ यह अग्नि प्रदीप्त होकर घृत से बढ़े हुए हैं, इनमें घृताहुति दी गई है। ये शत्रुओं को हराने वाले हैं अतः मेरे शत्रुओं का संहार करें ॥ २८ ॥ इन सब शत्रुओं का अग्निदेव संहार करें। जो शत्रु सेना के सहित आकर हमको मारना चाहे उसे अग्निदेव भस्म कर दें। हम क्रव्याद् अग्नि के द्वारा शत्रुओं को जलाते हैं ॥ २९ ॥

हे इन्द्र ! तुम भुजबल से युक्त हो इस लिये हमारे शत्रुओं को मारो और हे अग्ने ! तुम अपनी ज्वालाओं से उसे भस्म कर डालो ॥ ३० ॥

अग्ने सपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपानं बृहस्पते ।
इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः ॥ ३१ ॥
उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि ।
अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥ ३२ ॥
वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम् ।
घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥ ३३ ॥
दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह ।
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं सं स्पृशस्व ॥ ३४ ॥
ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम् ।
तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ॥ ३५ ॥
उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ।
तिरः समुद्रमति रोचसे अर्णवम् ॥ ३६ ॥
रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति संधनाजिति ।
सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि॥३७
यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम् ।
यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थेऽहं भूयासं सवितेव चारुः ॥३८॥
अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि ।
इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥ ३९ ॥
देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे ।
समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ॥ ४० ॥

हे अग्ने ! तुम हमारे शत्रुओं को पतित करो । हे बृहस्पते ! तुम उन्नत होते हुए समान जन्म वाले शत्रु को संतापमय करो । हे इन्द्राग्नि,

और निवासप्रद देवताओ ! जो शत्रु हम से विरोध करें, वे पतित हो जाँय ॥ ३१ ॥ हे उदय होते हुए सूर्य ! तुम मेरे शत्रु को मारो। इन्हें पत्थरों से मार डालो। यह मृत्यु के समान घोर अंधेरे को प्राप्त हों ॥ ३२ ॥ विराट् के वत्स सूर्य अन्तरिक्ष पर चढ़ते हैं। सूर्य रूप वत्स जब प्रकट हो जाते हैं तब भी ये मन्त्र से सम्बद्ध किये जाते हैं ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! तुम पृथिवी पर अधिष्ठित रहो, राष्ट्र पर और धन पर भी अधिष्ठित रहो। प्रजाओं के लिए पुत्र के समान छाया करते रहो। तुम अमृत पर अधिष्ठित होते हुए, सूर्य से स्पर्द्धा करने वाले होओ और स्वर्ग पर आरोहण करो ॥ ३४ ॥ राष्ट्र का भरण करने वाले जो देवता सूर्य के चारों ओर घूमते हैं, उनसे समान मति रखते हुए रोहित देव तुम्हारे राष्ट्र को पुष्ट करें ॥ ३५ ॥ हे सूर्य ! यह मन्त्रपूत यज्ञ तुम्हारा वहन करते हैं और मार्ग में गमन करने वाले अश्व भी तुम्हें वहन करते हैं। तुम तिरछे होकर समुद्र को अत्यन्त शोभायमान करते हो ॥ ३६ ॥ वसुजित्, गोजित्, संधनजित् नामक रोहित में आक्रान्त पृथिवी आश्रित है। मैं उनके सात सहस्र प्रादुर्भावों का वर्णन करता हुआ उन्हें लोक की सत्ता का बंधन मानता हूँ ॥ ३७ ॥ तुम अपने यश के द्वारा दिशा-उपदिशाओं में गमन करते हो। यश के द्वारा ही मनुष्यों और पशुओं में घूमते हो। मैं भी सविता देव के समान ही अखण्डनीया पृथिवी के मध्य में यश से ही सम्बद्ध होऊँ ॥ ३८ ॥ तुम लोक परलोक में रहते हुए भी यहाँ की सब बातों के ज्ञाता हो। तुम यहाँ और वहाँ के सब प्राणियों को देखते हो और सभी प्राणी द्यौ में प्रतिष्ठित सूर्य को यहाँ से देखते हैं ॥ ३९ ॥ देवता होकर भी तुम देवताओं को कर्म में प्रेरित करते और अन्तरिक्ष में घूमते हो। समान अग्नि को प्रदीप्त करने वाले उत्कृष्ट विद्वान् उनको जानते हैं ॥ ४० ॥

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥४१॥
एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी।
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥४२॥

हे इन्द्र ! तुम भुजवल से युक्त हो इस लिये हमारे शत्रुओं को मारो और हे अग्ने ! तुम अपनी ज्वालाओं से उसे भस्म कर डालो ॥ ३० ॥

अग्ने सपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपानं बृहस्पते ।
इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः ॥ ३१ ॥

उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि ।
अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥ ३२ ॥
वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम् ।
घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥ ३३ ॥
दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह ।
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं सं स्पृशस्व ॥ ३४ ॥
ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम् ।
तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ॥ ३५ ॥
उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ।
तिरः समुद्रमति रोचसे अर्णवम् ॥ ३६ ॥
रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति संधनाजिति ।
सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ ३७
यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम् ।
यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थेऽहं भूयासं सवितेव चारुः ॥ ३८ ॥
अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि ।
इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥ ३९ ॥
देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे ।
समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ॥ ४० ॥

हे अग्ने ! तुम हमारे शत्रुओं को पतित करो । हे बृहस्पते ! तुम उन्नत होते हुए समान जन्म वाले शत्रु को संतापमय करो । हे इन्द्राग्नि,

और मित्रावरुण देवताओ ! जो शत्रु हम से विरोध करें, वे पतित हो जाँय ॥ ३१ ॥ हे उदय होते हुए सूर्य ! तुम मेरे शत्रु को मारो। इन्हें पत्थरों से मार डालो। यह मृत्यु के समान घोर अंधेरे को प्राप्त हों ॥ ३२ ॥ विराट् के वत्स सूर्य अन्तरिक्ष पर चढ़ते हैं। सूर्य रूप वत्स जब महान् हो जाते हैं तब भी वे मन्त्र से प्रवृद्ध किये जाते हैं ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! तुम पृथिवी पर अधिष्ठित रहो, राष्ट्र पर और धन पर भी अधिष्ठित रहो। प्रजाओं के लिए वृक्ष के समान छाया करते रहो। तुम अश्व पर अधिष्ठित होते हुए, सूर्य से स्पर्श करने वाले होओ और स्वर्ग पर आरोहण करो ॥ ३४ ॥ राष्ट्र का भरण करने वाले जो देवता सूर्य के चारों ओर घूमते हैं, उनसे समान मति रखते हुए रोहित देव तुम्हारे राष्ट्र को पुष्ट करें ॥ ३५ ॥ हे सूर्य ! यह मन्त्ररूप पवित्र तुम्हारा वहन करते हैं और मार्ग में गमन करने वाले अश्व भी तुम्हें वहन करते हैं। तुम विशेष होकर समुद्र को आनन्द शोभायमान करते हो ॥ ३६ ॥ वसुजित्, गोजित्, धनंजित् नामक रोहित में आकाश पृथिवी आश्रित हैं। मैं उनके साथ सहस्र मातृभावों का पर्यन्त करता हुआ उन्हें लोक की नभ्या का बंधन मानता हूँ ॥ ३७ ॥ तुम अपने यश के द्वारा दिशा-प्रदिशाओं में गमन करते हो। यश के द्वारा ही मनुष्यों और पशुओं में घूमते हो। मैं भी सविता देव के समान ही अखण्डनीया पृथिवी के अङ्क में यश से ही समृद्ध होऊँ ॥ ३८ ॥ तुम लोक परलोक में रहते हुए भी यहाँ की सब बातों के ज्ञाता हो। तुम यहाँ और वहाँ के सब प्राणियों को देखते हो और सभी प्राणी भी मैं प्रतिष्ठित सूर्य को यहाँ से देखते हैं ॥ ३९ ॥ देवता होकर भी तुम देवताओं को कर्म में प्रेरित करते और अन्तरिक्ष में घूमते हो। समान अग्नि को प्रदीप्त करने वाले उत्कृष्ट विद्वान् उनको जानते हैं ॥ ४० ॥

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥४१
एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी।
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति

आरोहन् द्यामममृतः प्राव मे वचः ।
उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ॥४३॥
वेद तत् ते अमर्त्य यत् त आक्रमणं दिवि ।
यत् ते सधस्थं परमे व्योमन् ॥ ४४ ॥
सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति ।
सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ॥४५॥
उर्वीरासन् परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतावग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः ॥४६॥
हिमं घ्रंसं चाधाय यूपान् कृत्वा पर्वतान् ।
वर्षाज्यावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥४७॥
स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते ।
तस्माद् घ्रंसस्तस्माद्धिमस्तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥४८॥
ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥४९॥
सत्ये अन्यः समाहितोऽप्स्वन्यः समिध्यते ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥५०॥

एक पाँव से अन्न और दूसरे से बछड़े को धारण करती हुई शुभ्र वर्णा गौ उठती है। वह किसी अर्द्धभाग में जाती है और पृथक् रहती है, यूथ में जाकर नहीं रहती ॥ ४१ ॥ वह मध्यम से एकाकार हुई एकपदी होती है, मध्यम आदित्य के साथ दो पदी, चारों दिशाओं से मिलकर चतुष्पदी, अवान्तर दिशाओं से मिल कर अष्टपदी और दिशा-विदिशा और सूर्य से मिल कर नौपदी हो जाती है। वह मेघ का चरण करने वाली, अत्यन्त जल वाली, लोक की पंक्ति रूप है ॥ ४२ ॥ हे सूर्य! तुम अमृत हो, सूर्य लोक में चढ़ते हुए मेरे वचन की रक्षा करो। मंत्रमय यज्ञ और मार्गगामी अश्व तुम्हारा वहन करते हैं ॥ ४३ ॥ हे अविनाशी सूर्य! सूर्य मण्डल में विचरण करने का

और आकाश में उपासकों सहित जो तुम्हारा निवास स्थान है उसे मैं भले प्रकार जानता हूँ ॥ ४४ ॥ सूर्य आकाश, पृथिवी और जल के स्वामी रूप हैं, ये सब प्राणियों की दर्शनात्मक शक्ति हैं। यही आकाश और पृथिवी पर चढ़ते हैं ॥ ४५ ॥ उर्वियाँ परिधि बन गईं, वेदी के रूप में पृथिवी की कल्पना हुई। वहाँ इन अग्नियों, हिमों और दिनों को सूर्य ने प्रतिष्ठित किया ॥ ४६ ॥ सूर्यात्मक स्वर्ग की प्राप्ति-कामना वाले पुरुष हिम और दिन का आधान कर, पर्वतों को यूप बनाते हुए वर्षाज्य अग्नि का पूजन किया करते थे ॥ ४७ ॥ रोहित के स्वर्ग प्राप्त कराने वाले मंत्र से अग्नि को प्रज्वलित करते हैं। उसी के द्वारा हिम, दिवस और यज्ञ का प्रादुर्भाव हुआ ॥ ४८ ॥ सूर्यात्मक स्वर्ग की कामना वाले पुरुष मंत्राहुत और मंत्र-प्रवृद्ध अग्नियों को मंत्र से बढ़ाते हुए उन प्रदीप्त अग्नियों का पूजन करते हैं ॥ ४९ ॥ सत्य में अन्य अग्नि है, जल में निहित अग्नि प्रदीप्त होती है। सूर्यात्मक स्वर्ग की प्राप्ति चाहने वाले पुरुषों ने मंत्रों द्वारा प्रवृद्ध उन अग्नियों का पूजन किया था ॥ ५० ॥

यं वातः परि शुम्भति यं वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ५१ ॥
वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम् ।
घ्रंसं तदग्निं कृत्वा चकार विश्वमात्मन्वद् वर्षेणाज्येन रोहितः ॥ ५२
वर्षमाज्यं घ्रंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतान् पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वां अकल्पयत् ॥ ५३ ॥
गीर्भिरूर्ध्वान् कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत् ।
त्वयीदं सर्वं जायतां यद् भूतं यच्च भाव्यम् ॥ ५४ ॥
स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत ।
तस्माद्ध जज्ञ इदं सर्वं यत् किं चेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणाभृतम् ॥ ५५ ॥
यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥ ५

यो माभिच्छायमत्येपि मां चाग्निं चान्तरा ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥ ५७ ॥
यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति ।
दुःष्वप्न्यं तस्मिञ्छमलं दुरितानि च मृज्महे ॥ ५८ ॥
मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
मान्त स्थुर्नो अरातयः ॥ ५९ ॥
यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतमशीमहि ॥६०॥

जिसे वायु, इन्द्र और ब्रह्मणस्पति सुशोभित करना चाहते हैं; ऐसे पुरुष ही सूर्यात्मक सूर्य की प्राप्ति-कामना करते हुए मंत्र प्रवृद्ध अग्नियों को पूजते हैं ॥ ५१ ॥ पृथिवी को वेदी बनाकर, आकाश को दक्षिणा रूप देकर और दिन को ही अग्नि मानकर रोहित ने वर्षा रूपी घृत से जगत को आत्मा के समान बना लिया है ॥ ५२ ॥ पृथिवी को वेदी, दिन को अग्नि और वर्षा को घृत बनाया गया। स्तुतियों से समृद्ध हुए अग्नि ने ही इन पर्वतों को उन्नत किया ॥ ५३ ॥ स्तुतियां से उन्नत करते हुए रोहित ने पृथिवी से कहा कि भूत और भवितव्य जो कुछ हो तुममें ही प्रादुर्भूत हो ॥५४॥ यज्ञ पहिले भूत और भवितव्य के रूप में ही हुआ जो कुछ रोचमान है, वह सब उसी से प्रकट हुआ और रोहित ने ही उसे पुष्ट किया ॥ ५५ ॥ जो सूर्य की ओर मूत्र त्याग करता है और जो गौ को अपने पाँव से छूता है, मैं उसके मूल को छिन्न करता हूँ, उसके ऊपर कभी छाया नहीं कर सकता ॥ ५६ ॥ जो मेरे और अग्नि के मध्य में होकर निकलता है या जो मेरी छाया को लाँघता है, मैं उसकी जड़ काट दूंगा, उसके ऊपर कभी छाया नहीं कर सकता ॥ ५७ ॥ हे सूर्य ! हमारे तुम्हारे मध्य में जो बाधक होना चाहता है, उसे मैं पाप, दुःस्वप्न और दुष्कर्मों में स्थापित करता हूँ ॥ ५८ ॥ हे इन्द्र ! जिस यज्ञ विधि में सोम प्रयुक्त होता है, हम उस पद्धति से पृथक् न जाँय और हमारे देश में शत्रु न रहें ॥ ५९ ॥ जो यज्ञ देवताओं में सुविस्तीर्ण है, हम उस यज्ञ की वृद्धि करने वाले हों ॥ ६० ॥

२ सूक्त [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अध्यात्मम्, रोहितः, आदित्यः। छन्द—त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्, जगती; पंक्ति; गायत्री)

उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
आदित्यस्य नृचक्षसो महिव्रतस्य मीढुषः ॥ १ ॥

दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्चिषा सुपक्षमाशुं पतयन्तमर्णवे ।
स्तवाम सूर्यं भुवनस्य गोपां यो रश्मिभिर्दिश आभाति सर्वाः ॥२॥

यत् प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीभं नानारूपे अहनी कर्षि मायया ।
तदादित्य महि तत् ते महि श्रवो यदेको विश्वं परि भूम जायसे ॥३॥

विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः ।
स्रुताद् यमत्रिर्दिवमुन्निनाय तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम् ॥४॥

मा त्वा दभन् परियान्तमाजिं स्वस्ति दुर्गां अति याहि शीभम् ।
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो यदेषि ॥५॥

स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभावन्तौ परियासि सद्यः ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥६॥

सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम् ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥७॥

सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त ।
अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद् विधूय देवस्तमो दिवमारुहत् ॥८॥

उत् केतुना बृहता देव आगन्नपावृक् तमोऽभि ज्योतिरश्रैत् ।
दिव्यः सुपर्णः स वीरो व्यख्यददितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा ॥ ९ ॥

उद्यन् रश्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि ।
उभा समुद्रौ क्रतुना वि भासि सर्वांल्लोकान् परिभूर्भ्राजमानः ॥१०॥

महान् कर्म वाले, सेंचन समर्थ, साक्षि रूप सूर्य की निर्मल रश्मियाँ आकाश में चमकती हुई सूर्य को ऊँचा करती हैं ॥ १ ॥ ज्ञानमयी दिशाओं में अपने तेज से शब्द कराने वाले, सुन्दर पक्ष वाले, रश्मियों से प्रकाश देने वाले, लोकों के रक्षक सूर्य का हम स्तवन करते हैं ॥ २ ॥ हे सूर्य ! तुम अन्नमय हवियों से पूर्व पश्चिम दिशाओं में गमन करते हो। अपने तेज से दिन और रात्रि को विभिन्न रूपों वाले बनाते हो। तुम संसार भर में अकेले ही सबसे महान् हो यह तुम्हारा अत्यन्त प्रशंसनीय यश है ॥ ३ ॥ जिन तेजस्वी और भवसिंधु के तारिणि रूप सूर्य को सप्त रश्मियाँ वहन करती हैं, जिन्हें ब्रह्म समुद्र से ऊपर को सूर्य लोक में लाता है। हे सूर्य ! ऐसे तुम्हें हम 'आजि' में प्रविष्ट होता हुआ देखते हैं ॥ ४ ॥ हे सूर्य ! तुम आकाश और पृथिवी में दिन रात्रि का मान करते हुए विचरते हो। तुम शीघ्रता से सुख पूर्वक दुर्गम स्थलों का उल्लङ्घन करो। तुम्हारे 'आजि' में प्रविष्ट होने पर कोई तुम्हें वश न कर सके ॥ ५ ॥ हे सूर्य ! तुम जिस रथ से दोनों छोरों को शीघ्र पाते हो, उस रथ का मङ्गल हो। तुम्हारे सौ, सात या अनेक हर्यश्व तुम्हें वहन करते हैं उनका भी कल्याण हो ॥ ६ ॥ हे सूर्य ! तुम अग्नि के समान ज्योति वाले वेगवान रथ पर चढ़ो तुम्हारे उस रथ को सौ, सात या अनेक हर्यश्व वहन करते हैं ॥ ७ ॥ सूर्य अपने गमन के लिए स्वर्णिम त्वचा वाले सात विशाल हरे घोड़ों को जोड़ते और अन्धकार को मिटाते हुए लोक से दूर उन्हें छोड़कर सूर्यलोक में चले जाते हैं ॥ ८ ॥ वे सूर्य महान् केतु के द्वारा आते हैं, वे ज्योति के आश्रय से अन्धकार को दूर करते हैं। वे सुन्दर वर्ण वाले अदिति के पुत्र सब भुवनों में विख्यात हैं ॥ ९ ॥ हे सूर्य ! प्रकट होते ही रश्मियों को विस्तृत करके सभी रूपवान पदार्थों का तुम पोषण करते हो। तुम गमन करते हुए दोनों समुद्रों और सभी लोकों को प्रकाशित करते हो ॥ १० ॥

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातो अर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरण्यैरन्यं हरितो वहन्ति ॥११॥
दिवि त्वात्रिरधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे ।
स एषि सुधृतस्तपन् विश्वा भूतावचाकशत् ॥१२॥

उभावन्तौ समर्पसि वत्सः संमातराविव ।
नन्वेतदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः ॥१३॥
यत् समुद्रमनु श्रितं तत् सिषासति सूर्यः ।
अध्वास्य विततो महान् पूर्वश्चापरश्च यः ॥१४॥
तं समाप्नोति जूतिभिस्ततो नाप चिकित्सति ।
तेनामृतस्य भक्षं देवानां नाव रुन्धते ॥१५॥
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१६॥
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥१७॥
अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥१८॥
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचन ॥१९॥
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥२०॥

अपनी माया के द्वारा बालकों के समान क्रीड़ा करते हुए यह दोनों समुद्र की ओर गमन करते हैं। इनमें से एक सब लोकों में प्रकाश करता है और दूसरे को स्वर्दिन अश्व वहन करते हैं ॥ ११ ॥ हे सूर्य ! तीनों व्रतों से युक्त अत्रि ने तुम्हें मास समूह के निमित्त दिव्यलोक में प्रतिष्ठित किया, तुम वही हो। तुम तपते हुए आते और सब भूतों को प्रकाशित करते हो ॥ १२ ॥ बालक जैसे माता पिता के पास सरलता से पहुँचता है, वैसे ही तुम दोनों समुद्रों के पास पहुँचे हो। सभी देवता पुरातन मन्त्र को समझते हैं ॥ १३ ॥ जो मार्ग समुद्र तक गया है उसका सूर्य दान करते हैं। इनका पूर्व अन्य मार्ग है वह अत्यन्त विस्तारमय और महान है ॥ १४ ॥ हे सूर्य ! तुम उस मार्ग को द्रुतवेग वाले अश्वों से प्राप्त करते हो तुम उसमें सावधान रहते हुए देवताओं के अमृत-सेवन को नहीं रोकते ॥ १५ ॥ सभी उत्पन्न जीवों के जानने वाले सूर्य को सभी के दर्शन के निमित्त रश्मियाँ ऊपर उठाती हैं ॥ १६ ॥ रात्रि की समाप्ति पर जैसे चोर भाग जाते हैं वैसे ही नक्षत्र भी सबको देखने वाले सूर्य के कारण रात्रि के साथ ही चले जाते हैं ॥ १७ ॥ सूर्य की ज्ञान देने वाली रश्मियाँ अग्नि के समान दमकती हुई हरेक व्यक्ति के पीछे दिखाई

करते हैं ॥ २३ ॥ सूर्य ने पवित्रताप्रद सात अश्वों को अपने रथ में युक्त किया है वह उनके द्वारा अपनी युक्तियों से गमन करते हैं ॥ २४ ॥ सूर्य अपने तेज से स्वर्ग में चढ़ते हैं, वे योनि को प्राप्त होते और प्रकट होते हैं। वही देवताओं के स्वामी हुए हैं ॥ २५ ॥ अनेक मुख वाले, सबके देखने वाले, सब ओर भुजा वाले, असाधारण देवता सूर्य अपनी गिरती हुई किरणों के द्वारा आकाश पृथिवी को प्रकट करते हुए अपनी भुजाओं से सबका भरण-पोषण करते हैं ॥ २६ ॥ एकपाद् द्विपादों में, त्रिपादों में प्राप्त होता है फिर द्विपाद् षट्पादों में विक्रमण करता है। वह एकपद् ब्रह्म को इष्ट मानते हैं ॥ २७ ॥ अज्ञान-रहित सूर्य चलते हुए जब विश्राम लेते हैं, तब अपने दो रूप बनाते हैं। हे सूर्य ! तुम उदय होकर सब लोकों को वश करते हुए प्रकाशित होते हो ॥ २८ ॥ हे सूर्य ! तुम महान् हो, तुम्हारी महिमा भी महान् है, यह सब सत्य है ॥ २९ ॥ हे सूर्य ! तुम स्वर्ग में, अन्तरिक्ष में, पृथिवी में और जल में भी दमकते हो। तुम अपने तेज से दोनों समुद्रों को व्याप्त करते हो। तुम स्वर्ग पर विजय प्राप्त करने वाले एक देवता हो ॥३०॥

अर्वाङ् परस्तात् प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित् पतयन् पतङ्गः ।
विष्णुर्विचित्तः शवसाधितिष्ठन् प्र केतुना सहते विश्वमेजत् ॥३१॥
चित्रश्चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि ॥३२॥
तिग्मो विभ्राजन् तन्वं शिशानोऽरंगमासः प्रवतो रराणः ।
ज्योतिष्मान् पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आस्थात् प्रदिशः कल्पमानः ॥३३॥
चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥३४॥
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥३५॥
उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम् ।
पश्याम त्वा सवितारं यमाहुरजस्रं ज्योतिर्यदविन्ददत्रिः ॥३६॥

दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः ।
स नः सूर्य प्र तिर दीर्घमायुर्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम ॥३७॥
सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य सम्पश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥३८॥
रोहितः कालो अभवद् रोहितोऽग्रे प्रजापतिः ।
रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितः स्वराभरत् ॥३९॥
रोहितो लोको अभवद् रोहितोऽत्यतपद् दिवम् ।
रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु सं चरत् ॥४०॥

सूर्य दक्षिण की ओर जाते हुए शीघ्र ही मार्ग को पार करते हैं। यह व्यापक देव अत्यन्त ज्ञानी हैं। यह अपनी शक्ति से अधिष्ठित होते हुए अपने ज्ञान के बल से ही सचेष्ट विश्व को वश में करते हैं ॥ ३१ ॥ महिमामय सूर्य ज्ञानवान् और पूज्य हैं, वे शोभनमार्ग से गमन करते हैं। आकाश पृथिवी अन्तरिक्ष को दमकाते हुए दिन और रात्रि को आश्रय देते हैं। इन्हीं के बल से सब पार होते हैं ॥ ३२ ॥ यह सूर्य तिरछे दमकते हैं, यह शरीर को तपाते हैं, यह सुन्दर गमन वाले, ज्योतिर्मान, महिमावान और अन्न को पुष्ट करने वाले हैं। यह दिशाओं को प्रकट करते हैं ॥ ३३ ॥ यह देवताओं के ध्वजारूप सूर्य दर्शनीय हैं। यह उदय होकर दिशाओं को प्रकाशित करते हैं। यह सब अंधकारों को मिटाते हुए अपने प्रकाश से ही दिन प्रकट करते हैं। यह पापों को हटाने वाले हैं ॥ ३४ ॥ रश्मियों का प्रशंसनीय समूह मित्रावरुण का चक्षु रूप है। सूर्य सब प्राणियों की आत्मा रूप हैं। यह सभी भूतों में प्रविष्ट सूर्य आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी को व्याप्त किये हुये हैं ॥ ३५ ॥ ऊर्ध्वगामी, अरुण वर्ण वाले, शोभनगमन वाले सूर्य के हम आकाश के मध्य गमन करते हुये सदा दर्शन करें। हे सूर्य! तुम ज्योतिर्मान को दुःखों से रहित अत्रि प्राप्त करते हैं ॥ ३६ ॥ मैं भयभीत होकर आकाश में द्रुत गमन वाले सूर्य की स्तुति करता हुआ उनके आश्रय को प्राप्त होता हूँ। हे सूर्य! हम तुम्हारी सुन्दर कृपा बुद्धि में रहें, हम हिंसा को प्राप्त न हों।

हमें दीर्घजीवन प्रदान करो ॥ ३७ ॥ इन पापों के नायक, सुन्दर गमन वाले, स्वर्गगामी सूर्य के दोनों अयन सहस्त्रों दिनों तक भी नियम में रहते हैं। यह सूर्य सब देवताओं को अपने में लीन कर, भुवनमात्र को देखते हुए चलते हैं ॥ ३८ ॥ रोहित काल थे, वही प्रजापति थे, वही यज्ञों के मुख रूप हैं और वही रोहित अब स्वर्ग का पोषण करते हैं ॥ ३९ ॥ वे स्वर्ग में तपने वाले रोहित अपनी रश्मियों के द्वारा समुद्र में और पृथिवी में विचरते हैं, वे दर्शन के योग्य हैं ॥ ४० ॥

सर्वा दिशः समचरद् रोहितोऽधिपतिर्दिवः ।
दिवं समुद्रमाद् भूमिं सर्वं भूतं वि रक्षति ॥ ४१ ॥
आरोहञ्छुक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
चित्रश्चिकित्वान् महिषो वातमाया यावतो लोकानभि यद् विभाति ४२
अभ्यन्यदेति पर्यन्यदस्यतेऽहोरात्राभ्यां महिषः कल्पमानः ।
सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविदं हवामहे नाधमानाः ॥४३॥
पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्वं बभूव ।
विश्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥४४॥
पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्रं ज्योतिषा विभ्राजन् परि द्यामन्तरिक्षम् ।
सर्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥४५॥
अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥४६॥

और महिमावान् सूर्य संसार के सब ओर व्याप्त हैं। वे जगत को देखते हैं, अत्यन्त ज्ञानी और पूज्य हैं। वे मेरे वचन को सुनें ॥४४॥ पृथिवी, समुद्र और अंतरिक्ष में अपनी ज्योति द्वारा व्याप्त सूर्य सब के कर्मों को देखने वाले हैं। उनकी महिमा सब ओर फैली हुई है। वे सुन्दर विद्या वाले और पूज्य हैं। वे मेरे वचनों को सुनें ॥४५॥ गौ के समान आने वाली उषा के समय यह अग्नि मनुष्य की समिधाओं द्वारा जाने जाते हैं। इनकी ऊर्ध्वगामी रश्मियाँ स्वर्ग की ओर शीघ्रता से जाती हैं। मैं उन्हीं सूर्य का आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥४६॥

३ सूक्त [तीसरा अनुवाक]

(ऋषि-ब्रह्मा। देवता-अध्यात्मम्, रोहितः,आदित्यः। छन्द- कृतिः, अष्टित्रिष्टुप्)

य इमे द्यावापृथिवी जजान यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते।
यस्मिन् क्षियन्ति प्रदिशः षडुर्वीर्याः पतङ्गो अनु विचाकशीति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१॥
यस्माद् वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२॥
यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥३॥
यः प्राणेन द्यावापृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपर्ति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥४॥
यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरग्निर्वैश्वानरः सह पङ्क्त्या श्रितः।
यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे।

तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥५॥
यस्मिन् षडुर्वीः पञ्च दिशो अधि श्रितांश्चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः ।
यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥६॥
यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्र ह्मणस्पतिरुत यः ।
भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥७॥
अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥८॥
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥९॥
यत् ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद् यत् संहितं पुष्कलं चित्रभानु ।
यस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः सप्त साकम् ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१०॥

इस आकाश पृथिवी को जिन्होंने प्रकट किया, जो सब लोकों को आच्छादित करते हैं, जिनमें छः उर्वियाँ और दिशाएँ रहती हैं, जिन दिशाओं को वेही प्रकाशित करते हैं, उन क्रोधमय सूर्य का जो अपमान करता है या

विद्वान् ब्राह्मण की हिंसा करता है, उस ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव! तुम कम्पायमान करो, उसे क्षीण करते हुए बंधन में बाँध लो ॥१॥ जिस देवता के प्रभाव से ऋतु-अनुसार वायु चलती और समुद्र प्रवाहित होते हैं, ऐसे क्रोध में भरे सूर्य का जो अपमान करता या विद्वान् ब्राह्मण को हिंसित करता है, उस ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और बन्धन में बाँध लो ॥२॥ जो मनुष्यों में प्राण भरते हैं, जो मनुष्यों की हिंसा करते हैं, जिनके द्वारा सब प्राणी श्वास-प्रश्वास लेते हैं, उन क्रोध में भरे देवता का जो अपराध करता है, जो विद्वान् ब्राह्मण को हिंसित करता है, उस ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव! कम्पायमान करो और क्षीण करते हुए बन्धन में डालो ॥३॥ जो देवता प्राण से आकाश पृथिवी को तृप्त करता और अपान से समुद्र के पेट को पालता है, उन क्रोध में भरे देवता के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव! कम्पायमान करो और क्षीण करते हुए बन्धन में बाँध लो ॥४॥ जिसमें विराट् परमेष्ठी वैश्वानर-पंक्ति, प्रजा और अग्नि सहित निवास करते हैं, जिसने उत्कृष्ट प्राण और महान् तेज को धारण किया है, उन क्रोधवन्त रोहितदेव के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव! कम्पित करते हुए क्षीण करो और अपने पाश में बाँध लो ॥५॥ पाँच दिशाएँ, छः उर्वियाँ, चार जल और यज्ञ के तीन अक्षर जिसमें आश्रित हैं, जो आकाश पृथिवी के मध्य में अपने क्रोधित नेत्र से देखता है, उन क्रोधवन्त देवता के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव! कम्पित करते हुए क्षीण करो और अपने पाश में बाँध लो ॥६॥ जो ब्रह्मणस्पति हैं, जो अन्न के पालक और भक्षक भी हैं, जो भूत भविष्यत और लोक के स्वामी हैं, उन क्रोधयुक्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और पाशों में बाँध लो ॥७॥ जिन्होंने तीस दिन-रात्रि का समूह बनाकर तेरहवें अधिक मास को बनाया, ऐसे क्रोधयुक्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव! कम्पित करो और उसे क्षीण करते हुए अपने पाशों में बाँध लो ॥८॥ सूर्य की सुन्दर रश्मियाँ जल को सोख कर स्वर्ग में जातीं और दक्षिणायन में जल-स्थान से लौटती हैं।

उस क्रोधयुक्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के पीड़क ब्रह्मघाती को हे रोहित! कम्पित करो और क्षीण करते हुए उसके ऊपर पाशों को डालो ॥१०॥ हे रोहित! तुम्हारे [illegible] से समान बढ़ते हैं ॥ ऐसे क्रोधयुक्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के पीड़क ब्रह्मघाती को हे रोहित! कम्पायमान करो और उसे क्षीण करते हुए उसके ऊपर पाशों को डालो ॥११॥

बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद् रथन्तरं प्रति गृह्णाति पश्चात् ।
ज्योतिर्वसाने सदमप्रमादम् ॥
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥११॥
बृहदन्यतः पक्ष आसीद् रथन्तरमन्यतः सबले सध्रीची ।
यद् रोहितमजनयन्त देवाः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१२॥
स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन् ।
स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम् ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१३॥
सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य सम्पश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१४॥
अयं स देवो अप्स्वन्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्त्रिः ॥
य इदं विश्वं भुवनं जजान ॥
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।

उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१५॥
शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम् ।
यस्योर्ध्वा दिवं तन्वस्तपन्त्यर्वाङ् सुवर्णैः पटरैर्वि भाति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१६॥
येनादित्यान् हरितः सम्वहन्ति येन यज्ञेन वहवो यन्ति प्रजानन्तः ।
यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१७॥
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१८॥
अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम् ।
ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥१९॥
सम्यञ्चं तन्तुं प्रदिशोऽनु सर्वा अन्तर्गायत्र्याममृतस्य गर्भे ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२०॥

जिसके अनुकूल रहकर बृहत् आच्छादन करता और रथन्तर उसे धारण करता है, वह दोनों ही ज्योतियों से सदैव ढके रहते हैं। ऐसे क्रोधवान्‌ देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! तुम कम्पायमान करो और उसे क्षीण करते हुए अपने पाशों में बाँध लो ॥११॥

देवताओं द्वारा रोहित को उत्पन्न करने के समय बृहत् एक ओर रथन्तर और दूसरी ओर से पर्व हुआ। यह दोनों ही बलवान और सध्रीची हैं। इन क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक मनुष्य को हे रोहितदेव! कम्पित करो और क्षीण करते हुए अपने बन्धन में बाँध लो ॥१२॥ वह वरुण सायं समय अग्नि होता और प्रातः समय उदित होता हुआ मित्र होजाता है। वह सविता रूप से अन्तरिक्ष में और इन्द्र रूप से स्वर्ग में स्थित रहता है। ऐसे क्रोधमय देव का जो अपराध करता है और विज्ञ ब्राह्मण की हिंसा करता है उसे हे रोहित तुम कँपाते हुए क्षीण करके पाशों में बाँध लो ॥ १३ ॥ इस पापनाशक, स्वर्गगामी सूर्य के दोनों अयन सहस्रों दिन तक नियम में रहते हैं। यह सब देवताओं को स्वयं में लीन करके सब जीवों को देखते हुए चलते हैं। ऐसे क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक को हे रोहित! तुम कँपाते हुए क्षीण करके अपने पाशों में बाँध लो ॥ १४ ॥ सब लोकों को जिन्होंने प्रकाशित किया, वे देव जल में वास करते हैं। वही सहस्रों के मूल रूप और त्रिताप-रहित अत्रि हैं। इन क्रोधित देव के अपराधी और विज्ञ ब्राह्मण के हिंसक मनुष्य को हे रोहितदेव! तुम कम्पित करो और क्षीण करके पाशों में बाँध लो ॥ १५ ॥ स्वर्ग में अपने तेज से दमकते हुए सूर्य को उनकी द्रुतगामिनी रश्मियाँ निरन्तर [illegible] करती हैं, उनके ऊर्ध्व देह-भाग रूप रश्मियाँ स्वर्ग को दर्शाती हैं और जो स्वर्दिन रश्मियों द्वारा प्रकाश फैलाते हैं। उन क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक मनुष्य को हे रोहितदेव! तुम कम्पित करो और क्षीण करते हुए पाशों में बाँध लो ॥ १६ ॥ जिनके प्रभाव से सूर्य के अश्व सूर्य का वहन करते हैं और जिनके प्रभाव से विज्ञ पुरुष यज्ञादि कर्मों को [illegible] होते हैं, जो एक ज्योति होते हुए भी अनेक रूप से प्रकाशमान हैं। ऐसे क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक मनुष्य को हे रोहितदेव! कँपाते हुए क्षीण करो और पाशों में बाँध लो ॥ १७ ॥ [illegible] ज्योतियों को निस्तेज करके रथ चक्र [illegible] सूर्य के [illegible] हैं: [illegible] सूर्य सप्तर्षियों द्वारा नमस्कार प्राप्त करते हुए [illegible] हैं। वह [illegible] हेमन्त इन तीन ऋतु वाले वर्ष को [illegible] हैं। [illegible]

आश्रित हैं। ऐसे इन क्रोधित देवता के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! कम्पित करते हुए, क्षीण करो और उसे पाशों में बाँध लो ॥ १८ ॥ आठ प्रकार से बढ़ने वाले वह्नि उग्र हैं, वे देवताओं के पालनकर्त्ता और बुद्धियों को उत्पन्न करते हैं और जल का परिमाण करते हुए, वायु सब दिशाओं को शुद्ध करते हैं। ऐसे क्रोधित उन देवता के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! कम्पित करते हुए, क्षीण करो और पाशों से बाँधो ॥ १९ ॥ गायत्री में, अमृत के गर्भ में और सब दिशाओं में पूजनीय जलतन्तु को वायु पवित्र करते हैं। उन क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहितदेव ! तुम कम्पित करते हुए, क्षीण करो और पाशों में बाँध लो ॥ २० ॥

निम्रुचस्तिस्रो व्युषो ह तिस्रस्त्रीणि रजांसि दिवो अङ्ग तिस्रः ।
विद्मा ते अग्ने त्रेधा जनित्रं त्रेधा देवानां जनिमानि विद्म ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२१॥
वि य और्णोत् पृथिवीं जायमान आ समुद्रमदधादन्तरिक्षे ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२२॥
त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितोऽर्कः समिद्ध उदरोचथा दिवि ।
किमभ्यार्चन्मरुतः पृश्निमातरो यद् रोहितमजनयन्त देवाः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२३॥
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२४॥
एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।

चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे सम्पश्यन् पङ्क्तिमुपतिष्ठमानः ।
तस्य देव यं क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥२५॥
कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत ।
स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥२६॥

हे अग्ने ! तुम्हारी तीनों उत्पत्तियों को हम जानते हैं। तुम्हारी तीन गतियाँ भस्म करने वाली हैं। हम तीनों लोक और स्वर्ग के तीन भेदों के भी ज्ञाता हैं। ऐसे उन क्रोधवन्त देवता के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक मनुष्य को हे रोहितदेव ! तुम कम्पित करते हुए क्षीण करो और उसे पाशों में बाँध लो ॥ २१ ॥ जो उत्पन्न होकर भूमि को आच्छादित करता और जल को अंतरिक्ष में स्थित करता है। ऐसे उन क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक मनुष्य को हे रोहितदेव ! तुम कंपित करो और क्षीण करते हुए पाशों में बाँध लो ॥ २२ ॥ हे अग्ने ! तुम ज्ञान यज्ञों में प्रदीप्त किये जाते हो और स्वर्ग में अर्चन-साधन रूप होते हो। क्या प्रश्निमातृक मरुद्गण ने तुम्हारी पूजा की थी जो देवता रोहित से मिले थे ? उन क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के हिंसक मनुष्य को हे रोहितदेव ! तुम कम्पायमान करो क्षीण करो और पाशों में बाँध लो ॥ २३ ॥ [अ]न्नदाता, आत्मबल प्रेरक, जिनके बल की देवता आराधना करते हैं और [जो] प्राणिमात्र के ईश्वर हैं। ऐसे उन क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान् [ब्रा]ह्मण के हिंसक मनुष्य को हे रोहितदेव ! तुम कम्पित करो और क्षीण करते [हु]ए अपने पाशों में बाँधो ॥ २४ ॥ एक पाद् द्विपादों में, द्विपाद त्रिपादों में [औ]र फिर द्विपाद् षट्पादों में विक्रमण करता है, वे एक पादात्मक मन्त्र को [दे]खते हैं। ऐसे उन क्रोधवन्त देव के अपराधी और विद्वान् ब्राह्मण के [हिं]सक मनुष्य को हे रोहितदेव ! तुम कम्पित करो और उसे क्षीण करते [हु]ए अपने दृढ़ पाशों में बाँध लो ॥ २५ ॥ काली रात्रि का पुत्र अर्जुन सूर्य [हु]आ, वह आकाश में चढ़ता है और वही रोहित रोहणशील ... [क]हाता है ॥ २६ ॥

४ (१) सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अध्यात्मम्। छन्द—अनुष्टुप् गायत्री; उष्णिक

स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेऽवचाकशत् ॥ १ ॥
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ २ ॥
स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम्।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ३ ॥
सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः महादेवः।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ४ ॥
सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ५ ॥
तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ६ ॥
पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति।
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ७ ॥
तस्यैष मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः ॥ ८ ॥
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ९ ॥
तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा हिताः ॥ १० ॥
स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥ ११ ॥
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥ १२ ॥
एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ॥ १३ ॥

यही सूर्य आकाश की पीठ पर दमकते हुए आगमन करते हैं ॥ १ ॥
इन्होंने अपनी रश्मियों से आकाश को ढक लिया और वे रश्मियों से ...
हुए आ रहे हैं ॥ २ ॥ यही धाता, विधर्ता, वायु और उच्छ्रित आकाश हैं ...

ही अर्यमा, वही वरुण, वही रुद्र, और वही महादेव हैं॥ ४ ॥ वही अग्नि, ही सूर्य, और वही महान् यम हैं ॥ ५ ॥ एक शिर वाले दश वत्स उन्हीं की ाराधना करते हैं ॥ ६॥ वह उदय होते ही दमकने लगते हैं और पीछे से नकी पूजनीय रश्मियाँ उनके चारों ओर छा जाती हैं ॥ ७ ॥ छींके के आकार ाला उनका ही एक गण मारुत आ रहा है ॥ ८ ॥ इन्होंने अपनी रश्मियों े आकाश को ढक लिया है, यह महान् इन्द्र के द्वारा किरणों से आवृत्त हुए ग्ले आ रहे हैं ॥ ९ ॥ उनके विष्टंभ नौ, कोश नौ प्रकार से ही अवस्थित हैं ।१०।। वह स्थावर जङ्गम सब प्रजाओं के द्रष्टा और सभी के साक्षी हैं ।।११।। ह सब उसे ही प्राप्त होता है, वह एकवृत् केवल एक है ।।१२।। सब देवता न एक को ही वरण करते हैं ।।१३।।

४ (२) सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—अध्यात्मम् । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति, अनुष्टुप्; गायत्री, उष्णिक्)

कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ।।१४।।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १५ ॥
न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ।।१६।।
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ।।१७।।
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ।।१८।।
स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १९ ॥
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ।
य एतं देवमेकवृतं वेद ।। २० ॥
सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति । य एतं देवमेकवृतं वेद ।।२१।।

कीर्ति, यश, आकाश, जल, ब्रह्मवर्च, अन्न और अन्न को पचाने की क्रिया उसे प्राप्त होती है जो इन एकवृत का ज्ञाता है ॥ १४-१५ ॥ इस एक-

वृत का ज्ञाता द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ नहीं कहाता ॥ १६ ॥ इन एकवृत का ज्ञाता पञ्चम, षष्ठ या सप्तम नहीं कहाता ॥ १७ ॥ जो इन एकवृत का ज्ञाता है, वह अष्टम, नवम, दशम नहीं कहलाता ॥ १८ ॥ इन एकवृत का ज्ञाता स्थावर जङ्गम सभी को देखने वाला होता है ॥ १९ ॥ वह असाधारण एकवृत् ही हैं, यह सब उसे ही प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥ इनमें सभी देवता एकवृत् कहाते हैं ॥ २१ ॥

४ (३) सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता–अध्यात्मम् । छन्द–त्रिष्टुप्, गायत्री; पंक्ति; अनुष्टुप्)

ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च यशश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं-
चान्नाद्यं च । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २२ ॥
भूतं च भव्यं च श्रद्धा च रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च ॥ २३ ॥
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २४ ॥
स एव मृत्युः सोमृतं सोभ्वं स रक्षः ॥ २५ ॥
स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके वषट्कारोऽनु संहितः ॥ २६ ॥
तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते ॥ २७ ॥
तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह ॥ २८ ॥

ब्रह्म, तप, कीर्ति, यश, जल, आकाश, ब्रह्मवर्च, अन्न और अन्न-पाचन की शक्ति ॥ २२ ॥ भूत, भविष्य, श्रद्धा, रुचि, स्वर्ग और स्वधा ॥ २३ ॥ एकवृत् के ज्ञाता को उक्त सब प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ वही मृत्यु, अमृत, अभ्व और वही राक्षस हैं ॥ २५ ॥ वही रुद्र, वसुओं में वसुवनि और नमस्कार युक्त वाणी में वही वषट्कार हैं ॥ २६ ॥ सभी यातनाओं को देने वाले भी उन्हीं की अनुज्ञा में चलते हैं ॥ २७ ॥ चन्द्रमा सहित यह सब नक्षत्र भी उसी के वशीभूत रहते हैं ॥ २८ ॥

४ (४) सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा । देवता–अध्यात्मम् । छन्द–गायत्री, अनुष्टुप्, उष्णिक्; बृहती)

स वा अह्नोऽजायत तस्मादहरजायत ॥ २९ ॥

स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत ॥ ३० ॥
स वा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्षमजायत ॥ ३१ ॥
स वै वायोरजायत तस्माद् वायुरजायत ॥ ३२ ॥
स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत ॥ ३३ ॥
स वै दिग्भ्योऽजायत तस्माद् दिशोऽजायन्त ॥ ३४ ॥
स वै भूमेरजायत तस्माद् भूमिरजायत ॥ ३५ ॥
स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत ॥ ३६ ॥
स वा अद्भ्योऽजायत तस्मादापोऽजायन्त ॥ ३७ ॥
स वा ऋग्भ्योऽजायत तस्मादृचोऽजायन्त ॥ ३८ ॥
स वै यज्ञादजायत तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥ ३९ ॥
स यज्ञतस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् ॥ ४० ॥
स स्तनयति स वि द्योतते स उ अश्मानमस्यति ॥ ४१ ॥
पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ॥ ४२ ॥
यद्वा कृणोष्योषधीर्यद्वा वर्षसि भद्रया यद्वा जन्यमवीवृधः ॥ ४३ ॥
तावांस्ते मघवन् महिमोपो ते तन्वः शतम् ॥ ४४ ॥
उपो ते बद्धे बद्धानि यदि वासि न्यर्बुदम् ॥ ४५ ॥

उनसे दिन प्रकट हुआ और वह दिन से प्रकट हुए ॥ २९ ॥ रात्रि भी उन्हीं से प्रकट हुई और वह रात्रि से उत्पन्न हुए ॥ ३० ॥ अन्तरिक्ष उनसे प्रकट हुआ और वह अन्तरिक्ष से प्रकट हुए ॥ ३१ ॥ वायु उनसे प्रकट हुआ और वे वायु से प्रकट हुए ॥ ३२ ॥ आकाश उनसे प्रकट हुआ और वे आकाश से प्रकट हुए ॥ ३३ ॥ दिशाएं उनसे उत्पन्न हुई, वे दिशाओं से उत्पन्न हुए ॥ ३४ ॥ पृथिवी उनसे प्रकट हुई और वे पृथिवी से प्रकट हुए ॥ ३५ ॥ अग्नि उनसे प्रकट हुए और वे अग्नि से प्रकट हुए ॥ ३६ ॥ जल उनसे प्रकट हुए, वे जल से प्रकट हुए ॥ ३७ ॥ ऋचाएं उनसे उत्पन्न हुईं वे ऋचाओं से उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ यज्ञ उनसे प्रकट हुआ वे यज्ञ से प्रकट [illegible]

यज्ञ उनका है, वे यज्ञ एवं यज्ञ के शीर्ष रूप हैं ॥ ४० ॥ वही दमकते और कड़कते हैं, वही उपल गिराते हैं ॥ ४१ ॥ तुम पापियों को, कल्याणकारी पुरुष को, असुर को और ओषधियों को उत्पन्न करते हो, कल्याणमयी वृष्टि रूप में बरसते और उत्पन्न हुओं को बढ़ाते हो ॥ ४२-४३ ॥ तुम मघवन् हो, तुम सैकड़ों देहों से युक्त हो और महिमा द्वारा महान् हो ॥ ४४ ॥ तुम सैकड़ों बँधे हुओं के बाँधने वाले तथा अन्त रहित हो ॥ ४५ ॥

४ (५) सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अध्यात्मम्। छन्द—गायत्री, उष्णिक्, बृहती; अनुष्टुप्)

भूयानिन्द्रो नमुराद् भूयानिन्द्रासि मृत्युभ्यः ॥ ४६ ॥
भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः प्रभूरिति-
त्वोपास्महे वयम् ॥ ४७ ॥
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥ ४८ ॥
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ४९ ॥
अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५० ॥
अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५१ ॥

ये इन्द्र नमुर से श्रेष्ठ हैं। हे इन्द्र ! तुम मृत्यु के कारणों से भी उत्कृष्ट हो ॥ ४६ ॥ हे इन्द्र ! तुम दान प्रतिबंधिका शक्ति से भी श्रेष्ठ हो, तुम वैभववंत और स्वामी हो। हम तुम्हारी आराधना करते हैं ॥ ४७ ॥ हे इन्द्र ! मुझे यश, तेज और ब्रह्मवर्च से देखो। तुमको नमस्कार है ॥४८-४९॥ जल, पौरुष, महत्ता और सम्पन्नता के रूप में हम तुम्हारी आराधना करते हैं ॥ ५० ॥ जल, अरुण, रजत, रज और सह रूप में हम तुम्हारी आराधना

करते हैं। तुम इनको अन्नवान होकर देखो। हम तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥ ५१ ॥

४ [६] सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अध्यात्मम्। छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक्; बृहती)

उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५२ ॥

प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५३ ॥

भवद्वसुरिदद्वसुः संयद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम् ॥५४॥
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥ ५५ ॥

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५६ ॥

उरु, पृथु, सुभूः भुवः इस रूप में हम तुम्हारी आराधना करते हैं ॥ ५२ ॥ प्रथ, वर, व्यच, लोक इस रूप में हम तुम्हारी आराधना करते हैं ॥ ५३ ॥ भवद्वसु, इदद्वसु, संयद्वसु और आयद्वसु के रूप में हम तुम्हारी आराधना करते हैं ॥ ५४ ॥ हे इन्द्र ! मुझे अन्न, यश तेज और ब्रह्मवर्च से देखो। तुम्हारे लिए मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ५५-५६ ॥

॥ त्रयोदशं काण्डं समाप्तम् ॥

चतुर्दश काण्ड



१ सूक्त [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि—सावित्री सूर्या । देवता—आत्मा; सोमः; विवाहः; वधूवासः संस्पर्शमोचनम्; विवाहमन्त्राशिषः । छन्द-अनुष्टुप्; पङ्क्तिः; त्रिष्टुप् जगती; बृहती; उष्णिक्)

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥ १ ॥
सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥
सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः ॥ ३ ॥
यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥ ४ ॥
आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥ ५ ॥
चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ॥ ६ ॥
रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृता ॥ ७ ॥
स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः ॥ ८ ॥

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादधात् ॥ ९ ।
मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या पतिम् ॥ १० ॥-

सत्य से ही पृथिवी, सूर्य और आकाश में चन्द्रमा स्थित हैं। सूर्य से आकाश स्थित है ॥ १ ॥ सोम से यह पृथिवी पूजित है, उन्हीं से सूर्य बल युक्त हैं इसीलिए यह सोम नक्षत्रों के पास रहते हैं ॥ २ ॥ जो सोम रूप औषधि को पीसकर पीते हैं, वे अपने को सोम पीने वाला समझते हैं। यह सोमयाग ही सोम नहीं है। ज्ञानी जन जिस सोम को जानते हैं उसे साधारण प्राणी भक्षण नहीं कर सकते ॥ ३ ॥ हे सोम! पुरुष तुम्हें पीते हैं फिर भी तुम वृद्धि को प्राप्त होते रहते हो। सम्वत्सरों में मास रूप वायु इस सोम की रक्षा करता है ॥ ४ ॥ हे सोम! बृहतीछन्दात्मक कर्मों से और आच्छद् विधानों से तुम रक्षित हो और सोम कूटने के पाषाण के शब्द से ठहरते हो। पार्थिव जीव तुम्हारा सेवन नहीं कर सकते ॥ ५ ॥ जब सूर्या पति के पास गई, तब ज्ञान उपबर्हण, चक्षु अभ्यंजन और आकाश-पृथिवी कोश बने ॥ ६ ॥ ज्योतिनी रैभ्या सूर्या के साथ गई। वह गाथाओं से सजकर सूर्या के परिधान को लेकर चलती थीं ॥ ७ ॥ उस समय छन्द स्त्रीत्व के लक्षण केश जाल हुए, स्तुतियाँ प्रविधि हुए, अग्नि पुरोगव और अश्विनीकुमार सूर्या के वर हुए ॥ ८ ॥ पति की कामना वाली सूर्या को जब सूर्य ने दिया तब सोम वधूयु हुए, अश्विनीकुमार वर हुए ॥ ९ ॥ जब सूर्या पति को मिली तब मन रथ हुआ, शुभ्रवा वृषभ हुए और द्यौ गृह होगया ॥ १० ॥

ऋक्सामाभ्यामभिहितो गावौ ते सामनावैताम् ।
श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥ ११ ॥
शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत् प्रयती पतिम् ॥ १२ ॥
सूर्याया वहतुः प्रागात् सवि ॥ यमवासृजत् '

मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्युह्यते ॥ १३ ॥
यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
कैकं चक्रं वामासीत् क्वदेष्ट्राय तस्थथुः ॥ १४ ॥
यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
विश्वे देवा अनु तद् वामजानन् पुत्रः पितरमवृणीत पूषा॥१५॥
द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद् विदुः ॥ १६ ॥
अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनात् प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ॥ १७ ॥
प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयामिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥ १८ ॥
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ते अस्तु सहसंभलायै।।१९।।
भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि।२०

ऋक् साम से अभिहित दो गो-साम प्राप्त हुए। आकाश के मार्ग ने उन्हें तेरे कानों के रूप में किया ॥ ११ ॥ हे सूर्ये ! ज्योतिर्मान सूर्य और चन्द्रमा चक्र बने, व्यान अक्ष बना और तब तू मनस्मय रथ पर आरूढ़ होकर पति गृह को जाने लगी ॥ १२ ॥ सविता ने सूर्या को दहेज दिया। फाल्गुनी नक्षत्र में बैलों से रथ खिचवाया जाता और मघा नक्षत्र में उन्हें चलाया जाता है ॥ १३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जब तुम सूर्या का वहन करने के लिये अपने तीन पहिये वाले रथ से आये थे, तब तुमसे पूछा गया था कि तुम्हारा एक चक्र कहाँ गया ? तुम अपने-अपने कर्मों में लगे हुओं में से किसके पास ठहरे थे ? ॥ १४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! सूर्या को श्रेष्ठ समझ कर जब तुम उसे वरण करने को आये तब विश्वेदेवों ने तुम्हें जाना और नरक से बचाने वाले सूर्य ने पालक का वरण किया ॥ १५ ॥ हे सूर्ये ! तेरे दोनों चक्र ऋतु के

अनुसार ब्राह्मणों द्वारा जाने जाते हैं। तेरे एक गूढ़ चक्र के ज्ञाता भी विद्वान् ही हैं ॥ १६ ॥ सुन्दर बन्धुओं से युक्त रखने वाले और पति को प्राप्त कराने वाले देवता अर्यमा का हम पूजन करते हैं। ककड़ी के डंठल से पृथक् होने के समान मैं इस कन्या को यहाँ पृथक् करता हूँ, परंतु इसे पतिकुल से पृथक् नहीं करता ॥ १७ ॥ मैं इसे पृथक् करता हूँ, पतिकुल से भले प्रकार युक्त करता हूँ। हे सिंचन शक्ति वाले इन्द्र! यह कन्या सौभाग्यवती और सुपुत्री हो ॥१८॥ सूर्य ने जिस वरुणपाश से तुझे बाँध रखा था, मैं तुझे उससे मुक्त करता हूँ। तू मधुरभाषिणी,सत्य रूप,श्रेष्ठ कर्मों के फल वाले लोकमें सुखी हो ॥ १६ ॥ सौभाग्य प्रदान करने वाले भग देवता तुझे हाथ पकड़ कर और अश्विनीकुमार तुझे रथ में ले जाँय। तू अपने घर को प्राप्त होती हुई पालन करने वाली तथा सबको वश करने वाली हो और सुन्दर वाणी कहती रहे ॥ २० ॥

इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं सं स्पृशस्वाथ जिर्विविदथमा वदासि ॥२१॥
इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥२२॥

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूंरन्यो विदधज्जायसे नवः॥२३॥
नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः॥२४॥

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥२५॥
नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥२६॥

अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।

पतिर्यद् वध्वो वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णुते ॥२७॥
आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥२८॥
तृष्टमेतत् कटुकमपाष्ठवद् विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद् वाधूयमर्हति ॥२९॥
स इत् तत् स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम् ।
प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येन जाया न रिष्यति ॥३०॥

तू अपने घर में गार्हपत्य अग्नि के लिए सचेत रह, इस पति से अपने को स्पर्श करने वाली हो। तेरी सन्तान के लिए प्रिय वस्तुएं बढ़ें, तू आयु के पूर्ण होने तक बोलने वाली हो ॥२१॥ तुम दोनों साथ रहो, पृथक् न होओ, जीवन पर्यन्त अनेक प्रकार के भोजन करो, पुत्रादि के साथ क्रीड़ा करो और मङ्गल से युक्त होते हुए सदा प्रसन्न रहो ॥२२॥ यह सूर्य और चन्द्रमा शिशु के समान खेलते हुए पूर्व पश्चिम में गमन करते हैं। इनमें से एक, लोकों को देखता हुआ ऋतुओं को उत्पन्न करता और नये रूप में प्रकट होता है ॥२३॥ हे चन्द्र! तुम मास में स्थित हुए सदा नवीन रहते हो। अपनी कला को घटाते-बढ़ाते हुए प्रतिपदा आदि दिनों को करते हो। तुम उषाकाल में आगे आकर देवताओं को भाग देते और दीर्घजीवन प्रदान करते हो ॥२४॥ यह कृत्या पति में प्रविष्ट होती है। हे वर! तुम शामुल्य देते हुए ब्राह्मणों को धन दो ॥२५॥ इस नीले लाल वस्त्र में कृत्या की आसक्ति उद्भूत होती है (इसके न देने पर) इस वधु के बांधव वृद्धि को प्राप्त होते हैं परंतु पति अवरुद्ध होजाता है ॥२६॥ वधू के वस्त्र से अपने अङ्ग को ढकने वाले पति को पाप दोष लगता है और उसका शरीर घृणित होजाता है ॥२७॥ आशसन, विशसन और अधोविकर्त्तन सूर्या के इन रूपों को देखो, इन्हें ब्रह्मा ही सजाता है ॥ २८ ॥ यह वस्त्र प्यास लगाता है, कड़ुआ है, अपाष्ठवद् है और विष के समान है। सूर्या का ज्ञाता ब्रह्मा ही वधु के वस्त्र के योग्य है ॥ २९ ॥ जिस वस्त्र से प्रायश्चित् होता है, जिससे पत्नी मरण को प्राप्त नहीं होती, उस कल्याणकारी वस्त्र को ब्रह्मा धारण करता है ॥ ३० ॥

युवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु ।
ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम् ।३१।
इहेदसाथ न परो गमाथेमं गावः प्रजया वर्धयाथ ।
शुभं यतीरुस्रियाः सोमवर्चसो विश्वे देवाः क्रन्निह वो मनांसि ३२
इमं गावः प्रजया सं विशाथायं देवानां न मिनाति भागम् ।
अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति।३३
अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम्।
सं भगेन समर्यम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा ॥३४॥
यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदा हितम् ।
यद् गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम् ॥३५॥
येन महानघ्न्या जघनमश्विना येन वा सुरा ।
येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ॥३६॥
यो अनिध्मो दीदयदप्स्वन्तर्यं विप्रास ईडते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्यावान्॥३७॥
इदमहं रुशन्तं ग्राभं तनूदूषिमपोहामि ।
यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि ॥ ३८ ॥
आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नीरुदजन्त्वापः ।
अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन् प्रतीक्षन्ते श्वसुरो देवरश्च ॥३९॥
शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्म ।
शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्या तन्वं सं स्पृशस्व ४०

तुम दोनों सत्य बोलते हुए सौभाग्य को प्राप्त होओ। हे ब्रह्मणस्पते ! तुम इसके लिए पति को स्वीकार करो और वह भी स्वीकृत रूप वाणी को कहे ॥ ३१ ॥ तुम आगे मत जाओ, यहाँ बैठो, यह कल्याणमयी धेनु है। तुम दोनों ही सन्तान से वृद्धि को प्राप्त होओ, विश्वे देवता तुम्हारे मनों को

उज्वल बनावें ॥३२॥ यह गौएं इसे मिलें। इस देव-भाग का विभाजन नहीं होता। तुम्हें पूषा, मरुद्गण, धाता और सविता देव भी इसकी प्रेरणा दें ॥ ३३ ॥ जिन मार्गों से हमारे मित्र गमन करते हैं, वे मार्ग कण्टक रहित और सुगम हों। धाता तुम्हें तेजस्वी और सौभाग्यवान् बनावें ॥ ३४ ॥ जो वर्च गौओं में, पाशों में और सुरा में है, उस वर्च से हे अश्विद्वय ! तुम इसकी रक्षा करने वाले होओ ॥३५॥ हे अश्विद्वय ! जिस वर्च से सुरा और पाशों का अभिसिंचन हुआ और जिस वर्च से जघन महान् हुआ है, उस वर्च से मेरी रक्षा करो ॥ ३६ ॥ जो ज्वलित न होकर भी जलों में हिंसन कर्म से सम्पन्न है, जिसकी यज्ञों में ब्राह्मण स्तुति करते हैं और जो जलों के पोषक हैं, ऐसे तुम मधुर जलों को प्रदान करो, इसी के द्वारा इन्द्र प्रवृद्ध होते हैं ॥ ३७ ॥ शरीर के दूषित करने वाले मल को मैं पृथक् करता हूँ और कल्याण को देने वाले शोभन पदार्थों को ग्रहण करता हूँ ॥ ३८ ॥ ब्राह्मण इसके लिए स्नान करने वाले जलों को लावें, वीरों को मारने वाले जल इसे प्राप्त हों। हे पूषन् ! अर्यमा से यह अग्नि को प्राप्त करे। इसके श्वसुर और देवर इसकी प्रतीक्षा में हैं ॥ ३९ ॥ हे वधु ! तेरे लिए जल कल्याणमय हों, सुवर्ण सुख देने वाला हो, आक्रोश सुखदायी हो, तू कल्याण को प्राप्त करती हुई अपने पति-देह का स्पर्श कर ॥ ४० ॥

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् । ४१॥
आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् ।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ॥४२॥
यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा ।
साम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु साम्राज्युत देवृषु ।
ननान्दुः साम्राज्ञ्येधि साम्राज्युत श्वश्र्वाः ॥४४॥
या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे या देवीरन्तां अभितोऽददन्त ।
तास्त्वा जरसे सं व्ययन्त्वायुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ।४५।

जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे ४६
स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥४७॥
येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।
तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया धनेन च ४८
देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु ।
अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु ॥४९॥
गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥५०॥

हे सैकड़ों कर्म वाले इन्द्र ! रथाकाश में तीन बार पवित्र करके मैंने अपाला को सूर्य के समान दमकती हुई त्वचा से युक्त किया है ॥ ४१ ॥ तू सन्तान, धन, सौभाग्य और प्रसन्नता की कामना वाली होकर पति के अनुकूल रह और इस अमृतमय सुख को अपने वश में कर ॥ ४२ ॥ अमृतवर्षक समुद्र नदियों के राज्य को पाता है, वैसे ही तू पतिगृह को प्राप्त होकर साम्राज्ञी के समान हो ॥ ४३ ॥ तू श्वसुर, देवर, ननद और सास सभी में साम्राज्ञी बन कर रह ॥ ४४ ॥ जिन स्त्रियों ने इस वस्त्र को कात, बुनकर विस्तृत किया है, वे देवियाँ तुझे वृद्धावस्था वाली बनावें। हे आयुष्मती ! तू इस वस्त्र को धारण कर ॥ ४५ ॥ कन्या रूप यज्ञ को जब पुरुष ले जाते हैं, सन्तानात्मक तन्तु वाला पुरुष कन्या का शोक करता है, और कन्यापक्ष के प्राणी उसके लिए रोते हैं। हे वधू ! इसे करने वाले पितरों को वाम करते हैं। इसलिए तू श्वसुर आदि वरपक्ष और उत्पादनकर्ता मातृपक्ष का आलिंगन कर ॥४६॥ मैं इस पाषाण को पृथिवी पर प्रतिष्ठित करता हूँ तू शोभन रूप वाली सबको प्रसन्न करने वाली इस पाषाण पर बैठ। सविता तेरी आयु वृद्धि [illegible] ॥ हे जाये ! जिसलिए अग्नि ने इस भूमि के दाँये हाथ को पकड़ा है मैं तेरा हाथ ग्रहण करता हूँ। तू दुःखी न हो, मेरे साथ सन्तान

त निवास कर ॥ ४८ ॥ सविता तेरे हाथ को ग्रहण करें, सोम तुझे
ानवती बनावें, अग्नि तुझे सौभाग्यवती करते हुए वृद्धावस्था तक पति के
थ रहने वाली बनावें ॥ ४९ ॥ हे वधु ! तू मेरे साथ वृद्धावस्था तक रहे,
लिए तेरे हाथ को ग्रहण करता हूँ। तू सौभाग्यवती रहे। भग, अर्यमा,
विता और लक्ष्मी ने तुझे गृहस्थ धर्म के लिए मुझे प्रदान की है ॥५०॥

भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥ ५१ ॥
ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ॥ ५२ ॥
त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया॥५३॥
इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥५४॥
बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशाँ अकल्पयत् ।
तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि ॥ ५५ ॥
इदं तद्रूपं यदवस्त योषा जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः क इमान् विद्वान् वि चचर्त पाशान् ॥५६॥
अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित् पश्यन् मनसः कुलायम् ।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ॥५७॥
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ॥५८॥
उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथेमां नारीं सुकृते दधात ।
धाता विपश्चित् पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु प्रजानन् ॥५९॥
भगस्ततक्ष चतुरः पादान् भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्रान्त्सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥६०॥

सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम्॥६१॥
अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते।
इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमास्मभ्यं सवितर्वह ॥६२॥
मा हिंसिष्टं कुमार्यं स्थूणे देवकृते पथि।
शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृण्मो वधूपथम् ॥६३॥
ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥६४॥

भग ने और सूर्य ने तेरा हाथ पकड़ा है, इसलिए तू धर्मपूर्वक मेरी भार्या है और मैं तेरा पति हूँ ॥ ५१ ॥ बृहस्पति ने तुझे मेरे लिए दिया है। तू मुझ पति के साथ रहती हुई संतानवती हो और सौ वर्ष तक की आयु भोगती हुई मेरी पोष्या रह ॥ ५२ ॥ हे शुभे ! त्वष्टा ने इस कल्याणकारी वस्त्र को बृहस्पति की आज्ञा से निर्मित किया है। सविता और भग देवता सूर्या के समान ही इस स्त्री को इस वस्त्र द्वारा संतानादि से सम्पन्न करें ॥५३॥ अश्विद्वय, इन्द्राग्नि, मित्रावरुण, आकाश-पृथिवी, बृहस्पति, वायु, मरुद्गण, ब्रह्म और सोमदेवता इस स्त्री की संतान से वृद्धि करें ॥ ५४ ॥ हे अश्विद्वय ! बृहस्पति ने सूर्या के शिर का केशविन्यास किया था, उसी के अनुसार हम वस्त्रादि द्वारा इस स्त्री को पति के निमित्त सजाते हैं ॥ ५५ ॥ इस रूप को योषा धारण करती है। मैं योषा को जानता हूँ। मैं इसकी नवीन चाल वाली सखियों के अनुसार चलूँगा। यह केशविन्यास [illegible] ने किया है ॥५६॥ मैं इसके मन रूप हृदय को जानता हुआ और इसके रूप को देखता हुआ, अपने से आबद्ध करता हूँ। मैं चोरी कर्म नहीं करता। स्वयं मन [illegible] केशों को गूँथता हुआ वरुण-पाशों से मुक्त करता हूँ ॥ ५७ ॥ जिस [illegible] ने तुझे वरुण-पाश में बाँधा है, उनसे मैं तुझे मुक्त करता हूँ ! हे [illegible] तेरे साथ लोक के इस विस्तृत [illegible] करता हूँ ॥ ५८ ॥ [illegible] करो, राक्षसों को मारो, इन [illegible] करो। [illegible]

दिया है, विद्वान् जन इसके सामने हों ॥ ५९ ॥ जन ने इसके चारों पद और चारों उपस्तों को रचा, मध्य में धर्मों को बनाया, वह हमको सुन्दर कल्याण के देने वाली हो ॥ ६० ॥ हे वधू! तू वरणीय, दमकने वाले, सुदीप्त देहन पर चढ़ और इसे पति और इसके पंच के सब पालकों के लिए कल्याणकारी बना ॥ ६१ ॥ हे बृहस्पते! हे इन्द्र! हे सवितादेव! इस वधू को आत्मा, पति, पशु आदि की चय करने वाली सब बनाओ। इसे पुत्र, धन आदि से सम्पन्न रूप में इसे प्राप्त कराओ ॥ ६२ ॥ हे देव! इस वधू को वहन करने वाले रथ की हानि मत पहुँचाओ, हम शाला के द्वार पर इस वधू के मार्ग को कल्याण-मय बनाते हैं ॥ ६३ ॥ आगे, पीछे, भीतर, बाहर, मध्य में सब और ब्राह्मण रहें। तू देवताओं के निवास वाली रोग-रहित शाला को प्राप्त हो और पति गृह में मंगलमयी होती हुई प्रसन्न रह ॥ ६४ ॥

२ सूक्त [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि—सावित्री सूर्या। देवता—आत्मा; यक्ष्मनाशनी; दम्पत्योः परिपन्थिनाशनी; देवाः। छन्द—अनुष्टुप्; जगती; अष्टिः त्रिष्टुप्, बृहती; गायत्री पंक्तिः; उष्णिक्, शक्वरी)

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह।
स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥१॥
पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥२॥
सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥३॥
सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो ददग्नये।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥४॥
आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अरंसत।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्यां अशीमहि ॥५॥
सा मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम्।

सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मतिं हतम्॥६॥
या ओषधयो या नद्यो यानि क्षेत्राणि या वना ।
तास्त्वा वधु प्रजावती पत्ये रक्षन्तु रक्षसः ॥ ७ ॥
एमं पन्थामरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् ।
यस्मिन् वीरो न रिष्यत्यन्येषां विन्दते वसु ॥ ८ ॥
इदं सु मे नरः शृणुत ययाशिषा दम्पती वाममश्नुतः ।
ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीरेषु वानस्पत्येषु येऽधि तस्थुः ।
स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम् ॥६॥
ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनां अनु ।
पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥१०॥

हे अग्ने ! दहेज के साथ सूर्या को तुम्हारे लिए ही लाये थे । तुम हमको सन्तानवती पत्नी दो ॥ १ ॥ अग्नि ने आयु और तेज के सहित हमें पत्नी प्रदान की है, इसका पति भी दीर्घजीवी हो वह सौ वर्ष की आयु पावे ॥ २ ॥ तू पहले सोम की पत्नी हुई, फिर गंधर्व की और अग्नि तेरा तृतीय पति हुआ । मैं मनुज तेरा चतुर्थ पति हूँ ॥ ३ ॥ सोम ने तुझे गंधर्व को दी, गंधर्व ने अग्नि को और अग्नि ने तुझे मेरे लिए दे दी और धन तथा पुत्रों से भी सम्पन्न किया ॥ ४ ॥ हे उषाकालीन ऐश्वर्य वाले अश्विद्वय ! तुम्हारे हृदय में जो अभीष्ट रहते हैं, वह तुम्हारी कृपापूर्ण बुद्धि द्वारा हमको मिलें । तुम हमारे प्रिय तथा रक्षा करने वाले होओ । हम सूर्य की कृपा से गृहों में भोग करने वाले हों ॥ ५ ॥ तुम कल्याणकारी मन से वीरों से युक्त धन का पोषण करो । हे अश्विद्वय ! तुम इस तीर्थ को सुफल करते हुए मार्ग में प्राप्त दुर्मति आदि को दूर कर दो ॥ ६ ॥ हे वधु ! औषधि, नदी, क्षेत्र और वन तुझे संतानवती बनावें, और तेरे पति की दुष्टों से रक्षा करें ॥ ७ ॥ हम इस सुख-मय वाहन वाले मार्ग पर चलते हैं, इसमें वीरों की हानि नहीं होती और अन्यों का धन प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ मनुष्यो ! मेरी बात सुनो, वनस्पतियों में गंधर्व हैं अप्सराएं हैं, वे इसे सुख देने वाली हों और इस दहेज

नष्ट न करें। इन आशीर्वादात्मक वाणी से यह दोनों उत्तम पदार्थों का उपभोग करें ॥ ९ ॥ चन्द्रमा के समान प्रसन्नताप्रद दहेज की ओर जो विनाशक साधन आते हैं, वे जहाँ से आते हों वहीं उन्हें यज्ञीय देवता पहुँचावें ॥१०॥

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती ।
सुगेन दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥ ११ ॥
सं काशयामि वहतुं ब्रह्मणा गृहैरघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति स्योनं पतिभ्यः सविता तत् कृणोतु ॥१२॥
शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।
तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु ॥ १३ ॥
आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजमस्याम् ।
सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः ॥१४॥
प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति ।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ १५ ॥
उद् व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसावघ्न्यावशुनमारताम् ॥ १६ ॥
अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः ।
वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना ॥ १७ ॥
अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥ १८ ॥
उत्तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमागा अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात् ।
शून्यैषी निर्ऋते याजगन्धोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रंस्थाः ॥ १९ ॥
यदा गार्हपत्यमसपर्यैत् पूर्वमग्निं वधूरियम् ।
अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ॥ २० ॥

दम्पति के समीप जो दस्यु आना चाहते हैं, वे इन्हें प्राप्त न कर सकें।

हम इस दुर्गम मार्ग को सुगमता से पार करें और हमारे शत्रु दुर्गति में पड़ें ॥ ११ ॥ मैं दहेज को मंत्रों, नेत्रों और नक्षत्रों के द्वारा दीप्त करता हूँ। इसमें विभिन्न प्रकार के जो पदार्थ हैं, उन्हें सविताद्देव प्राप्त करने वालों को सुख देने वाले बनावें ॥ १२ ॥ इस स्त्री के लिये धाता ने घर रूप लोक बनाया है यह कल्याणी इसे प्राप्त हो गई है। इस वधू को अश्विद्वय, अर्यमा, भग और प्रजापति संतान से प्रवृद्ध करें ॥ १३ ॥ हे पुरुष! तू इस उर्वरा नारी में बीज वपन कर। ऋषभ के समान तेरे वीर्य और दूध को धारण करने वाली यह तेरे निमित्त संतानोत्पत्ति करे ॥ १४ ॥ हे सरस्वति! तू विष्णु के समान विराट् है इसलिये तू प्रतिष्ठित हो। हे सिनीवालि! तू भग देवता की सुन्दर मति में रहती हुई संतान उत्पन्न कर ॥ १५ ॥ हे जलो! अपनी कर्म की तरङ्गों को शांत करो, लगामों को ढीला करो। यह श्रेष्ठ कर्म वाले, न मारने योग्य वाहन 'अशुन' न करने लगें ॥ १६ ॥ हे वधू! तू स्निग्ध दृष्टि रखती हुई, पति को पीड़ा न करने वाली हो। तू वीर पुत्रों का प्रसव करती हुई और मनमें प्रसन्न होती हुई सबको सुख देने वाली होती हुई इस घर को प्राप्त हो। हम भी तेरे द्वारा बढ़ें ॥ १७ ॥ हे वधू! पति और देवर को हानि न पहुँचाने वाली, पशुओं का हित करने वाली, प्रजावती, शोभन कांति वाली, सुख देने वाली होती हुई, देवर का अहित चिंतन न करने वाली होती हुई तू अग्नि का पूजन कर ॥ १८ ॥ हे निर्ऋते! यहाँ से उठकर भाग। तू किस वस्तु की इच्छा से यहाँ उपस्थित हुई है? मैं तुझे अपने घर से भगाता हुआ तेरा सत्कार करता हूँ। तू शत्रु रूपिणी शून्य की कामना से यहाँ आई है, परन्तु तू विहार न कर ॥ १९ ॥ गृहस्थ रूप आश्रम में प्रविष्ट होने से पूर्व यह वधू अग्नि-पूजन कर रही है। हे स्त्री! अब तू सरस्वती को और पितरों को नमस्कार कर ॥ २० ॥

शर्म वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरे।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ २१ ॥
यं बल्वजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन।
तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् ॥ २२ ॥

उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते ।
तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु ॥ २३ ॥
आ रोह चर्मोप सीदाग्निमेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा ।
इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै सुज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एषः ॥२४॥
वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो जायमानाः ।
सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं संपत्नी प्रति भूषेह देवान् ॥ २५ ॥
सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः ।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ॥ २६ ॥
स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ॥ २७ ॥
सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्मै दत्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन ॥ २८ ॥
या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि ।
वर्चो न्वस्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन ॥ २९ ॥
रुक्मप्रस्तरणं वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम् ।
आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ॥ ३० ॥

इस स्त्री के लिये मृगचर्म रूप आसन में मंगल और रक्षा को व्याप्त कर । यह भग देवता प्रसन्न रहें । हे सिनीवालि, यह स्त्री संतानोत्पत्ति करती रहे ॥ २१ ॥ तुम्हारे द्वारा रखे गये तृण और मृगचर्म पर यह प्रजावती और पति-कामा कन्या बैठे ॥ २२ ॥ रोहित मृग के चर्म पर 'बल्बज' को विस्तृत करो, उस पर प्रतिष्ठित होकर यह प्रजावती स्त्री अग्नि देव का पूजन करे ॥२३॥ हे स्त्री ! इस मृगचर्म पर चढ़कर अग्निदेव के पास बैठ । यह देवता सब राक्षसों को मारने में समर्थ हैं । तू इस गृह में अपनी प्रथम संतान को उत्पन्न कर यह तेरा ज्येष्ठ पुत्र कहावेगा ॥ २४ ॥ इस माता से अनेक पुत्र प्रकट होकर गोद में बैठें । हे सुन्दर कल्याण वाली स्त्री ! तू अग्नि के पास बैठ कर इन

सब देवताओं को सुशोभित कर ॥ २५ ॥ तू कल्याणमयी, पति को सुख देने वाली, घर का कार्य चलाने वाली, श्वसुर और सास के लिए सुखमयी होती हुई गृह-प्रवेश कर ॥ २६ ॥ तू पति को सुख देने वाली हो, घर के लिए मङ्गलमयी हो, श्वसुर के लिए कल्याण करने वाली हो, तू सब सन्तानों को सुख दे और उनका पोषण करती रह ॥ २७ ॥ यह वधू कल्याणमयी है, सब मिलकर इसे देखो। इसके दुर्भाग्य को दूर करते हुए सौभाग्य प्रदान करो ॥ २८ ॥ दूषित हृदय वाली स्त्रियाँ तथा वृद्धाएँ इसे तेज प्रदान करती हुई चली जाँय ॥ २९ ॥ मन को अच्छा लगने वाले बिछौने युक्त इस सुन्दर पर्यंक पर सूर्या सुख की प्राप्ति के लिए चढ़ी थी ॥ ३० ॥

आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ॥३१॥
देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्व स्तनूभिः ।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह ॥३२॥
उत्तिष्ठेतो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा ।
जामिमिच्छ पितृषदं न्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥३३॥
अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि ॥३४॥
नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुषे च कृण्मः ।
विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोऽभि जाया अप्सरसः परेहि ॥३५॥
राया वयं सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वमावीवृताम ।
अगन्त्स देवः परमं सधस्थमगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥३६॥
सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः ।
मर्यइव योषामधि रोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥३७
तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति ।

या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ॥३८॥
आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः ।
प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ॥३९॥
आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४०॥

हे स्त्री ! तू प्रसन्नता से इस पर्यंक पर चढ़ और पति के लिए संतानोत्पत्ति कर। तू समान बुद्धि से सम्पन्न रह और नित्य उषाकाल में जागने वाली हो ॥ ३१ ॥ देवताओं ने भी पूर्वकाल में पर्यंक पर आरोहण कर अपने अङ्गों को पत्नी के अङ्गों से युक्त किया था। हे स्त्री ! तू सूर्या के समान ही पति के संग रहती हुई सन्तानवती हो ॥ ३२ ॥ हे विश्वावसो ! यहाँ से उठ, हम तुझे नमस्कार करते हैं। पितृगृह जातीहुई 'जामिस' ही तेरा भाग है उसी की उत्पत्ति को तू जान ॥ ३३ ॥ प्राणियों के प्रसन्न होने वाले स्थान में, हविर्धान और सूर्य को देखकर अप्सराएं हर्षित होती हैं, वही तेरी उत्पत्ति का स्थान है इसलिए वहीं जा। मैं तुझे नमस्कार पूर्वक गंधर्वों के गमन के साथ ही प्रेरित करता हूँ ॥३४॥ गंधर्व के क्रोधमय नेत्र को नमस्कार! हे विश्वावसो! हमारे मन्त्र और नमस्कार को स्वीकार करते हुए तुम अप्सराओं से इस नारी को दूर रखो ॥ ३५ ॥ हम हर्ष प्रदायक हों। हम गंधर्वों को ऊर्ध्वगामी करते हैं। वह देवता परम सधस्थ को प्राप्त होगया। जहाँ आयु विस्तृत होती है, हम भी उस स्थान को प्राप्त हो गये हैं ॥ ३६ ॥ तुम दोनों माता-पिता बनने के निमित्त ऋतुकाल में मिलो। वीर्य द्वारा माता-पिता बनो। मानवी विधि से आरोहण करो और संतानोत्पत्ति करो ॥ ३७ ॥ हे पूषन् ! जिसमें बीज वपन होता है, उस कल्याणी स्त्री को प्रेरित करो। वह प्रेम करती हुई अंग विस्तृत करके सन्तानोत्पादन के कर्म में संलग्न हो ॥ ३८ ॥ तू जाया का स्पर्श कर। प्रसन्न होते हुए तुम दोनों प्रजोत्पत्ति कर्म करो। सविता तुम्हारी आयु वृद्धि करें ॥ ३९ ॥ अर्यमा तुम्हें दिन रात्रि से मिलावें, प्रजापति तुम्हारे लिए प्रजोत्पत्ति करें। हे वधू ! तू अमंगलों से पृथक् रहती हुई इस गृह में प्रविष्ट हो और दुपाये चौपाये सभी को सुख देने वाली बन ॥ ४० ॥

देवैर्दत्तं मनुना साकमेतद् वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद् रक्षांसि तल्पानि हन्ति ॥४१
यं मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोर्वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
युवं ब्रह्मणेऽनुमन्यमानौ बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम् ॥४२॥
स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥४३॥
नवं वसानः सुरभिः सुवासा उदागां जीव उषसो विभातीः ।
आण्डात् पतत्रीवामुक्षि विश्वस्मादेनसस्परि ॥४४॥
शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।
आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥४५॥
सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः ॥४६॥
य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥४७॥
अपास्मत् तम उच्छतु नीलं पिशङ्गमुत लोहितं यत् ।
निर्दहनी या पृषातक्यस्मिन् तां स्थाणावध्या सजामि ॥४८॥
यावतीः कृत्या उपवासने यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशाः ।
व्यृद्धयो या असमृद्धयो या अस्मिन् ता स्थाणावधि सादयामि ॥४९॥
या मे प्रियतमा तनूः सा मे बिभाय वाससः ।
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं कृणुष्व मा वयं रिषाम ॥५०॥

देवताओं ने मनु सहित इस वधु के वस्त्र को दिया था। जो इस वाधूय वस्त्र को विद्वान् ब्राह्मण के लिए प्रदान करता है वह राक्षसों का नाश करने में समर्थ होता है ॥ ४१ ॥ जो वर का वस्त्र और वाधूय वस्त्र ब्रह्मभाग कर मुझे दिया गया है, हे बृहस्पति तुम इन्द्र और ब्रह्मा की सहमति से मुझे प्रदान कर चुके हो ॥ ४२ ॥ हम दोनों ही हास्य से प्रसन्नता को और

सुख से वंश को प्राप्त हों। हम सुन्दर गति वाले हों और पुत्रादि से सम्पन्न रहते हुए उषाओं को पार करते रहें ॥ ४३ ॥ मैं नवीन सुन्दर और सुरभित परिधान धारण कर उषाकालों को जीवित रहता हुआ पाऊँ। अण्ड से पक्षी के मुक्त होने के समान मैं भी सब पापों से छूट जाऊँ ॥ ४४ ॥ सुशोभित आकाश पृथिवी के मध्य चेतन अचेतन प्राणी वास करते हैं, यह विशाल कर्म वाले आकाश-पृथिवी और यह सात प्रकार के प्रवाहित जल हमको पाप से छुड़ावें ॥४५॥ सूर्या, देवगण, मित्र, वरुण सभी भूतों के जो जानने वाले हैं उन सबको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४६॥'जन्तुओं' के निमित्त जो 'अभिश्रिप' के बिना 'आतर्द्न' करता है, जो पुरूवसु विद्युत का निकालने वाला है और मघवा 'संधि' को मिलाता है ॥ ४७ ॥ नीला, पीला, लाल धुँआ हमारे पास से दूर हो। भस्म करने वाली 'पृपातकी' को स्थाणु में रखता हूँ ॥४८॥ उपवासन की समस्त कृत्याएं और वरुण के समस्त पाश, वृद्धि और असमृद्धि को स्थाणु में रखता हूँ ॥४९॥ हे वनस्पते! मेरा वस्त्र से सजा हुआ देह दमकता रहे तू उसके आगे नीचा कर, हम नाश को प्राप्त न हों ॥ ५० ॥

ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः ।
वासो यत् पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ॥५१॥
उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः ।
अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा ॥ ५२ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५३ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५४ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५५ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५६ ॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५७ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५८ ॥
यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तोऽघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ५९ ॥
यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्यघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६० ॥

किनारे, छिद्र, तन्तु, ओतु और पल्लियों द्वारा बुना हुआ वस्त्र हमको सुख देने वाला और कोमल स्पर्श वाला हो ॥ ५१ ॥ पितृगृह से पतिगृह को गमन करने वाली यह कन्याएं कामना करती हुईं दीक्षा को छोड़ती हैं ॥५२॥ बृहस्पति की यह औषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पुष्ट की गई है, हम उसे गौओं के वर्च में मिलाते हैं ॥ ५३ ॥ बृहस्पति की रची हुई यह औषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पुष्ट की गई है; हम इसे गौओं के तेज से सम्पन्न करते हैं ॥५४॥ बृहस्पति द्वारा रचित यह औषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पुष्ट की गई है, हम इसे गौओं के सौभाग्य से युक्त करते हैं ॥ ५५ ॥ बृहस्पति द्वारा रचित यह औषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पुष्ट की गई है, हम इसे गौओं में वर्तमान यश से जोड़ते हैं ॥ ५६ ॥ बृहस्पति द्वारा रचित यह औषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पोषित हुई है, हम इसे गौओं में वर्तमान दुग्ध से मिश्रित करते हैं ॥ ५७ ॥ बृहस्पति द्वारा प्रयुक्त यह औषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पुष्ट हुई है, हम इसे गोरस में मिलाते हैं ॥ ५८ ॥ कन्या के जाने से दुःखी हुए केश वाले पुरुष तेरे घर में रोते हुए घूमे हैं, उस पाप से अग्निदेव तुझे छुड़ावें ॥ ५९ ॥ तेरी पुत्री अपने केशों को फैला कर रोई है, उस पाप से सविता और अग्नि तुझे छुड़ावें ॥६०॥

यज्जामयो यद्युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीरघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६१ ॥
यत् ते प्रजायां पशुषु यद्वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघं कृतम् ।

अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६२ ॥
इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका ।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ ६३ ॥
इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती ।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥ ६४ ॥
यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम् ।
विवाहे कृत्यां यां चक्रुरास्नाने तां नि दध्मसि ॥ ६५ ॥
यद् दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत् ।
तत् संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ॥ ६६ ॥
संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ६७ ॥
कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः ।
अपास्याः केश्यं मलमप शीर्षण्यं लिखात् ॥ ६८ ॥
अङ्गादङ्गाद् वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि ।
तन्मा प्रापत् पृथिवीं मोत देवान् दिवं मा प्रापदुर्वन्तरिक्षम् ।
अपो मा प्रापन्मलमेतदग्ने यमं मा प्रापत् पितृंश्च सर्वान् ॥ ६९ ॥
सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम् ।
सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ॥७०॥

तेरी भगिनियाँ अथवा अन्य युवतियाँ दुःखित हुई, रोती हुई तेरे घर में घूमी हैं, उस पाप से सविता और अग्नि तुझे छुड़ावें ॥ ६१ ॥ तेरे घर, संतान और पशुओं में दुःख फैलाने वालों ने जो दुःख फैलाया है, उस पाप से अग्नि और सविता तुझे छुड़ावें ॥ ६२ ॥ खीलों की आहुति देती हुई यह वधू कामना करती है कि मेरा पति दीर्घजीवी और सौ वर्ष की आयु वाला हो ॥ ६३ ॥ हे इन्द्र ! इन पति-पत्नी को चकवी-चकवे के समान प्रीति दो । इन्हें सुन्दर गृह और संतान से युक्त रखो । यह जीवन-भर

विभिन्न भोगों को भोगते रहें ॥ ६४ ॥ संधान, उपधान या उपद्रासन जो दोष लगा है और विवाह कर्म में जिन्होंने कृपा की है, इन सब पापों को स्नान करने के स्थान में स्थित करते हैं ॥ ६५ ॥ विवाह के समय या दहेज में जो दोष बना है, उसे हम मधुर बोलने वाले के कम्बल में स्थित करते हैं ॥ ६६ ॥ कम्बल में दुरित और संभल में मल को स्थित करके यह यज्ञीय पुरुष शुद्ध हो गए। अब देव हमें पूर्ण आयु करें ॥ ६७ ॥ यह कृत्रिम रूप से बनाया गया सैकड़ों दाँतों वाला कंघा इसके शीर्ष स्थान पर पहुँचता हुआ शिर के मैल को हटावे ॥ ६८ ॥ इसके अङ्ग-अङ्ग से संहारक दोष को दूर करता हूँ, परन्तु वह दोष मुझे न लगे। पृथिवी, आकाश, अन्तरिक्ष, देवगण और जल को भी वह दोष न लगे । हे अग्ने ! यह दोष पितरों और उनके अधिष्ठात्री देवता यमराज को भी न लगे ॥ ६९ ॥ हे जाये ! पृथिवी के दूध के समान सारतत्व से और औषधियों के सार तत्व से मैं तुझे आबद्ध करता हूँ । तू प्रजा और धन से सम्पन्न होती हुई धन प्रदायिनी बन ॥ ७० ॥

अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।
ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ॥ ७१ ॥
जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः ।
अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥ ७२ ॥
ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन् ।
ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ॥ ३७ ॥
येदं पूर्वागन् रशनायमाना प्रजामस्यै द्रविणं चेह दत्त्वा ।
तां वहन्त्वगतस्यानु पन्थां विराडियं सुप्रजा अत्यजैषीत् ॥७४॥
प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥७५॥

हे जाये ! मैं साम हूँ तू ऋक् है, मैं आकाश हूँ तू पृथिवी है, मैं

विष्णु रूप और तू लक्ष्मी रूप है । हम यहाँ साथ साथ निवास करते हुए संतानोत्पत्ति करें ॥ ७१ ॥ हम दोनों को नदियाँ प्रकट रखें । हम मंगलमय दान के दाता पुत्र को पावें । हम विस्तृत अन्न प्राप्ति के लिए दोनों संयुक्त रहते हुए प्राणों से अहिंसित रहें ॥ ७२ ॥ वधू को देखने की इच्छा से इस दहेज के समीप आने वाले पितर इस शीलवती वधू को संतानयुक्त कल्याण प्रदान करने वाले हों ॥ ७३ ॥ पहिले रस्सी के समान बाँधने को जो नारी इस मार्ग को प्राप्त हुई थी, उस पहिले न चले हुए मार्ग में इस वधू को संतान और धन के द्वारा ले जाँय । यह महिमावती वृद्धि को प्राप्त होती रहे ॥ ७४ ॥ हे सुबुद्धे ! जगाई जाने पर तू सौ वर्ष की दीर्घायु प्राप्त करने के लिए जाग । तू गृह-पत्नी बनने के लिए घर चल । सविता देव तुझे दीर्घ जीवन दे ॥ ७५ ॥

॥ इति चतुर्दशं काण्डं समाप्तम् ॥

पंचदश काण्ड



१ सूक्त [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—पंक्ति, बृहती; अनुष्टुप्; गायत्री)

व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् ॥१॥
स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत् ॥२॥
तदेकमभवत् तल्ललाममभवत् तन्महदभवत् तज्ज्येष्ठमभवत्
तद् ब्रह्माभवत् तत् तपोऽभवत् तत् सत्यमभवत् तेन प्राजायत॥३

सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत् ॥ ४ ॥
स देवानामीशां पर्यैत् स ईशानोऽभवत् ॥ ५ ॥
स एकव्रात्योऽभवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः ॥ ६ ॥
नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् ॥ ७ ॥
नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन द्विषन्तं
विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥ ८ ॥

चलते हुए ही व्रात्य (समूहपति) ने प्रजापति को प्रेरणा दी ॥ १ ॥ प्रजापति ने अपने में सुवर्ण (आत्मा) को देखा और तब उसने सब को उत्पन्न किया ॥ २ ॥ प्रजापति ही ज्येष्ठ, महत्, ललाम, ब्रह्म, तप और सत्य हुआ उसी से यह उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥ वह वृद्धि को प्राप्त हुआ, वही महान् और महादेव हुआ ॥ ४ ॥ वह देवताओं का स्वामी हुआ, वही ईशान हुआ ॥ ५ ॥ वह सब समूहों का स्वामी एक 'व्रात्य' हुआ, उसने जो धनुष उठाया, वही इन्द्र धनुष कहलाया ॥ ६ ॥ उसका पेट नीला और पीठ लाल रङ्ग की है ॥ ७ ॥ अप्रिय शत्रु को वह नीले से घेरता और द्वेष करने वाले को लाल से विदीर्ण करता है, ब्रह्मवादी यह बताते हैं ॥ ८ ॥

२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता-अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्; पङ्क्तिः; गायत्री; जगती; बृहती; उष्णिक्)

स उदतिष्ठत् स प्राचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १ ॥
तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च विश्वे च देवा अनुव्यचलन् ॥२॥
बृहते च वै स रथन्तराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्य
आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥ ३ ॥
बृहतश्च वै स रथन्तरस्य चादित्यानां च विश्वेषां च देवानां
प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यां दिशि ॥ ४ ॥
श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णी-

केशा हरितौ प्रवर्तो कल्मलिर्मणिः ॥ ५ ॥
भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥ ६ ॥
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः
सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ ७ ॥
कीर्तिश्च यशश्च पुरः सरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या
यशो गच्छति य एवं वेद ॥ ८ ॥

वह उठकर पूर्व दिशा की ओर चल दिया ॥ १ ॥ बृहत् साम, रथन्तर साम, सूर्य और सब देवता उसके पीछे चले ॥ २ ॥ ऐसे विद्वान् ब्राह्मण का निन्दक बृहत्साम, रथन्तर साम, सूर्य और विश्वेदेवाओं की हिंसा करता है ॥ ३ ॥ (उसका सत्कार करने वाला) बृहत्साम, रथन्तर, सूर्य और सब देवताओं की प्रिय पूर्व दिशा में अपना प्रिय धाम बनाता है ॥ ४ ॥ श्रद्धा पुंश्चली, विज्ञान वस्त्र, दिन पाग, रात्रि केश, मित्र मागध हरित प्रवर्त, कल्मणि उसकी मणि होती है ॥ ५ ॥ भूत भविष्यत् परिस्कन्द और मन विपथ होता है ॥ ६ ॥ मातरिश्वा और पवमान विपथवाह, रेष्मा प्रतोदा और वायु सारथी होता है ॥ ७ ॥ कीर्ति और यश पुरःसर होते हैं। इस प्रकार जानने वाले को कीर्ति और यश मिलता है ॥ ८ ॥

स उदतिष्ठत् स दक्षिणां दिशमनु व्यचलत् ॥ ९ ॥
तं यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च यज्ञश्च यजमानश्च
पशवश्चानुव्यचलन् ॥ १० ॥
यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च यज्ञाय च यजमानाय च
पशुभ्यश्चा वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥११॥
यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च यजमानस्य
च पशूनां च प्रियं धाम भवति तस्य दक्षिणायां दिशि ॥१२॥
उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री
केशा हरितौ प्रवर्तो कल्मलिर्मणिः ॥ १३ ॥

अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ।
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी
रेष्मा प्रतोदः ।
कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या
यशो गच्छति य एवं वेद ॥ १४ ॥

वह उठकर दक्षिण दिशा की ओर चला ॥ ९ ॥ यज्ञायज्ञिय, साम, यज्ञ, यजमान, पशु और वामदेव्य उसके पीछे-पीछे चले ॥ १० ॥ ऐसे व्रात्य का निन्दक यज्ञायज्ञिय, साम, यज्ञ, यजमान, पशु और वामदेव्य का अपराधी होता है ॥ ११ ॥ (उसका सत्कार करता है तो) यज्ञायज्ञिय, साम, यज्ञ, यजमान, पशु और वामदेव्य की प्रिय दक्षिण दिशा में उसका भी प्रिय धाम होता है ॥ १२ ॥ विज्ञान वस्त्र, दिन पगड़ी, रात्रि केश, उषा पुंश्चली, मंत्र मागध और हरित प्रवर्त, कल्मलि मणि होती है ॥ १३ ॥ अमावस्या, पूर्णिमा उसके परिष्कन्द होते हैं ॥ १४ ॥

स उदतिष्ठत् स प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १५ ॥
तं वैरूपं च वैराजं चापश्च वरुणश्च राजानुव्यचलन् ॥ १६ ॥
वैरूपाय च वै स वैराजाय चाद्भ्यश्च वरुणाय च राज्ञ आ-
वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥ १७ ॥
वैरूपस्य च वै स वैराजस्य चापां च वरुणस्य च राज्ञः -
प्रियं धाम भवति तस्य प्रतीच्यां दिशि ॥ १७ ॥
इरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री-
केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ १६ ॥
अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ।
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ।
कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति-
य एवं वेद ॥ २० ॥

केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ ५ ॥

भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥ ६ ॥

मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः

सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ ७ ॥

कीर्तिश्च यशश्च पुरः सरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या

यशो गच्छति य एवं वेद ॥ ८ ॥

वह उठकर पूर्व दिशा की ओर चल दिया ॥ १ ॥ बृहत् साम, रथन्तर साम, सूर्य और सब देवता उसके पीछे चले ॥ २ ॥ ऐसे विद्वान् ब्राह्मण का निन्दक बृहत्साम, रथन्तर साम, सूर्य और विश्वेदेवाओं की हिंसा करता है ॥ ३ ॥ (उसका सत्कार करने वाला) बृहत्साम, रथन्तर, सूर्य और सब देवताओं की प्रिय पूर्व दिशा में अपना प्रिय धाम बनाता है ॥ ४ ॥ श्रद्धा पुंश्चली, विज्ञान वस्त्र, दिन पाग, रात्रि केश, मित्र मागध हरित प्रवर्त, कल्मणि उसकी मणि होती है ॥ ५ ॥ भूत भविष्यत् परिष्कन्द और मन विपथ होता है ॥ ६ ॥ मातरिश्वा और पवमान विपथवाह, रेष्मा कोड़ा और वायु सारथी होता है ॥ ७ ॥ कीर्ति और यश पुरःसर होते हैं। इस प्रकार जानने वाले को कीर्ति और यश मिलता है ॥ ८ ॥

स उदतिष्ठत् स दक्षिणां दिशमनु व्यचलत् ॥ ९ ॥

तं यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च यज्ञश्च यजमानश्च

पशवश्चानुव्यचलन् ॥ १० ॥

यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च यज्ञाय च यजमानाय च

पशुभ्यश्चा वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥११॥

यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च यजमानस्य

च पशूनां च प्रियं धाम भवति तस्य दक्षिणायां दिशि ॥१२॥

उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री

केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ १३ ॥

अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ।
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी
रेष्मा प्रतोदः ।
कीर्तिश्च यशश्च पुरः सरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या
यशो गच्छति य एवं वेद ॥ १४ ॥

यह उठकर दक्षिण दिशा की ओर चला ॥ ९ ॥ यज्ञायज्ञिय, साम, यज्ञ, यजमान, पशु और वामदेव्य उसके पीछे-पीछे चले ॥ १० ॥ ऐसे व्रात्य का निन्दक यज्ञायज्ञिय, साम, यज्ञ, यजमान, पशु और वामदेव्य का अपराधी होता है ॥ ११ ॥ (उसका सत्कार करता है जो) यज्ञायज्ञिय, साम, यज्ञ, यजमान, पशु और वामदेव्य की प्रिय दक्षिण दिशा में उसका भी प्रिय धाम होता है ॥ १२ ॥ विज्ञान वस्त्र, दिन पगड़ी, रात्रि केश, उषा पुंश्चली, मंत्र मागध और हरित प्रवर्त, कल्मणि मणि होती है ॥ १३ ॥ अमावस्या, पूर्णिमा उसके परिष्कन्द होते हैं ॥ १४ ॥

स उदतिष्ठत् स प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १५ ॥
तं वैरूपं च वैराजं चापश्च वरुणश्च राजानुव्यचलन् ॥ १६ ॥
वैरूपाय च वै स वैराजाय चाद्भ्यश्च वरुणाय च राज्ञ आ-
वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥ १७ ॥
वैरूपस्य च वै स वैराजस्य चापां च वरुणस्य च राज्ञः -
प्रियं धाम भवति तस्य प्रतीच्यां दिशि ॥ १७ ॥
इरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री-
केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ १९ ॥
अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ।
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ।
कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति
य एवं वेद ॥ २० ॥

वह उठा और पश्चिम दिशा में गमन किया ॥ १५ ॥ जल, वरुण, वैरूप, वैराज उसके पीछे चले ॥ १६ ॥ ऐसे व्रात्य का निन्दक जल, वरुण, वैरूप, वैराज का अपराधी होता है ॥ १७ ॥ (सत्कार करने वाला) जल, वरुण, वैरूप, वैराज का प्रिय और उसका दक्षिण में प्रियधाम होता है ॥१८॥ पृथिवी पुंश्चली, विज्ञान वस्त्र, दिन पगड़ी, रात्रिकेश, हास्य मागध, हरित् प्रवर्त, कल्मणि मणि होती है ॥१९॥ रात्रि और दिवस परिष्कंद होते हैं ॥२०॥

स उदतिष्ठत् स उदीचीं दिसमनु व्यचलत् ।। २१ ।।
तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च सोमश्च राजानुव्य चलन् ।।२२।।
श्यैताय च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च सोमाय च राज्ञ आ
वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ।। २३ ।।
श्यैतस्य च वै स नौधसस्य च सप्तर्षीणां च सोमाय च राज्ञः
प्रियं धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि ।। २४ ।।
विद्युत पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीपं रात्री केश
हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ।। २५ ।।
श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ।। २६ ।।
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाही वातः
सारथी रेष्मा प्रतोदः ।। २७ ।।
कीर्तिश्च यशश्च पुरः सरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो
गच्छति य एवं वेद ।। २८ ।।

वह उठा और उत्तर की ओर गमन किया ॥२१॥ सप्तर्षि, सोम, श्यैत और नौधस उसके अनुगत हुए ॥ २२ ॥ ऐसे व्रात्य का निन्दक सप्तर्षि, सोम, श्यैत, नौधस का ही अपराधी होता है ॥ २३ ॥ (व्रात्य का प्रशंसक) उत्तर में सप्तर्षि, सोम, श्यैत और नौधस का प्रिय धाम उसका होता है ॥ २४ ॥ विद्युत पुंश्चली, विज्ञान वस्त्र, दिन पगड़ी, रात्रिकेश, स्तनयित्नु मागध, हरित प्रवर्त और कल्मणि मणि होती है ॥ २५ ॥ श्रुत विश्रुत परिष्कंद और मन विपथ होता है ॥ २६ ॥ वात सारथी, रेष्मा कोड़ा, मातरिश्वा और

पवमान विपथवाह होते हैं ॥ २७ ॥ कीर्ति और यश पुरःसर होते हैं, ऐसा जानने वाला कीर्ति और यश को प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—गायत्री; उष्णिक्; जगती; बृहती; अनुष्टुप्; पङ्क्तिः; त्रिष्टुप्)

स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत् तं देवा अब्रुवन् व्रात्य
किं नु तिष्ठसीति ॥ १ ॥
सोऽब्रवीदासन्दीं मे सं भरन्त्विति ॥ २ ॥
तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन् ॥ ३ ॥
तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ ॥ ४ ॥
बृहच्च रथन्तरं चानूच्ये आस्तां यज्ञायज्ञियं च
वामदेव्यं च तिरश्च्ये ॥ ५ ॥
ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ॥ ६ ॥
वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् ॥ ७ ॥
सामासाद उद्गीथोऽपश्रयः ॥ ८ ॥
तामासन्दीं व्रात्य आरोहत् ॥ ९ ॥
तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन् [illegible]
विश्वानि भूतान्युपसदः ॥ १० ॥
विश्वान्येवास्य [illegible]

तिरश्च्य हुए ॥ ५ ॥ ऋचा और प्रांचा तन्तु हुए और यजु तिर्यक् हुए ॥ ६ ॥ वेद आस्तरण और ब्रह्म उपबर्हण हुआ ॥ ७ ॥ साम आसाद और उद्गीथ उपश्रय हुआ ॥ ८ ॥ उस आसन्दी पर व्रात्य चढ़ा ॥ ९ ॥ देवता उसके परिष्कन्द हुए, सत्य संकल्प प्रहाय्य और सब भूत उपसद हुए ॥ १० ॥ इसके व्रात के जानने वाले के सकल भूत उपसद होते हैं ॥ ११ ॥

४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—जगती; अनुष्टुप्; गायत्री; पङ्क्ति; त्रिष्टुप्; बृहती; उष्णिक्)

तस्मै प्राच्या दिशः ॥ १ ॥
वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् बृहच्च रथन्तरं चानुष्ठातारौ ॥२॥
वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो बृहच्च रथन्तरं
चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ३ ॥

वसन्त ऋतु के दो महीनों को देवताओं ने पूर्व दिशा से रक्षक नियुक्त किया और बृहत्साम तथा रथन्तर साम को अनुष्ठाता किया ॥ १-२ ॥ ऐसे जानने वाले की पूर्व की ओर से वसंत ऋतु दो महीने रक्षा करते तथा बृहत् और रथन्तर उसके अनुकूल होते हैं ॥ ३ ॥

तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥ ४ ॥
ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् यज्ञायज्ञियं च
वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ॥ ४ ॥
ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियं च
वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ६ ॥

दक्षिण दिशा की ओर से ग्रीष्म ऋतु के दो महीनों को देवताओं ने रक्षक बनाया और यज्ञायज्ञिय तथा वामदेव्य को अनुष्ठाता किया ॥ ४।५ ॥ ऐसा जानने वाले की दक्षिण दिशा की ओर से ग्रीष्म के ऋतु दो महीने रक्षा करते हैं और यज्ञायज्ञिय वामदेव्य उसके अनुकूल होते हैं ॥ ६ ॥

तस्मै प्रतीच्या दिशः ॥ ७ ॥
वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ॥८
वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरूपं च
वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ९ ॥

पश्चिम दिशा की ओर से वर्षा ऋतु के दो महीनों को देवताओं ने रक्षक नियुक्त किया और वैरूप-वैराज को उसका अनुष्ठाता बनाया ॥७-८॥ ऐसा जानने वाला पश्चिम की ओर से वर्षा ऋतु के दो मासों द्वारा रक्षित होता है और वैरूप-वैराज उसके अनुकूल रहते हैं ॥ ९ ॥

तस्मा उदीच्या दिशः ॥ १० ॥
शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वञ्छ्यैतं च
नौधसं चानुष्ठातारौ ॥ ११ ॥
शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च
नौधसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १२ ॥

उत्तर दिशा की ओर से शरद् ऋतु के दो मासों को देवताओं ने रक्षक नियुक्त किया और नौधस तथा श्यैत को उसका अनुष्ठाता बनाया ॥ १०-११ ॥ ऐसा जानने वाला पुरुष उत्तर दिशा की ओर से शरद् ऋतु के दो महीनों द्वारा रक्षित होता है और नौधस तथा श्यैत उसके अनुकूल होते हैं ॥ १२ ॥

तस्मै ध्रुवाया दिशः ॥ १३ ॥
हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ ॥१४॥
हैमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो भूमिश्चाग्निश्चानु
तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १५ ॥

ध्रुव दिशा की ओर से हेमन्त ऋतु के दो महीनों को देवताओं ने रक्षक नियुक्त किया और पृथिवी तथा अग्नि को उसका अनुष्ठाता बनाया

॥ १४ ॥ ऐसा जानने वाला पुरुष ध्रुव दिशा की ओर से हेमन्त के दो मासों द्वारा रक्षित रहता है और पृथिवी अग्नि उसके अनुकूल रहते हैं ॥ १५ ॥

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः ॥१६॥

शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ॥१७॥

शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥१८॥ (६) [१४]

देवताओं ने शिशिर ऋतु के दो मासों को ऊर्ध्व दिशा की ओर से रक्षक नियुक्त किया और आकाश तथा सूर्य को उसका अनुष्ठाता बनाया ॥१६-१७ ॥ ऐसा जानने वाला पुरुष शिशिर ऋतु के दो महीनों द्वारा रक्षित रहता है तथा आदित्य और आकाश दोनों उसके अनुकूल रहते हैं ॥१८ ॥

सूक्त ५

(ऋषि—अथर्वा ॥ देवता—रुद्रः॥ छन्द—गायत्री,त्रिष्टुप्; अनुष्टुप;पंक्ति,बृहती)

तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशाद् भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१॥

भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥२॥

नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥३॥ (१)

उसके लिए पूर्व दिशा के कोने से बाण का सन्धान करने वाले भव को देवताओं ने उसका अनुष्ठाता बनाया ॥१॥ पूर्व दिशा के कोने से भव इसके अनुकूल रहते और भव, शर्व, ईशान भी अनुकूल रहते हैं ॥२॥ ऐसा जानने वाले के समान पुरुषों और पशुओं को वे हिंसित नहीं करते ॥ ३ ॥

तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥४॥

शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥५॥ (२)

उसके निमित्त दक्षिण दिशा के कोण से बाण प्रक्षेप करने वाले शर्व को देवताओं ने अनुष्ठाता बनाया ॥४॥ इस प्रकार जानने वाले पुरुष के लिए शर्व दक्षिण कोण में अनुकूल रहते हैं और इसके समान पुरुषों तथा पशुओं को हिंसित नहीं करते ॥५॥

तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात् पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥६॥

पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः। नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥७॥ (३)

उसके लिए पश्चिम दिशा के कोने मे बाण प्रक्षेप करने वाले पशुपति को देवताओं ने अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥६॥ इस प्रकार जानने वाले पुरुष के लिए पशुपति पश्चिम दिशा के कोने में अनुकूल रहते हैं और इसके समान पुरुषों तथा पशुओं को हिंसित नहीं करते ॥७॥

तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥८॥

उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः। नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥९॥ (४)

उत्तर दिशा के कोण से देवताओं ने बाण प्रक्षेप करने वाले उग्रदेव को अनुष्ठाता बनाया ॥८॥ इस प्रकार जानने वाले पुरुष के उग्रदेव उत्तर दिशा के कोण में अनुकूल रहते हैं और इसके समान पुरुषों तथा पशुओं को हिंसित नहीं करते ॥ ९ ॥

तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद् रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१०॥

रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाय दिशो अन्तर्देशादनुष्ठा

नैनं शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥११॥ (५)

ध्रुव दिशा के अन्तर्देश से बाण प्रक्षेप करने वाले रुद्र को देवताओं ने अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥१०॥ इस प्रकार जानने वाले पुरुष के रुद्रदेव ध्रुव अन्तर्देश में अनुकूल रहते हैं और इसके समान पुरुषों तथा पशुओं को हिंसित नहीं करते हैं ॥११॥

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशान्महादेवमिष्वासमनुष्ठातार-मकुर्वन् ॥१२॥

महादेव एनमिष्वासऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥१३॥ (६)

ऊर्ध्वदिशा के कोण से बाण प्रक्षेप करने वाले महादेव को देवताओं ने अनुष्ठाता किया ॥१२॥ वे महादेव, इस प्रकार जानने वाले पुरुष के लिए ऊर्ध्वकोण में अनुकूल रहते हैं और इसके समान पुरुषों तथा पशुओं को हिंसित नहीं करते ॥१३॥

तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्यो ईशानमिष्वासमनुष्ठातारम कुर्वन् ॥१४॥

ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्योऽनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः एवं वेद ॥१५॥

नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ १६ ॥ (७)

सब दिशाओं के कोणों में बाण प्रक्षेप करने वाले ईशान को देवताओं ने अनुष्ठाता बनाया ॥ १४ ॥ सब दिशाओं के कोणों में ईशान इस प्रकार जानने वाले के अनुकूल रहते और इसके समान वयस्क पुरुषों तथा पशुओं की हिंसा नहीं करते । भव शर्व भी इसे नष्ट नहीं करते ॥१५॥

सूक्त ६

(ऋषि–अथर्वा। देवता–अध्यात्मम्, व्रात्यः। छन्द–पङ्क्तिः; त्रिष्टुप्, बृहती जगती, उष्णिक् अनुष्टुप्)

स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत् ।१।

तं भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च वीरुधश्चानुव्य चलन् ॥२॥

भूमेश्च वै सोऽग्नेश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥३॥(१)

वह व्रात्य ध्रुव दिशा की ओर चल पड़ा ॥ १ ॥ पृथिवी, अग्नि, औषधि, वनस्पति और वनस्पतियों में जो औषधि हैं, वे सब उसके अनुगत हुए ॥ २ ॥ इस प्रकार जानने वाला पृथिवी, अग्नि, औषधि, वनस्पति और वनस्पत्यात्मक औषधियों का प्रिय धाम होता है ॥ ३ ॥

स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचलत् ॥४॥

तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन् ।५।

ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चंद्रस्य च नक्षत्राणां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥६॥ (२)

वह ऊर्ध्व दिशा की ओर चल पड़ा ॥ ४ ॥ सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ऋत, सत्य उसके अनुगत हुए ॥५॥ इस प्रकार जानने वाला सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ऋत, सत्य का प्रिय धाम होता है ॥६॥

स उत्तमां दिशमनु व्यचलत् ॥७॥

तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन् ॥८॥

ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥९॥ (३)

उसने उत्तम दिशा की ओर गमन किया ॥७॥ साम, यजु,

और यज्ञ उसके पीछे चले ॥८॥ इस प्रकार जानने वाला साम, यजु, ऋचा और यज्ञ का प्रिय धाम होता है ॥९॥

स बृहतीं दिशमनु व्यचलत् ॥१०॥

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ॥११॥

इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१२॥ (४)

उसने बृहती दिशा में गमन किया ॥ १० ॥ तब पुराण, इतिहास, मनुष्यों की प्रशंसात्मक गाथाएँ उसके पीछे-पीछे चले ॥११॥ इस बात के जानने वाला पुराण, इतिहास और गाथाओं का प्रियधाम होता है ॥ १२ ॥

स परमां दिशमनु व्यचलत् ॥१३॥

तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशुनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१५॥ (५)

उसने परम दिशा को प्रस्थान किया ॥ १३ ॥ आह्वानीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि उसके अनुगामी हुए और यज्ञ, यजमान, पशु भी पीछे-पीछे चले ॥१४॥ इस बात के जानने वाला आह्वानीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, यज्ञ, यजमान और पशुओं का भी प्रिय धाम होता है ॥१५॥

सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचलत् ॥१६॥

तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानुव्यचलन् ॥१७॥

ऋतूनां च वै स आर्तवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां चार्धमासानां चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥१८॥ (६)

वह अनादिष्ट दिशा को ओर चल पड़ा ॥१६॥ ऋतुएँ, पदार्थ, लोक, मास, पक्ष, दिवस और रात्रि उसके पीछे चले ॥१७॥ इसे जानने वाला पुरुष ऋतु, पदार्थ, लोक, मास, पक्ष, दिन-रात्रि का प्रिय धाम होता है ॥ १८ ॥

सोऽनावृत्तां दिशमनु व्यचलत् ततो नावर्त्स्यन्नमन्यत ॥ १९ ॥

तं दितिश्चादितिश्चेडा चेन्द्राणी चानुव्यचलन् ॥२०॥

दितेश्च वै सोऽदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥२१॥ (७)

उसने अनावृत्त दिशा की ओर गमन किया और वहाँ रहना ठीक नहीं माना ॥१६॥ उसके पीछे इडा, इन्द्राणी, दिति और अदिति चलीं ॥२०॥ इसे जानने वाला पुरुष इडा, इन्द्राणी, दिति, अदिति का प्रिय धाम होता है ॥२१॥

स दिशोऽनु व्यचलत् तं विराडनु व्यचलत् सर्वे च देवाः सर्वाश्च देवताः ॥२२॥

विराजश्च वै स सर्वेषां च देवानां सर्वासां च देवतानां प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥२३॥ (८)

उसने दिशाओं की ओर गमन किया और विराट् आदि सब देवता उसके अनुगामी हुए ॥२२॥ इस प्रकार जानने वाला विराट् आदि सब देवताओं का प्रियधाम होता है ॥२३॥

स सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् ॥२४॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्यचलन् ॥२५

प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥२६॥ (९) [१६]

वह सभी अंतर्देशों की ओर चला ॥ २४ ॥ प्रजापति परमेष्ठी, पिता और पितामह भी उसके पीछे चले ॥ २५ ॥ इस प्रकार जानने वाला, प्रजापति परमेष्ठी, पिता और पितामह का प्रियधाम होता है ॥२६॥

७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, मात्यः । छन्द—गायत्री; बृहती; उष्णिक, पङ्क्तिः)

स महिमा सद्रुर्भूत्वान्तं पृथिव्या अगच्छत् स समुद्रोऽभवत् ।

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पितामहश्चापश्च श्रद्धा च वर्षं भूत्वानुव्य वर्तयन्त ॥२॥

ऐनमापो गच्छन्त्येनं श्रद्धा गच्छन्त्येनं वर्षं गच्छति य एवं वेद।३।

तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्नं च भूत्वाभिपर्यावर्तन्त ॥४॥

ऐनं श्रद्धा गच्छत्येनं यज्ञो गच्छत्येनं लोको गच्छत्येनमन्नं गच्छत्येनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद ॥५॥

वह पृथिवी के अन्त पर सद्रु महिमा होकर गया और समुद्र बन गया ॥१॥ प्रजापति परमेष्ठी पिता, पितामह जल और श्रद्धा यह सभी वर्षा रूप होकर उसके अनुकूल वर्तने लगे ॥२॥ इस प्रकार जानने वाले को जल, और श्रद्धा यह सभी वर्षा रूप होकर उसके अनुकूल वर्तने लगे ॥ २ ॥ इस प्रकार जानने वाले को जल, श्रद्धा और वर्षा प्राप्त होती है ॥३॥ लोक, यज्ञ, अन्न, अन्नाद्य और श्रद्धा अपनी सत्ता में प्रादुर्भूत होकर उसके चारों ओर अवस्थित हुए ॥४॥ इस प्रकार जानने वाले को लोक, यज्ञ, अन्न, अन्नाद्य और श्रद्धा प्राप्त होती है ॥५॥

८ सूक्त [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः। छन्द—उष्णिक्; अनुष्टुप्; पङ्क्ति)

सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत ॥ १ ॥

स विशः सबन्धूनन्नमन्नाद्यमभ्युदतिष्ठत् ॥ २ ॥

विशां च वै स सबन्धूनां चान्नस्य चान्नाद्यस्य च-

प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

वह रञ्जन करता हुआ राजा बना ॥ १ ॥ वह प्रजाओं के, बंधुओं के, अन्न और अन्नाद्य के अनुकूल वर्तने लगा ॥ २ ॥ इस प्रकार जानने वाला प्रजाओं का, अन्न और अन्नाद्य का प्रिय धाम होता है ॥ ३ ॥

९ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्; मात्यः । छन्द—जगती-गायत्री; पंक्ति)

स विशोऽनु व्यचलत् ॥ १ ॥
तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलन् । २ ॥
सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च प्रियं-
धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

उसने प्रजाओं के अनुकूल व्यवहार किया ॥ १ ॥ सभा, समिति, सेना और सुरा उसके अनुकूल हुए ॥ २ ॥ इस प्रकार जानने वाला, सभा, समिति सेना और सुरा का प्रिय धाम हो जाता है ॥ ३ ॥

१० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, मात्यः । छन्द—बृहती; पंक्ति; उष्णिक्)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥
श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय ना वृश्चते-
तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥ २ ॥
अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्र विशावेति ॥३
बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्र विशत्विन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति ॥४॥
अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम् ॥ ५ ॥
इयं वा उ पृथिवी बृहस्पतिर्द्यौरेवेन्द्रः ॥ ६ ॥
अयं वा उ अग्निर्ब्रह्मासावादित्यः क्षत्रम् ॥ ७ ॥
ऐनं ब्रह्म गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति ॥ ८ ॥
यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्म वेद ॥ ९ ॥
ऐनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान् भवति ॥ १०

य आदित्यं क्षत्रं दिवमिन्द्रं वेद ॥ ११ ॥

ऐसा विद्वान् व्रात्य जिस राजा का अतिथि हो ॥ १ ॥ तो उसका सम्मान करे। ऐसा करने से राष्ट्र और क्षात्र शक्ति को वह नष्ट नहीं करता ॥२ फिर ब्राह्मबल और क्षात्र शक्ति कहने लगे कि हम किसमें प्रविष्ट हों? ॥ ३ ॥ ब्राह्मबल बृहस्पति में और क्षात्र शक्ति इन्द्र में प्रविष्ट हो ॥ ४ ॥ तब ब्राह्मबल बृहस्पति में और क्षात्र बल इन्द्र में प्रविष्ट होगया ॥ ५ ॥ आकाश ही इन्द्र है, पृथिवी ही बृहस्पति है ॥ ६ ॥ आदित्य क्षात्रबल और अग्नि ब्राह्मबल है ॥ ७ ॥ जो पृथिवी को बृहस्पति और अग्नि को ब्रह्म जानता है वह ब्राह्मबल और ब्रह्मवर्च को प्राप्त होता है ॥ ८-९ ॥ जो आदित्य को क्षत्र और द्यौ को इन्द्र जानता है उसे इन्द्रियाँ प्राप्त होती हैं ॥ १०-११ ॥

११ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य। छन्द—पङ्क्ति-शक्करी; बृहती, अनुष्टुप्)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥
स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वाऽवात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य-
तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्त-
थास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥ २ ॥
यदेनमाह व्रात्य क्वाऽवात्सीरिति पथ एव तेन देवयानानव रुन्द्धे ॥३॥
यदेनमाह व्रात्योदकमित्यप एव तेनाव रुन्द्धे ॥ ४ ॥
यदेनमाह व्रात्य तर्पयन्त्विति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥ ५ ॥
यदेनमाह व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्त्विति प्रियमेव तेनाव रुन्द्धे ॥६
ऐनं प्रियं गच्छति प्रियः प्रियस्य भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥
यदेनमाह व्रात्य यथा ते वशस्तथास्त्विति वशमेव तेनाव रुन्द्धे ॥८
ऐनं वशो गच्छति वशी वशिनां भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥
यदेनमाह व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति निकाममेव-

तेनाव रुन्द्धे ॥ १० ॥
ऐनं निकामो गच्छति निकामे निकामस्य भवति य एवं वेद ॥११॥

ऐसा विद्वान् व्रात्य जिसके घर में अतिथि हो ॥ १ ॥ तब उसे स्वयं आसन देकर कहे—'हे व्रात्य! तुम कहाँ निवास करते हो? यह जल है। हमारे घर के व्यक्ति तुम्हें सन्तुष्ट करें। तुम्हें जो प्रिय हो, जैसा तुम्हारा वश हो, जैसा तुम्हारा निकाम हो, वैसा ही हो ॥ २ ॥" यह कहने पर कि हे व्रात्य! तुम कहाँ रहोगे? देवयान मार्ग ही खुल जाता है ॥ ३ ॥ इससे यह कहने वाला कि 'हे व्रात्य! यह जल है।' अपने लिए जल को ही खोल लेता है ॥ ४ ॥ यह कहने वाला कि 'हमारे व्यक्ति तुम्हें तृप्त करें' अपने ही प्राणों को सींचता है ॥ ५ ॥ यह कहने वाला कि 'जो तुम्हें प्रिय होगा वही होगा' अपने ही प्रिय कार्यों का उद्घाटन करता है ॥ ६ ॥ ऐसा जानने वाला प्रिय पुरुष को प्राप्त होता हुआ प्रिय का भी प्रिय हो जाता है ॥ ७ ॥ यह कहने वाला कि 'तुम्हारा वश है वैसा ही हो' अपने लिए उससे वश को ही खोल लेता है ॥ ८ ॥ इस प्रकार जानने वाले को वश प्राप्त होता है वह वश करने वालों को भी वश में कर लेता है ॥ ९ ॥ यह कहने वाला कि 'तुम्हारा निकाम हो वैसा ही हो' अपने लिए कामनाओं को खोल लेता है ॥ १० ॥ इस प्रकार जानने वाले को अभीष्ट प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

१२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः। छन्द—गायत्री; बृहती; अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य उद्धृतेष्वग्निष्वधिश्रितेऽग्नि-
होत्रेऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥

स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्याति सृज होष्यामीति ॥२॥

स चातिसृजेज्जुहुयान्न चातिसृजेन्न जुहुयात् ॥ ३ ॥

स य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥ ४ ॥

प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥ ५ ॥
न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति ॥ ६ ॥
पर्यस्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा
व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥ ७ ॥
अथ य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥ ८ ॥
न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् ॥ ९ ॥
आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ॥ १० ॥
नास्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा
व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥ ११ ॥

अग्निहोत्र के अधिश्रित होने और अग्नियों के उद्धृत होने पर यदि विज्ञ व्रात्य घर पर आवे ॥ १ ॥ तब उसे स्वयं अभ्युत्थान देता हुआ कहे कि 'हे व्रात्य! मुझे होम करने की आज्ञा दो! ॥ २ ॥ उसके आज्ञा देने पर आहुति दे, अन्यथा न दे ॥ ३ ॥ ऐसे विद्वान् व्रात्य की आज्ञा पर जो आहुति देता है, वह पितृयान मार्ग और देवयानमार्ग को जान लेता है ॥ ४-५ ॥ इसकी आहुति देवताओं को ही पहुँचती हैं ॥ ६ ॥ ऐसे विद्वान् व्रात्य की आज्ञा पर आहुति देता है तो लोक में सब ओर इसका आयतन अवशिष्ट रहता है ॥ ७ ॥ ऐसे विद्वान् व्रात्य की आज्ञा न होने पर भी यदि आहुति देता है ॥ ८ ॥ तो वह पितृयान मार्ग या देवयान मार्ग किसी को भी नहीं जान पाता ॥९॥ जो ऐसे विद्वान् व्रात्य की आज्ञा बिना आहुति देता है तो वह आहुति व्यर्थ हो जाती है और वह देवताओं द्वारा नष्ट कर दिया जाता है ॥ १० ॥

१३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः। छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप, गायत्री, बृहती, पङ्क्तिः, जगती)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥१॥

प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥ ५ ॥
न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति ॥ ६ ॥
पर्यस्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा
व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥ ७ ॥
अथ य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥ ८ ॥
न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् ॥ ९ ॥
आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ॥ १० ॥
नास्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा
व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥ ११ ॥

अग्निहोत्र के अधिश्रित होने और अग्नियों के उद्धृत होने पर यदि विज्ञ व्रात्य घर पर आवे ॥ १ ॥ तब उसे स्वयं अभ्युत्थान देता हुआ कहे कि 'हे व्रात्य! मुझे होम करने की आज्ञा दो!' ॥ २ ॥ उसके आज्ञा देने पर आहुति दे, अन्यथा न दे ॥ ३ ॥ ऐसे विद्वान् व्रात्य की आज्ञा पर जो आहुति देता है, वह पितृयान मार्ग और देवयानमार्ग को जान लेता है ॥ ४-५ ॥ इसकी आहुति देवताओं को ही पहुँचती है ॥ ६ ॥ ऐसे विद्वान् व्रात्य की आज्ञा पर आहुति देता है तो लोक में सब ओर इसका आयतन अवशिष्ट रहता है ॥ ७ ॥ ऐसे विद्वान् व्रात्य की आज्ञा न होने पर भी यदि आहुति देता है ॥ ८ ॥ तो वह पितृयान मार्ग या देवयान मार्ग किसी को भी नहीं जान पाता ॥९॥ जो ऐसे विद्वान् व्रात्य की आज्ञा बिना आहुति देता है तो वह आहुति व्यर्थ हो जाती है और वह देवताओं द्वारा नष्ट कर दिया जाता है ॥ १० ॥

१३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप, गायत्री, बृहती, पङ्क्तिः, जगती)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥१॥

भी भगाना उचित नहीं ॥ १२ ॥ 'मैं इस देवता को बसाता हूँ मैं इस देवता से जल की याचना करता हूँ मैं इस देवता को परोसता हूँ' यह मानता हुआ परोसना आदि कार्य करे ॥ १३ ॥ (अर्थात् यदि कोई अज्ञानी अथवा अविद्वान अतिथि आ जाय तो भी परम्परा की रक्षा के विचार से उसका साधारण रूप से सम्मान करो) जो इस बात को जानता है उसकी आहुति इस देवता में स्वाहुत होती है ॥ १४ ॥

१४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक्, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्)

स यत् प्राचीं दिशमनु व्यचलन्मारुतं शर्धो भूत्वानुव्य-
चलन्मनोऽन्नादं कृत्वा ॥ १ ॥
मनसान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २ ॥
स यद् दक्षिणां दिशमनु व्यचलदिन्द्रो भूत्वानुव्यचलद्
बलमन्नादं कृत्वा ॥ ३ ॥
बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ४ ॥
स यत् प्रतीचीं दिशमनु व्यचलद् वरुणो राजा
भूत्वानुव्यचलदपोऽन्नादीः कृत्वा ॥ ५ ॥
अद्भिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥ ६ ॥
स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत् सोमो राजा भूत्वानुव्यचलत्
सप्तर्षिभिर्हुत आहुतिमन्नादीं कृत्वा ॥७॥
आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ८ ॥
स यद् ध्रुवां दिशमनु व्यचलद् विष्णुर्भूत्वानुव्यचलद्
विराजमन्नादीं कृत्वा ॥ ९ ॥
विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १० ॥

भूत्वान् व्यचलन्मन्युमन्नादं कृत्वा ॥ १९ ॥

मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २० ॥

स यत् प्रजा अनु व्यचलत् प्रजापतिर्भूत्वान् व्यचलत्
प्राणमन्नादं कृत्वा ॥ २१ ॥

प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २२ ॥

स यत् सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् परमेष्ठी
भूत्वान् व्यचलद् ब्रह्मान्नादं कृत्वा ॥ २३ ॥

ब्रह्मणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २४ ॥

जब वह पशुओं की ओर चला तब औषधियों को अन्नाद बनाकर रुद्र बनता हुआ चला ॥ ११ ॥ इस प्रकार जानने वाला अन्नाद औषधियों से अन्न को खाता है ॥ १२ ॥ जब वह पितरों की ओर चला तब स्वधा को अन्नाद बनाता हुआ यम होकर चला ॥१३॥ इस प्रकार का ज्ञाता स्वधाकार अन्नाद से अन्न खाता है ॥ १४ ॥ जब वह मनुष्यों की ओर चला तब स्वाहा को अन्नाद बनाकर अग्नि होता हुआ चला ॥ १५ ॥ इसे जानने वाला स्वाहाकार अन्नाद के द्वारा अन्न-सेवन करता है ॥ १६ ॥ जब वह ऊर्ध्व दिशा की ओर चला तब वषट्कार को अन्नाद बनाकर बृहस्पति होता हुआ चला ॥ १७ ॥ इस बात का ज्ञाता वषट्कार रूप अन्नाद के द्वारा अन्न भक्षण करता है ॥१८॥ जब देवता की ओर चला तब यज्ञ को अन्नाद बनाकर ईशान बनता हुआ चला ॥ १९ ॥ इस प्रकार जानने वाला अन्नाद यज्ञ के द्वारा अन्न को खाता है ॥ २० ॥ जब वह प्रजाओं की ओर चला तब प्राण को अन्नाद बनाकर प्रजापति रूप में चला ॥ २१ ॥ इस प्रकार जानने वाला अन्नाद प्राण से अन्न-भोजन करता है ॥ २२ ॥ जब वह सब अन्तर्देशों की ओर चला तब ब्रह्म को अन्नाद बनाकर प्रजापति होता हुआ चला ॥ २३ ॥ इस प्रकार जानने वाला पुरुष अन्नाद ब्रह्म के द्वारा अन्न-भोजन करता है ॥ २४ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयोऽपानः सामावास्या ॥ ३ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थोऽपानः सा श्रद्धा ॥ ४ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमोऽपानः सा दीक्षा ॥ ५ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठोऽपानः स यज्ञः ॥ ६ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमोऽपानस्ता इमा दक्षिणाः ॥७॥

इस व्रात्य का प्रथम अपान पौर्णमासी है ॥ १ ॥ इसका द्वितीय अपान अष्टका है ॥ २ ॥ इसका तृतीय अपान अमावस्या है ॥ ३ ॥ इसका चतुर्थ अपान श्रद्धा है ॥४॥ इसका पंचम अपान दीक्षा है ॥ ५ ॥ इसका षष्ठ अपान यज्ञ है ॥६॥ इसका सप्तम अपान दक्षिणा है ॥७॥

१७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—उष्णिक्; अनुष्टुप्; पंक्तिः, त्रिष्टुप्;)

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमो व्यानः सेयं भूमिः ॥१॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयो व्यानस्तदन्तरिक्षम् ॥२॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयो व्यानः सा द्यौः ॥३॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि ॥४॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमो व्यानस्त ऋतवः ॥५॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठो व्यानस्त आर्तवाः ॥६॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमो व्यानः स संवत्सरः ॥७॥
तस्य व्रात्यस्य । समानमर्थं परि यन्ति देवाः संवत्सरं वा एतदृतवोऽनुपरियन्ति व्रात्यं च ॥८॥
तस्य व्रात्यस्य यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां चैव तत् पौर्णमासीं च ॥९॥
तस्य व्रात्यस्य । एकं तदेषाममृतत्वमित्याहुतिरेव ॥१०॥

इस व्रात्य का प्रथम व्यान भूमि है ॥१॥ इसका द्वितीय व्यान अन्तरिक्ष है ॥२॥ इसका तृतीय व्यान द्यौ है ॥३॥ इसका चतुर्थ व्यान नक्षत्र हैं ॥४॥ इसका पंचम व्यान ऋतुएँ हैं ॥५॥ इसका षष्ठ व्यान आर्तव हैं ॥ ६ ॥ इसका सप्तम व्यान सम्वत्सर है ॥७॥ देवगण इसके समान अर्थ को प्राप्त होते तथा सम्वत्सर और ऋतु भी इसका अनुगमन करते हैं ॥ ८ ॥ अमावस और पूर्णिमा जो आदित्य में प्रवेश करती हैं, एक आहुति ही इनका अविनाशत्व है ॥९।१०॥

१८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्दः—पंक्ति, बृहती, अनुष्टुप्, उष्णिक)

तस्य व्रात्यस्य ॥१॥

यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः ।२।

योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सो अग्निर्योऽस्य सव्यः कर्णोऽयं स पवमानः ॥३॥

अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः ॥४॥

अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो रात्र्या प्राङ् नमो व्रात्याय ॥५॥

इस व्रात्य का दक्षिण चक्षु आदित्य है और वाम चक्षु चन्द्रमा है ॥१॥२॥ इसका दक्षिण श्रोत्र अग्नि और वाम श्रोत्र पवमान है ॥३॥ इसकी नासिका दिवस और रात्रि हैं, शीर्ष कपाल दिति और अदिति हैं तथा शिर सम्वत्सर है ॥४॥ यह व्रात्य दिन में सबको पूजने योग्य होता है, रात्रि में भी प्रकृष्ट रूप से पूजनीय होता है। ऐसे व्रात्य को नमस्कार है ॥ ५ ॥

॥ इति पंचदशं काण्डं समाप्तम् ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयोऽपानः साामावास्या ॥ ३ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थोऽपानः सा श्रद्धा ॥ ४ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमोऽपानः सा दीक्षा ॥ ५ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठोऽपानः स यज्ञः ॥ ६ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमोऽपानस्ता इमा दक्षिणाः ॥७॥

इस व्रात्य का प्रथम अपान पौर्णमासी है ॥ १ ॥ इसका द्वितीय अपान अष्टका है ॥ २ ॥ इसका तृतीय अपान अमावस्या है ॥ ३ ॥ इसका चतुर्थ अपान श्रद्धा है ॥४॥ इसका पंचम अपान दीक्षा है ॥ ५ ॥ इसका षष्ठ अपान यज्ञ है ॥६॥ इसका सप्तम अपान दक्षिणा है ॥७॥

१७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—उष्णिक्; अनुष्टुप्; पंक्तिः, त्रिष्टुप्;)

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमो व्यानः सेयं भूमिः ॥१॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयो व्यानस्तदन्तरिक्षम् ॥२॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयो व्यानः सा द्यौः ॥३॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि ॥४॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमो व्यानस्त ऋतवः ॥५॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठो व्यानस्त आर्तवाः ॥६॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमो व्यानः स संवत्सरः ॥७॥
तस्य व्रात्यस्य । समानमर्थं परि यन्ति देवाः संवत्सरं वा एतदृतवोऽनुपरियन्ति व्रात्यं च ॥८॥
तस्य व्रात्यस्य यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां चैव तत् पौर्णमासीं च ॥९॥
तस्य व्रात्यस्य । एकं तदेषाममृतत्वमित्याहुतिरेव ॥१०॥

इस व्रात्य का प्रथम स्थान भूमि है ॥१॥ इसका द्वितीय स्थान अन्तरिक्ष है ॥२॥ इसका तृतीय स्थान द्यौ है ॥३॥ इसका चतुर्थ स्थान नक्षत्र हैं ॥४॥ इसका पंचम स्थान ऋतुएँ हैं ॥५॥ इसका षष्ठ स्थान आर्तव हैं ॥ ६ ॥ इसका सप्तम स्थान संवत्सर है ॥७॥ देवगण इसके समान अर्थ को प्राप्त होते तथा संवत्सर और ऋतु भी इसका अनुगमन करते हैं ॥ ८ ॥ अमावस और पूर्णिमा जो आदित्य में प्रवेश करती हैं, एक आहुति ही इनका अविनाशत्व है ॥९।१०॥

१८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्दः—पंक्ति, बृहती, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

तस्य व्रात्यस्य ॥१॥
यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः ॥२॥
योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सो अग्निर्योऽस्य सव्यः कर्णोऽयं स पवमानः ॥३॥
अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः ॥४॥
अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो रात्र्या प्राङ् नमो व्रात्याय ॥५॥

इस व्रात्य का दक्षिण चक्षु आदित्य है और वाम चक्षु चन्द्रमा है ॥१॥२॥ इसका दक्षिण श्रोत्र अग्नि है और वाम श्रोत्र पवमान है ॥३॥ इसकी नासिका दिवस और रात्रि हैं, सिर के कपाल दिति और अदिति हैं तथा सिर संवत्सर है ॥४॥ यह व्रात्य दिन में पश्चिम की ओर स्थित है, रात्रि में भी प्रकृष्ट रूप से पूजनीय होता है। ऐसे व्रात्य को नमस्कार है ॥५॥

॥ इति पंचदशं काण्डं समाप्तम् ॥

षोडश काण्ड



१ सूक्त [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि—अथर्वा । देवता—प्रजापतिः । छन्दः—बृहती; त्रिष्टुप्; गायत्रीः पंक्ति; अनुष्टुप्; उष्णिक)

अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः ॥१॥
रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥२॥
म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥३॥
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥४॥
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥
अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ॥६॥
योऽप्स्वग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम् ॥७॥
यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद् वो घोरं तदेतत् ॥८॥
इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ॥९॥
अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ॥१०॥
प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुःष्वप्न्यं वहन्तु ॥११॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ॥१२॥
शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवीः ॥१३॥

जलों में जो वृषभ के समान जल है, वह अति सृष्टा हुआ और दिव्य अग्नियाँ अति सृष्ट हुई ॥१॥ भङ्ग करने वाला, नाशक, पलायनशील, मन को दबाने वाला, दाहोत्पादक, खोदने से प्राप्य, आत्मा और देह को दूषित करने वाला जो जल है, उसमें अपने वैरियों को संयुक्त करता हुआ मैं उसका

अविसर्जन करता हूँ, मैं उसे स्पर्श नहीं करूँगा ।२।३।४।५। मैं तुम्म जलों के श्रेष्ठ भाग को समुद्र की ओर प्रेरित करता हूँ ॥६॥ शरीर के मल को आहुत कर जलों के भीतर लेजाने वाले अग्नि का भी मैं अपसर्जन करता हूँ । ७ । हे जलो ! जो अग्नि तुममें प्रविष्ट हुआ है, वह तुम्हारा भीषण अंश है । ८ । जो तुम्हारा अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त अंश है उसे इन्द्रियों के द्वारा सींचें । ९ । जल हमारे पाप को दूर करे, पाप हमसे पृथक् हो ।१०। यह जल हमारे पाप और दुःस्वप्न को बहा ले जाय ।११। हे जलो ! कृपा की दृष्टि से मुझे देखो और कल्याण करने वाले अपने अंश से मेरी त्वचा को छुओ ॥१२॥ हम जल में व्याप्त मंगल करने वाले अग्नियों को आहूत करते हैं । यह दिव्य जल मुझ में पाप्रबल वाली शक्ति को समझ करें ॥ १३ ॥

२ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—वाक् । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती, गायत्री)

निर्दुरर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक् ॥ १ ॥
मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् ॥ २ ॥
उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथ ॥ ३ ॥
सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥ ४ ॥
सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥५
ऋषीणा प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥ ६ ॥

मैं दूषित 'अर्म' रोग से मुक्त रहूँ, मेरी वाणी बलवती और मधुमती रहे ॥ १ ॥ औषधियो ! तुम मधुर रस से पूर्ण रहो, मेरी वाणी भी मधुर रस से पूर्ण हो ॥ २ ॥ मैं इन्द्रियों के पालक मन और मुख का आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥ मेरे कान कल्याणकारी बातों को सुनें, मैं मंगलमयी प्रशंसात्मक बातों को सुनूँ ॥ ४ ॥ मेरे श्रोत्र उत्तम प्रकार से सुनना और निकट से सुनना न छोड़ें, मेरे नेत्र गरुड़ के नेत्र के समान होते हुए ज्ञान शक्ति से युक्त रहें ॥ ५ ॥ तू ऋषियों का प्रस्तर है, देवरूप प्रस्तर को नमस्कार हो ॥ ६ ॥

३ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-ब्रह्मादित्यौ । छन्द-गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् उष्णिक्)

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥ १ ॥
रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा
हासिष्टाम् ॥ २ ॥
उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा धरुणश्च मा
हासिष्टाम ॥ ३ ॥
विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा
च मा हासिष्टाम् ॥ ४ ॥
बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ॥ ५ ॥
असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ॥६॥

मैं धनों का मूर्धा रूप रहूँ । अपने समान व्यक्तियों में मस्तक रूप होऊँ ॥ १ ॥ रुज, यज्ञ, मूर्धा, विधर्मा मेरा त्याग न करें ॥ २ ॥ उर्व, चमस, धरुण और धर्ता मुझसे वियुक्त न हों ॥ ३ ॥ विमोक, आर्द्रपवि, आर्द्रदानु और मातरिश्वा मुझसे पृथक् न हों ॥ ४ ॥ हर्षद, अनुग्रहप्रद, मन को लगाने वाले बृहस्पति मेरी आत्मा हैं ॥ ५ ॥ दो कोश तक की भूमि मेरी हो, मेरा हृदय संतप्त न हो । मैं धारक शक्ति द्वारा समुद्र के समान गहन होऊँ ॥ ६ ॥

४ सूक्त

(ऋषि-अथर्वा । देवता-ब्रह्मादित्यौ । छन्द-अनुष्टुप्, उष्णिक्, गायत्री)

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥ १ ॥
स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा ॥ २ ॥
मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ॥ ३ ॥
सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो
मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥ ४ ॥

प्राणापानौ मा मा हासिष्टं मा जने प्र मेषि
स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो
शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे
दक्षं दधातु ॥ ७ ॥

मैं धनों का नाभि रूप होऊँ, सबके समान
समान रहूँ ॥ १ ॥ सत्यधर्मा मनुष्यों में श्रेष्ठ उप
सुन्दरता पूर्वक प्रतिष्ठित होने वाली है ॥ २ ॥ प्राण मुझे
मुझे छोड़कर न जाय ॥ ३ ॥ सूर्य दिन में रक्षा करें
करें, वायु अन्तरिक्ष से, यम मनुष्यों से और सर
रक्षा करने वाले हों ॥ ४ ॥ प्राणापान मुझे न छोड़ें
उषा काल से और रात्रि से मेरा मंगल हो मैं स
उपभोग करने वाला होऊँ ॥ ६ ॥ पशुओ ! तुम
मेरे निकट स्थित होओ । वरुण मेरे प्राणापान को पोषित करें और अग्नि
मेरे बल को दृढ़ करें ॥ ७ ॥

५ सूक्त [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि-यमः । देवता-दुःस्वप्ननाशनम् । छन्द-गायत्री, बृहती)

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥१॥
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥ २ ॥
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ।३।
विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ।४।
विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ।

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥६॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥७
विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥८॥
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥ ९ ॥
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात् पाहि ॥१०

हे स्वप्न ! तू ग्राह्या पिशाची से उत्पन्न हुआ यम को प्राप्त कराने वाला है। मैं तेरी उत्पत्ति का जानने वाला हूँ ॥ १ ॥ हे स्वप्न ! तू अन्त करने वाला मृत्यु है ॥ २ ॥ हे स्वप्न ! हम तुझे जानते हैं, तू दुःस्वप्न से हमको बचा ॥ ३ ॥ हे स्वप्न के अधिष्ठात्री देवते ! हम तुम्हारे जन्म के ज्ञाता हैं। तुम निर्ऋति के पुत्र हो और यम को प्राप्त कराने वाले हो ॥ ४ ॥ हे स्वप्न के अधिष्ठात्री देवते ! हम तुम्हारे जन्म के ज्ञाता है। तुम अभूति के पुत्र और यम के कारण रूप हो ॥ ५ ॥ हे स्वप्न के अधिष्ठात्री देव ! हम तुम्हारे जन्म को जानते हैं। तुम निर्भूति के पुत्र और यम के कारण रूप हो ॥ ६ ॥ हे स्वप्न के अधिष्ठात्री देव ! हम तुम्हारे जन्म को जानते हैं। तुम पराभूति के पुत्र और यम के कारण रूप हो ॥७॥ हे स्वप्न के अधिष्ठात्री देव ! हम तुम्हारे जन्म को जानते हैं। तुम देवजामियों के पुत्र और यम के कारण रूप हो ॥ ८ ॥ हे स्वप्न ! तुम अन्त करने वाली मृत्यु हो ॥ ९ ॥ तुमको हम अच्छे प्रकार जानते हैं, दुःस्वप्न से तुम हमारी रक्षा करो ॥ १० ॥

६ सूक्त

(ऋषि-यमः । देवता-दुःस्वप्ननाशनम्, उषा । छन्द-अनुष्टुप्, पङ्क्ति, बृहती, जगती, उष्णिक् गायत्री,)

अजैष्माद्यासनामाद्या भूमानागसो वयम् ॥ १ ॥

उषो यस्माद् दुःष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥ २ ॥
द्विषते तत् परा वह शपते तत् परा वह ॥ ३ ॥
यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तस्मा एमद् गमयामः ॥४॥
उषा देवी वाचा संविदाना वाग् देव्युषसा संविदाना ॥५॥
उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना
संविदानः ॥ ६ ॥
तेमुष्मै परा वहन्त्वरायान् दुर्णाम्नः सदान्वाः ॥ ७ ॥
कुम्भीका दूषीकाः पीयकान् ॥ ८ ॥
जाग्रःद्दुष्वप्न्यं स्वप्नेदुःष्वप्न्यम् ॥ ९ ॥
अनागमिष्यतो वरानवित्तेः संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान् ॥१०॥
तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद्
विथुरो न साधुः ॥ ११ ॥

हम विजय प्राप्त करें, भूमि प्राप्त करें और पाप-रहित हों ॥ १ ॥ हम दुःस्वप्न से भयभीत हुए हैं, उसका भय मिट जाय ॥ २ ॥ हे मंत्र शक्ति के अधिष्ठाता देव ! हमसे द्वेष करने वाले के समीप इस भय को ले जाओ। हम को कोसने वाले को यह भय प्राप्त कराओ ॥ ३ ॥ हम अपने वैरी के पास इस भय को प्रेरण करते हैं ॥ ४ ॥ उषा वाणी से समान मत वाली हो और वाणी उषा से समान मत रखे ॥ ५ ॥ उषा के पति वाचस्पति से समान मत रखें और वाचस्पति उषस्पति से एक मत हों ॥ ६ ॥ वे दूषित नाम वाली कुम्भीकों, पीयकों, को शत्रु पर प्रेरित करें ॥ ७-८ ॥ सोते समय दुःस्वप्नों से प्राप्त होने वाले फलों को, जागते हुए दुःस्वप्नों से प्राप्त होने वाले फलों से, भूतकालीन उत्तम संकल्पों को और शत्रु के पाशों को खोलता हूँ ॥ ९-१० ॥ हे अग्ने ! देवगण इन सबको शत्रु के पास ले जाँय। वह भयभीत होता हुआ पुंसत्वहीन हो और सज्जन न रह पावे ॥ ११ ॥

७ सूक्त

(ऋषि—यमः । देवता—दुःष्वप्ननाशनम् । छन्द—पङ्क्ति, अनुष्टुप्, उष्णिक्, गायत्री, उष्णिक, बृहती, त्रिष्टुप्)

तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि
पराभूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि ॥१॥
देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि ॥ २ ॥
वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥ ३ ॥
एवानेवाव सा गरत् ॥ ४ ॥
योस्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥५
निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम ॥६॥
सुयामंश्चाक्षुप ॥ ७ ॥
इदमहमामुष्यायणेमुष्याः पुत्रे दुःष्वप्न्यं मृजे ॥८॥
यददोमदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वां रात्रिम् ॥९॥
यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् ॥ १० ॥
यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ॥ ११ ॥
तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ॥ १२ ॥
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ १३ ॥

मैं इसे अभिचार कर्म से, अभूति से, निर्भूति से, पराभूति से, ग्राह्या से और मृत्यु रूप अन्धकार से विदीर्ण करता हूँ ॥ १ ॥ मैं इसे देवताओं की भयंकर आज्ञाओं के समक्ष उपस्थित करता हूँ ॥ २ ॥ मैं इसे वैश्वानर के दाढ़ों में डालता हूँ ॥ ३ ॥ वह इसे निगल जाँय ॥ ४ ॥ हमारे द्वेषी से आत्मा द्वेष करे और जिससे हम द्वेष करते हैं वह आत्मा से द्वेष करे ॥ ५ ॥ उस द्वेष करने वाले को हम आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष से दूर करते हैं ॥ ६ ॥ हे चाक्षुप ! दुःस्वप्न से प्राप्त होने वाले फल को अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र में भेजता हूँ ॥ ७-८ ॥ पूर्व रात्रि में अमुक-अमुक कर्म को

मैं कर चुका हूँ। जाग्रतावस्था, सुषुप्तावस्था, दिन, रात्रि या नित्य प्रति मैं जिस पाप-दोष को प्राप्त होता हूँ, उसी के द्वारा इसे नष्ट करता हूँ ॥ ९-१०-११ ॥ हे देव ! उस शत्रु की हिंसित करो, फिर हर्ष युक्त होते हुए उसकी पसलियों को भी तोड़ दो ॥ १२ ॥ यह प्राण-हीन हो, जीवित न रहे ॥ १३ ॥

८ सूक्त

(ऋषि—यमः । देवता—दुःस्वप्ननाशनम् । छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री, त्रिष्टुप्; जगती; पंक्ति; बृहती)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं-
ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं-
प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥ १ ॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥ ३ ॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्मकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्या पुत्रमसा यः ।
स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः-
प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ५ ॥

शत्रुओं को मार कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग पशु, प्रजा और सब वीर हमारे ही हैं ॥ १ ॥ अमुक गोत्रिय, अमुकी पुत्र के हम इस लोक से हटाते हैं ॥ २ ॥ यह ग्राह्य के पाश से मुक्त न हो पावे ॥ ३ ॥ मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधा मुख करके नीचे गिराता हूँ ॥ ४ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए, जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर

हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले, अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से हटाते हैं, यह निर्ऋति के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर अधो मुख डालता हूं ॥ ५ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं-
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
सोऽभूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि-
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ६ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर-
स्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स-
निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि-
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ७ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व-
रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि-
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ८ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व-
रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स देवजामीनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि-
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ९ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व-

रस्माकं यशोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि-
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १० ॥

शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए, जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले, अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं, वह अभूति के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर औंधे मुख डालता हूँ॥ ६॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले, अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं, वह निर्भूति के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ॥ ७॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले; अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह पराभूति के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधा मुख करके डालता हूँ॥ ८॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह देवजामि के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधा मुख करके गिराता हूँ॥ ९॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह बृहस्पति के बंधन से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ॥ १०॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर-
स्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि-
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ११ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व-
रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स ऋषीणां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि-
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १२ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व-
रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स आर्षेयाणां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि-
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १३ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वर-
स्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि-
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १४ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व
रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स आङ्गिरसानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि-

वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १५ ॥

शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह प्रजापति के बंधन से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ ११ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह ऋषियों के बंधन से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ १२ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं। सत्य तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले, अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर भेजते हैं। वह आर्षेयों के बंधन से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ १३ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह अंगिराओं के बंधन से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ १४ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं, वह आंगिरसों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ॥ १५ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।

सोऽथर्वणां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि-
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १६ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व-
रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि-
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १७ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व-
रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि-
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १८ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व-
रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः । स
वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि-
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १९ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व-
रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स ऋतूनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि-
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ २० ॥

शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं ।

सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह अथर्वाओं के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ॥ १६ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह आथर्वणों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ॥ १७ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह वनस्पतियों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ॥ १८ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह वानस्पत्यों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ॥ १९ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र ो हम इस लोक से दूर करते हैं। वह ऋतुओं के पाश से मुक्त न हो। मैं ासके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ । २० ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः।
स आर्तवानां पाशान्मा मोचि।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२१॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स मासानां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२२॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२३॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२४॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा
अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
सोऽह्नोः संयतोः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।२५।

शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह शत्रुओं के पदार्थों के

पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ॥ २१ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह मासों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ॥ २२ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह अर्धमासों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ॥ २३ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह दिन-रात्रियों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ २४ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह रात दिन के संयत भागों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ २५ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः।
स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।२६।
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः।
स मासानां पाशान्मा मोचि।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२२॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः।
सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२३
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः।
सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२४
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा
अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः।
सोऽह्नोः संयतोः पाशान्मा मोचि।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।२५

शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वा अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह ऋतुओं के पदार्थों

पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ॥ २१ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह मासों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ॥ २२ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह अर्धमासों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख डालता हूँ ॥ २३ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह दिन-रात्रियों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ २४ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह रात दिन के संयत भागों के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ २५ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः।
स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।२६।
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा

अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।२७।
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा
अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२८॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥२९॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा
अस्माकम् ॥ ३० ॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥ ३१ ॥
स मृत्योः पड्वीशात् पाशान्मा मोचि ॥ ३२ ॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥३३॥

शत्रुओं को विदीर्ण कर जाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह द्यावापृथिवी के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर

उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ २६ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह इन्द्राग्नि के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ २७ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह मित्रावरुण के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ २८ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं। वह राजा वरुण के पाश से मुक्त न हो। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ २९ ॥ शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए और जीते हुए पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा और सब वीर हमारे हैं ॥ ३० ॥ अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से पृथक् करते हैं ॥ ३१ ॥ वह मृत्यु के पादबंधक पाशों से मुक्त न हो ॥ ३२ ॥ उसके वर्च, तेज, प्राण और आयु को लपेट कर उसे औंधे मुख गिराता हूँ ॥ ३३ ॥

९ सूक्त

(ऋषि—यमः। देवता-प्रजापतिः, मन्त्रोक्ताः, सूर्यः। छन्द—अनुष्टुप्; उष्णिक्; पङ्क्ति)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ॥१॥
तदग्निराह तदु सोम आह पूषा मा धात् सुकृतस्य लोके ॥२॥
अगन्म स्वः स्वरगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ॥ ३ ॥
वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान्

भूयासं वसु मयि धेहि ॥ ४ ॥

शत्रुओं को विदीर्ण कर लाये हुए तथा जीते हुए सब पदार्थ हमारे हैं। मैं शत्रुओं की सेना पर अधिष्ठित होऊँ ॥ १ ॥ अग्नि और सोम इसी बात को कह रहे हैं पूषा मुझे पुण्यलोक में प्रतिष्ठित करें ॥ २ ॥ हम स्वर्ग को प्राप्त हों, सूर्य की ज्योति से उत्तम प्रकार से स्वर्ग लोक को प्राप्त हों ॥३॥ मैं धनी एवं सत्कार पाने के योग्य हूँ। मैं परम धनी होने के लिये धन पर अधिकार करूँ। हे देव ! मुझ में धन को पुष्ट करो ॥ ४ ॥

॥ इति षोडशं काण्डं समाप्तम् ॥

सप्तदश काण्ड



१ सूक्त [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—आदित्यः। छन्द—जगती, अष्टि, धृति, शक्वरी, कृतिः, प्रकृतिः, ककुप, बृहती, अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्)

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् ॥ १ ॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् ॥ २ ॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ॥ ३ ॥

विपासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ॥ ४ ॥
विपासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ॥ ५ ॥

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।
द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥६॥
उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥७॥
मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्वन्तर्ये पाशिन उपतिष्ठ त्यत्र ।
हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥८॥
त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥९॥
त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव ।
आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१०॥

सहमान (अन्य को दवाने वाले तेज से युक्त), शत्रुओं में से उस तेज को जीतने वाले, स्वर्ग के विजेता, शत्रुओं के गवादि पशुओं को जीतने वाले, जलों के जीतने वाले इन्द्र (रूप सूर्य को) त्रिकाल कर्मों द्वारा आहूत करता हूँ, उनकी कृपा से मैं आयु से सम्पन्न होऊँ ॥१॥ विपासहि, सहमान्, सासहान, सहीयान्, तेज के विजेता, स्वर्ग और गौओं के विजेता, जलों के विजेता इन्द्र (सूर्य) को मैं आहूत करता हूँ । मैं उनकी कृपा से देवताओं का प्रिय होऊँ ॥ २ ॥ विपासहि, सहमान, सासहान, सहीयान्, तेज के विजेता, स्वर्ग, गौ और जलों के विजेता इन्द्रात्मक सूर्य को मैं आहूत करता हूँ । उनकी कृपा से मैं संतानादि का प्रिय होऊँ ॥ ३ ॥ विपासहि, सहमान, सासहान, सहीयान्, तेज के विजेता, स्वर्ग, गौ और जलों के विजेता इन्द्रात्मक सूर्य को मैं आहूत करता हूँ । उनकी कृपा से मैं पशुओं का प्रिय होऊँ ॥ ४ ॥ विपासहि, सहमान, सासहान, सहीयान्, तेज के विजेता, स्वर्ग, गौ और जलों के जीतने वाले इन्द्रात्मक सूर्य को आहूत करता हूँ । उनकी कृपा से मैं समान पुरुषों का प्रिय होऊँ ॥ ५ ॥ उदय होने पर सब प्राणियों को अपने-अपने कर्म में लगाने वाले सूर्य ! तुम उदय होओ । तुम सब के दवाने वाले हो, मुझे वर्च प्राप्त कराने को उदय होओ । तुम्हारी कृपा से मुझ से द्वेष रखने वाले मेरे आधीन हों । मैं तुम्हारा उपासक शत्रुओं के वश में कभी न होऊँ ! हे विष्णु रूप सूर्य ! तुम अपनी किरणों से विश्व को व्याप्त करने वाले हो । तुम हमें अनेक प्रकार के पशुओं से पूर्ण करो और देह के अन्त होने पर हमें परम व्योम में स्थापित करो ॥ ६ ॥ हे सूर्य ! उदय होओ, सब के दवाने वाले तेज से मुझे युक्त करो । जो प्राणी मेरे सामने दिखाई देते हैं अथवा जो नहीं दिखाई देते हैं, उन दोनों प्रकार के प्राणियों में मुझे उत्कृष्ट बुद्धि वाला करो । हे विष्णु रूप सूर्य ! ऐसा तुम्हारा ही प्रभाव है, अन्य का नहीं । मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से पूर्ण करते हुए अन्त में परम व्योम और सुधा में स्थापित करो ॥ ७ ॥ हे सूर्य ! जलों में पाशधारी राक्षस तुम्हें अन्तरिक्ष के जलों में न रोकें । तुम अपने यश से अन्तरिक्ष पर चढ़े हो । तुम हमें सुख दो । हम तुम्हारी कृपा-पूर्ण बुद्धि में रहें । हे विष्णु रूप सूर्य ! तुम अत्यन्त पराक्रमी हो । मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न करते हुए

देहान्त में परम व्योम और सुधा में स्थापित करो ॥८॥ हे अत्यन्त ऐश्वर्यवान् सूर्य ! ऐश्वर्य सिद्धि के लिए तुम सर्पादि की हिंसा से रहित रात्रि और दिवस द्वारा हमें रक्षित करो । तुम अत्यन्त पराक्रम वाले हो । मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न करते हुए देहान्त में परम व्योम और सुधा में स्थापित करो ॥ ९ ॥ हे ऐश्वर्य सम्पन्न सूर्य ! हमको महान् सुख दो । अपने कल्याणमय रक्षा-साधनों से हमें सुखी करो । तुम्हारे द्वारा रक्षित मनुष्य बारम्बार आवागमन का क्लेश नहीं पाता । तुम्हें अपना स्थान प्रिय है । हमारे द्वारा स्तुत होते और सोम-पान करते हुए हमारी रक्षा करो । हे सूर्य ! तुम अपरिमित प्रभाव वाले हो । मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न करते हुए देहान्त में परम व्योम और सुधा में स्थापित करो ॥ १० ॥

त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र ।
त्वमिन्द्रे मं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो वहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥११॥
अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे ।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षञ्छर्म यच्छ तवेद् विष्णो वहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधाया मा धेहि परमे व्योमन् ॥१२॥
या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि । ययेन्द्र तन्वान्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा शर्म यच्छ तवेद् विष्णो वहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१३॥
त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि षेदुर्ऋषयो नाधमानास्तवेद् विष्णो वहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१४॥

त्वं नृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद् विष्णो
बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१५॥
त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासि ।
त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१६॥
पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङशस्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१७॥
त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।
तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१८॥
असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।
भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१९॥
शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि ।
स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् ॥२०॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रात्मक सूर्य ! तुम संसार को जीतने वाले हो । तुम पुरुहूत हो । इस समय सुन्दर आह्वान वाले इस स्तोत्र को स्वीकार करो और हमको सुख दो । हम तुम्हारी कृपामयी बुद्धि में रहें । तुम अपरिमित प्रभाव वाले हो । मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न करते हुए देहान्त प. परम व्योम और सुधा में स्थापित करो ॥ ११ ॥ हे इन्द्रात्मक सूर्य ! तुम

आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी में किसी से भी नहीं दबते हो। क्योंकि तुम असीमित शक्ति से सम्पन्न गायत्री मन्त्र द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते रहते हो। तुम्हारे अपरिमित पराक्रम हैं। मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से पूर्ण करो और मरने पर परम व्योम में सुधा में स्थापित करो॥ १२॥ हे इन्द्रात्मक सूर्य! तुम अपनी जलों में स्थित आभा से हमें सुख दो, जलों में विद्यमान औषधि आदि के सार रूपों से भी हमें सुखी करो। पृथिवी में जो तुम्हारा रूप है, उसके द्वारा हमें अन्नादि का सुख दो और अन्तरिक्ष में व्याप्त अपने रूप से हमें वृष्टि आदि सुख दो। तुम अपरिमित प्रभाव वाले हो। हमें अनेक प्रकार के पशुओं से पूर्ण करो और देह के अन्त होने पर परम व्योम में, अमृत धाम में स्थापित करो॥ १३॥ हे इन्द्रात्मक सूर्य! अभीष्ट फलों की इच्छा करते हुए पुरातन कालीन ऋषि तुम्हें स्तोत्रादि से प्रवृद्ध करते रहते थे। तुम अपरिमित प्रभाव वाले हो। हमें अनेक प्रकार के पशु आदि से पूर्ण करो, और मरने पर दुःखादि क्लेशों से रहित परम व्योम के अमृतमय स्थान में प्रतिष्ठित करो॥ १४॥ हे इन्द्रात्मक सूर्य! तुम अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर अपरिमित धाराओं वाले मेघ को प्राप्त होते हो। यह मेघ औषधि आदि को बढ़ाने वाला और यज्ञ का साधन रूप होने से साक्षात् यज्ञ ही है। तुम्हारे अपरिमित प्रभाव हैं। हमें अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न करो और मरने पर परम व्योम के अमृत में प्रतिष्ठित करो॥ १५॥ हे सूर्य! तुम चारों दिशाओं के रक्षक हो। तुम अपने प्रकाश से आकाश और पृथिवी को प्रकाशित करते हो। तुम जल को जानते हुए उसके मार्ग में व्याप्त होते हो। तुम अपरिमित प्रभाव वाले हो। मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न करो और मृत्यु के पश्चात् परमाकाश के अमृत स्थान में प्रतिष्ठित करो॥ १६॥ हे सूर्य! तुम पाँच रश्मियों द्वारा ऊपर को मुख करके ऊर्ध्व लोकों को प्रकाशित करते हो। ऐसा करते हुए तुम पृथिवी को एक किरण से ही प्रकाशित करने की निन्दा को प्राप्त होते हो। तुम्हारे अपरिमित प्रभाव हैं। मुझे अनेक रूप वाले पशुओं से सम्पन्न करो और मरने पर परमाकाश के सुधा में स्थापित करो॥ १७॥ हे इन्द्रा- सूर्य! पुण्यात्माओं को मिलने वाले पुण्यलोक तुम ही हो। तुम्हीं प्रा-

यिता हो, इसीलिए यजमान तुम्हारे निमित्त ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों को
ते हैं। तुम अनेक प्रभावों से सम्पन्न हो। मुझे अनेक प्रकार के पशुओं से
म्पन्न करो और मरने पर परमाकाश के अमृत में प्रतिष्ठित करो ॥ १८ ॥
असत् में सत् स्थापित है अर्थात् ब्रह्म में भूत स्थापित हैं। हे सूर्य ! तुम
अपरिमित प्रभाव वाले हो। मुझे अनेक प्रकार के पशु आदि से युक्त करो
और मृत्यु के पश्चात् परमाकाश के अमृत में प्रतिष्ठित करो ॥ १९ ॥ हे सूर्य !
तुम ही शक्र हो। सब लोकों को प्रकाशित करने वाले तेज से तुम ज्योति-
मान् रहते हो। मैं तुम्हारे ऐसे ही रूप की उपासना करता हूं। मैं भी उसी
प्रकार के तेज से युक्त होऊँ ॥ २० ॥

रुचिरसि रोचोऽसि । स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च
ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय ॥ २१ ॥

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥ २२ ॥

अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥ २३ ॥

उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।
सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं तवेद विष्णो बहुधा
वीर्याणि । त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे
व्योमन् ॥२४॥

आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये ।
अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्राति पारय ॥२५॥

सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये ।
रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय ॥२६॥

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् ॥२७॥

परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय ॥२८॥
ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः ॥२९॥
अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् ।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ॥३०॥

हे सूर्य ! तुम दीप्ति रूप हो, जैसे संसार को प्रकाशित करने वाली दीप्ति से दमकते हो, वैसे ही मैं पशुओं से और ब्रह्मवर्च से दमकता रहूँ ॥२१॥ हे सूर्य ! तुम उदयाचल को प्राप्त होते हुए को नमस्कार है। अर्द्धोदित और पूर्णोदित को नमस्कार है। एकदेशोदित विराट्, अर्द्धोदित स्वराट् और पूर्णोदित सम्राट् को नमस्कार है ॥२२॥ अस्त होते हुए (अर्द्धास्त) एवं अस्त को प्राप्त हुए और पूर्णरूप से अस्त हुए आदित्य को नमस्कार है। विराट्, स्वराट्, सम्राट् रूप सूर्य को नमस्कार है ॥ २३ ॥ सब लोकों को पूर्णतया तप्त करने वाले आदित्य अपने रश्मिजाल सहित, मेरे पशुओं को दबाते हुए उदित होगए। हे सूर्य ! तुम्हारी कृपा से मैं द्वेष करने वालों के वश में न पड़ूँ। तुम अपरिमित प्रभाव वाले हो। मैं अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न होऊँ। मरने पर तुम मुझे सुखायुक्त परम व्योम में प्रतिष्ठित करो ॥ २४ ॥ हे आदित्य ! व्योमरूपी समुद्र से पार होने के लिए तुम वायुरूपी पतवार लेकर रथरूपी नौका पर संसार के कल्याण के लिए आरूढ़ हुए हो। तुम मेरी त्रिताप से रक्षा करते हुए दिन के पार उतार चुके हो। ऐसे ही मुझे रात्रि के पार भी पहुँचाओ ॥२५॥ हे सूर्य ! तुम व्योमसिंधु से तरने के लिए वायुरूपी पतवार को लेकर संसार के कल्याणार्थ रथरूप नौका पर आरूढ़ हुए हो। तुमने मुझे कुशल-पूर्वक रात्रि के पार पहुँचा दिया है। उसी प्रकार अब दिन के भी पार पहुँचाओ ॥२६॥ प्रजापतिरूप सूर्य के दृढ़ तेजरूप कवच से मैं ढका हूँ। मैं जीर्ण होकर भी दृढ़ अङ्गों वाला तथा रोग रहित रहता हुआ अनेक प्रकार के भोगों का उपभोग करता रहूँ। मैं शारीरिक बलों से युक्त रहता हुआ प्रजोत्पत्ति में समर्थ रहूँ। मैं दीर्घ आयु को पाता हुआ लौकिक

वैदिक कर्मों को करता हुआ, सूर्य का कृपा-पात्र रहूँ ॥२७॥ मैं कश्यपरूप सूर्य के मंत्रमय कवच से आच्छादित हूं। मैं तेज से और रक्षात्मक रश्मियों से रक्षित हूँ। इसलिए मेरी हिंसा के लिए देवताओं और मनुष्यों द्वारा प्रयुक्त आयुध मेरे पास न आ सकें ॥२८॥ मैं सत्य से, सूर्यात्मक ब्रह्म से, ऋतुओं से और सब प्राचीन कालीन पदार्थों से रक्षित हूं, इसलिए नरक का कारणरूप पाप मेरे पास न आवे। मैं मन्त्राभिमन्त्रित जल से, जल में छिपे प्राणी के अदृश्य रहने के समान अदृश्य होता हूँ। मैं पाप आदि से बचने को मंत्रमय जल द्वारा अपने को रक्षित करता हूँ ॥२९॥ अपने आश्रित के अग्निदेव रक्षक हैं, वे भय से मेरी रक्षा करें। मारक मृत्यु के पाशों से उदय होते हुये सूर्य मेरी रक्षा करें। उषा मृत्यु के पाशों को दूर करे। प्राण मुक्त आयु की कामना वाले में सचेष्ट रहे। इन्द्रियाँ भी चेष्टा करती रहें ॥३०॥

॥ इति सप्तदशं काण्डं समाप्तम् ॥

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमा विविश्याः ॥३॥
न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृतं वदन्तो अनृतं रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नौ नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥४॥
गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥५॥
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥६॥
को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥७॥
यमस्य मा यम्यं काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ॥८॥
न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥९॥
रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि ॥१०॥

(यमी वाक्य) समान प्रसिद्धि वाले मित्र यम को सख्यभावानुकूल करती हूँ । समुद्र तटवर्ती द्वीप में गमन करते हुए यम, पुत्र को मुझमें स्थापित करें । हे यम ! तुम्हारी ख्याति सब लोकों में है, तुम सदा तेज से दीप्त रहो॥१॥ (यम) मैं समान उदरोत्पन्न तेरा मित्र हूँ । परन्तु मैं भाई-बहिन के समागमात्मक मित्र भाव की इच्छा नहीं करता । क्योंकि तू एक उदररूप वाली होकर भी पत्नीत्व की कामना करती है, ऐसे मित्र भाव को मैं स्वीकार नहीं करता । शत्रुओं को दबाने वाले, महाबली रुद्र के पुत्र मरुद्गण भी इसकी निन्दा करेंगे।२।(यमी)हे यम! मरुद्गण मेरे निवेदित मार्ग की इच्छा करते हैं । अतः अपने मन को मेरी ओर लगाओ, फिर सन्तान को उत्पन्न करने वाले पति

बनते हुए, भ्रातृभाव को छोड़कर मुझमें प्रविष्ट होओ ॥३॥ हे यमी ! असत्य बात को हम सत्य बोलने वाले कैसे कहें। जलधारक सूर्य भी अन्तरिक्ष में अपनी भार्या सहित स्थित हैं। अतः अभिन्न माता-पिता वाले हम दोनों उन्हीं के सामने तेरा इच्छित पूर्ण करने में समर्थ न होंगे ॥ ४ ॥ हे यम ! सन्तानोत्पादक देव ने ही हम दोनों को माता के उदर में ही दाम्पत्य बन्धन में बाँध दिया है, उस देव के कर्मफल को निष्फल कौन कर सकता है ? त्वष्टा-देव के गर्भ में ही हमारे दम्पतिकरणरूप कर्म को आकाश और पृथिवी दोनों जानते हैं। इसलिए यह असत्य नहीं है ॥५॥ हे यमी ! सत्य के भार वहन के निमित्त अपने वाणी रूप वृषभ को कौन नियुक्त करता है ? कर्मवान्, तेजस्वी, क्रोध और लज्जा से हीन, अपने शब्दों से श्रोताओं के हृदय में बैठने वाला जो पुरुष सत्य वचनों को वृद्धि करता है वह उसके फल से दीर्घजीवी होता है ॥६॥ हे यम ! हमारे प्रथम दिन को कौन जान रहा है, कौन देख रहा है ? फिर कौन पुरुष इस बात को दूसरे से कह सकेगा ? दिन मित्र देवता का स्थान है, यह दोनों ही विशाल हैं। इसलिए मेरे अभिमत के प्रतिकूल मुझे क्लेश देने वाले तुम, अनेक कर्मों वाले मनुष्यों के सम्बन्ध में किस प्रकार कहते हो ? ।७। मेरी इच्छा है कि पति को शरीर अर्पण करने वाली पत्नी के समान, यम को अपना देह अर्पित करूँ और ये दोनों पहिये जैसे मार्ग में संश्लिष्ट होते हैं, उसी प्रकार मैं भी होऊँ ॥८॥ हे यमी ! देवदूत बराबर विचरण करते रहते हैं, वे सदा सतर्क रहते हैं इसलिये हे मेरी धर्म-मति को नष्ट करने की इच्छा वाली, तू मुझे छोड़कर अन्य किसी की पत्नी बन और शीघ्रता से जाकर उसके साथ रथ-चक्र के समान संश्लिष्ट हो ॥ ९ ॥ यम के निमित्त यजमान दिन रात्रि आहुति दें, सूर्य का प्रकाशक तेज नित्यप्रति इसके निमित्त उदय हो। आकाश पृथिवी जैसे परस्पर संश्लिष्ट हैं, वैसे ही मैं इसके भ्रातृत्व से पृथक् होती हुई उससे संश्लिष्ट होऊँ ॥१०॥

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥११॥
किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।

काममूता बह्वे तद् रपामि तन्वा मे तन्वं सं पिपृग्धि ॥१२॥
न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा सं पपृच्याम् ।
अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्टयेतत् ॥१३॥
न वा उ ते तनूं तन्वा सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥१४॥
बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजातै लिबुजेव वृक्षम् ॥१५॥
अन्यमू षु यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजातै लिबुजेव वृक्षम् ।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् १६
त्रीणि च्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम् ।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि ॥१७॥
वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजति यज्ञियां ऋतून् ॥१८॥
रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु नो मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति १९
सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥२०॥

सम्भवतः आगे चलकर ऐसा ही दिन रात्रि आयें जब बहिन अपने अबन्धुत्व द्वारा भार्यात्व को पाने लगेंगी। पर अभी ऐसा नहीं होता, अतः हे यमी! तू सेचन समर्थ अन्य पुरुष के लिए अपना हाथ बढ़ा और मुझे छोड़कर उसेही पति बनाने की कामना कर ॥११॥ वह बन्धु कैसा, जिसके विद्यमान रहते भगिनी इच्छित कामना से वियुक्त रह जाय। वह कैसी भगिनी जिसके समक्ष बन्धु संतप्त हो। इसलिए तुम मेरी इच्छानुसार आचरण करो ॥१२॥ हे यमी! मैं तेरी इस कामना को पूर्ण करने वाला नहीं हो सकता और तेरे देह से स्पर्श नहीं कर सकता। अब तू मुझे छोड़ कर अन्य पुरुष से इस प्रकार का सम्बन्ध

स्थापित कर। मैं तेरे भार्यात्व की कामना नहीं करता ॥ १३ ॥ हे यमी ! तेरे शरीर का स्पर्श नहीं कर सकता। धर्म के ज्ञाता, बन्धु-भगिनी के ऐसे सम्बन्ध को पाप कहते हैं। मैं ऐसा करूँ तो यह कर्म मेरे हृदय, मन और प्राण का भी नाश कर देगा ॥१४॥ हे यम ! तेरी दुर्बलता पर मुझे दुःख है। तेरा मन मुझमें नहीं है, मैं तेरे हृदय को नहीं समझ सकी। जैसे लगाम के वश में पड़ा अश्व अन्यत्र नहीं जा सकता। वैसे ही तू किसी अन्य स्त्री से सम्बन्धित होगा ॥१५॥ हे यमी ! रस्सी जैसे अश्व से युक्त होती है, व्रतति जैसे वृक्ष को जकड़ती है, वैसे तू अन्य पुरुष से मिल। तुम दोनों परस्पर अनुकूल मन वाले होओ और फिर तू अत्यन्त कल्याण वाले सुख को प्राप्त हो ॥१६॥ संसार को आच्छादन करने वाले जल आदि के आच्छादन का देवताओं ने यत्न किया। जल तत्व प्रिय दर्शन वाला और विश्व का द्रष्टा है। वायु तत्व भी दर्शनीय और विश्वद्रष्टा है, औषधि तत्व भी ऐसा ही है। इन तीनों को देवताओं ने पृथिवी का भरण करने को प्रतिष्ठित किया ॥ १७ ॥ महान् अग्निदेव यजमान के लिए यज्ञ आदि द्वारा आकाश से जल-वृष्टि करते हैं। यह अपनी बुद्धि द्वारा सबको ऐसे ही जान लेते हैं, जैसे वरुण अपनी बुद्धि से सबको जानते हैं। वही अग्नि यज्ञ में पूजनीय देवताओं को पूजते हैं ॥१८॥ जलधारक सूर्य की स्वभूता वाणी और अन्तरिक्ष में विचरणशील सरस्वती मेरे द्वारा अग्नि का स्तवन करें और मेरे स्तोत्ररूप नाद में मन की रक्षा करें। फिर देवमाता अदिति मुझे फल में स्थापित करें। बन्धु के समान हितकारी अग्नि मुझे उत्कृष्ट यजमान करें ॥ १९ ॥ अध्वर्युओं ने देवताओं का आह्वान करके अग्नि को देवताओं के लिए हवि-वहन के लिए प्रकट किया। तभी यह कल्याणमयी मंत्ररूप वाणी और सूर्य वाली उषा यज्ञादि की सिद्धि के लिए प्रकट होती हैं ॥२०॥

अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषिरः श्येनो अध्वरे।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ॥२१॥
सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यो वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः ॥२२॥

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ॥२३॥
यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अख्यत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान् भूषति द्यून् ॥२४॥
श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥२५॥
यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद् विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥२६॥
अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥२७॥
प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥२८॥
द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् ॥२९॥
देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥३०

जब सोम के लाये जाने पर यज्ञ निष्पादक अग्नि का वरण किया जाता है तब सोम और अग्नि के सिद्ध होने पर अग्निष्टोम आदि कर्म भी सम्पूर्ण होते हैं ॥२१॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञ की सुन्दरता से सम्पन्न करते हो । जैसे हरी घास आदि को खाने वाला पशु अपने पालक को सुन्दर दिखाई देता है, वैसे ही घृतादि से अपने को पुष्ट करने वाले यजमान के लिए तुम दर्शनीय होते हो । क्योंकि तुम स्तुत्य तुल्य होकर यजमान की प्रशंसा करते हुए हवि को देवताओं के पास पहुँचाते हो ॥२२॥ हे अग्ने ! आकाश रूप पिता और पृथिवी रूप माता को यज्ञ के लिए प्रेरित करो । जैसे सूर्य अपने प्रकाश को प्रेरित करते हैं वैसे ही तुम अपने तेज को प्रेरित करो । वह

यजमान जिन देवताओं की कामना करता है, उनकी अग्नि स्वयं कामना करते हैं। वे इच्छित पदार्थ देने की बात कहते हुए यज्ञ के लिए यजमान के पास आते हैं ॥ २३ ॥ हे अग्ने! जो यजमान तुम्हारी कृपा का अन्यों से वर्णन करता है, वह यजमान तुम्हारी कृपा से सर्वत्र प्रसिद्ध होता है। वह यजमान अन्न, अश्वादि से युक्त होता हुआ चिरकाल तक ऐश्वर्य में प्रतिष्ठित रहता है ॥ २४ ॥ हे अग्ने! तुम इस देवस्थान यज्ञ गृह में हमारे आह्वान को सुनो। जलद्रावक रथ को उन देवताओं के निमित्त जोड़ो। देवताओं की पालक रूप आकाश पृथिवी को भी लाओ। यहाँ आने से कोई भी देवता न बचे।२५। हे अग्ने! तुम पूजनीय हो। जब स्तोत्रों और हवियों की देवताओं में संगति हो तब तुम स्तुति करने वालों को रत्न देने वाले होओ और बहुत सा धन प्रदान करने वाले होओ ॥ २६ ॥ उषाकाल के साथ ही अग्नि प्रकाशित होते हैं, यह दिनों के साथ भी प्रकाशित रहते हैं। यही अग्नि सूर्य होकर उषा को और किरणों को प्रकाशित करते हैं। यही सूर्यात्मक अग्नि आकाश पृथिवी को सब ओर से प्रकाशित करते हैं ॥ २७ ॥ यह अग्नि नित्य उषा काल में प्रकाशित होते और दिन के साथ भी प्रकाश युक्त रहते हैं। यही सूर्यात्मक अग्नि अनेक प्रकार से प्रवृत्त रश्मियों में भी प्रकाश भरते हैं। यह आकाश पृथिवी को भी प्रकाश से व्याप्त करते हैं ॥ २८ ॥ आकाश पृथिवी मुख्य और सत्य वाणी हैं। जब अग्निदेव यजमान के पास यज्ञ-सम्पन्न करने के लिए बैठें तब वे आकाश पृथिवी स्तुति सुनने के योग्य हों ॥ २९ ॥ हे अग्ने! तुम प्रचण्ड ज्वालाओं से सम्पन्न हो। यज्ञ से पूज्य देवताओं को अपने वश में करते हुए, उनके पूजन की इच्छा करते हुए उन्हें हवि पहुँचाओ। तुम धूम रूप ध्वजा वाले, समिधाओं से दीप्त होने वाले, देवाह्वाक तथा पूजा के पात्र हो। तुम हमारी हवियों को पहुँचाओ ॥ ३० ॥

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद् देवा असुनीतिमायन् मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥३१॥
स्वावृग् देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥३२॥

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति
दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥ ३४ ॥
यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्यक्तून् परि द्योतनि चरतो अजस्रा ॥३५॥
यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये न वय स्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥३६॥
सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
स्तुष ऊ षु नृतमाय धृष्णवे ॥ ३७ ॥
शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा ।
मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥ ३८ ॥
स्तेगो न क्षामत्येषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥३९॥
स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत् ते नि वपन्तु [illegible]

आकाश पृथिवी के अधिष्ठात्री देवताओं ! [illegible] के लिए तुम्हारा स्तवन करता हूँ। हे आकाश पृथिवी [illegible] और ऋत्विज जब अपने बल को यज्ञ कर्म के [illegible] द्वारा हमारी वृद्धि करो ॥ ३१ ॥ [illegible] जल जब किरणों से प्रकट होता और [illegible] की [illegible] होती हैं और जब अग्नि दीप्तियाँ [illegible] करती हैं तब हे अग्ने ! [illegible] करते हैं ॥ ३२ ॥ देवताओं के [illegible] भाग ग्रहण करें। [illegible]

क्रमण हो गया हो । यहाँ देवाह्वाक अग्नि विराजमान हैं वही हमारे अपराध को दूर करेंगे। हमारे पास स्तुति के समान हवि भी है, उससे अग्नि को सन्तुष्ट करके यम सम्बन्धी अपराध से मुक्त हो सकेंगे ॥ ३३ ॥ यहाँ यम का नाम लेना उपयुक्त नहीं है क्योंकि इसकी भगिनी ने इसके भार्यात्व की कामना की थी। फिर भी जो इन यम की स्तुति करे, हे अग्ने ! तुम इस निन्दा का विस्मरण कराते हुए उस स्तोता की रक्षा करो ॥३४॥ जिन अग्नि के यज्ञ निष्पादक रूप से प्रतिष्ठित होने पर देवता प्रसन्न होते हैं और जिनके कारण मनुष्य सूर्य लोक में निवास करते हैं, जिन अग्नि के द्वारा ही देवताओं ने प्रकाशमान तेज को लोकत्रय में प्रतिष्ठित किया है तथा अन्धकार नाशक रश्मियों को जिनसे लेकर चन्द्रमा में स्थापित किया है। ऐसे तेजस्वी अग्नि की सूर्य और चन्द्रमा निरन्तर पूजा करते हैं ॥ ३५ ॥ वरुण के जिस स्थान में देवता घूमते हैं, उस स्थान को हम नहीं जानते । देवगण इस स्थान में वरुण से हमारे निर्दोष होने की बात कहें। सविता, अदिति, आकाश और मित्र देवता भी अग्नि की कृपा से हमको निर्दोष ही कहें ॥ ३६ ॥ हम सखा रूप इन्द्र के लिए दृढ़ कर्म करने की इच्छा करते हैं । उन शत्रु का मर्दन करने वाले, परम नेता, वज्रधारी इन्द्र का मैं स्तवन करता हूँ ॥ ३७ ॥ हे वृत्रनाशक इन्द्र ! तुम वृत्र हननकर्त्ता के रूप में जैसे प्रख्यात हो वैसे ही अपने बल से भी प्रख्यात हो। इसलिये अपने धन को मुझे दो ॥ ३८ ॥ मेंढ़क वर्षा ऋतु में जैसे पृथिवी को लाँघ जाता है वैसे ही तुम भी पृथिवी को लाँघकर ऊपर जाते हो । अग्नि की कृपा से यह वायु हमको सुखी करने वाले होकर बहें । मित्र देवता और वरुण देवता भी इस कर्म में लगकर, जैसे अग्नि तृणादि को भस्म करता है वैसे ही हमारे शोक को नष्ट करें ॥ ३९ ॥ हे स्तोता ! जिनका श्मशान घर है, पिशाचादि के स्वामी हैं, जो प्रचण्ड पराक्रमी, भय उत्पन्न करने वाले और पास आकर हिंसित करने वाले हैं, उन रुद्र देवता का स्तवन कर। हे दुःख नाशक इन्द्र ! हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर हमें सुख प्रदान करो। तुम्हारी सेना हमसे अन्यत्र तुम्हारे प्रति द्वेष रखने वाले पर ही आक्रमण करे ॥४०॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥४१॥
सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥४२॥
सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥४३॥
उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४४॥
आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥४५॥
इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु ॥४६॥
मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवांस्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४७॥
स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥४८॥
परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥४९॥
यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेता एना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः ॥५०॥

मृतक संस्कार करने वाले अग्नि की इच्छा करते हुए पुरुष सरस्वती का आह्वान करते हैं और ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों से भी सरस्वती को आहूत करते हैं। वह देवी हविदाता यजमान को इच्छित पदार्थ दे ॥४१॥ वेदी के दक्षिण ओर प्रतिष्ठित पितर भी सरस्वती का आह्वान करते हैं। हे पितरो !

तुम इस यज्ञ में विराजमान होते हुए प्रसन्न होओ। तुम सरस्वती को तृप्त करो और हवियों को प्राप्त कर सन्तुष्ट होओ। हे सरस्वति! तुम पितरों द्वारा आहूत हुई रोग-रहित इच्छित अन्न को हममें स्थापित करो॥ ४२॥ हे सरस्वते! तुम पितरों सहित अपने को तृप्त करती हुई एक ही रथ पर आती हो। अनेक व्यक्तियों और प्रजाओं को तृप्त करने वाले अन्नभाग और धन के बल को मुझ यजमान को भी प्रदान करो॥४३॥ अवस्था व गुणों में श्रेष्ठ अथवा निकृष्ट और मध्यम पितर भी उठें। यह पितर सोम भक्षक हैं। यह प्राण से उपलक्षित शरीर को प्राप्त होने वाले, अहिंसक और यथार्थ के ज्ञाता हैं। आह्वान कालों में यह सब पितर हमारे रक्षक हों॥ ४४॥ मैं कल्याण सम्पन्न पितरों के समक्ष उपस्थित होता हूँ। यज्ञ रक्षक अग्नि के समक्ष उपस्थित होता हूँ। इसलिए बर्हिषद् नामक जो पितर स्वधा के साथ सोम-पान करते हैं, उन्हें हे अग्ने! मेरे समीप बुलाओ॥४५॥ जो पहले पितर लोक को प्राप्त हुए, जो अब गए हैं, जो पृथिवी लोक में ही हैं, जो विभिन्न दिशाओं में हैं उन सब पितरों को नमस्कार है॥४६॥ मातली नामक पितृ देवता यजमान प्रदत्त हवि द्वारा कव्य नामक पितरों के साथ बढ़ते हैं. यम नामक पितृनेता यजमान प्रदत्त हवि से अङ्गिरा नामक पितरों सहित बढ़ते हैं और बृहस्पति नामक पितृ-नेता ऋक्व नामक पितरों सहित बढ़ते हैं। इनमें मातली आदि देवता जिन पितरों को यज्ञ में प्रवृद्ध करते हैं और जो कव्यादि को आहुति से प्रवृद्ध करते हैं, वे पितर आह्वान काल में हमारे रक्षक हों॥४७॥ यह सुसिद्ध सोम स्वाद चखने के योग्य है। यह मधुर है इसलिए सुस्वादु है, यह तीव्र होने से मद में भरने वाला है, यह रसवान है अतः इसे पीने वाले इन्द्र का संग्राम में कोई भी असुर सामना नहीं कर सकता॥४८॥ पृथिवी को लाँघ कर दूर देश में गमन करने वाले, अनेक पितरों के मार्ग पर चलने वाले विवस्वान् के पुत्र, मृतकों के धाम रूप यमराज को पूजते हैं॥४९॥ हमारे मृत संबंधियों के मार्ग को यम जानते हैं। देवता और मनुष्य सभी को इस मार्ग से जाना होता है। आत्मसाक्षात्कार से वियुक्त पुरुषों को कर्म फल रूप पितृलोक अवश्य प्राप्त होता है। जिन मार्गों

से हमारे पूर्व पुरुषा गण थे और जिस मार्ग से वे अपने कर्मों के अनुसार इस पृथिवी पर आते हैं, उन सभी मार्गों को यमराज जानते हैं ॥१०॥

बर्हिषदः पितरः ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शंतमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥ ५१ ॥
आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभि गृणन्तु विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद् व आगः पुरुषता कराम ॥५२॥
त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥५३॥
प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
उभा राजानौ स्वधया मदन्तौ यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥५४॥
अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥ ५५ ॥

यज्ञ में आगत बर्हिषद् पितरो ! हमारी रक्षा के लिए हमारे सामने आओ। यह हवियाँ तुम्हारे लिए हैं इन्हें सेवन करो। तुम अपने कल्याण-कारी रक्षा-साधनों सहित आओ और रोग-शमनात्मक तथा पाप नाशक बल को हममें स्थापित करो ॥ ५१ ॥ हे पितरो ! जानु सकोड़कर वेदी के दक्षिण ओर बैठे हुए तुम हमारी हवि की प्रशंसा करो। हमारे छोटे या बड़े किसी भी अपराध के कारण हमें हिंसित न करना, क्योंकि मनुष्य-स्वभाव वश हमसे अपराध होना असंभव नहीं है ॥ ५२ ॥ सिंचित वीर्य को पुरुषादि की आकृति में बदलने वाले त्वष्टा ने अपनी पुत्री सरण्यु का विवाह किया, जिसे देखने को अखिल विश्व एकत्रित हुआ। यम की माता सरण्यु जब सूर्य द्वारा विवाही गई तब सूर्य की परम प्रभाव वाली पत्नी उनके पास से अदृश्य हो गई ॥ ५३ ॥ हे प्रेत ! जिस अर्थी को मनुष्य उठाते हैं, उससे यम मार्ग को गमन कर। इसी मार्ग से तेरे पूर्व पुरुषा गए हैं। वहाँ देव-ताओं में क्षात्र धर्म वाले वरुण और यम दोनों हैं। वे हमारे प्रदत्त हवियों से प्रसन्न हो रहे हैं। उस यम लोक में तू यम और वरुण को देखेगा ॥ ५४ ॥ हे राक्षसों ! इस स्थान से भागो। तुम चाहे पहिले से यहाँ रहते हो या नये आकर रहने लगे हो, यहाँ से चले जाओ, क्योंकि यह स्थान इस प्रेत को दिन-रात और जल के सहित रहने को यम ने दिया है ॥ ५५ ॥ हे अग्ने ! इस पितृ यज्ञ को सम्पन्न करने के लिए हम तुम्हारी कामना करते और आह्वान करते हैं। तुम भले प्रकार प्रदीप्त होकर स्वधा की कामना वाले पितरों के लिए हवि-भक्षणार्थ लाओ ॥ ५६ ॥ हे अग्ने ! हम तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम्हारी कृपा से हम यशस्वी हो गए हैं। हम तुम्हें प्रदीप्त करते हैं। हवि स्वीकार कर उसे भक्षण करने के लिए पितरों को यहाँ लाओ ॥ ५७ ॥ प्राचीन ऋषि अंगिरा हमारे पितर हैं, नवीन स्तोत्र वाले अथर्वा और भृगु हमारे पितर हैं, यह सब सोम पीने वाले हैं। इनकी कृपा बुद्धि में हम रहें। यह हम से प्रसन्न रहें ॥ ५८ ॥ हे यम ! अंगिरा नामक यज्ञीय पितरों सहित यहाँ आकर तृप्त होओ। मैं तुमको ही नहीं, तुम्हारे पिता सूर्य को भी बुलाता हूँ। वह जिससे इस कुश के आसन पर बैठकर हवि

ग्रहण करें उस प्रकार उन्हें आहूत करता हूँ ॥ ५९ ॥ हे यम ! अंगिरा नामक पितरों से समान मति वाले होकर इस कुश पर बैठो । महर्षियों के मन्त्र तुम्हें बुलाने में समर्थ हों । तुम हमारी हवि पाकर प्रसन्न होओ ॥ ६० ॥ दाह-संस्कार करने वाले पुरुषों ने मृतक को पृथिवी पर से उठाकर अर्थी पर रखा और आकाश के उपभोग्य स्थानों पर चढ़ा दिया। पृथिवी को जीतने वाले आंगिरस जिस मार्ग से गए, उसी मार्ग से इसे भी आकाश में पहुँचा दिया ॥ ६१ ॥

२ सूक्त [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि—अथर्वा । देवता—यमः, मन्त्रोक्ताः, जातवेदाः, पितरः ।
छन्द—अनुष्टुप्; जगती; त्रिष्टुप्; गायत्री)

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ १ ॥
यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥ २ ॥
यमाय घृतवत् पयो राज्ञे हविर्जुहोतन ।
स नो जीवेष्वा यमेद् दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥ ३ ॥
मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेममेनं प्र हिणुतात् पितॄँरुप ॥४॥
यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेममेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।
यदो गच्छात्यसुनीतिमेतामथ देवानां वशनीर्भवाति ॥ ५ ॥
त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता ॥ ६ ॥
सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥७॥

अजो भागस्तपसस्तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥८॥

यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।
अजं यन्तमनु ताः समृण्वतामथेतराभिः शिवतमाभिः शृतं कृधि ॥९॥

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधावान् ।
आयुर्वसान उप यातु शेषः सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥ १० ॥

सोमयाग में यजमान यम के लिये सोम सिद्ध करते हैं। घृतादि हवि उत्पवन आदि संस्कार द्वारा यम को दी जाती है । स्तोत्र शस्त्र आदि से सुशोभित हवि को दूत के समान अग्नि वहन करते हैं वह ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ यम को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ हे यजमानो ! यम के लिए सोम घृतादि की आहुति दो । पूर्व पुरुषा मन्त्रद्रष्टा अङ्गिरा आदि ऋषियों को नमस्कार है ॥ २ ॥ हे यजमानो ! घृत सम्पन्न क्षीर रूप हवि को यम के लिए अर्पित करो। वे हवि पाकर हमको जीवित मनुष्यों में रखेंगे और सौ वर्ष की आयु देंगे ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! इस प्रेत को मत भस्म करो। इसकी त्वचा को अन्यत्र मत फैंको और शोक भी मत करो । जब तुम इस शरीर को पकालो तब पितरों के पास प्रेषित करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! जब तुम इस हवि रूप शरीर को पकालो तब इसे रक्षा के लिए पितरों को दो। जब यह असुनीति देवता को प्राप्त हो तब यह देवताओं को वश करने में समर्थ हो ॥ ५ ॥ तीन कद्रुक यज्ञों को करते समय यम के लिये सोम निष्पन्न करते हैं। आकाश, पृथिवी, दिन, रात्रि, जल, औषधि यह छओं उर्वियाँ यम के लिए ही प्रवृत्त होती हैं । सब छन्द भी यम में स्थित होते हैं ॥ ६ ॥ हे मृतक ! तू नेत्र द्वार से सूर्य को प्राप्त हो, सूत्रात्मा रूप से वायु को प्राप्त हो, अन्य इन्द्रियों से आकाश-पृथिवी को प्राप्त हो तथा अन्तरिक्ष व जल को प्राप्त हो । इन स्थानों में तेरी इच्छा हो तो जा अथवा औषधादि में प्रविष्ट हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! अपने भाग इस "अज" को तेज से संतप्त करो। उसे तुम्हारी दीप्ति और ज्वाला तपावें । तुम्हारे जो विराट् स्वराट् आदि शरीर

हैं, उनके द्वारा इस प्रेत को पुण्यात्माओं का लोक प्राप्त कराओ ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी वेगवती और शोकप्रद ज्वालाओं से आकाश और अन्तरिक्ष व्याप्त हैं। वे ज्वालाऐं इस 'अज' को प्राप्त हों। अन्य सुखकारी लपटों से तुम इस प्रेत को हवि के समान ही पकाओ ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! हवि रूप से जो प्रेत तुम्हें दिया गया है और हमारे प्रदत्त स्वधा सम्पन्न होकर तुममें घूम रहा है उसे तुम पितृलोक के लिए छोड़ो और उसका पुत्र आयु से सम्पन्न होता हुआ घर को लौटे। यह प्रेत सुन्दर वर्च वाला और पितृलोक में निवास योग्य देह वाला हो ॥ १० ॥

अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शवलौ साधुना पथा ।
अधा पितॄन्त्सुविदत्राँ अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥ ११ ॥
यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा ।
ताभ्यां राजन् परि धेह्येनं स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि ॥१२॥
उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥ १३ ॥
सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १४ ॥
ये चित् पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥ १५ ॥
तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १६ ॥
ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १७ ॥
सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥ १८ ॥
[1]स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी ।

यच्छास्मै शर्म सप्रथाः ॥ १९ ॥
असंबाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व ।
स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्चुतः ॥ २० ॥

हे प्रेत ! तू पितृलोक को जाने वाला है । सरमा नामक कुतिया के श्याम शवल नामक दोनों पुत्रों के चार-चार नेत्र हैं तू उन्हें लाँघकर सरल मार्ग से जा । फिर यम के साथ प्रसन्न चित्त से रहने वाले हव्य-सम्पन्न पितरों के पास पहुँच ॥ ११ ॥ हे पितरों के प्रभो ! पितर-मार्ग में स्थित चार नेत्र वाले जो श्वान यमपुर की रक्षा करने के लिए तुम्हारे द्वारा नियुक्त हैं उन्हें रक्षार्थ इस प्रेत को सौंपो और तुम्हारे लोक में रहने को आये हुए इसे बाधा-हीन स्थान दो ॥ १२ ॥ बड़ी-बड़ी नाक वाले, प्राणियों के प्राणों से तृप्ति को प्राप्त, प्राणों का अपहरण करने वाले, महाबली यमदूत सर्वत्र घूमते हैं। वे दोनों दूत हमको सूर्य दर्शन के निमित्त पंचेन्द्रिय युक्त प्राण को हमारे शरीर में पुनः स्थापित करें ॥१३ ॥ एक पितरों को, नदी रूप में सोम प्रवाहित है, दूसरे पितर घृत-उपभोगी हैं, ब्रह्मयाग में अथर्व के मन्त्रों का पाठ करने वालों के लिए मधु की नदी प्रवाहित है। हे मृतावस्था प्राप्त प्रेत ! तू उन सब को प्राप्त हो ॥ १४ ॥ जो पूर्व पुरुषा सत्ययुक्त थे, सत्य से उत्पन्न होकर सत्य की ही वृद्धि करते हैं, उन तपोधन ऋषियों को हे यम से नियमित पुरुष ! तू प्राप्त हो ॥ १५ ॥ तप के द्वारा, यज्ञादि साधनों द्वारा, दुष्कर कर्म और उपासना द्वारा महातप करते हुए जो पुरुष पुण्य लोकों को पाते हैं। हे पुरुष ! तू भी उन तपस्वियों के लोकों को जा ॥ १६ ॥ जो वीर युद्धों में शत्रुओं पर प्रहार करते हैं, जो रण क्षेत्र में देह त्याग करते हैं, जो अन्न दक्षिणा वाले यज्ञों को सम्पन्न करते हैं, हे प्रेत ! तू उनसे मिलने वाले सब फलों को प्राप्त हो ॥ १७ ॥ जो अनन्तद्रष्टा ऋषि सूर्य की रक्षा करते हैं, हे पुरुष ! तू यम से नीयमान होकर भी उन तपस्वियों के कर्म-फल को प्राप्त हो ॥ १८ ॥ हे वेदी रूपिणी पृथिवी ! तू मुमूर्ष पुरुष के लिए कण्टकहीन बन और इसे सब प्रकार सुख दे ॥ १९ ॥ हे मुमूर्षो ! तू यज्ञादि के वेदी रूप विस्तृत स्थान में प्रतिष्ठित हो। पहिले तूने जिन सुकर्मयुक्त

हरियों को दिया है, वह तुझे मधु आदि रसों के प्रवाह रूप में प्राप्त हों ॥२०॥

ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान् गृहाँ उप जुजुषाण एहि ।
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन स्योनास्त्वा वाता उप वान्तु शग्माः २१
उत् त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्रुतः ।
अजेन कृण्वन्तः शीतं वर्षेणोक्षन्तु बालिति ॥२२॥
उदह्वमायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
स्वान् गच्छतु ते मनो अधा पितृँरुप द्रव ॥२३॥
मा ते मनो मासोर्माङ्गानां मा रसस्य ते ।
मा ते हास्त तन्वः किं चनेह ॥२४॥
मा त्वा वृक्षः सं बाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही ।
लोकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु ॥२५॥
यत् ते अङ्गमतिहितं पराचैरपानः प्राणो य उ वा ते परेतः ।
तत् ते संगत्य पितरः सनीडा घासाद् घासं पुनरा वेशयन्तु ॥२६॥
अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि ग्रामादितः ।
मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां चकार ॥२७॥
ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टानस्मात् प्र धमाति यज्ञात् ॥२८॥
सं विशन्त्विह पितरः स्वा नः स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्त आयुः ।
तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूचीः ॥२९॥
यां ते धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम् ।
तेना जनस्यासो भर्ता योऽत्रासदजीवनः ॥३०॥

हे प्रेत पुरुष ! अपने मन के द्वारा तेरे मन को मैं इस लोक में आहूत करता हूँ। जिन घरों में तेरे लिए और्ध्वदेहिक कर्म किया जाता है, तू हमारे उन घरों में आ और सत्कार के पश्चात् पिता, पितामह, प्रपितामह आदि

के साथ सपिण्डीकरण में मिल। यम के पास पहुँचा हुआ तू पितृलोक में जाकर मार्ग श्रम को दूर करने वाले सुखकर वायु को प्राप्त हो ॥ २१ ॥ हे प्रेत! तुझे मरुद्गण व्योम में धारण करें, वायु ऊर्ध्व लोक में पहुँचावें, जल-धारक और वर्षक मेघ समीपस्थ अज सहित तुझे वृष्टि-जल से सींचें ॥ २२ ॥ हे प्रेत! प्राणन, अपानन व्यापार के लिए मैं तेरी आयु का आह्वान करता हूँ। तेरा मन संस्कार से उत्पन्न नवीन शरीर को प्राप्त हो और फिर तू पितरों के पास पहुँच ॥ २३ ॥ हे प्रेत! तुझे तेरे मन और इन्द्रिय न छोड़ें और तेरे प्राण के किसी अंश का क्षय न हो। तेरे देह के अङ्गों में कोई विकृति न हो। रुधिर, रस आदि भी पूर्ण मात्रा में रहें। तेरा कोई भी अङ्ग तुझसे पृथक् न हो ॥ २४ ॥ हे प्रेत! तू जिस वृक्ष के नीचे बैठे, वह तुझे व्यथित न करे। जिस पृथिवी का आश्रय ले, वह तुझे पीड़ित न करे। तू यम के प्रजा रूप पितरों में स्थान पाकर बढ़ ॥ २५ ॥ हे प्रेत! तेरा जो अङ्ग शरीर से पृथक् होगया था, सात प्राण फिर आवृत्त न होने के लिए निकल गये थे, उन सबको, एक स्थान में अवस्थित पितर एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रविष्ट करें ॥ २६ ॥ हे जीवित बन्धुओ! इस प्रेत को घर से ले जाओ। इसे उठा कर ग्राम से बाहर ले जाओ, क्योंकि यम के दूत-रूप मृत्यु ने इसके प्राणों को पितर रूप में प्रविष्ट करने को ले लिया है ॥ २७ ॥ जो राक्षसों के समान पिता, पितामह आदि पितरों में मिल बैठते हैं और माया से हवि-भक्षण करते हैं तथा पिण्डदान करने वाले पुत्र, पौत्रों को हिंसित करते हैं, उन मायावी राक्षसों को पितृयाग से अग्निदेव बाहर निकाल दें ॥ २८ ॥ हमारे गोत्र में उत्पन्न पिता, पितामह आदि सब पितर भले प्रकार यज्ञ में स्थित हों और हमें सुखी करें, हमारी आयु वृद्धि करें। हम भी आयु पाते हुए हवियों से पितरों को पूजते हुए चिरकाल तक जीवित रहें ॥ २९ ॥ हे प्रेत! तेरे निमित्त गोदान करता हूँ। तेरे लिए जिस दूध में बने भात को देता हूं उसके द्वारा तू यम-लोक में अपने जीवन को पुष्ट करने वाला हो ॥ ३० ॥

अश्वावतीं प्र तर या सुशेवार्क्षाकं वा प्रतरं नवीयः।
यस्त्वा जघान वध्यः सो अस्तु मा सो अन्यद् विदत भागधेयम् ॥३१॥

यमः परोऽवरो विवस्वान् ततः परं नाति पश्यामि किं चन ।
यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वान् अन्वाततान ३२॥
अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद् यत् तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥३३॥
ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥३४॥
ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् ।३५।
शं तप माति तपो अग्ने मा तन्वं तपः ।
वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्धरः ॥३६॥
ददाम्यस्मा अवसानमेतद् य एष आगन् मम चेदभूदिह ।
यमश्चिकित्वान् प्रत्येतदाह ममैष राय उप तिष्ठतामिह ॥३७॥
इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥३८॥
प्रेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥३९॥
अपेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥४०॥

हे प्रेत ! मैं नवीन वन-मार्ग में रीछ आदि दुष्ट जन्तुओं से बचता हुआ पार होऊँ । तू हमें अश्वावती नदी के पार उतार । यह नदी हमको सुख प्रदायिनी हो । जिसने तेरा वध किया है वह वध योग्य होता हुआ उपभोग्य पदार्थों को न पा सके ॥ ३१ ॥ सूर्य के पुत्र यम अपने पिता से भी अधिक तेजस्वी हैं । मैं किसी भी प्राणी को यम से अधिक नहीं पाता । मेरा यज्ञ उन उत्कृष्ट यम में ही व्याप्त हो रहा है । यज्ञ की सिद्धि के निमित्त ही सूर्य ने भू-खण्डों को विस्तृत किया है ॥ ३२ ॥ मरणधर्म वाले मनुष्यों में देव

वार्थों ने अपने अविनाशी रूपों को अदृश्य कर लिया। सूर्य को समान वर्ण वाली अन्य स्त्री बनाकर दी। सरण्यु ने घोड़ी का रूप धारण कर अश्विनीकुमारों का पालन किया। त्वष्टा की पुत्री सरण्यु ने सूर्य का घर छोड़ते समय यमयमी के युग्म को घर पर ही छोड़ा था ॥ ३३ ॥ जो पितर भूमि में गाड़े जाकर, जो काष्ठ के समान त्यागे जाकर और जो अग्नि-दाह संस्कार से ऊर्ध्व लोक-पितृलोक को प्राप्त हुए हैं। ऐसे हे पितरो ! हवि भक्षणार्थ यहाँ आओ ॥ ३४ ॥ जो पितर अग्नि से संस्कृत हुए, जो गाड़ने आदि से संस्कृत हुए और पिण्ड, पितृयाग आदि से तृप्त हुए आकाश के मध्य में रहते हैं। हे अग्ने ! तुम उन्हें भले प्रकार जानते हो। वे अपनी प्रजाओं द्वारा किये जाने वाले पितृ याग आदि का सेवन करें ॥ ३५ ॥ हे अग्ने ! इस प्रेत शरीर को अधिक मत जलाओ। जिस प्रकार इसे सुख मिले, वह करो। तुम्हारी शोषक ज्वालाएं जंगल में जाँय और रसहारक तेज पृथिवी में रहे। तुम हमारे शरीरों को भस्म मत करो ॥ ३६ ॥ (यम वाक्य) यह आगत पुरुष मेरा हो तो मैं इसे स्थान दूं। क्योंकि अब यह मेरे पास आया है अतः यह मेरा स्तवन करता रहे तो यहाँ रह सकता है ॥ ३७ ॥ हम इस श्मसान को नापते हैं, क्योंकि ब्रह्मा ने हमें सौ वर्ष की आयु दी है, इसलिए बीच में ही हमें श्मसान कर्म द्वारा प्राप्त न हो ॥ ३८ ॥ हम इस श्मसान को अच्छे प्रकार नापते हैं जिससे हमें सौ वर्ष से पहिले बीच में ही श्मसान कर्म प्राप्त न हो ॥ ३९ ॥ हम इस श्मसान के नाप के दोषों को हटाते हुए नापते हैं जिससे हमें सौ वर्ष से पहले बीच में ही दूसरा मृतक कर्म प्राप्त न हो ॥ ४० ॥

वीमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥४१॥
निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥४२॥
उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४३॥

समिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥४४॥
अमासि मात्रां स्वरगामायुष्मान् भूयासम् ।
यथापरं न मासातै शते शरत्सु नो पुरा: ॥४५॥
प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय ।
अपरिपरेण पथा यमराज्ञ: पितृन् गच्छ ॥४६॥
ये अग्रवः शशमाना: परेयुर्हित्वा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः ।
ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठ अधि दीध्याना: ॥४७॥
उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥४८॥
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम् ॥४९॥
इदमिद् वा उ नापरं दिवि पश्यसि सूर्यम् ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्ये नं भूम ऊर्णुहि ॥५०॥

हम इस श्मसान भूमि को विशिष्ट प्रकार से नापते हैं जिससे हमें सौ वर्ष से पहिले बीच में ही दूसरा श्मसान कर्म प्राप्त न हो ॥ ४१ ॥ दोषों से शून्य करते हुए हम इस श्मसान को नापते हैं जिससे हमें सौ वर्ष से पहिले बीच में ही दूसरा श्मसान कर्म प्राप्त न हो ॥ ४२ ॥ उत्कृष्ट साधन वाले नाप से इस श्मसान को हम नापते हैं जिससे हमें सौ वर्ष से पहिले बीच में ही दूसरा श्मसान कर्म न मिले ॥ ४३ ॥ इस श्मसान भूमि को हम अच्छे प्रकार नापते हैं जिससे हमें सौ वर्ष से पहिले, बीच में ही दूसरा श्मसान कर्म न मिले ॥ ४४ ॥ मैंने श्मसान भूमि को नाप लिया, उसी नाप के द्वारा इस प्रेत को स्वर्ग भेज चुका हूँ। उस कर्म से ही मैं सौ वर्ष की आयु प्राप्त करूँ और सौ वर्ष से पहिले बीच में ही हमें अन्य श्मसान कर्म प्राप्त न हो ॥४५॥ प्राण, अपान, व्यान, आयु, चक्षु सब आदित्य का दर्शन करने वाले हों। हे पुरुष! तू भी यमराज के प्रत्यक्ष मार्ग द्वारा पितरों को प्राप्त हो ॥ ४६ ॥ जो प्रवर संतान रहित होने पर भी पापों को छोड़ते हुए परलोक में गए, वे

अन्तरिक्ष को लाँघ कर स्वर्ग के ऊर्ध्व भाग में रहते हुए पुण्य का फल प्राप्त करते हैं ॥ ४७ ॥ नीचे की ओर द्युलोक उदन्वती, द्वितीय भाग पीलुमती है, तृतीय भाग प्रद्यौ है, उसी तीसरे भाग में पितर निवास करते हैं ॥ ४८ ॥ हमारे पिता के जन्मदाता पितर, पितामह के जन्मदाता पितर और वे पितर जो विशाल अन्तरिक्ष में प्रविष्ट हुए हैं, जो पितर स्वर्ग या पृथिवी पर रहते हैं, इन सब लोकों में वास करने वाले पितरों का नमस्कारों द्वारा हम पूजन करते हैं ॥ ४९ ॥ हे मृतक ! हम श्राद्धादि में जो कुछ देते हैं, वही तेरा जीवन है। अन्य कोई साधन जीवन का नहीं है। तू इस श्मसान को प्राप्त हुआ सूर्य के दर्शन करता है। हे पृथिवी ! जैसे माता अपने पुत्र को आँचल में ढकती है वैसे ही तुम इस मृतक को अपने तेज से ढक लो ॥ ५० ॥

इदमिद् वा उ नापरं जरस्यन्यदितोऽपरम् ।
जाया पतिमिव वाससाभ्ये नं भूम ऊर्णुहि ॥५१॥
अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया ।
जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि ॥५२॥
अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि लोकम् ।
उप प्रेष्यन्तं पूषणं यो वहात्यञ्जोयानैः पथिभिस्तत्र गच्छतम् ॥५३॥
पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥ ५४ ॥
आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥५५॥
इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे ।
ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् ॥५६॥
एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहाबिभः पुरा ।
इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान् यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु ॥५७॥

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व मेदसा पीवसा च ।
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्षन् परीङ्खयातै ॥५८॥
दण्डं हस्तादाददानो गतासोः सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा मृधो अभिमातीर्जयेम ॥५९॥
धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
समागृभाय वसु भूरि पुष्टमर्वाङ् त्वमेह्युप जीवलोकम् ॥६०॥

जीर्ण होते हुए जो भोजन इसने किया था उससे अन्यथा कुछ भी भोक्तव्य नहीं है । इसके लिए इस श्मशान के सिवाय अन्य कोई स्थान भी नहीं है। हे भूमे ! इस श्मशान को प्राप्त हुए मृतक को, पत्नी जैसे वस्त्र से पति को ढकती है, वैसे तुम ढक लो ॥ ५१ ॥ हे मृतक ! सब की मङ्गलमयी माता पृथिवी के वस्त्र से मैं तुझे ढकता हूं । जीवित अवस्था में जो दान के लिए सुन्दर वस्तु प्राणी के पास होती है,वह शुभ संस्कार करनेवाले में हो और स्वधाकार युक्त जो अन्न पितरों में होता है, तुझ में हो ॥ ५२ ॥ हे अग्ने ! हे सोम ! तुम पुण्य लोक के मार्ग को बनाते हो। तुमने सुख देने वाले स्वर्ग लोक की रचना की है । जो लोक सूर्य को अपने में रखता है, इस प्रेत को सरल मार्गों द्वारा उस लोक को प्राप्त कराओ ॥ ५३ ॥ हे प्रेत ! पशुओं को हिंसित न करने वाले पशु-पालक पूषा तुझे इस स्थान से ले जाँय । वह प्राणियों की रक्षा करने वाले तुझे पितरों के अर्पण करें । अग्नि देव तुझे ऐश्वर्यवान देवताओं को सौंपें ॥ ५४ ॥ जीवन का अभिमानी देवता आयु तेरा रक्षक हो । पूषा तेरे पूर्व की ओर जाने वाले मार्ग में रक्षक हों । हे प्रेत ! पुण्यात्माओं के निवास रूप स्वर्ग के नाक पृष्ठ में तुझे सविता प्रतिष्ठित करें ॥ ५५ ॥ हे मृतक ! इन भार ढोने वाले बैलों को मैं तेरे छोड़े हुए प्राणों को वहन करने के लिए जोड़ता हूँ । इस बैल-युक्त गाड़ी द्वारा तू यम गृह को प्राप्त हो ॥ ५६ ॥ अपने पहिने हुए मुख्य वस्त्र को त्याग । जिन इच्छापूर्तियों में तूने बांधवों को धन दिया था उस इष्ट कर्म के फल रूप वापी, कूप, तड़ाग आदि को प्राप्त हो ॥ ५७ ॥ हे प्रेत ! इन्द्रिय सम्बन्धी अवयवों से अग्नि के दाह निवारक कवच को पहिन ।

हे प्रेत ! स्थूलमेदमय हो, जिससे यह अग्नि तुझे अधिक भस्म करने की इच्छा करता हुआ इधर उधर न गिरावे ॥ ५८ ॥ मृतक ब्राह्मण के हाथ से बाँस के दण्ड को ग्रहण करता हुआ मैं कानों के तेज और उससे प्राप्य बल से युक्त रहूँ। हे प्रेत ! तू इस चिता में ही रह और हम इस पृथिवी पर सुख से रहते हुए अपने शत्रुओं और उनके उपद्रवों को दबावें ॥ ५६ ॥ मृतक क्षत्रिय के हाथ से धनुष को ग्रहण करता हुआ मैं क्षात्र तेज और बल से युक्त होऊँ। हे धनुष बहुत से धन को हमें देने के लिए लाता हुआ इस जीवित लोक में ही हमारे सामने आ ॥ ६० ॥

३ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—यमः। मंत्रोक्ताः, अग्निः, भूमिः,इन्दुः, आप;।
छन्दः—त्रिष्टुप्; पंक्ति; गायत्री,अनुष्टुप्, जगती;शक्करी, बृहती)

इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥१॥
उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुतमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥२॥
अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम्।
अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम् ॥३॥
प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती।
अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम् ॥४॥
उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम्। अग्ने पित्तमपामसि ॥५॥
यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः।
क्याम्बूरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्यल्कशा ॥६॥
इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व।
संवेशने तन्वा चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ॥७॥
उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे।
तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ॥८॥

प्र च्यवस्व तन्वं सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
मनो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ॥ ९ ॥
वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन ।
चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु ॥ १० ॥

यह स्त्री, धर्म का पालन करने के लिए तेरे दान आदि के फल की इच्छा करती हुई तेरे समीप आती है। इस प्रकार अनुसरण करने वाली इस स्त्री के लिए दूसरे जन्म में भी तू प्रजावती करना ॥ १ ॥ हे नारी ! तू इस प्राणहीन पति के पास बैठी है, अब तू इसके पास से उठ। तू अपने पति की उत्पत्ति रूप पुत्र पौत्रादि को प्राप्त हो गई है॥ २ ॥ तरुण अवस्था वाली जीवित गौ को मृतक के पास ले जाई जाती हुई देखता हूँ। यह गौ अज्ञान से ढकी है इसलिए मैं इसे शव के पास से हटाकर अपने सामने लाता हूँ ॥ ३ ॥ हे गौ ! तू पृथिवी लोक को भले प्रकार जानती हुई, यज्ञ मार्ग को देखती हुई, क्षीर दधि आदि से युक्त होकर आ। तू अपने इस गौरक्षि स्वामी का सेवन कर और इस मृतक को स्वर्ग प्राप्त करा ॥ ४ ॥ सिवार और बेंत में जल का सारभूत एवं रसक अंश है। हे अग्ने ! तू भी जल का पित्त रूप है, इसलिए मैं तुझे बेंत की शाखा, नदी के फेन और वृहद्दूर्वा आदि से शांत करता हूँ ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! जिस पुरुष को तुमने भस्म किया है, उसी सुखी करो। इस दाह-स्थान पर क्याम्बू नामक औषधि तथा वृहद्दूर्वा यह उगें ॥ ६ ॥ हे प्रेत ! यह गार्हपत्य अग्नि तेरे परलोक पहुँचाने वाली ज्योति है। अन्वाहार्य पचन दूसरी और आहवनीय नामक तीसरी ज्योति है। तू आहवनीय से सुसंगत हो। अग्नि संवेशन से संस्कृत देव शरीर को प्राप्त होकर बढ़, फिर इन्द्रादि देवताओं का प्रिय पात्र हो ॥ ८० ॥ हे प्रेत ! तू इस स्थान से उठ और चल। शीघ्रता से चलता हुआ अंतरिक्ष में अपना घर बना और पितरों से मिलकर सोम पीता हुआ हर्षित हो ॥ ८ ॥ हे प्रेत ! तू अपने शरीर के सब अंगों को एकत्र कर। तेरा कोई अंग यहाँ छूट न जाय। तेरा मन जिस स्वर्गादि स्थान में रमा हो, वहाँ प्रवेश

तू जिस भूमि में प्रीति रखता है, उसी भूमि को प्राप्त हो ॥ ६ ॥ सोम पीने के योग्य पितर मुझे तेजस्वी बनावें । विश्वेदेवा मुझे मधुर घृत से युक्त करें और दीर्घ काल तक देखता रहूँ इस लिए रोगों से मुक्त रखते हुए मुझे प्रवृद्ध करें ॥ १० ॥

वर्चसा मां समनक्त्वग्निर्मेधां मे विष्णुर्न्यनक्त्वासन् ।
रयिं मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः स्योना मापः पवनैः पुनन्तु ॥११॥
मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु ।
वर्चो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोर्जरदष्टिं मा सविता कृणोतु ॥१२॥
यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥१३॥
परा यात पितर आ च यातायं वो यज्ञो मधुना समक्तः ।
दत्तो अस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥ १४ ॥
कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः ।
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः ॥ १५ ॥
विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव ।
शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुशंसासः पितरो मृडता नः ॥ १६ ॥
कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतरं नवीयः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेनाध स्याम सुरभयो गृहेषु ॥ १७ ॥
अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते ॥१८॥
यद् वो मुद्रं पितरः सोम्यं च तेनो सचध्वं स्वयशसो हि भूत ।
ते अर्वाणः कवय आ शृणोत सुविदत्रा विदथे हूयमानाः ॥ १९ ॥
ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा इष्टावन्तो रातिषाचो दधानाः ।
दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥२०॥

अत्रि गोत्रिय या अङ्गिरा गोत्रिय हो। नौ महीने तक सत्र याग करने के कारण स्वर्गारोही हुए हो। दश मासिक याग पूर्ण करने पर दक्षिणा प्रदायक पुण्यात्मा हो। इसलिए इस विस्तृत कुश पर बैठ कर हमारी हवि से तृप्ति को प्राप्त होओ ॥ २० ॥

अधा यथा नः पितरः परास प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः ।
शुचीदयन् दीध्यत उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥२१॥
सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं वावृधन्त इन्द्रमुर्वीं गव्यां परिषदं नो अक्रन् ॥२२॥
आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां जनिमान्त्युग्रः ।
मर्तासश्चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥ २३ ॥
अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥२४॥
इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२५॥
धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२६॥
अदितिर्मादित्यैः प्रतीच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२७॥
सोमो मा विश्वैर्देवैरुदीच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२८॥
धर्ता ह त्वा धरुणो धारयाता ऊर्ध्वं भानुं सविता द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥२९॥
प्राच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी-द्यामिवोपरि । लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३० ॥

पालन करती है, वैसे ही तेरा पालन करे। जिन स्वर्गादि लोकों के देने वाले देवताओं को हवि दे चुके हैं, उन देवताओं का हम पूजन करते हैं ॥ २८ ॥ हे प्रेत! संसार के धारणकर्त्ता धरुण देव तुझ ऊर्ध्व दिशा में गमन करने वाले पुरुष को धारण करें। दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग का पालन करती है, वैसे ही तेरा पालन करे। जिन स्वर्गादि लोकों के देने वाले देवताओं का भाग हम होम चुके हैं, उन देवताओं को हम पूजते हैं ॥ २९ ॥ हे प्रेत! दहन स्थान से पूर्व दिशा की ओर स्थित कम्बल द्वारा आच्छादित मैं तुझे पितरों को तृप्ति कर स्वधा में प्रतिष्ठित करता हूँ। जैसे संकल्प करके दी हुई पृथिवी दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग की रक्षा करती है, वैसे ही तेरी रक्षा करे। जिन स्वर्गादि लोकों के प्रापक देवताओं को हविर्भाग दे चुके हैं, उन देवताओं को हम पूजते हैं ॥ ३० ॥

दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि वाहुच्युता-
पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां इह
स्थ ॥ ३१ ॥
प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि वाहुच्युता-
पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां-
हुतभागा इह स्थ ॥ ३२ ॥
उदीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि वाहुच्युता-
पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां-
हुतभागा इह स्थ ॥ ३३ ॥
ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि वाहुच्युता-
पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां
हुतभागा इह स्थ ॥ ३४ ॥
ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि वाहुच्युता-
पृथिवी द्यामिवोपरि। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां

हुतभागा इह स्थ ॥ ३५ ॥
धर्तासि धरुणोऽसि वंसगोऽसि ॥ ३६ ॥
उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ॥ ३७ ॥
इतश्च मामुतश्चावतां यमेइव यतमाने यदैतम् ।
प्र वां भरन् मानुषा देवयन्त आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने ॥ ३८ ॥
स्वासस्थे भवतमिन्दवे नो युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः ।
वि श्लोक एति पथ्ये व सूरिः शृण्वन्तु विश्वे अमृतास एतत् ॥३९॥
त्रीणि पदानि रुपो अन्वरोहच्चतुष्पदीमन्वैद् व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावभि सं पुनाति ॥४०॥

हे प्रेत ! दहन-स्थान से दक्षिण दिशा की ओर स्थित कम्बल से ढका हुआ मैं तुझे पितरों को तृप्त करने वाली स्वधा में प्रतिष्ठित करता हूँ। दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग की रक्षा करती है, वैसे ही यह तेरी रक्षा करे। जिन स्वर्गादि लोकों के प्राप्त कराने वाले देवताओं को हम हविर्भाग दे चुके हैं, उन देवताओं का पूजन करते हैं ॥ ३१ ॥ हे प्रेत ! दहन-स्थान से पश्चिम की ओर कम्बल से ढका हुआ मैं तुझे पितरों को तृप्त करने वाली स्वधा में प्रतिष्ठित करता हूँ। दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग की रक्षा करती है, वैसे ही वह पृथिवी तेरी रक्षक हो। जिन स्वर्गादि लोकों के प्राप्त कराने वाले देवताओं को हम हविर्भाग दे चुके हैं, उन देवताओं का पूजन करते हैं ॥ ३२ ॥ हे प्रेत ! दहन-स्थान से उत्तर दिशा की ओर स्थित कम्बल से ढका हुआ मैं तुझे पितरों को तृप्त करने वाली स्वधा में प्रतिष्ठित करता हूँ। दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग की रक्षा करती है, वैसे ही वह तेरी रक्षक हो। जिन स्वर्गादि लोकों के प्राप्त कराने वाले देवताओं को हम हविर्भाग दे चुके हैं, उन देवताओं को पूजते हैं ॥ ३३ ॥ हे प्रेत ! दहन-स्थान से [illegible] दिशा की ओर स्थित कम्बल आदि ओढ़े हुए मैं तुझे पितरों के [illegible]

वाली स्वधा में प्रतिष्ठित करता हूँ। दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग की रक्षा करती है, वैसे ही वह तेरी रक्षा करे। जिन स्वर्गादि लोकों को प्राप्त कराने वाले देवताओं को हम हविर्भाग दे चुके हैं, उन देवताओं का पूजन करते हैं ॥ ३४ ॥ हे प्रेत ! दहन-स्थान से ऊर्ध्व दिशा की ओर स्थित कम्बल आदि ओढ़े हुए तुझे पितरों को तृप्त करने वाली स्वधा में प्रतिष्ठित करता हूँ। दाता को दी हुई पृथिवी जैसे दाता प्रतिगृहीता के लिए स्वर्ग की रक्षा करती है, वैसे ही वह तेरी रक्षा करे। जिन स्वर्गादि लोकों को प्राप्त कराने वाले देवताओं को हम हविर्भाग दे चुके हैं, उन देवताओं का पूजन करते हैं ॥३५॥ हे अग्ने ! तुम धारणकर्त्ता धरुण हो। वरणीय गति और सुवर्ण के पूरक और प्राणात्मक वायु के भी पूरक हो ॥३६-३७॥ जिनमें हविर्धान होता है, वे द्यावापृथिवी, भूलोक और स्वर्ग में होने वाले भयों से तेरी रक्षा करें। हे द्यावापृथिवी ! तुम यमल संतानों के समान समानयत्न वाले होकर संसार का पोषण करते हो। देवताओं की कृपा-कामना वाले पुरुष जब तुम्हें हवि दें तब तुम अपने स्थान को जानती हुई उस पर प्रतिष्ठित होओ ॥३८॥ हे हविर्धाने ! धर्मपथगामी विद्वान् जैसे इच्छित प्राप्त करता है, वैसे ही प्राचीन स्तोत्रों सहित तुम्हें नमस्कार करता हूँ। वे स्तोत्र तुम्हें प्राप्त होते हैं। तुम हमारे सोम के लिए स्थिर होओ। अविनाशी देवता हमारे इस स्तोत्र को सुनें ॥ ३९ ॥ मोह को प्राप्त मृतक इस संस्कार द्वारा अनुत्तरणी गौ को ध्यान में रखता हुआ तीनों द्यु लोकों को प्राप्त होता है। यह परिच्छेदक शरीर के छोड़ने पर स्वर्गादि का पुण्य फल प्राप्त कर रहा है ॥ ४० ॥

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रियां यमस्तन्वमा रिरेच ॥ ४१ ॥

त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥४२॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥४३॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥४४॥
उपहूता नः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥४५॥
ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ४६ ॥
ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविद स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः सत्यैः कविभिरृषिभिर्घर्मसद्भिः ॥४७॥
ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् परैः पूर्वैरृषिभिर्घर्मसद्भिः ॥४८॥
उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ॥४९॥
उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥

सृष्टि-आरम्भ में विधाता ने इन्द्रादि देवताओं के लिए किस प्रकार की मृत्यु का वरण किया ? फिर सूर्य-पुत्र यम ने बृहस्पति के स्नेह पात्र मनुष्य के देह को सब ओर से खींचकर प्राणहीन किया ॥ ४१ ॥ हे अग्ने ! तुम उत्पन्न प्राणियों के ज्ञाता हो । तुम हमारी स्तुति पाकर देवताओं के लिए हवि वहन करो । तुमने पितृ देवताओं को स्वधा सहित कव्य दिया है, जिसे पितरों ने भक्षण कर लिया अब तुम भी हमारी हवियों का सेवन करो ॥ ४२ ॥ हे पितरो ! तुम अरुण वर्ण वाली उषा माताओं के अङ्क में बैठते हो । तुम सत्य धर्म वाले हविदाता यजमान को धन प्रदान करो । हमें पुन्नामक नरक से बचाने वाले पुत्रों के लिये सम्पत्ति और बलप्रद अन्न प्रदान करो ॥ ४३ ॥ हे पितरो ! तुम इस यज्ञ में अपने स्थानों पर आ आकर बैठो और हवियों का भक्षण करो । तुम हवियों से सन्तुष्ट होकर हमको और पुत्रों

से युक्त धन प्रदान करो ॥ ४४ ॥ हम अपने सोम के पात्र पितरों को अपने पास बुलाते हैं। वे हमारी हवियों पर आकर स्तोत्र सुनें और हमको स्वीकार करते हुए इहलौकिक एवं पारलौकिक फल देते हुए रक्षा करें ॥ ४५ ॥ हमारे श्रेष्ठ ज्ञान वाले पितामह, सोम-पान करने वाले पितरों के साथ रहते हुए यम की इच्छा करें और हमारी हवियों का अपनी इच्छानुसार सेवन करें ॥ ४६ ॥ जो पितर प्यासे होते हुए देवताओं की स्तुति कर रहे हैं, उन सत्य फल देने वाले, सोमयाग में बैठने वाले पितरों के साथ हे अग्ने! अपरिमित धन-दान को हमारे पास आओ ॥ ४७ ॥ सत्यभाषी, हव्यादि के भक्षक, सोमपायी, देवताओं के सहगामी, सुन्दर बुद्धि वाले, यज्ञ में बैठने वाले पिता, पितामह आदि पितरों सहित हे अग्ने! हमारे सामने होओ ॥४८॥ हे प्रेत! माता के समान सुखदायिनी पृथिवी पर आ। यह तुझ यज्ञ-दक्षिणादि पुण्य कर्मों वाले को ऊन के समान कोमल हो और पूर्व के मार्गारम्भ में तेरी रक्षा करे ॥४९॥ हे भूमे! तुम कर्कश मत रहो, इस पुरुष को बाधा मत दो। यह सुख से तुम्हारे पास रहे। जैसे माता अपने पुत्र को वस्त्र से ढकती है, वैसे ही तुम इसे आच्छादित करो ॥५०॥

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।
ते गृहासो घृतश्चुतः स्योना विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र् ॥५१॥
उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु ॥५२॥
इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
अयं यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ताम् ॥५३॥

अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते ।
तस्मिन् कृणोति सुकृतस्य भक्षं तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम् ॥५४॥
यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद् विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥५५॥

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं पयः ।
अपां पयसो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ॥५६॥
इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥५७॥
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥५८॥
ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥५९॥
शं ते नीहारो भवतु शं ते प्रुष्वाव शीयताम् ।
शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मण्डूक्यप्सु शं भुव इमं स्वग्निं शमय ॥६०॥

यह पृथिवी सुख पूर्वक स्थिर रहे, श्मशान में स्थापित औषधियाँ पास में लगें, पृत को प्रवाहित करती हुई वे औषधियाँ इस मृतक के लिए घर रूप हों और श्मशान में इसकी रक्षा करती रहें ॥ ५१ ॥ हे मृतक ! तेरे निमित्त इस भूमि को ऊपर को धारण करता हूँ । तेरे चारों ओर भूमि को स्थापित करता हूँ । इस कर्म से मैं हिंसित न होऊँ । इस उठाई गई भूमि में घर बनाने के लिए पितृदेवता स्थूणा धारण करें और यम तेरे लिए गृह निर्माण करें ॥ २ ॥ हे अग्ने ! इस पात्र को टेढ़ा न कर । यह चमस देवताओं को सोम आदि सेवन कराने वाला होने से पितरों को अत्यन्त प्रिय है । इस चमस में सब देवता तृप्ति को प्राप्त हों ॥३॥ अथर्वा ने जिस हवि से पूर्ण चमस को इन्द्र के निमित्त धारण किया था । उसी चमस में शोभन प्रकार से की हुई एवं यज्ञ से बची हुई हवि का भक्षण ऋत्विज करते हैं । उसी चमस में सदा अमृत स्रवित होता है ॥५४॥ हे पुरुष ! तेरे जिस अङ्ग को कौआ आदि काले पक्षी या विषयुक्त दांत वाली पिपीलिका ने काट लिया है, उसे सर्वभक्षी अग्नि निरोग करें । ब्राह्मण, ऋत्विज यजमान आदि में रस रूप रमा हुआ सोम भी उस अङ्ग को रोग रहित करे ॥ ५५ ॥ औषधियाँ

वाली हों, वल सारयुक्त हो, जलों के सार का भी सत्व है उन सबसे जलाभिमानी वरुण मुझे स्नान से शुद्ध करें ॥५६॥ इस प्रेत के बांधवों की स्त्रियाँ विधवा न हों, पति से युक्त रहती हुई घृतयुक्त अंजन लगावें। वे सुन्दर आभूषणों को धारण करने वाली रोग रहित, अश्रु रहित रहती हुई सन्तानवती हों ॥५७॥ हे मृतक ! तू सपिण्डीकरण तक के कर्म से पितरों में युक्त हो और पितृलोक से भी श्रेष्ठ कर्म फल के भोग रूप स्वर्ग में पहुँचे। ॥५८॥ हमारे पितामह, प्रपितामह और हमारे गोत्र में उत्पन्न अन्य जिन पुरुषों ने विस्तृत अन्तरिक्ष में प्रवेश किया, उस समय स्वराट् असुनीति देवता उनके शरीरों को रचने वाले हुए ॥५९॥ हे प्रेत ! तुझे नीहार सुख प्रदान करे। जल तुझे सुख पहुँचाता हुआ बरसे। हे औषधिमती पृथिवी ! तू इस दग्ध पुरुष को मण्डूकपर्णी द्वारा सुख दे और जलाने वाली अग्नि को शान्त कर ॥ ६० ॥

विवस्वान् नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः ।
इहेमे वीरा वहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥६१॥
विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु ।
इमान् रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो मोष्वेषामसवो यमं गुः ॥६२॥
यो दध्रे अन्तरिक्षे न मह्ना पितॄणां कविः प्रमतिर्मतीनाम् ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥६३॥
आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा विभीतन ।
सोमपाः सोमपायिन इदं वः क्रियते हविरगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥६४॥
प्र केतुना बृहता भात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥६५॥
नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥६६॥
इन्द्रं क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।

शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥६७॥
अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन्
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमंतो घृतश्चुतः ॥६८॥
यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥६९॥
पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि ।
यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन् ॥७०॥
आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते ।
शरीरमस्य सं दहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके ॥७१॥
ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥७२॥
एतदा रोह वय उन्मृजानः स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।
अभि प्रेहि मध्यतो माप हास्थाः पितॄणां लोकं प्रथमो यो अत्र ॥७३॥

सूर्य, जीरदानु, सुदानु और सुत्रामा देवता हमको भय से बचावें। इस लोक में हमारे वीर्य से उत्पन्न अनेक वीर और गवादि पशु हों ॥ ६१ ॥ सूर्य हमको अमरत्व दें। मृत्यु हार कर चली जाय। अमृतत्व वृद्धावस्था तक इन पौत्र पौत्रादिकों की रक्षा करे, उनमें से कोई भी यम को प्राप्त न हो। ॥६२॥ श्रेष्ठ बुद्धि वाले, क्रान्तदर्शी मन पितरों को अन्तरिक्ष में धारण करते हैं। हे याज्ञको ! तुम सब प्राणियों के सखा हो। ऐसे यम को हव्यादि से पूजो। वह यम हमारे जीवन को पुष्ट करें ॥६३॥ हे ऋषियो ! तुम मन्त्रदृष्टा हो। अपने श्रेष्ठ कर्मों द्वारा स्वर्ग पर आरोहण करो। तुम सोमयागी और सोमपायी हो, तुम स्वर्ग पर चढ़े हुओं के निमित्त यह हवि दीजाती है हम भी तुम्हारे अनुग्रह से चिरायु को प्राप्त हों ॥ ६४ ॥ यह अपने धूम रूप ध्वजा से दमकते हैं। यह कामनाओं के वर्षक हैं। आकाश पृथिवी की ओर लक्ष्य करते हुए यह शब्दवान् होते हैं। यह द्युलोक से ऊपर व्याप्त होते हैं और जलों के स्थान अन्तरिक्ष में भी अपनी महिमा से ... ॥

हैं ॥६५॥ हे प्रेत ! जब हम तुम्हें सुन्दर गति से स्वर्ग की ओर जाते हुए देखते हैं, तब तुम्हें स्वर्णिम पंख वाले वरुण के दूत यम के गृह में पक्षी के समान और भरण करने वाले के रूप में देखते हैं ॥६६॥ हे इन्द्र ! पिता जैसे पुत्रों को इच्छित वस्तु देता है, वैसे ही हमको यज्ञादि इच्छित वस्तु दो। संसार यात्रा में अभीष्ट दो जिससे हम दीर्घजीवी होकर इस लोक के सुख को प्राप्त करें ॥६७॥ हे प्रेत ! देवताओं ने जिन घृत मधु आदि से युक्त कुम्भों को तेरे लिए रखा है, वे कुम्भ तेरे लिए अन्न, मधु से युक्त और घृत सींचने वाले हों ॥६८॥ हे प्रेत ! तिल युक्त स्वधा वाली जौं की खीलें मैं दे रहा हूँ, वे तुझे वैभव वाली और तृप्तिकर हों। यमराज तुझे खीलों का उपभोग करने की आज्ञा दें ॥६९॥ हे वनस्पते ! तुममें जो अस्थि रूप पुरुष स्थापित किया था, उसे मुझे लौटाओ, जिससे वह यज्ञात्मक कर्मों को प्रकाशित करता हुआ यम के गृह में स्थित हो ॥७०॥ हे अग्ने ! तुम्हारी दहनशील ज्वालायें रसहरण वाली शक्ति से युक्त हों, तुम जलाने को तत्पर होओ। इस मृतक के शरीर को ठीक प्रकार भस्म करके इसे पुण्यात्माओं के पुण्यलोक रूप स्वर्ग में प्रतिष्ठित करो ॥७१॥ तुझसे पहिले उत्पन्न पुरुष जो तुझसे बड़े पितर हैं वे गये हैं, अथवा तुझसे पीछे उत्पन्न पुरुष गए हैं। उन सब पितरों के लिए घृत की (कृत्रिम) नदी प्रवाहित हो। वह सहस्रों धार वाली होकर तुझे अनेक प्रकार से सींचती रहे ॥ ७२ ॥ हे मृतक ! तू इस शरीर से निकल कर अपने ही द्वारा पवित्र होता हुआ व्योम में चढ़, और तेरी जाति के सब व्यक्ति समृद्धि सहित इसी लोक में रहें। बन्धुओं के मध्य से दूसरे लोक की ओर बढ़ता हुआ ऊँचा चढ़ कर और पितरों के आकाश में स्थित मुख्य लोक को मत छोड़ ॥७३॥

४ सूक्त (४था अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—यम,मन्त्रोक्ता, पितर, अग्नि, चन्द्रमा,छन्द—त्रिष्टुप्; जगती शक्वरी, बृहती; अनुष्टुप गायत्री; पंक्ति, उष्णिक)

आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः पितृयाणैः सं व आ रोहयामि।
अवाड्ढव्येषितो हव्यवाह ईजानं युक्ताः सुकृतां धत्त लोके ॥१॥

ा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि ।
भर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् ॥२॥
तस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति ।
भर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति तृतीये नाके
धि वि श्रयस्व ॥३॥
ः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः ।
र्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुह्राम् ।४॥
दुर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवादाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम् ।
तीनां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः कामंकामं यजमानाय दुह्राम ॥५॥
ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्व ।
हु द्यां गच्छ यजमानेन साकं स्रुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः सर्वा
धस्वाहृणीयमानः ॥६॥
र्गैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति ।
त्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥७॥
र्ङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो दक्षिणानामयनं
क्षिणाग्निः ।
हिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्गः सर्व उप याहि शग्मः ॥८॥
र्वो अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्ताच्छं पश्चात् तपतु गार्हपत्यः ।
दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो अन्तरिक्षाद् दिशोदिशो
अग्ने परि पाहि घोरात् ॥९॥
युमग्ने शतमाभिरतनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहो वहाथ यत्र देवैः सधमादं मदन्ति ॥१०॥

हे गार्हपत्यादि अग्नियो ! तुम उत्पन्न हुओं के ज्ञाता हो। तुम
अपनी उत्पादक अरणियों में प्रविष्ट होओ । मैं भी तुम्हें विद्वानों

अरणियों में चढ़ाता हूँ। हव्य वाहक अग्नि ने देवताओं के लिए हव्य वहन किया। हे अग्नियो ! जिस यजमान ने तुम्हारे निमित्त यज्ञ किया था, उस विदेश में मृत्यु को प्राप्त हुए यजमान को पुण्यलोक में प्रतिष्ठित करो ॥ १ ॥ इन्द्रादि पूज्य देवता ऋतुयज्ञ की कामना करते हैं। घृतादि हव्य सामग्री तथा पात्रादि आयुध भी यज्ञ की कामना करते हैं। हे आहिताग्ने ! तुम देवयान मार्ग से गमन करो ! जिन मार्गों से यज्ञकर्म वाले पुण्यात्मा जाते हैं, उस देवयान मार्ग से ही तुम जाओ ॥२॥ हे प्रेत ! तू सत्य के कारण रूप मार्ग को भले प्रकार जानता हुआ महर्षि अङ्गिरस आदि के मार्ग से स्वर्ग को गमन कर। जिस स्वर्ग में अदिति पुत्र देवता अमृत का सेवन करते हैं उस दुःख-रहित तृतीय स्वर्ग में तू निवास कर ॥३॥ अग्नि, वायु, सूर्य सुन्दरता से गमन करने वाले हैं। वायु और पर्जन्य मेघ के समान शब्द करते हैं। यह सब स्वर्ग से ऊपर विष्टप् में निवास करते हैं। यह अपने कर्मों से प्राप्त स्वर्ग-लोक अमृत से सम्पन्न है। कर्मानुष्ठान करने वाले प्रेत को यह इच्छित अन्न और रस का देने वाला हो ॥४॥ होम पात्र जुहू ने आकाश को पुष्ट किया, उपभृत् पात्र ने अन्तरिक्ष को धारण किया, और ध्रुवा पात्र ने पृथिवी का पालन किया। इस ध्रुवा से पालित पृथिवी का ध्यान रखते हुए ऊर्ध्व स्वर्ग लोक यजमान को इच्छित फल प्रदान करें ॥५॥ हे ध्रुवा नामक स्रुक ! तू पृथिवी पर चढ़ और यजमान भी पृथिवी पर प्रतिष्ठित रहे। हे उपभृत पात्र ! तू अन्तरिक्ष पर आरोहण कर। हे जुहु ! तू यजमान के साथ द्युलोक को गमन कर और सब दिशाओं से अभीष्ट फलों को दोहन कर ॥६॥ तीर्थ और यज्ञादि कर्मों द्वारा बड़ी-बड़ी विपत्तियों से पार होते हैं। इस प्रकार विचार करने वाले यज्ञ कर्म करते हुए पुरुष जिस मार्ग से स्वर्ग को जाते हैं, उस मार्ग को खोजते हुए यज्ञकर्त्ता इस यजमान के उस मार्ग को खोलें ॥ ७ ॥ आहिताग्नि की चिता में स्थित गार्हपत्यादि अग्नियें यथा प्रदेश रहती हैं, वे इच्छित फल दें। पूर्व में स्थित आहवनीय अग्नि, अङ्गिरसों का सत्रात्मक कर्म है। गार्हपत्याग्नि आदित्यों का अयन नामक सत्रयाग है। दक्षिणाग्नि दक्षायन नामक सत्र है। इस प्रकार विभिन्न नामों वाली विभूति को हे प्रेत ! पूर्ण अवयव वाला होकर सुख प्राप्त करता हुआ प्राप्त हो ॥८॥ हे भस्म होते हुए

प्रेत ! तुझे पूर्व में दमकते हुए, अग्नि सुख देते हुए भस्म करें। दक्षि-
णाग्नि तुझे सुख से भस्म करे। हे अग्ने ! तुम उत्तरादि सब दिशाओं से
क्रूर और हिंसकों से इस प्रेत की रक्षा करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! पृथक्-पृथक्
स्थानों को प्राप्त हुए तुम अपने आधान करता आराधक यजमान को अपने
महान् कल्याण देने वाले साधनों से स्वर्ग लोक में पहुँचाओ। उस लोक में
इस गोत्र वालों सहित देवताओं से साथ रहते हुए प्रसन्नता को प्राप्त हों १०

दामग्ने पश्चात् तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात् तपैनम् ।
एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः सम्यगेनं धेहि सुकृतामु लोके ॥११॥
समग्नयः समिद्धा आ रभन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥१२॥
यज्ञ एति विततः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥१३॥
ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्पतिष्यन् ।
तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्त्स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः॥१४॥
अग्निर्होताध्वर्युष्टे बृहस्पतिरिन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु ।
हुतोऽयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयनं हुतानाम् ॥१५॥
अपूपवान् क्षीरवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥१६॥
अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥१७॥
अपूपवान् द्रप्सवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥१८॥
अपूपवान् घृतवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥१९॥

से और मधु से युक्त कुंभी पक्व ओदन रूप चरु इस कर्म में अस्थियों के पश्चिम भाग में रहे। इस संस्कार किये जाते प्रेत के लिए स्वर्ग के निर्माता इन्द्रादि देवताओं में से इस हवि के अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं ॥ २२ ॥ पिसे गेहूँ के अपूपों और छः रसों से युक्त कुंभी पक्व ओदन रूप चरु इस कर्म में अस्थियों के पश्चिम भाग में रहे। इस संस्कार किये जाते प्रेत के लिए स्वर्ग-निर्माता इन्द्र आदि देवताओं में से इस हवि के अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं ॥ २३ ॥ पिसे गेहूँ के तथा अन्य प्रकार के अपूप से युक्त, कुम्भी पक्व ओदन रूप चरु इस कर्म में अस्थियों के पश्चिम भाग में रहे। इस संस्कार किये जाते प्रेत के लिए स्वर्ग-निर्माता इन्द्र आदि देवताओं में से इस हवि के अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को हम प्रसन्न करते हैं ॥ २४ ॥ हे प्रेत! हवि भागी जिन देवताओं ने चरु पूर्ण कलशों को अपने भाग रूप में ग्रहण किया है, वे चरु तुझे परलोक में स्वधा से युक्त करें ॥२५॥, हे प्रेत! तेरे लिये मैं जिन काले तिल युक्त जौ की खीलों को बखेरता हूँ, वे तुझे परलोक में प्रचुर परिमाण में मिलें और इन्हें खाने के लिए यमराज तुझे आज्ञा दें ॥ २६-२७ ॥ सोम रस में स्थित जलांश द्रप्स पृथिवी-आकाश को लक्ष्य में रख कर बिखेरता हूँ। संसार की कारण रूप पृथिवी को लक्ष्य में कर पूर्वोत्पन्न द्युलोक और द्यावापृथिवी को लक्ष्य में रखकर, सात वषट्कर्ता होताओं को भी लक्ष्य में रखकर सोम रस द्रप्स को अग्नि में होमता हूँ। यह देवता के लिए करता हूँ ॥ २८ ॥ हे प्रेत! मनुष्यों को देखने वाले देवता टपकते हुए जल से युक्त वायु के वेग से चलते हुए स्वर्ग प्रापक इस कुंभ को तेरे लिए धन रूप जानते हैं। तेरे गोत्र वाले तुझे कुंभोदक से तृप्त करते हैं और कुंभोदक देने वाले सत मातृक रूप जल धारा रूप दक्षिणा को सदा देते हैं ॥ २९ ॥ धन, सुवर्ण आदि से युक्त कोश के समान चार छेद वाले कलश को धेनु के दुहने के समान दुहते हैं। हे अग्ने! पितरों को प्राप्त हुए इस प्रेत के लिए संतुष्ट करने वाली अदिति को खण्डित न करना ॥ ३० ॥

एतत् ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे ।
तत् त्वं यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर ॥ ३१ ॥
धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।
तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥ ३२ ॥
एतास्ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु ।
एनीः श्येनीः सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वात्र ॥३३॥
एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ।
तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ॥३४॥
वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम् ।
स बिभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिभर्ति पिन्वमानः ॥३५॥
सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे ।
ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभिः ॥ ३६ ॥
इदं कसाम्बु चयनेन चितं तत् सजाता अव पश्यतेत ।
मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु ॥३७॥
इहैवैधि धनसनिरिहचित्त इहक्रतुः ।
इहैधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहतः ॥ ३८ ॥
पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः ।
स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु ॥३९॥
आपो अग्निं प्र हिणुत पितॄँरुपेमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम् ।
आसीनामूर्जमुप ये सचन्ते ते नो रयिं सर्ववीरं नि यच्छान् ॥४० ॥

हे प्रेत ! सविता तेरे लिए यह वस्त्र ढकने के लिए देते हैं। तू इसे ओढ़कर यम के राज्य में स्वच्छन्दता से घूम ॥ ३१ ॥ भुने जौ की धाना गौ और तिल उसका वत्स बनेगा। हे प्रेत ! तू उस धेनु रूप वाली धाना से जीवित रह ॥ ३२ ॥ हे प्रेत ! यह विविध रूप वाली वत्स युक्त तिलात्मक गौएं तेरे लिए कामधेनु हों और तेरे पास रहती हुई यमलोक में

इच्छित फल दें ॥ ३३ ॥ लाल, श्वेत, हरी और भूनने से काली तथा अरुण वर्ण वाली खीलें तेरे लिए गौ रूप हुई हैं, यह निरन्तर इस प्रेत को बलदायक अन्न देती रहें ॥ ३४ ॥ वैश्वानर अग्नि में मैं इन हवियों को डालता हूं। यह अनेक प्रकार के बहते हुए जलों से युक्त हैं और सिंचित होती हुई अपने उपजीवी पितरों को तृप्त करने वाली हैं। इस हवि से प्रदीप्त हुए वैश्वानर अग्नि मेरे सभी पूर्व पुरुषों को तृप्त करें ॥ ३५ ॥ भूत प्रेत पितर मेघ के समान त्वरित होने वाले उदक से पूर्ण ऊर्ध्व भाग में स्थित अन्न साधन जल को टपकाते हुए, छिद्र युक्त कुम्भ की कामना करते हैं ॥ ३६ ॥ हे समान कुल गोत्र वालो ! तुम इस एकत्र अस्थि समूह को सावधानी से देखो। यह प्रेत अमरत्व को प्राप्त हो रहा है, तुम सब उसके लिए घर का निर्माण करो ॥ ३७ ॥ हे उल्मुक ! तू इसी धूलिमय देश में रहता हुआ हमको धन देने वाला हो। तू वहीं से हमारे कर्म का सम्पादक हो और परम बली, अन्न को पुष्ट करने वाला और शत्रुओं से असंतप्त रहता हुआ वृद्धि को प्राप्त हो ॥ ३८ ॥ आचमन योग्य यह मधुर जल पुत्र पौत्रादि को तृप्तिकर है। यह पिण्ड से उपजीवन करने वाले पितरों को स्वधा प्रदान करता रहता है। यह जल आचमन करने पर मातृकुल और पितृकुल के पितरों को तृप्त करे ॥ ३९ ॥ हे जलो ! तुम अवसेचन के साधन रूप हो। तुम दक्षिणाग्नि यज्ञ में प्रदत्त पिण्डों का वहन करने के लिए पितरों के पास पहुंचाओ। मेरे पितर इन पिण्डों का आस्वादन करें। यज्ञ में रखे पिण्ड रूप अन्न को सेवन करने के लिए जो पितर पास में आवें वे हमें कुशल, पुत्र पौत्रादि सहित धन दें ॥४०॥

समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम् ।
स वेद निहितान् निधीन् पितॄन् परावतो गतान् ॥४१॥
यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥ ४२ ॥
यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।

तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥४३॥
इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
पुरोगवा ये अभिशाचो अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृतामु लोकम् ॥४४॥
सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ४५ ॥
सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥४६॥
सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ ४७ ॥
पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि देवो नो धाता प्र तिरात्यायुः ।
परापरैता वसुविद् वो अस्त्वधा मृताः पितृषु सं भवन्तु ॥४८॥
आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद् वामभिभा अत्रोचुः ।
अस्मादेतमघ्न्यौ तद् वशीयो दातुः पितृष्विहभोजनौ मम ॥४९॥
एयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघा वयोधाः ।
यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा पितृभ्य उपसंपराणयादिमान् ॥५०॥

अविनाशी अग्नि को कर्मवान पुरुष प्रकट करते हैं। दिखाने वाले के बिना जैसे कोई भूमिगत कोश को देख नहीं सकता, वैसे ही पितर भी स्वयं ही प्रकाशित नहीं होते। यह अग्नि दूर देश में वास करने वाले पितरों के जानने वाले हैं, इसलिए यह प्रदीप्त किये जाते हैं ॥ ४१ ॥ हे प्रेत ! तेरे लिए जो मन्थ दे रहा हूँ वह मन्थ तुझे स्वधा और घृत से सम्पन्न हुए प्राप्त हों ॥४२ हे प्रेत ! इन कृष्ण तिलों वाली स्वधामयी धोलें परलोक प्राप्ति पर तुझे विस्तृत रूप में प्राप्त हों और इनके भक्षण की तुझे यमराज स्वीकृति दें ॥४३॥ इस लोक से जिसके द्वारा प्राणी जाते हैं, वह मृतक को ढोने वाली गाड़ी प्राचीन और नवीन दोनों प्रकार की है। इसी के द्वारा तेरे पूर्व पुरुषा गए थे। इसके दोनों ओर जुते गये दोनों वृषभ तुझे पुण्यात्माओं का लोक प्राप्त

करावें ॥ ४४ ॥ मृतक का संस्कार करने वाले अग्नि की इच्छा करते हुए पुरुष सरस्वती का आह्वान करते हैं। ज्योतिष्टोम आदि के समय भी सरस्वती का आह्वान किया जाता है, वह सरस्वती हविदाता यजमान को वरण करने योग्य पदार्थ प्रदान करें ॥ ४५ ॥ वेदी के दक्षिण भाग में स्थित पितर भी सरस्वती का आह्वान करते हैं। हे पितरो! हे यज्ञ में प्रसन्नता को प्राप्त करो, सरस्वती को तृप्त करते हुए हमारी हवि से स्वयं तृप्त होओ। हे सरस्वती! तुम पितरों द्वारा आहूत होकर इच्छित अन्न में हमें प्रतिष्ठित करो ॥ ४६ ॥ हे सरस्वते! तुम उक्थ, शस्त्र, स्वधा रूप अन्न से तृप्त होती हुई पितरों सहित एक ही रथ पर आगमन करती हो। तुम यजमान को, अनेक व्यक्तियों को तृप्त करने वाले अन्न को प्रदान करो ॥ ४७ ॥ हे पृथिवी! मैं तुझे विकार कुम्भी में प्रविष्ट करता हूँ। हम सब यज्ञ के अनुष्ठाताओं को धाता देवता आयु वृद्धि करें। हे दूर लोक वासी पितरो! यह लिपी हुई चरुकुम्भी तुम्हें अन्न प्राप्त करावे। चरु के स्वाहाकार के पश्चात् यह मृतक अपने पितरों से जा मिले ॥ ४८ ॥ हे प्रेत वाहक बैलो! इस गाड़ी से तुम हमारे सामने ही पृथक् हो जाओ। प्रेत को सवारी देने के निन्दा वाक्य से छूटो। तुम इस गाड़ी सहित आओ। तुम्हारा आना शुभ हो। तुम इस पितृमेध में पितरों के लिए हविदाता बनो ॥ ४९ ॥ हम संस्कार करने वालों के पास यह गौ रूप वाली दक्षिणा आ रही है। यह सुन्दर फल और दूध रूप अन्न को देती हुई वृद्धावस्था में भी युवती ही रहे। इस संस्कार किये हुए पुरुष को यह दक्षिणा पूर्व पितरों के पास पहुँचावें ॥ ५० ॥

इदं पितृभ्यः प्र भरामि बर्हिजीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि ।
तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।५१॥
एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।
यथापरु तन्वं सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ॥५२॥
पर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।
आयुर्जीविभ्यो वि दधद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥५३॥
ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्मान्नानामाधिपत्यं जगाम ।

तामर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥५४॥
यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः ।
एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत ॥ ५५ ॥
इदं हिरण्यं बिभृहि यत् ते पिताबिभः पुरा ।
स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम् ॥ ५६ ॥
ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती ॥ ५७ ॥
वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषया ॥५८
त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षञ्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ५९ ॥
प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरः ।
मर्यइव योषाः समर्षसे सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ ६० ॥

मैं संस्कार करने वाला पुरुष पितरों को और देवताओं को जीवन-कामना करता हुआ कुशाओं को बिछाता हूँ । हे पुरुष ! तू पितृमेध के योग्य होता हुआ इन पर चढ़ जिससे पूर्वज पितर भी तुझे प्रेत हुआ जान लें ॥५१॥ हे प्रेत ! तू इस चिता पर बिछी कुशा पर चढ़ कर पितृमेध के योग्य होगया है अतः पितर तुझे प्रेत हुआ जानें । तेरी अस्थियाँ जीवित रहने पर जैसी थीं, वैसी ही अब भी रहें । कुल में यज्ञ में, तेरे अस्थि रूप अवयवों को मंत्र से एकत्र करता हूँ ॥ ५२ ॥ पलाश-पत्र हमको अन्न, रस, बल, शक्ति और तेज देता हुआ पावे । यह हमें सौ वर्ष की आयु प्रदान करता हुआ प्राप्त हो ॥५३॥ यज्ञ रूप अन्न के योग्य जिन यमराज ने इसे प्रेत बनाया है, जो यम इन पक्षों को आच्छादित करने वाले पापात्मों के स्वामी हैं, उन यमदेव को हे बंधुओ ! हवियों से संतुष्ट करो । वे दीर्घ जीवन के निमित्त हमारा पोषण करें ॥ ५४ ॥ पंचों ने जैसे यम के स्थान को किया, वैसे ही मैं इस प्रेत

निवास के लिए पितृ स्थान को ऊँचा करता हूँ। हे बांधवो! ऐसा करने से तुम वृद्धि को प्राप्त हुए रहोगे ॥ ५५ ॥ हे प्रेत! इस सुवर्ण-मुद्रिका को घृत से धारित कर। तेरे पिता ने जिस दक्षिण हाथ में सुवर्ण धारण कर रखा था, उस स्वर्ग प्रापक हाथ को तू धो ॥ ५६ ॥ जीवित, मृत, उत्पन्न होने वाले सब के ही लिए मधु के प्रवाह को सींचती हुई घृत की सरिता मिले ॥ ५७ ॥ स्तुति करने वालों को इच्छित देने वाला सोम छन्ने से छन कर चलता है, वही सोम दिन रात्रि को निष्पन्न करता है। उषा काल और आकाश को भी वही बढ़ाता है। वह वसतीवर जलों का प्राण है। ऐसा सोम कलशों की ओर जाता हुआ अत्यन्त शब्द करता है। वह तीनों सवनों में पूज्य इन्द्र के पेट में प्रविष्ट हो रहा है ॥ ५८ ॥ हे प्रेताग्ने! तुम्हारा धुआँ अंतरिक्ष को मेघ रूप से ढके। तुम स्तुति के कारण प्रदीप्त होकर सूर्य के समान प्रकाशित होते हो ॥ ५९ ॥ यह छन्ने से छनता हुआ सोम इन्द्र के पेट में जाता है। यह यष्टा के लिए मित्र के समान है और उसकी इच्छित कामनाओं को व्यर्थ नहीं करता। पुरुष के स्त्री से मिलने के समान यह सोम द्रोण कलश में सहस्रों धाराओं से मिलता है ॥६०॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥ ६१ ॥
आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः ।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥६२॥
परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः ।
अधा मासि पुनरा यात नो गृहान् हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः ॥६३॥
यद् वो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोकं गमयञ्जातवेदाः ।
तद् व एतत् पुनरा प्याययामि साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम् ॥६४
अभूद् दूतः प्रहितो जातवेदाः सायं न्यह्न उपवन्द्यो नृभिः ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥६५॥

असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः । अभ्येनं भूम ऊर्णु हि ॥६६
शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि ॥६७॥
ये स्माकं पितरस्तेषां वर्हिरसि ॥ ६८ ॥
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ ६९ ॥
प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् यैः समामे बध्यते यैर्व्यामे ।
अधा जीवेम शरदं शतानि त्वया राजन् गुपिता रक्षमाणाः ॥७०॥

पिण्ड भक्षण करके पितर तृप्त होगए. फिर वे अपने शरीर को कम्पायमान कर रहे हैं। फिर वे हमारी प्रशंसा करते हैं। उन तृप्त पितरों से हम अपने अभीष्ट फल को माँगते हैं ॥६१॥ हे सोम के पात्र पितरो! तुम पितृयानों से आगमन करो। पिण्ड के निमित्त कुश बिछाकर तिल प्रदाता हमको आयु और सन्तान देते हुए धनों से पुष्ट करो ॥६२॥ पितरो ! तुम पितृयानों से अपने लोक को गमन करो और अमावस के दिन हवि भक्षण को हमारे घर में फिर आना। तुम सुन्दर पुत्र, पौत्र प्रदान करने वाले हो ॥६३॥ हे प्रेत ! तुम्हारे जिस एक अङ्ग को उखाड़ कर अग्नि ने भस्म नहीं किया है उसे पुनः अग्नि में डालकर तुम्हें प्रवृद्ध करता हूँ। तुम पूर्णाङ्ग होकर स्वर्ग गमन करते हुए प्रसन्नता को प्राप्त होओ ॥ ६४ ॥ प्रातः सायं वन्दना के योग्य अग्नि को दूत बनाकर हमने पितरों के पास प्रेषित किया है। हे अग्ने ! हमारी हवियों को उन्हें दो। वे पितर उनका सेवन करें और हे अग्ने ! फिर तुम भी अपने लिए दी हुई हवि का सेवन करो ॥ ६५ ॥ हे प्रेत ! तेरा मन इस श्मशान में है। हे श्मशान भूमि ! इस प्रेत को भले प्रकार उसी तरह ढक जैसे स्त्रियाँ अपने स्कन्ध को वस्त्र से ढकती हैं ॥ ६६ ॥ हे प्रेत ! पितरों के बैठने के लोक तेरे लिए प्रकट हों। मैं तुझे उसी लोक में प्रतिष्ठित करता हूँ ॥६७॥ हे बर्हि ! तू हमारे पूर्वज पितरों के लिए बैठने का स्थान बन ॥६८॥ हे वरुण ! अपने उत्तम, मध्यम और निकृष्ट पाश को हमसे पृथक् रखो। पाशों से छूटने पर हम तुम्हारी सेवा करते हुए अहिंसित रहें ॥६९॥ हे वरुण ! जिन पाशों से मनुष्य जकड़ा जाता है, उन्हें हमसे

पृथक् रखो। तुमसे रक्षित हुए और आगे भी रक्षा पाते हुए हम सौ वर्ष की आयु प्राप्त करें ॥७०॥

अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥७१॥
सोमाय पितृमते स्वधा नमः ॥७२॥
पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः ॥७३॥
यमाय पितृमते स्वधा नमः ॥७४॥
एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥७५॥
एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥७६॥
एतत् ते तत स्वधा ॥७७॥
स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ॥७८॥
स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ॥७९॥
स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ॥८०॥

कव्यवाहन अग्नि को स्वधायुक्त हवि प्राप्त हो। उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ ॥७१॥ पितृमान सोम को स्वधायुक्त एवं नमस्कार से सम्पन्न यह हवि प्राप्त हो ॥७२॥ सोम वाले पितरों को स्वधा एवं नमस्कार से सम्पन्न यह हवि प्राप्त हो ॥७३॥ पितरों के अधिपति यम को स्वधा एवं नमस्कार युक्त यह हवि प्राप्त हो ॥७४॥ हे प्रपितामह ! तुम्हारे लिए यह पिण्ड रूप हवि स्वधाकार युक्त हो। पत्नी, पुत्र आदि जो पितर तुम्हारे अनुकूल रहते हों उन्हें भी यह स्वधाकार प्राप्त हो। हे पिता ! यह स्वधाकार युक्त हवि तुम्हें प्राप्त हो ॥७५॥७६॥७७॥ पृथिवी में रहने वाले पितरों को, अन्तरिक्षवासी पितरों को; और स्वर्ग लोक के निवासी पितरों को यह स्वधाकार वाली हवियाँ प्राप्त हों ॥७८॥७९॥८०॥

नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय ॥८१॥
नमो वः पितरो भामाय नमो वः पितरो मन्यवे ॥८२॥
नमो वः पितरो यद् घोरं तस्मै नमो वः पितरो यत् क्रूरं तस्मै ॥८३॥
नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै नमो वः पितरो यत् स्योनं तस्मै ।८४।

नमो वः पितरः स्वधा वः पितर, ॥८५॥
येऽत्र पितरः पितरो येऽत्र यूयं स्थ युष्मांस्तेऽनु यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्थ ॥८६॥
य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः ।
अस्मांस्तेऽनु वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म ॥८७॥
आ त्वाग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद् घ सा ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि ।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥८८॥
चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ।८९।

हे पितरो ! तुम्हारे अन्न रस को, तुम्हारे क्रोध को, तुम्हारे मानस क्रोध को, तुम्हारे भयंकर रूप को, तुम्हारे हिंसक रूप को, तुम्हारे मङ्गलकारी रूप को और सुख देने वाले रूप को नमस्कार है। तुम्हें नमस्कार है। यह हवि तुम्हारे लिए स्वाहुत हो ।८१।८२।८३।८४।८५। हे पितरो ! हम पितृ यज्ञ में तुम देवता रूप में बैठे हो। अपने आश्रित पितरों से तुम [illegible] होओ वे तुम्हारे द्वारा उपजीवी हों। वे तुम्हारे अनुग्रह से [illegible] का भाग पावें। हम पिंड देने वाले भी आयु से सम्पन्न [illegible] में हम श्रेष्ठ हों ॥८६-८७॥ हे अग्ने ! हम तुम्हें [illegible] करते हैं। तुम्हारी प्रशंसनीय दीप्ति आकाश में प्रकाशित है [illegible] को अभीष्ट अन्न प्रदान करो ॥८८॥ जलमय आलोक के [illegible] किरण से युक्त चन्द्रमा शीघ्र गमन कर रहे हैं हे [illegible] से बन्द होने से मेरे नेत्र तुम्हारे रूप को देखने में [illegible] हे [illegible] ! तुम भी मेरे इस स्तोत्र को जानती हुई [illegible] ।

॥ इत्यष्टादश [illegible] ।

एकोनविंश काण्ड



१ सूक्त [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—यज्ञः । छन्द—बृहती; पंक्तिः)

सं सं स्रवन्तु नद्यः सं वाताः सं पतत्रिणः ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥१॥
इमं होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥२॥
रूपंरूपं वयोवयः संरभ्यैनं परि ष्वजे ।
यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥३॥

गर्जनशील सरिताएं सुखपूर्वक प्रवाहित हों, वायु भी हमारे अनुकूल चले, पक्षी आदि सब हमारे अनुकूल हों और अभीष्ट देने वाले हों। हे देवताओ ! तुम स्तुत्य हो। जिस यजमान के निमित्त यह शान्ति कर्म किया जारहा है, उसको आदि तथा पशु धन से वृद्धि करो। मैं घृतादि से युक्त हवि की देवताओं को आहुति देता हूँ ॥१॥ हे आहुतियो ! इस वर्तमान यज्ञ को सुफल करो। हे घृत, क्षीर आदि तुम इस यज्ञ का पालन करो। हे स्तुत्य देवगण ! इस यजमान को पुत्र पौत्रादि तथा पशु आदि से युक्त समृद्धि दो। मैं घृतयुक्त आहुति प्रदान करता हूँ ॥२॥ मैं इस यजमान में पुत्र, पशु आदि सब अवस्थाओं को स्थापित करता हूँ, चारों दिशाएं इसके लिए इच्छित फल देने वाली हों। मैं घृतादि से सम्पन्न हवि प्रदान करता हूँ ॥३॥

२ सूक्त

(ऋषि—सिन्धुद्वीपः ॥ देवता—आपः ॥ छन्द—अनुष्टुप्)

आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः ।
शनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः ॥१॥

त आपो धन्वन्याः शं ते सन्त्वनूप्याः ।
ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः ॥२॥

नभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः ।
पग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ॥३॥

पामह दिव्या नामपां स्रोतस्या नाम् ।
ग्रामह प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ॥४॥

ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मंकरणीरपः ।
यथेव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ॥५॥

हे यजमान ! हिमवान् पर्वत से लाये जल, झरने के जल, सदा प्रवाहित जल तेरा कल्याण करने वाले हों। वर्षा के जल भी तेरे लिए मंगलमय हों ॥१॥ मरुभूमि के जल, जलयुक्त प्रदेश के जल, कूप, तड़ाग और बावड़ी के जल तथा कुम्भों में भरकर लाये हुए जल तेरा कल्याण करने वाले हों ॥२॥ खनन-साधन कुदालादि के न होते हुए भी जो दोनों ओर के किनारों को ढाने में समर्थ हैं, जो इनके द्वारा उपजीवन करते हैं उनकी बुद्धियों को प्रवृद्ध करने वाले हैं, जो अत्यन्त गहन स्थानों को प्राप्त हैं ऐसे जल वैद्यों से भी अधिक हित-साधक हैं। मैं उन जलों की वन्दना करता हूँ ॥३॥ हे ऋत्विजो ! तुम आकाश के जलों के समान अथवा दौड़ते गये अश्वों के समान इस शान्त्युदक कर्म में शीघ्रता करने वाले होओ ॥४॥ हे ब्राह्मणो ! कल्याणकारी, यक्ष्मादि रोगों को शमन करने वाले औषधि रूप जलों को सुख की वृद्धि के निमित्त यहाँ ले आओ ॥५॥

३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वाङ्गिराः । देवता—अग्नि, छन्द—त्रिष्टुप्, भुरिक् त्रिष्टुप्)

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद् वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः ।
यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्तत स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥१॥
यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुष्व प्स्वन्तः ।
अग्ने सर्वास्तन्वः सं रभस्व ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः ॥२॥
यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गो या ते तनूः पितृष्वाविवेश ।
पुष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रथेऽग्ने तया रयिमस्मासु धेहि ॥३॥
श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम् ।
यतो भयोमभयं तन्नो अस्त्वव देवानां यज हेडो अग्ने ॥४॥

हे अग्ने ! हमारे स्तोत्र पर, तुम जहाँ-जहाँ विशिष्ट पूर्णता वाले हो, वहाँ-वहाँ से ही हमारी प्रसन्नता के लिए आओ। आकाश, पृथिवी, अन्तरिक्ष, पुष्पफल रहित ओषधियां और पक्व फल वाली ओषधियों से भी यहाँ आओ ॥१॥ हे अग्ने ! जल में जो तुम्हारा रूप है, जंगल में जो तुम्हारा रूप है, ओषधियों में फल पाक रूप है, सब प्राणियों में जो वैश्वानर रूप है, अन्तरिक्ष में जो विद्युत रूप है, अपने उन सब रूपों को एकत्र करके उन सबके सहित हमको धन देते हुए आओ ॥२॥ हे अग्ने ! तुम्हारी स्वर्गगमन रूप जो महिमा देवताओं में है, जिस महिमा से तुम पितरों में प्रविष्ट हुए हो, तुम्हारा जो पोषण-कर्म मनुष्यों में वर्तमान है, अपनी उन सब महिमाओं के सहित आकर हमको धन प्रदान करो ॥३॥ हे अग्ने ! तुम हमारे स्तोत्र के श्रवण में समर्थ श्रोत वाले हो, तुम अभीष्ट प्रदाता, सबसे जानने योग्य, अतीन्द्रियार्थदर्शी हो। मैं इस स्तोत्ररूप वाणी और मन्त्र-समूह अनुवाकों द्वारा तुम्हारी स्तुति करता हूं, जिससे अभय प्राप्त हो। तुम हम पर क्रोध करने वाले देवताओं के क्रोध को भी शान्त करो ॥४॥

४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वाङ्गिराः। देवता—अग्निः। छन्द—जगती; त्रिष्टुप्)

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः ।
तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये
स्वाहा ॥ १ ॥
आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥२॥
आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि ।
अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ॥ ३ ॥
बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम् ।
यस्य देवा देवताः संबभूवुः स सुप्रणीताः कामो
अन्वेत्वस्मान् ॥४॥

हे अग्ने ! सृष्टि से पूर्व रचे देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अथर्वा रूप ईश्वर ने आहुति दी थी और अग्नि ने उसे देवताओं को पहुँचाने की इच्छा की । उसी इस आहुति को तुम्हारे मुख में डालता हूँ। तीनों शरीरों द्वारा पूजे गए अग्नि देवताओं को हवि प्राप्त करावें । यह हवि स्वाहुत हो ॥ १ ॥ मैं सौभाग्य देने वाली वाणी देवी का पूजन करता हूँ। जैसे बुरे कामों से बचा कर सुन्दर कर्म में प्रेरित करने वाले पुरुष को आगे रखा जाता है, वैसे ही माता के समान मन को वश में करने वाली हमारे द्वारा आगे रखी हुई सरस्वती हमारे लिए अनुकूल हों। मेरा अभीष्ट मेरे लिए विशिष्ट बने, अन्य को प्राप्त न हो। मैं अपने इच्छित को सदा प्राप्त करता रहूँ ॥ २ ॥ हे बृहस्पते ! तुम सब देवताओं के पालने वाले हो। सब वाक्यों की सार रूप वाणी सहित, वाणी को हमारे अनुकूल करने के लिए आगमन करो और हमें सौभाग्यशाली बनाओ ॥३॥ [illegible] बृहस्पति प्रसिद्ध वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती का मुझे [illegible] स्मरण

करें। जिन बृहस्पति के वश में देवता रहते हैं, वे बृहस्पति इच्छित फल देने वाले हैं, वे हमारे समक्ष आकर अभीष्ट प्रदान करें ॥ ४ ॥

५ सूक्त

(ऋषि—अथर्वाङ्गिराः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्)

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥१॥

तीनों लोकों में वास करने वाले मनुष्य देवता आदि के स्वामी तथा महान् धनपति इन्द्र पृथिवी के महान धन को मुझ हविदाता यजमान को प्रदान करें। वे इन्द्र हमारे द्वारा स्तुत होकर धनों को हमारे समक्ष भेजें ॥ १ ॥

६ सूक्त

(ऋषि—नारायणः। देवता—पुरुषः। छन्द—अनुष्टुप्)

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥
त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः ।
तथा व्यक्रामद् विष्वङ्ङशनानशने अनु ॥ २ ॥
तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥
पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ॥ ४ ॥
यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ ५ ॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत् ।
मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ६ ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ॥ ७ ॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥ ८ ॥
विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥ ९ ॥
यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ १० ॥

अनंत भुजा, अनंत नेत्र, अनंत चरणों वाले नारायण सात सिन्धु और द्वीपों वाली पृथिवी को अपनी महिमा से व्याप्त करते हुए दश-अंगुल वाले हृदयाकाश में प्रतिष्ठित हुए ॥ १ ॥ इस यज्ञ के अनुष्ठाता नारायण अपने तीन पादों सहित स्वर्गलोक में चढ़े। इनका चतुर्थ पाद इस लोक में बारम्बार प्रकट होता है। यह पाद भोजनजीवी सब मनुष्य, पशु आदि और वृक्ष आदि में सर्वत्र व्याप्त है ॥ २ ॥ सम्पूर्ण विश्व उसी यज्ञानुष्ठाता पुरुष का महान् कर्म है, यह महिमा का भी आश्रय रूप है। इसका चतुर्थ पाद सब भूतों में व्याप्त है। इसके तीन पाद अमृत लोक स्वर्ग में स्थित हैं ॥ ३ ॥ विगत, भविष्यत् और वर्तमान जगत सब नारायण रूप ही है। वही पुरुष अमृतत्व का स्वामी है और अन्य भूतों का भी ईश्वर है ॥ ४ ॥ साध्य और वसु नामक देवताओं ने जब पुरुष यज्ञ की कल्पना की, तब इसे कितने प्रकार से कल्पित किया। इसका मुख, भुजा, ऊरु और पाद क्या कहलाते हैं? ॥ ५ ॥ इसका मुख ब्राह्मण, भुजा क्षत्रिय, ऊरु वैश्य और पाद शूद्र कहलाये ॥ ६ ॥ उसके मन से चन्द्रमा, मुख से इन्द्राग्नि, प्राण से वायु प्रकट हुए ॥ ७ ॥ शिर से स्वर्ग लोक, नाभि से अन्तरिक्ष और पैरों से पृथिवी लोक प्रकट हुआ। इसके श्रोत्र से दिशाएं उत्पन्न हुईं। इन लोकों [illegible] साध्य आदि देवताओं ने अंगों और यज्ञों की योजना करके ॥ ८ ॥ सृष्टि के आरम्भ में विराट् उत्पन्न हुआ, विराट् से अन्य पुरुष (जीव) हुआ। वह उत्पन्न होते ही वृद्धि को प्राप्त होता हुआ [illegible]

लोकों के आगे-पीछे व्याप्त हो गया और जीवों की देह-रचना की ॥ ६ ॥ देवताओं ने अश्व रूप हवि से साध्य अश्वमेध यज्ञ को देवताओं ने किया, तब रसोत्पादिका वसन्त ऋतु यज्ञ का घृत और ग्रीष्म ऋतु समिधा हो गई तथा शरद् ऋतु पुरोडाश रूप हवि हुई ॥ १० ॥

तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥ ११ ॥
तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥ १२ ॥
तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥ १३ ॥
तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्तांश्चक्रे वायव्या नारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ १४ ॥
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥
मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः ।
राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥ १६ ॥

सृष्टि के आरम्भ काल में उस पूजा के योग्य पशु को प्रावृट् नामक ऋतु से धोया और उससे साध्य तथा वसु देवताओं ने यज्ञ किया ॥ ११ ॥ उस यज्ञात्मक पशु से अश्व, खिच्चर और गर्दभ उत्पन्न हुए । ऊपर नीचे दाँत वाले, गौऐं, बकरी और भेड़ें भी उससे उत्पन्न हुईं ॥ १२ ॥ उसी अश्व रूप यज्ञ पुरुष से पद्योबद्ध मन्त्र, गीत्यात्मक मन्त्र अधिष्ठान छन्द और अश्लिष्ट पाठ वाले यजुर्मंत्र प्रकट हुए ॥ १३ ॥ उसी ने दधि मिश्रित घृत का संपादन किया। साध्य नामक देवताओं ने उस घृत कर्म को, और वायु ने श्वापद, पक्षी, सरीसृप, बन्दर, हाथी तथा गौ, अश्व, गधे, भेड़, बकरे, ऊँट आदि की रचना की ॥ १४ ॥ साध्यादि देवताओं ने जब अश्वमेध किया तब यज्ञ पुरुष को पशु यूप में बाँधा और गायत्री आदि सात छन्दों को परिधि

बनाकर इक्कीस समिधाओं की रचना की ॥ १८ ॥ यज्ञ पुरुष से सम्पादित सोम की चार सौ नब्बे महान् दीप्ति वाली रश्मियाँ आदि पुरुष के मस्तक से उत्पन्न हुईं ॥ १६ ॥

७ सूक्त

(ऋषि—गार्ग्यः । देवता—नक्षत्राणि । छन्द—त्रिष्टुप्)

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥१॥
सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥ २ ॥
पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥ ३ ॥
अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥४॥
आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥५॥

अनेक रूप वाले जो नक्षत्र आकाश में चमकते हैं, वे अतिशय द्रुतगति से सरकते हैं। उन नक्षत्रों की मैं मन्त्र रूप वाली स्तुति करता हूँ। क्योंकि मैं उनकी विघ्न नाशिनी कल्याणमयी बुद्धि की इच्छा करता हूँ ॥ १ ॥ हे अग्ने! कृत्तिका नक्षत्र हमारे आह्वान के अनुकूल हो। हे प्रजापते! रोहिणी नक्षत्र भी सुन्दरता से आह्वान योग्य हो। हे सोम! मृगशिरा नक्षत्र हमारे लिए मंगलदायक और आह्वान योग्य हो। हे रुद्र! आर्द्रा नक्षत्र सुख दे, अदिति का पुनर्वसु नक्षत्र सत्यवाणीमय हो। बृहस्पति का पुष्य नक्षत्र कल्याण दे, सर्प का अश्लेषा नक्षत्र तेजस्वी बनावे और पितृ देवता का मघा नक्षत्र मेरा अभीष्ट करने वाला हो ॥ २ ॥ अर्यमा का पूर्वाफाल्गुनी, भग का उत्तरा फाल्गुनी, सविता का हस्त, इन्द्र का चित्रा नक्षत्र मुझे [illegible]

सुख दें। वायु का स्वामी, इन्द्र का राधा और विशाखा तथा मित्र का अनुराधा सुख से आह्वान करने योग्य हो। इन्द्र का ज्येष्ठा नक्षत्र हमें सुखी करे और पितर देवताओं का, व्याधियों से पूर्ण मूल नक्षत्र भी मेरे लिए कल्याणकारी हो ॥ ३ ॥ जल देवता का पूर्वाषाढ़ा मुझे सुभक्ष्य अन्न दे। विश्वे देवाओं का उत्तराषाढ़ा हमारे सामने बलदायक अन्नमय रस दे। ब्रह्म देवता का अभिजित् नक्षत्र मुझे पुण्यप्रद हो। विष्णु का श्रवण, वसुदेवता का धनिष्ठा नक्षत्र भी मेरा भले प्रकार पालन-करे ॥ ४ ॥ इन्द्र का शतभिषा, अजैकपाद का पूर्वा भाद्रपद और अहिर्बुध्न्य का उत्तरा भाद्रपद हमारे लिए महान् फल देते हुए सुसज्जित गृह प्रदान करने वाले हों। पूषा का रेवती और अश्विद्वय का अश्वयुक् नक्षत्र मुझे सौभाग्यशाली बनावे तथा यम का भरणी नक्षत्र मुझे ऐश्वर्य में प्रतिष्ठित करे ॥ ५ ॥

८ सूक्त

(ऋषि—गार्ग्यः । देवता—नक्षत्राणि । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥१॥
अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे ।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥२॥
स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु ।
सुहवमग्ने स्वस्त्यमर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ॥ ३ ॥
अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम् ।
सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान् परा तान्त्सवितः सुव ॥ ४ ॥
अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम् ।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ॥ ५ ॥
इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते ।
सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि ॥ ६ ॥
स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥७॥

आकाश, अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल, पर्वत और दिशाओं में जो नक्षत्र दिखाई देते हैं और जिन नक्षत्रों को प्रदीप्त करते हुए चन्द्रदेव प्रकट होते हैं, वे नक्षत्र मुझे सुख प्रदान करें ॥ १ ॥ सुख का दर्शन कराने वाले जो अट्ठाईस नक्षत्र हैं वे मुझे फल प्रदान करने के लिए समान बुद्धि वाले हों। मैं नक्षत्रों का सहयोग पाकर अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति को सिद्ध करूँ और प्राप्त हुई वस्तु की रक्षा का सामर्थ्य भी पाऊँ। दिवस और रात्रि को मेरा नमस्कार है ॥२॥ सुन्दर प्रातःकाल मुझे सुख प्रदान करे, सायङ्काल मुझे सुखी करें। दिवस और रात्रि भी सुख दें। मैं जिस प्रयोजनीय नक्षत्र में प्रस्थान करूँ, उसमें हरिण आदि शुभ शकुन के रूप में अनुकूल गति वाले हों। हे अग्ने! हवि पात्र नक्षत्रों को हमारी हवियाँ पहुँच कर हमारी प्रशंसा करते हुए फिर आगमन करो ॥ ३ ॥ हे सवितादेव! सब नक्षत्रों सहित तुम अनुरूप (टोक) परिहव, कठोर भाषण, वर्जित स्थल प्रवेश, प्याली बजना और छींक आदि अपशकुनों और दुर्निमित्तों को हमसे पृथक् करो ॥ ४ ॥ अहित करने वाली छींक हमसे दूर हो, धन प्राप्ति के निमित्त मार्ग में शृगाल-दर्शन, नपुंसक-दर्शन निषिद्ध है, यह सब हमारे पाप का शमन करने वाले हों ॥ ५ ॥ हे इन्द्र! जिन दिशाओं को आँधी चलती हुई धुँधला करती है, उन अंधकार से ढकी दिशाओं को अनुकूल रूप से स्थित करते हुए मेरे लिए कल्याण करने वाली करो ॥ ६ ॥ हमारा भय दूर हो। दिन और रात्रि को नमस्कार है। हमारे लिए सदा मङ्गल हो ॥ ७ ॥

६ सूक्त

(ऋषि—शन्तातिः। देवता—मन्त्रोक्ताः। छन्द—इत्यादि अनुष्टुप् प्रभृति)

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम्।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥ १ ॥
शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम्।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥ २ ॥
इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता।

ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥ ३ ॥
इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् ।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥ ४ ॥
इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःपष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा-
संशितानि । यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥५॥
शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥ ६ ॥
शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वाञ्छमन्तकः ।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ॥ ७ ॥
शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत् ।
शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यतीः ॥ ८ ॥
नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः ।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥९॥
शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा ।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥ १० ॥
शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः ।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ॥ ११ ॥
ब्रह्म प्रजापमिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयोऽग्नयः ।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु ।
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥१२॥
यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः ।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु ॥ १३ ॥
पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्ति-
र्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवा शान्तिः शान्तिः

शान्तिः शान्तिभिः । ताभिः शान्तिभिः सर्वं शान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिहं क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव-शमस्तु नः ॥ १४ ॥

अपने कारण से उत्पन्न दोषों का शमन करता हुआ द्युलोक हमें सुख दे, विशाल अन्तरिक्ष और पृथिवी भी हमें सुख शान्ति प्रदान करें। समुद्र के जल और औषधियाँ भी हमें शान्ति दें ॥ १ ॥ कार्य, कारण और न हो सकने वाला कार्य भी मुझे सुख दे। मेरे पूर्व पापों के फल रूप भोग भी शांत हों। मेरा दुष्कर्म और विरुद्धाचरण भी शांति को प्राप्त हों। भूत काल का और आगे होने वाले का दोष और वर्तमान काल का कर्म दोष भी शांत होता हुआ सुख दे ॥ २ ॥ परम स्थान की निवासिनी, मन्त्रों द्वारा उत्कृष्ट और विद्वानों द्वारा अनुभव में लाई हुई परमेष्ठी की वाणी रूप सरस्वती, जो शाप आदि में भी उच्चरित होती है, हमारे लिए सुख देने वाली हो ॥३॥ परमेष्ठी द्वारा विरचित संसार का मूल कारण रूप मन, जो घोर कर्म करने वाला है, वही मन हमारे लिए होने वाले घोर कर्म को शान्त करने वाला हो ॥ ४ ॥ जिन पंचेन्द्रियों को मैंने घोर कर्म में प्रयुक्त किया था, वह ज्ञानेन्द्रियाँ हमारे घोर कर्म की शान्ति करें ॥ ५ ॥ दिन के अभिमानी देवता मित्र, रात्रि के अभिमानी देवता वरुण, विष्णु, प्रजापति, इन्द्र, बृहस्पति और अर्यमा देवता हमको शांति दें ॥ ६ ॥ मित्र, वरुण, सूर्य, अन्तक, पृथिवी और अंतरिक्ष में होने वाले उत्पात और आकाश में विचरण करने वाले ग्रह हमारे लिए शांति करने वाले हों ॥ ७ ॥ काँपती हुई पृथिवी, कम्प के दोष को दूर करती हुई शांति देने वाली हो। उल्का रूप से गिरने वाली बिजलियों वाला स्थान भी सुखदायक हो। दूध के स्थान पर रक्त देने वाली धेनु तथा फटती हुई पृथिवी यह भी हमारे दोषों को शांत करें ॥ ८ ॥ उल्काओं के आघात से स्थान च्युत नक्षत्र हमें शांति दें, शत्रुओं के कृत्यादि अभिचार कर्म सुख दें, भूमि खोद कर हड्डी और केश आदि लपेट कर बनाई गई विष पुत्तलिकाएँ हमारे लिए शांतिप्रद हों। विषुव अपने देखने से प्राप्त हुई व्याधि को दूर करे। राष्ट्र में होने वाले विघ्न भी शांत हों ॥ ९ ॥ चन्द्र-ग्रहण

के ग्रह, राहु से ग्रस्त सूर्य, धूमकेतु का अनिष्ट और रुद्र के तीक्ष्ण सन्ताप देने वाले उपद्रव, यह सभी शांति करने वाले हों ॥ १० ॥ ग्यारह रुद्र, आठ वसु, बारह आदित्य, इन्द्रादि देवता, बृहस्पति और सब अग्नियाँ हमको शांति दें ॥ ११ ॥ ब्रह्म, प्रजापति, धाता, सब लोक, चारों वेद, सप्तर्षि, अग्नियाँ यह सब मुझे कल्याण देने वाले हों। इन्द्र ब्रह्मा, विश्वेदेवा और सब देवता मेरा कल्याण करें ॥ १२ ॥ ऋषिगण शांति करने वाली जिन-जिन वस्तुओं के ज्ञाता हैं, वे सब वस्तुएँ मुझे सुख देने वाली हों, सब ओर से मुझे सुख और अभय की प्राप्ति हो ॥ १३ ॥ पृथिवी शांति दे, द्यौ शांति दे, जल, औषधियाँ, वनस्पतियाँ, विश्वेदेवा और सभी देवता मुझे शांति दें। शांति से बढ़ कर शांति हमको मिले। विपरीत फल, क्रूर फल और पापमय फल जो हमें मिलने वाला हो, वह सब शांत हो। वह कल्याण करने वाला हो ॥ १४ ॥

१० सूक्त [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—मन्त्रोक्ताः। छन्द—त्रिष्टुप्)

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥
शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥
शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥
शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥४॥
शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५॥
शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः।

शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥
शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥
शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥
शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥
शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥१०॥

हे इन्द्राग्ने ! तुम अपनी रक्षा-बुद्धि से हमारे दुःखों को दूर करो। यजमान से हवि प्राप्त करके इन्द्र और वरुण हमारा मंगल करें। सोम और इन्द्र सुख देने को तत्पर हों। इन्द्र और पूषा देवता घोर युद्ध में हमारे संकट और भयों को नष्ट करने वाले हों ॥१॥ भग देवता, नराशंस देवता हमारा कल्याण करने वाले हों, बुद्धि, धन, वाणी यह सब हमें सुख दें, अर्यमा हमारे लिए मंगल करने वाले हों। देवताओं की स्तुतियाँ हमारा कल्याण करने में समर्थ हों ॥ २ ॥ धाता, वरुण, पृथिवी, द्यावापृथिवी और पर्वत हमारे लिए मङ्गल करने वाले हों। देवताओं की स्तुतियाँ हमारा कल्याण करने में समर्थ हों ॥ ३ ॥ ज्योतिर्मुख अग्नि, मित्रावरुण और अश्विनीकुमार हमारा मंगल करें। पुण्यात्माओं के कर्म हमारे लिए कल्याणकारी हों। बहते हुए वायु हमको शान्तिप्रद हों ॥ ४ ॥ पूर्वाहुति यज्ञ में आकाश पृथिवी हमारे लिए कल्याण करने वाली हों। अंतरिक्ष हमारी दृष्टि को सुख दे। औषधि, वृक्ष, लोकपाल, विजयी इन्द्र हमारी मङ्गल कामना करें ॥ ५ ॥ वसुओं सहित इन्द्र, आदित्यों सहित वरुण, रुद्रों सहित त्वष्टा देव हमारे लिए कल्याण योजना करते हुए हमारी स्तुतियों को श्रवण करें ॥ ६ ॥ निष्पन्न सोम, स्तोत्र शंसात्मक मन्त्र, सोम कूटने का पाषाण और सोम से सम्पादित होने वाले यज्ञ हमारा मङ्गल करें, वेदी हमारे लिए कल्याणकारिणी हो।

प्रचुरता से उत्पन्न होने वाली ओषधियाँ भी हमारा कल्याण करें ॥ ७ ॥ महान् तेजस्वी आदित्य हमारा मङ्गल करते हुए उदय को प्राप्त हों, चारों दिशाएं, स्थिर पर्वत, नदियां और उनके जल हमारे लिए मंगलमय हों ॥८॥ देवमाता अदिति हमको सुख दे, विष्णु, पूषा और मरुद्गण हमारे लिए मंगल करें, जल और वायु हमको शान्ति देने वाले हों ॥ ९ ॥ भय से त्राण करने वाले सविता, उषा की अभिमानी देवता, विभाती, वर्षा देने वाले पर्जन्य और क्षेत्रपालक शम्भु हमारा कल्याण करें ॥१०॥

सूक्त ११

(ऋषिः—वसिष्ठः । देवता—मन्त्रोक्ताः । छन्दः—त्रिष्टुप्)

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१॥
शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः २

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शमहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥३॥
आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तामिदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ।४।
ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥
तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥६॥

सत्य का पालन करने वाले देवता हमारे लिए मंगल करें । गवाश्व शान्ति प्रदायक हों, ऋभु और पितर हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होते हुए सुख प्रदान करें ॥१॥ अनेक स्तोत्र वाले इन्द्रादि देवता हमारा मंगल करें, सरस्वती हमारा कल्याण करें, दानशील विश्वेदेवा हमें सुखी करें, आकाश, पृथिवी और जल में उत्पन्न देवता हमारा कल्याण करें ॥ २ ॥ अजैकपाद

नामक देवता हमारे लिए शान्ति देने वाले हों, अहिर्बुध्न्य देवता, अजाक्-पाद देवता, समुद्र और मरुतों की माता पृश्नि यह सब हमारा मंगल करें ॥३॥ आदित्य, रुद्र और वसु देवता इस नये स्तोत्र को स्वीकार करें, पृथ्वि से उत्पन्न यज्ञार्ह देवता तथा द्युलोक के और पृथिवी के देवता भी हमारे इस स्तोत्र का श्रवण करें ॥४॥ देवताओं के ऋत्विज, यज्ञार्ह, मनु के पुत्र तथा अमृत्व प्राप्त सत्यनिष्ठ देवता हमको विस्तृत यश दें। हे देवताओं! कल्याणमय रक्षा साधनों के द्वारा तुम हमारा सदा पालन करते रहो ॥ ५ ॥ हे दिन के अभिमानी देवता मित्र, हे रात्र्याभिमानी देव वरुण! रोगों की शांति और भयों के दूर होने का फल हमको मिले। हम गौ आदि रूप प्रतिष्ठा और धन को प्राप्त करें। आकाश और सबकी आश्रयभूत पृथिवी को नमस्कार है ॥६॥

सूक्त १२

(ऋषि.—वसिष्ठः। देवता—उषा। छन्दः—त्रिष्टुप्)

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१॥

अपनी बहिन रात्रि के अन्धकार को, उषा आते ही हटा देती है और प्रकाश करती हुई इहलौकिक, पारलौकिक मार्गों को खोलती है। इस उषा से हम देवताओं के लिए हव्य रूप अन्न पावें और सुन्दर अपत्य वाले होते हुए सौ हेमन्तों तक जीवित रहते हुए सुखी हों ॥१॥

सूक्त १३

(ऋषिः—अप्रतिरथः। देवताः—इन्द्रः। छन्दः—त्रिष्टुप्)

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू।
तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्वर्यत् ॥१॥
आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥२॥

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुनाऽयोध्येन दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥३॥
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥४॥
बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदन् ॥५॥
इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥६॥
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदाय उग्रः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥७॥
बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जञ्छत्रून् प्रमृणन्नमित्रानस्माकमेध्यविता तनूनाम् ॥८॥
इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभंजतीनां जयन्तीनां मरुतो शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥१०॥
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान् देवासोऽवता हवेषु ॥११॥

मैं देवताओं से वैर करने वाले राक्षसों को जीतने वाली इन्द्र की आयुध-वर्षक और अभीष्ट वर्षक भुजाओं का कल्याण के लिए पूजन करता हूँ ॥१॥ द्रुतकर्मा, बुद्धि को तीक्ष्ण करने वाले, भयंकर, विद्युतों के प्रेरक, शत्रु-नाशक, स्वयं समर्थ इन्द्र शत्रु-सेना के जीतने वाले हैं, अतः इच्छित कामनाओं की पूर्ति के लिए उन्हीं का सहारा लेना चाहिए ॥२॥ विजयशील, रणक्षेत्र में आसक्ति वाले, शत्रुओं को रुलाने वाले, धनुर्धारी, अभीष्टवर्षक इन्द्र की सहायता से विजय को प्राप्त होओ। हे वीरो ! उन्हीं के अनुग्रह से शत्रु को वश में करो ॥३॥ खड्गधारी, बाणधारी, वीरों से युक्त इन्द्र अपने

वीर धनुधरों को शत्रु के सामने भेजते हैं और युद्ध की कामना से आने वाले शत्रुओं को जीतते हैं। यह सोमपायी, प्रचण्ड धनुष वाले, भुजबल में प्रवृद्ध और शत्रुओं के संहारक हैं। हे वीरो ! उन इन्द्र की कृपा से विजय प्राप्त करो ॥४॥ यह इन्द्र महाबली, अन्नवान, धनवान, शत्रुओं को वश करने वाले, वीरों से युक्त हैं, यह शत्रुओं के बल को सामने जाते ही जीतते और उनके गवादि धन को अपने वश में कर लेते हैं। हे इन्द्र ! तुम ऐसे गुणों से युक्त हो, इसलिए इस विजयात्मक रथ पर चढ़ो ॥५॥ हे समान कर्म और मति वाले वीरो ! तुम इन वीरकर्मा इन्द्र को आगे बढ़ाकर उत्साह में भर जाओ। शत्रु-नाश में प्रवृत्त इन्द्र के साथ बढ़कर तुम भी शत्रु के नाश करने वाला कर्म करो। यह इन्द्र शत्रु के ग्रामों, गौओं और संग्राम भूमि को जीत लेते हैं। इनकी भुजाएँ वज्र के समान दृढ़ हैं। यह अपने पराक्रम से ही शत्रु-सेना का मर्दन कर डालते हैं ॥६॥ यह शत्रुओं को चीर कर घुसे चले जाते हैं। अनेक प्रकार से क्रोध करते हुए यह प्रचण्ड पराक्रम वाले इन्द्र, शत्रुओं की सेना को वश में कर लेते हैं। इनके सामने ठहरने का कोई साहस नहीं करता। ऐसे इन्द्र रणक्षेत्र में हमारी सेना के रक्षक हों ॥७॥ ये इन्द्र देवताओं का पालन करने वाले हैं। हे इन्द्र ! तुम हमारे शत्रुओं के मारते हुए रथ सहित बढ़ते चलो। शत्रुओं को, अमित्रों को मारो और हमारी रक्षा करते हुए प्रवृद्ध होओ ॥८॥ इन्द्र हमारे शत्रुओं को परास्त करने वाली विजयवाहिनी सेनाओं के नेता हों। बृहस्पति पूर्व भाग में, सोम और यज्ञ दक्षिण में तथा मरुद्गण इनके बीच में चलें ॥ ९ ॥ अभीष्ट वर्षक इन्द्र, शत्रु को भगाने वाले वरुण, मरुद्गण और आदित्य शत्रुओं को वश में करने वाली शक्ति के सहित प्रकट हों और शत्रुओं को इस लोक से भी गिराने में समर्थ अत्यन्त यश वाले देवताओं के जय-घोष गूंज उठें ॥ १० ॥ युद्धों का अवसर प्राप्त होने पर इन्द्र हमारी रक्षा करें। हमारे आयुध शत्रुओं पर विजय पाने में समर्थ हों। हमारे वीर सैनिक विजय पाकर उत्साहमय हों। हे देवताओ ! संग्राम भूमि में तुम हमारे रक्षक होओ ॥११॥

१४ सूक्त

(ऋषिः—अथर्वा । देवता—द्यावापृथिव्यौ । छंदः—त्रिष्टुप्)

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम् ।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥१॥

श्रेष्ठ फल रूप लक्ष्य स्थान को मैं प्राप्त हो गया हूँ । आकाश और पृथिवी मेरे लिए मंगलमय हों । चारों दिशाएं निरुपद्रव हों । हे सपत्न ! हम तुम्हारे द्वेषी नहीं हैं इसलिए हमको अभय प्राप्त कराओ ।१।

१५ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—इन्द्र, मन्त्रोक्ताः । छन्द—बृहती; जगती-पंक्ति; त्रिष्टुप्)

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१॥
इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा ।
मा नः सेना अररुषीरुप गुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय ॥२॥
इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः ।
स रक्षिता चरमतः स मध्यतः स पश्चात् स पुरस्तान्नो अस्तु ॥३॥
उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्व१र्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता ॥४॥
अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥५॥
अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥६॥

हे इंद्र ! तुम अभय देने वाले हो । हमारे भय के कारण रूप उपद्रव को दूर करते हुए हमारी रक्षा करो । तुम अपने रक्षा-साधनों को हमारी

ओर प्रेरित करो ॥१॥ हम उन पूज्य इन्द्र को कामना पूर्ति के लिए आहूत करते हैं। हम दुपाये पापों से मुक्त हों, हमारी कामना पूर्ति में बाधक शत्रु सेना दूर रहे। हे इन्द्र! हमारे शत्रुओं को सब ओर से नष्ट कर डालो ॥२॥ वृत्रासुर के हनन करने वाले, वरण करने योग्य इन्द्र हमारी रक्षा करें। अंत, मध्य, पीछे और आगे सर्वत्र वे इन्द्र हमारी रक्षा करने वाले हों ॥३॥ हे इन्द्र! तुम सब के जानने वाले हो, हमें इहलोक और परलोक-सुख प्राप्त कराओ। स्वर्ग में ज्योतिर्मान सूर्य हमको अभय और कल्याण के देने वाले हों। हे इन्द्र! तुम्हारी शत्रुओं का संहार करने में समर्थ महाबली भुजाओं को हम अपनी रक्षा के लिए पावें ॥४॥ अंतरिक्ष हमको अभयप्रद हो, आकाश-पृथिवी भी हमको अभयता देने वाली रक्षा दें। चारों दिशाएँ भी हमको सब ओर से अभय प्रदान करने वाली हों ॥५॥ मित्रों से अभय प्राप्त हो, शत्रुओं से भी हम भयभीत न हों, प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के शत्रु हमको भय के कारण न बनें। दिवस, रात्रि और सब दिशाएँ मुझे अभय प्रदान करती हुईं मित्र के समान हित करने वाली हों ॥६॥

१६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ताः। छन्द—अनुष्टुप्; शक्वरी)

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम्। सविता मा दक्षिणत-
उत्तरान्मा शचीपतिः ॥१॥
दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम्।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥२॥

हे सवितादेव! हे अग्नियों सहित देवताओं! पूर्व और पश्चिम दिशाओं को हमारे लिए शत्रुओं से शून्य करो। उत्तर दिशा में शचीपति इन्द्र हमारी रक्षा करें और दक्षिण में सूर्य हमारे रक्षक हों ॥१॥ सूर्यमंडल में आदित्य मेरी रक्षा करें, पृथिवी में अग्नि मेरी रक्षा करें, पूर्व दिशा में

पाद प्रक्षेप के स्थान में यह सूर्य मेरे रक्षक हों। शय्या रूप पुर में सूर्य सब ओर से मेरी रक्षा करें। मैं अपनी रक्षा के लिये अपने को सूर्य के लिए सौंपता हूँ ॥ ५ ॥ औषधि युक्त जल इस दिशा में मेरे रक्षक हों। पाद-प्रक्षेप में और पाद-प्रक्षेप के स्थान में तथा जिस शय्या रूप पुर को मैं प्राप्त हो रहा हूँ वहाँ सर्वत्र जल मेरी रक्षा करें ! मैं अपनी रक्षा के लिए अपने को जल के लिए सौंपता हूँ ॥ ६ ॥ विश्व के रचयिता परमेश्वर सप्त ऋषियों सहित उत्तर दिशा में मेरे रक्षक हों। पाद प्रक्षेप में और पाद प्रक्षेप के स्थान में यह सप्तर्षि रूप विश्वकर्मा मेरे रक्षक हों। शय्या रूप पुर में भी वे सब ओर से मेरी रक्षा करें। मैं अपनी रक्षा के लिए अपने को उन्हीं रक्षा करने वाले सप्तर्षि मय विश्वकर्मा को सौंपता हूँ ॥ ७ ॥ मरुद्गण युक्त इन्द्र उत्तर दिशा में मेरे रक्षक हों। पाद प्रक्षेप में और पाद प्रक्षेप के स्थान में यह मरुद्गण युक्त इन्द्र मेरे रक्षक हों। शय्या रूप जिस पुर में मैं जा रहा हूँ वहाँ भी यह मेरी सब ओर से रक्षा करें। मैं अपनी रक्षा के लिए उन्हीं मरुत्वान इन्द्र को सौंपता हूँ ॥ ८ ॥ विश्व की उत्पत्ति के कारण रूप प्रजापति ध्रुव दिशा में मेरे रक्षक हों। पाद प्रक्षेप में तथा पाद-प्रक्षेप के स्थान में और जिस शय्या रूप पुर में मैं जारहा हूँ वहाँ भी सब ओर यह प्रजापति मेरे रक्षक हों। मैं अपनी रक्षा के लिए अपने को उन्हें सौंपता हूँ ॥ ९ ॥ देवताओं के हितैषी बृहस्पति सब देवताओं सहित ऊर्ध्व दिशा में मेरे रक्षक हों। पाद प्रक्षेप में तथा पाद-प्रक्षेप के स्थान में जिस शय्या रूप पुर में, मैं जा रहा हूँ वहाँ भी सब ओर यह बृहस्पति मेरी रक्षा करें। मैं अपनी रक्षा के लिए अपने को उन्हीं बृहस्पति देवता को सौंपता हूँ ॥ १० ॥

१८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ताः। छन्द—त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्)

अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु।
ये माघायवः प्राच्या दिशोऽभिदासात् ॥१॥
वायुं तेन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु।

ये मापायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥२॥
सोम तं रुद्रवन्तमृच्छन्तु ।
ये मापायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात् ॥३॥
वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु ।
ये मापायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥४॥
सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु ।
ये मापायव प्रतीच्या दिशोऽभिदासात् ॥५॥
अपस्त ओषधीमतीर्ऋच्छन्तु ।
ये मापायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥६॥
विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु ।
ये मापायव उदीच्या दिशोऽभिदासात् ॥७॥
इन्द्रं ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु ।
ये मापायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥८॥
प्रजापतिं ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु ।
ये मापायवो ध्रुवाया दिशोऽभिदासात् ॥९॥
बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु ।
ये मापायव ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासात् ॥१०॥

दूसरों की हिंसा-कामना वाले जो शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले की पूर्व की ओर से आकर हिंसा करना चाहते हैं, वे वसुयंत अग्नि में पड़ते हुए नाश को प्राप्त हों ॥ १ ॥ दूसरों की हिंसा-कामना वाले जो शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को पूर्व दिशा से आकर मारना चाहते हैं, वे शत्रु अंतरिक्ष युक्त वायु को प्राप्त होकर नष्ट हों ॥ २ ॥ दूसरों की हिंसा कामना वाले जो शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को दक्षिण दिशा से आकर मारना चाहते हैं, वे शत्रु रुद्रवंत सोम को प्राप्त होकर नष्ट हों ॥ ३ ॥ दूसरों की हिंसा-कामना वाले जो शत्रु रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को

दिशा से आकर मारना चाहते हैं, वे शत्रु आदित्यवान् वरुण के पाश को प्राप्त होते हुए नष्ट हों ॥ ४ ॥ दूसरों की हिंसा कामना वाले जो शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को पश्चिम दिशा से आकर मारना चाहते हैं, वे शत्रु द्यावापृथिवी को अपने प्रकाश से प्रकट करने वाले सूर्य को प्राप्त होते हुए नष्ट हों ॥ ५ ॥ दूसरों की हिंसा कामना वाले जो शत्रु, मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को पश्चिम दिशा से आकर मारना चाहते हैं, वे शत्रु औषधिमय जल से नाश को प्राप्त हों ॥ ६ ॥ दूसरों की हिंसा कामना वाले जो शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को उत्तर दिशा से आकर हिंसित करना चाहते हैं, वे शत्रु सप्तर्षिमय विश्वकर्मा से नाश को प्राप्त हों ॥ ७ ॥ हिंसा-कामना वाले जो शत्रु, मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले का उत्तर दिशा से आकर वध करना चाहते हैं, वे शत्रु मरुत्वान् इन्द्र को प्राप्त होते हुए नष्ट हों ॥ ८ ॥ जो पाप रूप हिंसा वाले शत्रु मुझ रात्रि अनुष्ठाता को ध्रुव दिशा से आकर मारना चाहें, वे प्रजनन से युक्त प्रजापति को पाते हुए नष्ट हों ॥९॥ जो पाप रूप हिंसा वाले शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को ऊर्ध्व दिशा से आकर मारना चाहें, वे सब देवताओं सहित बृहस्पति के द्वारा नाश को प्राप्त हों ॥ १० ॥

१६ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ताः । छन्द—बृहती; पङ्क्ति)

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१॥
वायुरन्तरिक्षेणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥२॥
सूर्यो दिवोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥३॥
चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥४॥

सोम ओषधीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥५॥
यज्ञो दक्षिणाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥६॥
समुद्रो नदीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥७॥
ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥८॥
इन्द्रो वीर्येणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥९॥
देवा अमृतेनोदक्रामंस्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१०॥
प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥११॥

मित्र नाम वाले अग्निदेव अपने आश्रय स्थान पृथिवी से जिस पुर की रक्षा के लिए उठते हैं, उस शय्या युक्त पुर में तुम प्रजावान्, पत्नीवान् राजा को प्रविष्ट करता हूँ। यह पुर अग्निदेव द्वारा रक्षित है तुम उसमें पहुँच कर शय्या, भवन आदि प्राप्त करो। यह पुरी तुम्हारे लिए अभेद्य कवच के समान सुख देने वाली हो ॥ १ ॥ वायु अपने स्थान अंतरिक्ष से जिस पुर की रक्षा के लिए चलते हैं, वह पुर वायु द्वारा पूर्णतया रक्षित होता है। उस शय्या, गृह आदि से युक्त पुर में, मैं तुम प्रजा, पत्नी से सम्पन्न राजा को प्रविष्ट करता हूँ। तुम उसमें पहुँच कर शय्या भवन आदि प्राप्त करो। यह पुरी तुम्हारे लिए अभेद्य कवच के समान सुख देने वाली हो ॥ २ ॥ आदित्य अपने स्थान स्वर्ग लोक से जिस पुर की रक्षा के लिए उदित होते हैं, वह पुर उनके द्वारा पूरी तरह सुरक्षित है। उस शय्या, गृह आदि से युक्त पुर में

तुम प्रजा, पत्नी से युक्त राजा को प्रविष्ट करता हूँ। तुम उसमें पहुँच क
निवास करो। वह पुर तुम्हारे लिए अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो ॥२
जिस पुर की रक्षा के लिए नक्षत्रवान् चन्द्रमा उदय होते हैं, वह पुर उ
चन्द्रदेव द्वारा भले प्रकार रक्षित है। उस शय्या, भवन आदि से सम्पन्न
में तुम प्रजा और पत्नी वाले राजा को प्रविष्ट करता हूँ। तुम उसमें पहुँच
निवास करो। वह पुर तुम्हारे लिए अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो ॥
जिस पुर की रक्षा के लिए सोम औषधियों सहित प्रकट होते हैं, वह पुर उन
सोम से भले प्रकार रक्षित है। उस शय्या और भवन आदि से सम्पन्न पुर
में तुम प्रजा और पत्नी वाले राजा को प्रविष्ट करता हूँ। तुम उसमें पहुंच कर
निवास करो। वह पुर तुम्हारे लिए अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो ॥५॥
जिस पुर की रक्षा के लिए दक्षिणा युक्त यज्ञ प्रकट हुआ है, वह पुर यज्ञ से
रक्षित है। उस शय्या और भवन आदि से सम्पन्न पुर में तुम प्रजा और
पत्नी सहित राजा को प्रविष्ट करता हूँ। तुम उसमें पहुँच कर निवास करो।
वह पुर तुम्हारे लिए अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो ॥ ६ ॥ जिस पुर
के रक्षार्थ नदियों सहित समुद्र उद्यत हुआ है, वह पुर समुद्र के जल से रक्षित
है। उस शय्या और भवन आदि से युक्त पुर में तुम प्रजा और पत्नी सहित
राजा को प्रविष्ट करता हूँ। तुम उसमें पहुँच कर निवास करो। वह पुर तुम्हारे
लिए अभेद्य कवच के समान सुख देने वाला हो ॥ ७ ॥ ब्रह्मचारियों से युक्त
ब्रह्म जिस पुर की रक्षा करने को तत्पर हुए हैं, वह पुर ब्रह्म से भले प्रका
रक्षित है। उस शय्या और भवन आदि से युक्त पुर में तुम प्रजा और पत्
सहित राजा को प्रविष्ट करता हूँ। तुम वहाँ पहुँच कर निवास करो। वह
तुम्हारे लिए अभेद्य कवच के समान सुखदायी हो ॥ ८ ॥ अपने मुजव
सहित इन्द्र जिस पुर की रक्षा करते हैं, वह पुर उनके द्वारा भले प्रकार र
है। उस शय्या और भवनादि से युक्त पुर में तुम राजा को पत्नी और
सहित प्रविष्ट करता हूं। तुम वहाँ जाकर निवास करो। वह पुर तुम्हारे
अभेद्य कवच के समान सुख देने वाला हो ॥ ९ ॥ जिस पुर की रक्षा अ
के सहित देवता करते हैं, वह पुर उन देवताओं द्वारा रक्षित है। उस भ

अवस्था आदि से सम्पन्न सुन्दर पुर में तुम राजा को पत्नी-पुत्रादि सहित प्रविष्ट करता हूं। तुम उसमें जाकर निवास करो। यह पुर तुम्हारे लिये अनेक कवच के समान सुखदायी हो ॥१०॥ मनुष्य आदि प्रजाओं सहित जिस पुर की प्रजापति ने रचना की है, यह पुर उन प्रजापति द्वारा भले प्रकार रचित है। तुम राजा को पत्नी-पुत्रादि सहित उस सुन्दर पुर में प्रविष्ट करता हूं। तुम उसमें जाकर रहो। वह पुर तुम्हारे लिए अनेक कवच के समान सुखदायी हो ॥११॥

२० सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ता। छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, बृहती)

अप न्यधुः पौरुषेयं वधं यमिन्द्राग्नी धाता-सविता बृहस्पतिः ।
सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान् परि पातु मृत्योः ॥१॥
यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्यः ।
प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु ॥२॥
यत् ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्युराजयो देहिनः ।
इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान् पातु विश्वतः ॥ ३ ॥
वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।
वर्म मे विश्वे देवाः क्रन् मा मा प्रापत् प्रतीचिका ॥४॥

जिस मनुष्य कर्म को शत्रु ने गुप्त रूप से किया है, उससे इन्द्र, अग्नि, धाता, सविता, बृहस्पति, सोम, वरुण, अश्विद्वय, यम और पूषा हमारे कवचधारी राजा की रक्षा करें ॥१॥ प्रजा-रक्षण के लिए प्रजापति ने जो कवच बनाया है और जिन कवचों को, मातरिश्वा प्रजापति और दिशा, महादिशा, अवान्तर दिशाएं रक्षार्थ धारण करती हैं, वे कवच अनेक हों ॥२॥ जिस कवच को असुर से युद्ध करते समय देवताओं ने धारण किया था और इन्द्र ने भी जिसे पहिना था, वह कवच सब ओर से हमारी रक्षा करने वाला हो ॥३॥ द्यावा पृथिवी, अग्नि, सूर्यादि तुम युद्धाभिलाषी को रक्षण-साधन रूप कवच प्रदान करें। हमारे राजा के समीप शत्रु-सेना गुप्त रीति से न पहुँच सके ॥४॥

२१ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—छन्दांसि । छन्द—बृहती)

गायत्र्युष्णिगनुष्टुब् बृहती पंक्तिस्त्रिष्टुब् जगत्यै ॥१॥

गायत्री छंद, उष्णिक् छन्द, अनुष्टुप् छन्द, बृहती छंद, पंक्ति छंद, त्रिष्टुप् छंद और जगती छन्द के लिए आहुति स्वाहुत हो ॥१॥

२२ सूक्त

(ऋषि—अङ्गिराः । देवता—मन्त्रोक्ताः, छन्द—जगती प्रभृति)

आङ्गिरसानामाद्यैः पंचानुवाकैः स्वाहा ॥ १ ॥ षष्ठाय स्वाहा ॥२॥
सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ॥३॥ नीलनखेभ्यः स्वाहा ॥४॥
हरितेभ्यः स्वाहा ॥५॥ क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥६॥
पर्यायिकेभ्यः स्वाहा ॥७॥ प्रथमेभ्यः शंखेभ्यः स्वाहा ॥८॥
द्वितीयेभ्यः शंखेभ्यः स्वाहा ॥९॥ तृतीयेभ्यः शंखेभ्यः स्वाहा ॥१०॥
उपोत्तमेभ्यः स्वाहा ॥११॥ उत्तमेभ्यः स्वाहा ॥१२॥
उत्तरेभ्यः स्वाहा ॥१३॥ ऋषिभ्यः स्वाहा ॥१४॥
शिखिभ्यः स्वाहा ॥१५॥ गणेभ्यः स्वाहा ॥१६॥
महागणेभ्यः स्वाहा ॥१७॥
सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा ॥१८॥
पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा ॥१९॥ ब्रह्मणे स्वाहा ॥२०॥
ब्रह्मज्येष्ठा सम्भृतः वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनर्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥२१॥

आंगिरसों के आदि में पांच अनुवाकों से यह आहुति स्वाहुत हो ॥१॥ षष्ठ के लिए, सप्तम-अष्टम के लिए, नीलनखों के लिए, हरितों के लिए क्षुद्रों के लिए, पर्यायिकों के लिए, प्रथम शंखों के लिए, द्वितीय, तृतीय शंखों के लिए, उपोत्तमों के लिए, उत्तमों के लिए, उत्तरों के लिए, ऋषियों के लिए, शिखियों के लिए, गणों के लिए, महागणों के लिए, विद्वान् अंगि

ऋचाओं के लिए, क्षुद्र सूक्तों के लिए और ब्रह्म के लिए आहुति स्वाहुत हो ॥ २ से २० तक ॥ सब वीर कर्म ब्रह्मश्रेष्ठ होते हैं, यह सब कर्म वेद से सम्पन्न होते हैं। पूर्वकाल में ज्येष्ठ ब्रह्म ने आकाश का विस्तार किया। ब्रह्मा सब भूतों में पहिले प्रादुर्भूत हुए इसलिए उनकी समानता कोई भी नहीं कर सकता ॥२१॥

२३ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ताः। छन्द—बृहती; त्रिष्टुप्, पंक्ति, गायत्री; जगती)

आथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्यः स्वाहा ॥१॥ पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा ॥२॥
षडृचेभ्यः स्वाहा ।३। सप्तर्चेभ्यः स्वाहा ।४।
अष्टर्चेभ्यः स्वाहा ।५। नवर्चेभ्यः स्वाहा ।६।
दशर्चेभ्यः स्वाहा ।७। एकादशर्चेभ्यः स्वाहा ।८।
द्वादशर्चेभ्यः स्वाहा ।९। त्रयोदशर्चेभ्यः स्वाहा ।१०।
चतुर्दशर्चेभ्यः स्वाहा ।११। पंचदशर्चेभ्यः स्वाहा ।१२।
षोडशर्चेभ्यः स्वाहा ।१३। सप्तदशर्चेभ्यः स्वाहा ।१४।
अष्टादशर्चेभ्यः स्वाहा ।१५। एकोनविंशतिः स्वाहा ।१६।
विंशतिः स्वाहा ।१७। महत्काण्डाय स्वाहा ।१८।
तृचेभ्यः स्वाहा ।१९। एकर्चेभ्यः स्वाहा ।२०।
क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ।२१। एकानृचेभ्यः स्वाहा ।२२।
रोहितेभ्यः स्वाहा ।२३। सूर्याभ्यां स्वाहा ।२४।
व्रात्याभ्यां स्वाहा ।२५। प्राजापत्याभ्यां स्वाहा ॥२६॥
विषासह्यै स्वाहा ॥२७॥ मंगलिकेभ्यः स्वाहा ॥२८।
ब्रह्मणे स्वाहा ।२९।
ब्रह्मज्येष्ठा सम्भृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ।३०।

आथर्वणों की चार ऋचाओं को, पाँच ऋचाओं को, छै ऋचाओं,

सात ऋचाओं, आठ ऋचाओं, नौ ऋचाओं, दश ऋचाओं, ग्यारह ऋचाओं, बारह ऋचाओं, तेरह ऋचाओं, चौदह ऋचाओं, पन्द्रह ऋचाओं, सोलह ऋचाओं, सत्तरह ऋचाओं, अठारह ऋचाओं, उन्नीस ऋचाओं, बीस ऋचाओं, महत्काण्ड, तृचों, एकर्चों, क्षुद्रों, एकानृचों, रोहितों, सूर्यों, व्रात्यों, प्राजापत्यों विपासहि, मांगलिकों और ब्रह्मा के लिए स्वाहुत हो। १ से २६ ॥ सब वीर कर्म ब्रह्म ज्येष्ठ होते हैं। सृष्टि के आरम्भ में पहिले ब्रह्मा ही उत्पन्न हुए, इन्हीं ने इस आकाश का विस्तार किया इसलिए कोई मनुष्य या देवता इनकी समानता कैसे कर सकता है? ॥२७॥

२४ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ताः। छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, गायत्री)

येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन्।
तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन ॥१॥
परीममिन्द्रमायुषे महे श्रोत्राय धत्तन।
यथैनं जरसे नयां ज्योक् श्रोत्रेऽधि जागरत् ॥२॥
परीमं सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन।
यथैनं जरसे नयां ज्योक् श्रोत्रेऽधि जागरत् ॥३॥
परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥४॥
जरां सु गच्छ परि धत्स्व वासो भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥५॥
परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्वापीनामभिशस्तिपा उ।
शतं च जीव शरदः पुरूचीर्वसूनि चारुर्वि भजासि जीवन् ॥६॥
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये ॥७॥
हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरामृत्युः प्रजया सं विशस्व।
तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ॥८॥

देवताओं ने जिस आदित्य को धारण किया, उस वस्त्र-धारण के कारण से हे ब्रह्मणस्पते ! इस महान् शांतिकर्म वाले यजमान को दीर्घ आयु के निमित्त प्रतिष्ठित करो ॥३॥ हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तुम इस बालक को बालपन और आयु के निमित्त धारणबल से युक्त करो; जिससे यह शांतिकर्म करने वाला यजमान चिरकाल तक चैतन्य रहे। यह शत्रुओं को पराजित करने वाले बल से युक्त रहे और वृद्धावस्था तक की आयु प्राप्त करे, ऐसा करो ॥२॥ हे यज्ञाभिमानी सोम ! इस शांति कर्म करने वाले यजमान को, दीर्घ आयु के लिए, सब इन्द्रियों की सबलता के लिए और यश के लिए पुष्ट करो। यह शान्ति का अनुष्ठाता यजमान वृद्धावस्था तक श्रोत्रादि इन्द्रियों से सम्पन्न और यशस्वी हो ॥३॥ हे देवगण ! इस बालक को तेज से परिपूरित करो, यह वृद्धावस्था में मृत्यु को प्राप्त हो। यह सौ वर्ष की आयु वाला हो। इस वस्त्र को बृहस्पति ने सोम को धारणार्थ प्रदान किया ॥४॥ हे यजमान ! तू वृद्धावस्था तक भले प्रकार पहुँचे। इस वस्त्र को पहिन और गौओं की शुभाशंसना से रक्षा प्राप्त कर। तू पुत्र-पौत्रों वाला तथा धन से युक्त हुआ सौ वर्ष तक जीवित रह ॥२॥ हे यजमान ! कल्याण के लिए तू इस वस्त्र को पहिन रहा है। तू गौओं को अभिशस्ति से रक्षित हो। तू यश से प्रजा युक्त हुआ पुत्र, मित्र, स्त्री आदि को धन देने वाला हो और प्रजावान होकर सौ वर्ष तक की दीर्घायु भोग ॥६॥ हम स्तुति करने वाले सत्य रूप, परमैश्वर्यवान् इन्द्र का धनादि की प्राप्ति के लिए आह्वान करते हैं ॥७॥ हे यजमान ! तू पुष्ट होता हुआ, सुन्दर कान्ति से युक्त हो और पुत्रादि से सम्पन्न होकर [illegible] से रक्षित हुआ प्रजा सहित इस गृह में प्रवेश कर ॥८॥

२५ सूक्त

(ऋषिः—गौतमः। देवता—[illegible])

प्रधान्तस्त्वा मनसा युनज्मि [illegible]

उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति [illegible]

हे अश्व ! मैं तुझे शत्रु के [illegible]

उन्मादित करने और शत्रु पर [illegible]

तुझे सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुई अश्व जाति के समर्थ मन से सम्पन्न करता हूँ। तू उस शक्ति से युक्त होकर, प्रवृद्ध नदी जैसे किनारों पर चढ़ने लगती है वैसे ही शत्रु सेना पर चढ़ता हुआ उसे संतप्त कर। मैं तेरे द्वारा शत्रु को जीतने वाले फल को पाऊँ, तू शीघ्र ही जीतने वाले स्थान की ओर गमन कर ॥१॥

२६ सूक्त

(ऋषिः—अथर्वा ॥ देवता—अग्निः, हिरण्यम् ॥
छन्दः—त्रिष्टुप; अनुष्टुप्, पङ्क्तिः)

अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं दध्रे अधि मर्त्येषु ।
य एनद् वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥१॥
यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णं प्रजावन्तो मनवः पूर्व ईषिरे ।
तत् त्वा चन्द्रं वर्चसा सं सृजत्यायुष्मान् भवति यो बिभर्ति ॥२॥
आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च ।
यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु ॥३॥
यद् वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः ।
इन्द्रो यद् वृत्रहा वेद तत् त आयुष्यं भुवत् तत् ते वर्चस्यं भुवत् ॥४॥

अग्नि से उत्पन्न होने वाला सुवर्ण और अमृत रूप से मरणधर्मी मनुष्यों में व्याप्त सुवर्ण के इन रूपों को जानने वाला पुरुष ही इसके धारण करने का अधिकारी है। जो पुरुष इस स्वर्ण को आभूषण रूप में धारण करता है वह वृद्धावस्था में मरने वाला होता है ॥१॥ जिस सुवर्ण को सूर्य द्वारा उत्पन्न प्रजावान् मनु ने धारण किया था, वह दीप्तिमान सुवर्ण तुझे देह-कांति से युक्त करे। ऐसे सुवर्ण के धारण करने वाला आयु से सम्पन्न होता है ॥२॥ हे स्वर्णधारी पुरुष ! यह सुवर्ण तुझे आयुष्मान बनावे, यह तुझे वर्च से युक्त करे, भृत्यादि से संपन्न करे और तू सुवर्ण के समान तेज को

भाग करता हुआ मनुष्यों में तेजस्वी हो ॥३॥ देवता जिस सुवर्ण को जानते हैं, बृहस्पति भी जिसे जानते हैं, उस सुवर्ण के गुप्त नाशक गुण से वृत्र-हनन कर्ता इन्द्र भी परिचित हैं, वह सुवर्ण मुझे आयु और वर्च से सम्पन्न करने वाला हो ॥४॥

२७ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—भृग्वङ्गिराः ॥ देवता—त्रिवृत् । छन्दः—अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्, जगती, उष्णिक्, शक्वरी)

गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः ।
वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥१॥
सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः ।
माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु ॥२॥
तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान् ।
त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥३॥
त्रीन्नाकांस्त्रीन् समुद्रांस्त्रीन् ब्रध्नांस्त्रीन् वैष्टपान्
त्रीन् मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान् गोप्तॄन् कल्पयामि ते ॥४॥
घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्न आज्येन वर्धयन्
अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ॥५॥
मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन् ।
भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत ॥६॥
प्राणेनाग्निं सं सृजति वातः प्राणेन संहितः ।
प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ॥७॥
आयुषायुःकृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः ।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥८॥
देवानां निहितं निधिं यमिन्द्रोऽन्वविन्दत् पथिभिर्देवयानैः

आपो हिरण्यं जुगुपुस्त्रिवृद्भिस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥ ६ ॥

त्रयस्त्रिंशद् देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुरप्स्वन्तः ।

अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद् वीर्याणि ॥१०॥

ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥११॥

ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥१२॥

ये देवाः पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥१३॥

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् ।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥१४॥

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥१५॥

हे पुरुष ! तू त्रिवृत् मणि को धारण करता है । दलपति वृषभ अपनी गौओं सहित तेरे रक्षक हों । प्रजनन में समर्थ अश्व अपने वेगवान् अश्वों सहित तेरे रक्षक हों । वायु से व्याप्त ब्रह्म इन्द्र की इंद्रियों सहित तेरी रक्षा करें ॥१॥ औषधियों सहित सोम तेरी रक्षा करे । नक्षत्रों सहित सूर्य तेरा पोषण करें । मासों सहित वृत्र हनन कर्त्ता चन्द्रमा तेरे रक्षक हों । प्राण वायु सहित वायुदेव तेरी रक्षा करें ॥२॥ तीन प्रकार के स्वर्ग; तीन प्रकार के अंतरिक्ष, तीन प्रकार की पृथिवी, चार समुद्र, त्रिवृत् स्तोम, त्रिवृत् जल यह सब अपने भेदों सहित मणि के सुवर्ण रजत लौह रूप त्रिवृत् से ही तेरी रक्षा करने वाले हों ॥३॥ हे पुरुष ! तू सुवर्ण, रजत लौहात्मक त्रिवृत् मणि के धारण करने वाला है । इस मणि के द्वारा मैं त्रिभेदात्मक स्वर्ग को तेरा रक्षक बनाता हूँ, तीन समुद्रों, तीन आदित्यों और तीन भुवनों को तेरी रक्षा करने वाला करता हूँ । त्रिगुणात्मक वायु, रश्मियों और उनके अधिष्ठात्री

देवता भेद वाले तीन स्वर्गों को तेरे रक्षा-कार्य में नियुक्त करता हूँ ॥४॥ हे अग्ने ! मैं तुम्हें घृत के द्वारा प्रवृद्ध करता हूँ। तुम्हें घृत से सींचता हूँ। हे मणि धारणकर्त्ता पुरुष ! घृत से सम्पन्न अग्नि की, औषधादि को पुष्ट करने वाले चन्द्रमा की और सूर्य की कृपा से माया करने वाले राक्षस तुम्हें हिंसित न कर पावें ॥५॥ हे पुरुष ! मायामय असुर तुम्हें मार न सकें, तेरे प्राणापान और तेज को नष्ट न कर पावें। हे मत्सर देवगण ! इसके रक्षार्थ तुम दिव्य रथ पर आरूढ़ होकर द्रुत वेग से चलो ॥६॥ मणिधनकर्त्ता प्राण से अग्नि को युक्त करता है, वायु भी प्राण से युक्त होता है, प्राण से ही देवताओं ने विश्वतोमुखी सूर्य को उत्पन्न किया था ॥७॥ हे मतिमान पुरुष ! प्राचीन महर्षियों में दूसरों की आयु बढ़ाने और स्वयं दीर्घजीवी होने की शक्ति थी, तू उन्हीं महर्षियों की आयु से आयुष्मान् हो, मृत्यु को प्राप्त न हो। तू मृत्यु के वश में न जाता हुआ, उन्हीं स्थिर प्राण वालों के प्राण से जीवित रह ॥८॥ हे पुरुष ! इन्द्र ने जिस धरोहर रूप छिपाकर रखे हुए सवर्ण को ढूँढ़ कर प्राप्त किया था और जिस धरोहर त्रिवृत् उन्होंने रक्षा की थी, वे त्रिवृत् जल त्रिवृत् मणिरूप देह में तेरी रक्षा करने वाले हों ॥९॥ तेंतीस देवताओं ने तीन प्रकार के वीर्यों को और स्वर्ण को निधि मान कर जल में स्थापित किया। चन्द्रमा में जो सुवर्ण है, उसके द्वारा यह मणि उन तेंतीस देवताओं की विविध शक्तियों को इस मणि धारण करने वाले पुरुष में व्याप्त कर ॥१०॥

आकाश में व्याप्त ग्यारह आदित्य इस घृत युक्त हवि का भक्षण करें। अन्तरिक्ष के ग्यारह रुद्र भी इस हवि का सेवन करें और पृथिवी के ग्यारह देवता भी इस हवि का भक्षण करें ॥११॥१२॥१३॥ हे सविता, हे शचिपते ! पूर्व पश्चिम में शत्रु का अभाव करते हुए अभय दो। सविता दक्षिण दिशा से मुझे रक्षित करें और इन्द्र उत्तर दिशा से रक्षा करने वाले हों ॥१४॥ स्वर्गस्थ सूर्य स्वर्गलोक में भय से रक्षा करें। पार्थिव अग्नि पृथिवी में प्राप्त भय को दूर करें। इन्द्राग्नि सामने से रक्षा करें। अश्विद्वय सब दिशाओं से मेरी रक्षा करें। अग्नि निर्यक् स्थान से रक्षक हों। पंचभूतों के र[illegible] देवता मुझे सब ओर से रक्षा करने वाला कवच दें ॥१५॥

२८ सूक्त

(ऋषि— ब्रह्मा । देवता—दर्भमणिः । छन्द—अनुष्टुप् ;)

इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे ।
दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥१॥
द्विषतस्तापयन् हृदः शत्रूणां तापयन् मनः ।
दुर्हार्दः सर्वांस्त्वं दर्भ धर्मइवाभीन्त्सन्तापयन् ॥२॥
धर्मइवाभितपन् दर्भ द्विषतो नितपन् मणे ।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्रइव विरुजं बलम् ॥३॥
भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे ।
उद्यन् त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय ॥४॥
भिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे भिन्द्धि मे पृतनायतः ।
भिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दे भिन्द्धि मे द्विषमो मणे ॥५॥
छिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे छिन्द्धि मे पृतनायतः :
छिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दश्छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥६॥
दर्भ सपत्नान् मे वृश्च मे पृतनायतः ।
वृश्च मे सर्वान् दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ॥७॥
कृन्त दर्भ सपत्नान् मे कृन्त मे पृतनायतः ।
कृन्त मे सर्वान् दुर्हार्दः कृन्त मे द्विषतो मणे ॥८॥
पिंश दर्भ सपत्नान् मे पिंश मे पृतनायतः ।
पिंश मे सर्वान् दुर्हार्दः पिंश मे द्विषतो मणे ॥९॥
विध्य दर्भ सपत्नान् मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान् दुर्हार्दो विध्य मे द्विपतो मणे ॥१०॥

हे पुरुष ! तू विजय और बल की कामना करता है। यह दर्भमय मणि शत्रुओं का क्षय करने वाली और उनके हृदय को सन्ताप देने वाली है। इसे तेज और दीर्घायु के निमित्त बाँधता हूँ ॥ १ ॥ हे दर्भमणे ! त

शत्रुओं के मन को सन्ताप दे, तू उनके हृदय को व्यथित कर। तू मलीन हृदय वाले शत्रु के घर, पशु, प्रजा, खेत आदि का नाश कर ॥ २ ॥ हे दर्भमणे! जैसे सूर्य अपनी उष्णता से सन्ताप देते हैं, वैसे ही द्वेष करने वालों को संतप्त कर। तू इन्द्र के समान, शत्रुओं के हृदयों और बलों का नाश कर ॥३॥ हे दर्भमणे! तू वैरियों के हृदयों को विदीर्ण कर। गृह निर्माण के लिए भूमि के पर्व और तृण आदि को मनुष्य उखाड़ डालते हैं, वैसे ही तू शत्रुओं के सिर को उखाड़ डाल ॥४॥ हे दर्भमणे! जो शत्रु मेरी हिंसा के लिए सेना एकत्र करने की इच्छा करें उन्हें चीर डाल। मेरे वैरियों, मुझसे बुरे भाव रखने वालों को विदीर्ण कर ॥५॥ हे दर्भमणे! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदयों वालों, मुझसे द्वेष करने वालों के टूक-टूक कर डाल ॥६॥ हे दर्भमणे! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वालों को काट डाल ॥७॥ हे दर्भमणे! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वालों को छिन्न मस्तक कर ॥८॥ हे दर्भमणे! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को पीस डाल ॥९॥ हे दर्भमणे! मेरे शत्रुओं का ताड़न कर। मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को पीस डाल ॥१०॥

२९ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—दर्भमणिः। छन्द—त्रिष्टुप्)

निक्ष दर्भ सपत्नान् मे निक्ष मे पृतनायतः।
निक्ष मे सर्वान् दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥१॥
तृन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे तृन्द्धि मे पृतनायतः।
तृन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥२॥
रुन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे रुन्द्धि मे पृतनायतः।
रुन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥३॥

मृण दर्भ सपत्नान् मे मृण मे पृतनायतः ।
मृण मे सर्वान् दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ॥४॥
मन्थ दर्भ सपत्नान् मे मन्थ मे पृतनायतः ।
मन्थ मे सर्वान् दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ॥५॥
पिण्ड्ढ दर्भ सपत्नान् मे पिण्ड्ढ मे पृतनायतः ।
पिण्ड्ढ मे सर्वान् दुर्हार्दः पिण्ड्ढ मे द्विषतो मणे ॥६॥
ओष दर्भ सपत्नान् मे ओष मे पृतनायतः ।
ओष मे सर्वान् दुर्हार्द ओष मे द्विषतो मणे ॥७॥
दह दर्भ सपत्नान् मे दह मे पृतनायतः ।
दह मे सर्वान् दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ॥८॥
जहि दर्भ सपत्नान् मे जहि मे पृतनायतः ।
जहि मे सर्वान् दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ॥९॥

हे दर्भमणे ! मेरे शत्रु, मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को चूम ॥१॥ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं का नाश कर॥२॥हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को रोक ।३। हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को मार ॥४॥ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष करने वाले शत्रुओं का मन्थन कर ॥५॥ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को तू चूर्णित कर ॥ ६ ॥ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदय वालों और मुझसे द्वेष रखने वाले शत्रुओं को भस्म कर ॥७॥ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदयों, मुझसे द्वेष करने वाले शत्रुओं को तू जला ॥८॥ हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्र करने वालों, मलीन हृदयों मुझसे द्वेष करने वाले शत्रुओं को तू मार डाल ॥९॥

३० सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—दर्भमणिः । छन्द—अनुष्टुप्)

यत् ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते ।
तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नाञ्जहि वीर्यैः ॥१॥
शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते ।
तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः ॥२॥
त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम् ।
त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥३॥
सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः ।
मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥४॥
यत् समुद्रो अभ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।
ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ॥५॥

हे दर्भमणे ! तेरी गाँठों में अपरिमित जरामृत्यु व्याप्त हैं और जरा-मृत्यु का नाश करने वाला तेरा जो कवच है, उसके द्वारा रक्षा और जीत की कामना को मिलाकर शत्रु के उपद्रव को दूर करता हुआ शत्रु को भी नष्ट कर डाल ॥१॥ हे दर्भ ! तुझमें दूसरों को पीड़ित करने वाली सैकड़ों गाँठें हैं, और उन पीड़ाओं को दूर करने के भी सैकड़ों पराक्रम हैं। तुझ कवच रूप को इस रक्षा-काम्य राजा के लिए देवताओं ने जरा नाशनार्थ दिया है। इसलिए इसकी वृद्धावस्था को दूर करती हुई तू इसे पुष्ट कर ॥२॥ हे दर्भमणे ! तू देव-रक्षक कवच कहाती है, तुझे ब्रह्मणस्पति और इन्द्र का रक्षक भी बताते हैं। इसलिए तू इस राजा के राज्यों की रक्षा करने वाली हो ॥३॥ हे दर्भ ! तुझे शत्रुओं का नाश करने वाली, द्वेषी के हृदय को संतप्त करने वाली और बल वृद्धि करने वाली देह-रक्षक मणि के रूप में धारण करता हूँ ॥४॥ जिस अंश से जल उद्गरित होता है, उसमें विद्युत की गड़गड़ाहट से हिरण्यमय बूँद प्रकट हुई, उसी बूँद से दर्भ उत्पन्न हुआ है ॥५॥

३१ सूक्त

(ऋषि—सविता (पुष्टिकामः)। देवता—औदुम्बरमणिः। छन्द—अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्; पंक्तिः; शक्वरी)

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा ।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् ॥ १ ॥
यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत् ।
औदुम्बरो वृषा मणिः स मा सृजतु पुष्ट्या ॥ २ ॥
करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे ।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥ ३ ॥
यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः ।
गृह्णे३हं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ॥ ४ ॥
पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥५॥
अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ॥ ६ ॥
उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च ।
इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा ॥ ७ ॥
देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये ।
पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ॥ ८ ॥
यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे ।
एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ॥ ९ ॥
आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् ।
सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः ॥ १० ॥
त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान ।

त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वोदुम्बरः स त्वमस्मत्-
सहस्वारादरातिमर्मातं क्षुधं च ॥ ११ ॥
ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ॥ १२ ॥
पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु ।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं
नियच्छ रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम् ॥ १३ ॥
अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् ।१४।

प्राचीन काल में ब्रह्मा ने गूलर की मणि के द्वारा पशु, पुत्र, धन, शरीर पोषण आदि का प्रयोग किया था। मैं उस पोषक मणि से मुझ पुष्टि-काम्य को पुष्ट करता हूँ। सवितादेव मेरे घर में दुपाए, चौपायों को बढ़ावें ॥१॥ गार्हपत्य अग्नि हमारे गवादि पशुओं के अधिष्ठाता और रक्षा करने वाले हों। इच्छित फल को वर्षा करने वाली गूलर मणि शरीर की वृद्धि और पशुओं की पुष्टि करे ॥ २ ॥ गूलर की मणि के तेज से धाता देव मेरे शरीर में पुष्टि भरें हमारे घर में अन्न और गोबर वाली भूमि हो ॥ ३ ॥ दो पाँव वाले मनुष्य, चार पाँव वाले पशु, ग्राम्य अन्न, वन के अन्न, दही, दूध गुड़, मधु आदि रस इन सबको मैं गूलर मणि के धारण करने वाला अधिकता से प्राप्त करता रहूँ ॥ ४ ॥ मैं मनुष्यों और पशुओं की, धान्यादि की पुष्टि को प्राप्त करूँ। सविता और बृहस्पति गूलर मणि के तेज से पशुओं का सार रूप दूध और अन्नादि दें ॥ ५ ॥ मैं पुत्र, पशुओं से युक्त होऊँ। गूलर मणि मुझ पुष्टि-काम्य को समृद्ध करे। यह मणि मुझे स्वर्गादि भी दे ॥ ६ ॥ यह मणि इन्द्र की प्रेरणा से मुझे इच्छित तेज सहित प्राप्त हुई है। इसके द्वारा मुझे पुत्र, पौत्र, पशु, धन, सुवर्ण आदि की प्राप्ति भी हो गई है ॥ ७ ॥ यह मणि पुष्टि के लिए निमित्त होने के कारण देव संज्ञक है। यह श

नाश करने वाली और हमारे अभीष्ट धनों के देने वाली है। यह मणि गवादि पशुओं की वृद्धि करे और धन लाभ कराने वाली हो ॥ ८ ॥ हे गूलर मणे! जैसे तू औषधि के उत्पत्ति काल में ही पुष्टि के साथ उत्पन्न हुई है, वैसे ही तेरे द्वारा सरस्वती मेरे धन आदि की वृद्धि करें ॥ ९ ॥ सरस्वती, सिनीवाली और यह औदुम्बर मणि मुझे सुवर्ण रूप ऐश्वर्य, व्रीहि. यव आदि औषधि और अन्न को प्राप्त करावें ॥ १० ॥ हे मणे! तू इच्छित फल की वर्षक है। प्रजापति ने तुझमें सब पदार्थों की पुष्टि को भर दिया है। तुझ समृद्धि वाली के प्रभाव से मुझमें अनेक प्रकार के अन्न और धन हों। हे गूलर मणे! तू दुर्गति और अन्नाभाव को हमारे पास भी मत आने दे ॥ ११ ॥ हे गूलर मणे! तू ग्रामीण नेता के समान मणियों में श्रेष्ठ है। तू हमारे लिए इच्छित फल दिलाने वाली हो। तू वर्च से सम्पन्न है मुझे भी वर्च से युक्त कर, तू तेजोमयी है, मुझे भी तेजस्वी बना और धन प्रदान कर ॥ १२ ॥ हे मणे! तू साक्षात् पुष्टि है, इसलिए मुझे पुष्ट कर। तू गृहमेधी है, मुझे ऐश्वर्य-युक्त घर का स्वामी कर। तुझमें ग्रामणीत्व वर्च और तेज है, वे सब गुण मुझमें स्थापित कर और जिस धन से पुत्रादि वीर प्रसन्न हों, वह धन मुझे प्राप्त करा ॥ १३ ॥ हे मणे! धन-पुष्टि का कामना वाला मैं तुझे धारण करता हूँ। शत्रुओं को खदेड़ने वाली यह मणि स्वयं वीर रूप हो जाय, इसी-लिए बाँधी गई है। यह मणि हमको पुत्रादि सहित धन दे और मधुमयी होती हुई हमें भी मधुमय बनावे ॥ १४ ॥

३२ सूक्त

(ऋषि—भृगुः (आयुष्कामः)। देवता—दर्भः। छन्द—अनुष्टुप्, बृहती; त्रिष्टुप्; जगती)

शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः।
दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे ॥ १ ॥
नास्य केशान् प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति ॥ २ ॥

दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः ।
त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥ ३ ॥
तिस्रो दिवो अत्यतृणत् तिस्र इमाः पृथिवीरुत ।
त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि ॥ ४ ॥
त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान् ।
उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान् सहिषीमहि ॥ ५ ॥
सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः ।
सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून् कृधि ॥ ६ ॥
दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित् ।
तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च ॥ ७ ॥
प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥ ८ ॥
यो जायमानः पृथिवीमदृंहद् यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च ।
यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः ॥ ९ ॥
सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः ॥१०॥

हे मृत्यु से भीत पुरुष ! जो दर्भ अपरिमित गाँठों से युक्त है, सहस्रों पर्व वाली उस प्रचण्ड वीर्य औषधि को तेरी आयु वृद्धि के निमित्त बाँधता हूं ॥ १ ॥ प्रयोग करने वाला पुरुष जिस भयभीत पुरुष के पर्व युक्त पूर्णाङ्ग दर्भ मणि को बाँधता है, यमदूत उसके केशों को नहीं उखाड़ते और न उसके हृदय पर घूंसा मारते हैं ॥ २ ॥ हे सहस्र काण्ड वाली औषधे ! तू पृथिवी में पर्व रूप से स्थित है, तेरा अग्र भाग स्वर्ग लोक है। तुझ आकाश-पृथिवी में व्याप्त हुई से इस मृत्यु से डरे हुए पुरुष की आयु-वृद्धि करते हैं ॥ ३ ॥ हे औषधे ! तू त्रिवृत् आकाश और त्रिगुणात्मक पृथिवी को व्याप्त कर रही है। तेरे द्वारा मैं उस म्लान हृदय वाले पुरुष की जीभ को और शत्रु क

को भी अवरुद्ध करता हूँ ॥४॥ हे औषधे ! तू शत्रुओं को वश करने में समर्थ है मैं भी शत्रुओं को मारने में समर्थ हूँ। अतः हम दोनों ही शत्रु को दबाने के लिए समान मति वाले हों ॥ ५ ॥ हे औषधे ! हमारे शत्रु का क्षय कर। सेना एकत्र कर मुझे वश करना चाहने वाले मेरे शत्रुओं को वश में कर और मेरे मित्रों की वृद्धि कर ॥ ६ ॥ आकाश के स्तंभ रूप और देवताओं के समीप उत्पन्न दर्भ के द्वारा मैं दीर्घायु वाले पुत्रों को प्राप्त होऊँ ॥ ७ ॥ हे दर्भ तुझे धारण करने वाला मैं ब्राह्मण, क्षत्रियों के लिए प्रिय होऊँ। आर्य पुरुषों और शूद्रों के लिए भी मुझे प्रिय बनाओ तथा हम जिसके प्रिय होना चाहें, मुझे उसी का प्रिय करो ॥ ८ ॥ उत्पन्न होते ही जिस दर्भ ने पृथिवी को स्थिर किया, उत्पन्न होते ही उसने अंतरिक्ष और स्वर्ग को स्तम्भित किया, जिस दर्भ के धारणकर्त्ता का पाप से परिचय नहीं है, ऐसा यह वरुण रूप दर्भ हमको प्रकाश देने वाला हो ॥ ९ ॥ यह दर्भ अन्य औषधियों में श्रेष्ठ होता हुआ उत्पन्न हुआ। यह सब पर समान स्वामित्व की कामना करता है। यह चारों दिशाओं से रक्षित करे। मैं इसके प्रभाव से सेना की कामना वाले शत्रुओं को वशीभूत करूँ ॥ १० ॥

३३ सूक्त

(ऋषि—भृगुः। देवता—दर्भः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्; पंक्ति)

सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम्।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः ॥१
घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान् भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः।
नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन् दर्भा रोह महतामिन्द्रियेण ॥ २ ॥
त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे।
त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ॥ ३ ॥
तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥ ४ ॥

दर्भेण त्वं कृणवद् वीर्याणि दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः ।
अतिष्ठाया वर्चसाधान्यान्त्सूर्यइवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५ ॥

यह प्रसिद्ध दर्भमणि जलों में अग्नि रूप, अनेक काण्ड वाली, बल से सम्पन्न और प्रशस्त है। यह हमारी रक्षा करे और आयुष्मान् बनावे ॥ १ ॥ होम से अवशिष्ट घृत से लुप्त, मधुर, विनाश रहित, अपनी मूल से पृथिवी को दृढ़ करने वाली दर्भमणे ! तू शत्रुओं को पीछे हटाती हुई उन्हें बल से रहित कर और वीर्य वाली अन्य औषधियों की भी शक्ति से सम्पन्न होकर मेरी भुजा पर आरोहण कर ॥ २ ॥ हे मणि रूप दर्भ ! तू अहिंसित यज्ञ की वेदी में बैठने वाला, रमणीय और शोधक है। तुझे ऋषि अपनी शुद्धि के लिए धारण करते हैं। अतः हमें पापों से छुड़ा ॥ ३ ॥ अन्य मणियों में श्रेष्ठ तीक्ष्ण शक्ति वाला, असुरों का नाशक, शत्रुओं को वश करने में समर्थ, सर्व द्रष्टा, देवताओं का बल रूप यह दर्भ प्रयोग करने वाले का रक्षक होता है। हे रक्षा की कामना वाले पुरुष ! इस मणि को तेरे कुशल और वृद्धावस्था की अप्राप्ति के लिए बाँधता हूँ ॥ ४ ॥ हे पुरुष ! दर्भमणि के प्रताप से तू शत्रु को जीतने वाले कर्म को कर। तू शत्रु द्वारा पराजित होने की बात को मत सोच, सूर्य जैसे लोकों को प्रकाशित करता है, वैसे ही तू अपने बल से दूसरों को वश में करता हुआ चारों दिशाओं को [illegible] कर ॥ ५ ॥

३४ सूक्त [पाँचवाँ अनुवाक]

(ऋषि—अङ्गिराः । देवता—जङ्गिड [illegible] छन्द—अनुष्टुप्)

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षि[illegible]
द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं [illegible] ॥ १ ॥
या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशी [illegible]
सर्वान् विनक्तु तेज[illegible] ॥ २ ॥
अरसं कृत्रिम [illegible]
अपेतो जङ्गिड[illegible] ॥ ३ ॥

कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः ।
अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ४ ॥
स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः ।
विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ॥ ५ ॥
त्रिष्ट्वा देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि ।
तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ॥ ६ ॥
न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः ।
विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥ ७ ॥
अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य ।
पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥ ८ ॥
उग्र इत ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ ।
अमीवाः सर्वाश्चातयञ्जहि रक्षांस्योषधे ॥ ९ ॥
आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् ।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत् ॥ १० ॥

जङ्गिड नामक औषधि से निर्मित मणे ! तू कृत्याओं और कृत्या कर्मों का भी भक्षण कर लेती है। तू सब भयों को दूर करने वाली है। यह मणि हमारे मनुष्यों और पशुओं आदि की रक्षक हो ॥ १ ॥ पुतलियों के सौ निर्माता और तिरेपन प्रकार की ग्राहिका कृत्यायें हैं, उन सबको यह जंगिड मणि रस-हीन और निर्वीर्य करे ॥ २ ॥ अभिचार कर्म से उत्पन्न हुई कृत्रिम ध्वनि जो हमारे कानों और शिर आदि स्थानों में होती है इस मणि के प्रभाव से निरर्थक हो जाय, नासिका के छेद, नेत्र गोलक, कर्ण छिद्र और मुख छिद्र भी अभिचार कर्म के अनिष्ट से मुक्त हों। हे मणे! तू अपने धारण-कर्ता की कुबुद्धि और दरिद्रता को, बाण फैंक कर नष्ट करने के समान ही नष्ट कर दे ॥ ३ ॥ यह मणि शत्रुओं का पतन करने में साधन रूप है। दूसरों द्वारा की गई कृत्याओं को नष्ट करने वाली है। यह बल सम्पन्न मणि कृत्या

आदि को दूर करती हुई हमारी आयु वृद्धि करे ॥४॥ यह मणि महापाव रोग को नाश करने वाली है, इसके द्वारा नष्ट हुआ रोग फिर नहीं होता। इसके प्रभाव से त्रिस्कन्ध रोग नष्ट होता है। यह मणि उन सब उपद्रवों से बचाती हुई हमारी रक्षा करे ॥ ५ ॥ हे जंगिड मणे! तुझे देवताओं ने तीन बार प्रयत्न करके प्राप्त किया था। महर्षि अंगिरा और प्राचीन काल के ब्राह्मण भी इस बात को जानते थे ॥ ६ ॥ हे जंगिड! तू सब मणियों में अत्यन्त शक्तिशाली है। सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न औषधियाँ तेरी समानता नहीं कर सकतीं, नवीन औषधियाँ भी तुमसे श्रेष्ठ नहीं हो सकतीं। क्योंकि तू अमित बली, रोग और शत्रु नाशक तथा धारण करने वाले की रक्षक है ॥७॥ हे जंगिड! तुझे कृत्यादि के शमन-साधन रूप में ग्रहण किया जाता है। तू अत्यन्त सामर्थ्य वाला है। प्रचण्ड बल वाले जीव तुझे खा सकते हैं, इसीलिए इन्द्र ने तुझे अत्यन्त बल दिया था ॥ ८ ॥ हे जंगिड! इन्द्र ने तुझमें बल की स्थापना की इसलिए तू अत्यंत वीर्य वाला है। इसलिए तू साध्य असाध्य की ओर ध्यान न देता हुआ सब रोगों का और उनके कारण रूप पाप आदि का नाश कर ॥ ९ ॥ आशरीक, विशरीक, बलास, पृष्ठ्य, तक्मा, विश्व-शारद आदि रोगों को यह मणि निरर्थक करे ॥ १० ॥

३५ सूक्त

(ऋषि—अङ्गिराः। देवता—जङ्गिडो वनस्पतिः। छन्द—अनुष्टुप्; पंक्ति; त्रिष्टुप्)

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः।
देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् ॥ १ ॥
स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालोधनेव।
देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् ॥ २ ॥
दुर्हार्दः संघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम्।
तांस्त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिडः ॥३
परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्यः।

परि मा भूतात् परि मोत भव्याद् दिशोदिशो
जङ्गिडः पात्वस्मान् ॥ ४ ॥
य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः ।
सर्वास्तान् विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥ ५॥

अङ्गिरा आदि महर्षियों ने इन्द्र का नामोच्चार करते हुए परम वीर्य की इच्छा करने वाले ऋषियों को जंगिड नामक वृक्ष की यह मणि प्रदान की। इन्द्रादि देवताओं ने इसे विष्कंध रोग की महान् औषधि कहा है। यह औषधि हमारी रक्षक हो ॥ १ ॥ राजा के धन की रक्षा करने वाले कोषाधिकारी के समान यह मणि हमारी रक्षा करे। जिस मणि को देवताओं और ब्राह्मणों ने शत्रुनाशक और धारणकर्त्ता की रक्षक बनाया है, वह मणि हमारी रक्षा करने वाली हो ॥ २ ॥ हे मणे! दुष्ट हृदय शत्रु के क्रूर नेत्र को तू नष्ट कर डाल। हिंसा के लिए पास आये हुए को भी अपने सहस्रों दर्शन साधनों द्वारा नष्ट कर ॥ ३ ॥ यह मणि आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष से हो सकने वाले भयों से मेरी रक्षा करे। वृक्षादि के विष और विभिन्न जीवों के भय तथा दिशा, प्रदिशाओं के भय से मुक्त करे ॥ ४ ॥ देवताओं द्वारा बनाये हुए हिंसक; मनुष्यों से प्रेषित बाधा देने वाले जो कर्म हैं उन सब को जंगिड मणि निर्वीर्य करे ॥ ५ ॥

३६ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—शतवारः। छन्द—अनुष्टुप्)

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा ।
आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥ १ ॥
शृङ्गाभ्या रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः ।
मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥ २ ॥
ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः ।
सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥३॥
शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत् ।

दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥ ४ ॥
हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः ।
दुर्णाम्नः सर्वांस्तृड्ढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत् ॥ ५ ॥
शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् ।
शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥ ६ ॥

यह मणि शतवार नामक औषधि से बनी है । यह औषधि सैकड़ों रोगों को नष्ट करने में समर्थ है । यह अपने तेज से असुरों को भी भस्म करने की शक्ति रखती है । यह दुर्नाम नामक त्वचा रोगों को नष्ट करती है। वह इस पुरुष के द्वारा धारण की जाती हुई ऐसे ही गुण वाली रहे ॥ १ ॥ यह अन्तरिक्ष में स्थित राक्षसों को अपने सींगों के समान अगले भाग से भगाती है । यह अपनी जड़ के द्वारा पिशाचियों को भगाती है और मध्य भाग से सब रोगों को मिटाती है। इस शतवार मणि को पापी लोग लाँघ नहीं सकते ॥ २ ॥ असाध्य रोगों और यक्ष्मादि रोगों को यह दुर्नाम रोग का नाश करने वाली मणि पूर्णतः शमन करे ॥ ३ ॥ यह मणि सैकड़ों रोगों, उत्पातों, दुर्नाम, कुष्ट, खाज, दद्रु आदि त्वचा रोगों को भी नष्ट करे और सैकड़ों पुत्रों को प्राप्त करावे ॥ ४ ॥ सब औषधियों में उत्तम यह शतवार नामक औषधि का अग्र भाग सुवर्ण के समान दमकता है । उससे निमित्त यह मणि सब त्वचा रोगों को दूर करे ॥ ५ ॥ इस शतवार मणि के द्वारा मैं समस्त त्वचा रोगों को दूर करता हूँ। अन्तरिक्ष में घूमते हुए अप्सरा, गंधर्व आदि प्राणी मनुष्यों को बलि के लिए अपहृत कर लेते हैं, उनके उस कर्म को मैं इस शतवार मणि के प्रभाव से दूर करता हूँ । यह मणि अपस्मार आदि व्याधियों को और पीड़ाप्रद रोगों का शमन करने में समर्थ है ॥ ६ ॥

३७ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप, पङ्क्ति, बृहती, उष्णिक)

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भर्गो यशः सह ओजो वयो ।

त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे ॥ १ ॥
वर्च आ धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम्।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥ २ ॥
ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ॥ ३ ॥
ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥ ४ ॥

अग्नि प्रदत्त वर्च. तेज, ओज, कीर्ति, बल और युवावस्था मुझे प्राप्त हो। जो तैंतीस वीर्य हैं, उन्हें भी अग्नि देवता मुझे दें ॥ १ ॥ हे अग्ने ! शत्रु को दबाने वाले वर्च की मुझ में स्थापना करो। ओज, युवावस्था, बल भी दो। हे ग्रहणीय पदार्थ! इन्द्रियों की दृढ़ता के लिए और यज्ञादि कर्मों की सिद्धि के लिए तुझे धारण करता हूँ। शतायुष्य होने के निमित्त तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त कराने वाले वीर कर्म के लिए भी धारण करता हूँ ॥ २ ॥ हे पदार्थ ! मैं तुझे अन्न की प्राप्ति के लिए, ओज और शरीर की शक्ति के लिए, शत्रु को वश करने के लिए धारण करता हूँ। राज्य की पुष्टि के लिए और सौ वर्ष की आयु के लिए भी धारण करता हूँ ॥ ३ ॥ हे पदार्थ ! मैं तुझे ऋतु संबंधी देवताओं की प्रसन्नता के लिये, ऋतुओं की प्रसन्नता के लिए, बारह महीनों की प्रसन्नता के लिए, संवत्सर की प्रसन्नता के लिए सुसंगत करता हूँ। धाता, विधाता तथा अन्य सब देवताओं की प्रसन्नता के लिए और सभी उत्पन्न पदार्थों के स्वामी के लिए सुसंगत करता हूँ ॥ ४ ॥

३८ सूक्त

(ऋषि—अथर्वा। देवता—गुल्गुलः। छन्द—अनुष्टुप्)

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥ १ ॥

विष्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगा अश्वाइवेरते ।
यद् गुल्गुलु सैन्धवं यद् वाप्यासि समुद्रियम् ॥ २ ॥
उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये ॥ ३ ॥

जो राजा गूगल रूप औषधि की नस्य (धूप आदि) लेता है, उसे व्याधियाँ पीड़ित नहीं करतीं और अन्य द्वारा प्रेरित शाप नहीं लगता ॥ १ ॥ गूगल के धुँए को सूँघने वाले के समीप से द्रुतगामी अश्व और हरिण के भागने के समान व्याधियाँ चारों दिशाओं की ओर भाग जाती हैं ॥ २ ॥ हे गूगलो ! तुम समुद्र से उत्पन्न हुई हो या सिंधु देश में प्रकट हुई हो । मैं तुम दोनों प्रकार की को ही कहता हूँ । इस वर्तमान रोगादि को दूर करने के निमित्त मैं तुम्हारे नाम को कहता हूँ ॥ ३ ॥

३६ सूक्त

(ऋषि—भृग्वङ्गिराः । देवता—कुष्ठः । छन्द—अनुष्टुप्, प्रस्तृति, जगती, शक्करी, अष्टि)

ऐतु देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ १ ॥
त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः ।
नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ २ ॥
जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता ।
नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ ३ ॥
उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।
नद्यायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ ४ ॥
त्रिः शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि ।

त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्य ।
स कुष्ठो विश्वभेपजः । साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ५ ॥
अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ६ ॥
हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेपजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ७ ॥
यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः ।
तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ८ ॥
यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः ।
यं वा वसो यमात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः ॥ ९ ॥
शीर्षशोकं तृतीयकं सदन्दिर्यश्च हायनः ।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव ॥ १० ॥

हिमवान् पर्वत से दमकता हुआ कूट हमारी रक्षा करता हुआ आवे। हे कूट ! तू सभी संतापप्रद रोगों का नाश कर। सभी राक्षसियों को भी हिंसित कर ॥ १ ॥ हे कूट ! तेरा नाम रहस्यमय है। तू नद्यमार, नद्यरिप और नद्य कहलाता है। तेरे नाम का ध्यान न करने से मरणात्मक व्याधि घेरती हैं। हे त्रिनाम कूट ! मैं प्रातः, सायं, मध्य तीनों समय रोगार्त पुरुष के लिए तेरा नाम लेता हूँ। हे नद्य ! जिसके लिए द्वेप

भाव से तेरा नाम लूँ वह मृत्यु को प्राप्त हो ॥ २ ॥ हे कूट ! तेरी माता का नाम जीवला और पिता का जीवन्त है । तेरे माता-पिता रोग आदि को दूर करने वाले हैं, तू भी वैसे ही गुण वाला है। हे नद्य ! दिन के तीनों काल में मैं तेरे नामों को जिस रोगी के लिए लेता हूँ, वह रोगी तेरा नाम न लेने से मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ॥ ३ ॥ हे कूट ! पशुओं में भार वहन करने वाला वृषभ जैसे श्रेष्ठ है, श्वपदों में जैसे बाघ श्रेष्ठ होता है वैसे ही तू औषधियों में श्रेष्ठ है। हे नद्य नामक कूट ! तेरा नाम न लेने से वह रोगी मर जाता, इसीलिए मैं तेरे नाम को प्रातः, सायं, मध्यकाल में उच्चारण करता हूँ ॥ ४ ॥ आंगिरस शाम्बु ऋषियों ने इस कूट नामक औषधि को तीनों लोकों के कल्याण के लिए तीन बार खोजकर प्रकट किया । यह आदित्यों और विश्वे देवाओं ने भी तीन–तीन बार प्रकट की है। ऐसी यह सब औषधियों की शक्ति से सम्पन्न औषधि पहिले सोम से सुसम्बन्ध थी । हे कूट ! तू सब रोगों और यातुधानियों को नष्ट कर ॥ ५ ॥ भूलोक से तृतीय स्वर्ग में देवता वास करते हैं वहाँ अश्वत्थ है । यह कूट पहिले सोम के साथ था । हे कूट ! तू सब रोगों और यातुधानियों को मार ॥ ६ ॥ स्वर्ग में सुवर्णमय खूँटे वाली सुवर्ण की नौका सदा घूमती है। वहाँ अमृत के प्रकाश में कूट उत्पन्न हुआ । वह कूट सब रोगों का उपाय रूप है और पहिले सोम के साथ रहता था । हे कूट ! तू सब रोगों और पिशाचियों का नाश कर ॥ ७ ॥ जिस स्वर्ग में प्रतिष्ठित पुण्यात्मा औंधे मुँह नहीं गिरते जहाँ हिमवान् पर्वत का शीर्ष है । वहाँ अमृत के प्रकाश में कूट उत्पन्न हुआ । वह सब रोगों का शमन करने वाला कूट पहले सोम के साथ रहता था । हे कूट ! तू सब रोगों और यातुधानियों को मार ॥ ८ ॥ हे कूट ! तुझे सब रोगों को नाश करने वाले रूप से राजा इक्ष्वाकु ने जाना था । काम के पुत्र ने और यम के समान मुख वाले वसुओं ने भी तुझे सब व्याधियों को निवारक रूप से जाना था इस लिए तू सब रोगों को दूर करता है ॥ ९ ॥ हे कूट ! तृतीय स्वर्ग तेरा शिर है । तेरा उत्पत्ति काल व्याधियों को सदा नष्ट करने वाला है । अतः इस शक्ति सम्पन्न जीवन को नष्ट करने वाले रोग को शीघ्र ही पराङ्मुख कर ॥ १० ॥

४० सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—विश्वेदेवाः,बृहस्पतिः।छन्द—त्रिष्टुप्,बृहती, गायत्री)

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम।
विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः ॥१॥
मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्रमथिष्टन।
शुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी ॥२॥
मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत् तपः।
शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥३॥
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः।
तामस्मे रासतामिषम् ॥४॥

मेरे मनोव्यापार में या मन्त्ररूपी वाणी में जो त्रुटि रह गई है, उसे वाग्देवता सरस्वती पूर्ण करें। सब देवताओं सहित बृहस्पति भी उसे पूर्ण करें ॥१॥ हे जलो! तुम हमारे वेदाध्ययन से युक्त सुन्दर बुद्धि को भ्रष्ट न करो। मेरा जो कर्म शुष्क होगया है, उसे आद्र करो। मैं सुन्दर बुद्धि से युक्त तथा ब्रह्मवर्च से सम्पन्न होऊँ ॥२॥ हे द्यावा पृथिवी! तुम हमारी बुद्धि को भ्रष्ट न करो, दीक्षा और तप को नष्ट न करो। जल आयुवृद्धि के लिए हमारी प्रशंसा करें। संसार को निर्माण करने वाले जल हमको माता के समान मङ्गलकारी हों ॥३॥ हे अश्विद्वय! हमको बाधाजनक अन्धकार न मिले। जो प्रकाशवती रात्रि अन्धेरे का तिरस्कार करने वाली हो, ऐसी रात्रि को हम प्राप्त हों ॥४॥

४१ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—तपः। छंद—त्रिष्टुप्)

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसन्नमन्तु ॥१॥

अर्थद्रष्टा ऋषियों ने सृष्टि के आदि काल में कल्याण-कामना करते हुए स्वर्ग को पाया और उसके साधनरूप व्रतादि से सम्पन्न तथा दण्डादि

धारण आदि से साध्य दीक्षा को किया। उसी शक्ति से राष्ट्रबल और ओज हुआ। देवगण उस सबको इस पुरुष में सुसंगत करें ॥१॥

सूक्त ४२

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—ब्रह्म। छन्द—अनुष्टुप्, पंक्ति, त्रिष्टुप् जगती)

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥१॥
ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता।
ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः।
शमिताय स्वाहा ॥२॥
अंहोमुचे प्र भरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः।
इममिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥३॥
अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम्।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण तं इन्द्रियं दत्तमोजः ॥४॥

ब्रह्म ही होता है, ब्रह्म ही यज्ञ है, ब्रह्म से ही स्वरों की यज्ञानुवेष्टता आदि है, ब्रह्म से ही अध्वर्यु उत्पन्न हुए और ब्रह्म में ही हवियाँ अवस्थित हैं ॥१॥ घृत से पूर्ण स्रुच भी ब्रह्म है, वेदी ब्रह्म द्वारा ही निर्मित हुई, यज्ञ ब्रह्म है, और हवि करने वाले ऋत्विज भी ब्रह्म ही हैं ॥ २ ॥ इन्द्र परम कल्याण के देने वाले और पापों से छुड़ाने वाले हैं। उन इन्द्र के लिए मैं सुन्दर स्तोत्रमयी स्तुतियों को कहता हूँ। हे इन्द्र ! यजमान की आयु आदि की कामना सत्य हो। इस हवि को ग्रहण करो ॥३॥ यज्ञ-भागी देवताओं में इन्द्र श्रेष्ठ हैं, इसलिए मैं उनका आह्वान करता हूँ। जलों के स्रष्टा अग्नि का और अश्विद्वय का भी आह्वान करता हूँ। वे अश्विद्वय तुझे इन्द्र की शक्ति से इन्द्र और बल के देने वाले हों ॥४॥

सूक्त ४३

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—मन्त्रोक्ता। छन्द—

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।

अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे । अग्नये स्वाहा ॥१॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे । वायवे स्वाहा ॥२॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुः सूर्यो दधातु मे । सूर्याय स्वाहा ॥३॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे । चन्द्राय स्वाहा ॥४॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे । सोमाय स्वाहा ॥५॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे । इन्द्राय स्वाहा ॥६॥
आपो मा तत्र यन्त्वमृतं मोप तिष्ठतु । अद्भ्यः स्वाहा ॥७॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे । ब्रह्मणे स्वाहा ॥८॥

जिस स्थान में ब्रह्म के जानने वाले दीक्षा और तप के द्वारा पहुँचते हैं, उसी स्थान में मुझे अग्निदेव ले जाँय । जो अग्नि स्वर्ग प्राप्त करने की बुद्धि देते हैं, वे मुझे भी वैसी ही बुद्धि दें ॥१॥ तप और कर्म से ब्रह्मज्ञानी पुरुष जिस स्थान में जाते हैं, वायु देवता मुझे वहीं ले जाँय । वे वायु मेरे प्राणापान आदि पाँचों प्राणों को मुझमें स्थापित करें ॥२॥ तप और कर्म के द्वारा ब्रह्मज्ञानी पुरुष जहाँ जाते हैं, उसी स्थान में सूर्य देवता मुझे लेजाँय और मुझे चक्षु प्रदान करें यह आहुति सूर्य के लिए हो ॥ ३ ॥ तपोधन और कर्मवान् ब्रह्मज्ञानी पुरुष जिस स्थान को प्राप्त होते हैं, चन्द्र देवता मुझे भी उसी स्थान में स्थापित करें और मन प्रदान करें; स्वाहा ॥४॥ तपोधन और कर्मवान् ब्रह्मज्ञानी पुरुष जिस स्थान को प्राप्त होते हैं, सोम मुझे उसी स्थान में पहुँचावें । वे सोम मुझे दूध रस से युक्त करें, स्वाहा ॥ ५॥ तपोधन और

कर्मवान् ब्रह्मज्ञानी पुरुष जिस स्थान को प्राप्त होते हैं, इन्द्र मुझे उसी स्थान में पहुँचावें। वे इन्द्र मुझे बल प्रदान करें, स्वाहा ॥६॥तपोधन ब्राह्मण और कर्मवान् ब्रह्मवेत्ता पुरुष जिस स्थान में जाते हैं, वही स्थान मुझे जल के अभिमानी देवता प्राप्त करावें। जल मुझे अमृतत्व दें, स्वाहा ॥७॥ तप और कर्म के द्वारा ब्रह्म को जानने वाले पुरुष जिस स्थान में जाते हैं, वही स्थान ब्रह्मा मुझे प्राप्त करावें। वे ब्रह्मा मुझे ब्रह्मज्ञान प्रदान करें, स्वाहा ॥८॥

४४ सूक्त

(ऋषि—भृगुः। देवता—आंजनम्, वरुण। छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक,गायत्री)

आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे।
तदाञ्जन त्वं शंताति शमापो अभयं कृतम् ॥१॥
यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः।
सर्वं ते यक्ष्ममंगेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वांजनम् ॥२॥
आंजनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम्।
कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम् ॥३॥
प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड।
निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥४॥
सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम्।
वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥५॥
देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः।
न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥६॥
वीदं मध्यमवासृपद् रक्षोहामीवचातनः।
अमीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिभा इतः ॥७॥
बह्वीदं राजन् वरुणानृतमाह पूरुषः।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुंच नः पर्यंहसः ॥८॥

यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥९॥
मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रेयतुराञ्जन ।
तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ॥१०॥

हे आञ्जन ! तू सौ वर्ष की पूर्ण आयु को प्राप्त कराता है और चिकित्सकों का कहना है कि तू ब्राह्मण के समान शुद्ध और मंगलरूप है। हे आंजन ! तू जल देवता सहित हमको सुख देने वाला हो ॥१॥ शरीर को हरे रंग का बना देने वाला पांडुरोग अत्यन्त कष्टसाध्य होता है। आंजनमणि को धारणकर्त्ता पुरुष के वातादिजन्य अंगभेद, विसर्पादि व्रण तथा अन्य सब रोग इस मणि से नष्ट हों ॥२॥ यह आंजनमणि कल्याण का देने वाला और मनुष्यों को जीवन देने वाला है। वह मुझे मृत्यु से बचावे और रथ के समान वेग वाला तथा पाप से रहित करे ॥३॥ हे प्राणरूप आंजन ! मेरे प्राण की रक्षा कर वह अकाल का ग्रास न बने। तू उसके लिए सुख दे, पापदेवता निर्ऋति के बन्धन से छुड़ा। तू सिंधु का गर्भ और विद्युतों का पुष्प है। तू वातरूप प्राण है, तू सूर्य रूप नेत्रेन्द्रिय है। तू त्रिककुद पर्वत में उत्पन्न हुआ है। हे देवांजन ! सब ओर से मेरी रक्षा कर। अन्य पर्वतों में उत्पन्न औषधियाँ तथा पर्वतों में अन्यत्र उत्पन्न औषधियाँ तेरी समानता नहीं कर सकतीं। यह आंजन रोगनाशक है, पर्वत से नीचे जाकर हर पदार्थ में व्याप्त होने में समर्थ है। यह सब रोगों का दमन कर सकता है॥ ४ से ७ तक॥ हे वरुण ! यहप्रातः समय से सोने के समय तक बहुत-सा मिथ्याभाषण कर चुका है इसे क्षमा करो। हे औषधे ! तू मिथ्या भाषण के पाप से हमको क्षमा कर। ॥ ८॥ हे जलो ! हे गौओ ! हमने जो कुछ कहा है, उसके हम साक्षी हैं। हे वरुण ! हमारी बात को तुम जानते हो। हे त्रैक्कुद पर्वतोत्पन्न आंजन ! इन सब पापों से हमको छुड़ाओ ॥९॥ हे आंजन ! मित्रावरुण स्वर्ग से पृथिवी पर आये और लौटकर तेरे पीछे गये। उन्होंने उस समय तुझको फिर लौट कर आने की अनुज्ञा दी ॥१०॥

४५ सूक्त

(ऋषि—भृगुः । देवता—आञ्जनम्; अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः ।
छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, बृहती)

ऋणादृणमिव संनयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥१॥
यदस्मासु दुःष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ।
अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥२॥
अपामूर्ज ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदसः ।
चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते ॥३॥
चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु ।
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम् ॥४॥
आक्ष्वैकं मणिमेकं कृणुष्व स्नाह्येकेना पिबैकमेषाम् ।
चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्यः परि पात्वस्मान् ॥५॥
अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ६ ॥
इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ७ ॥
सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ८ ॥
भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ९ ॥
मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ १० ॥

जैसे ऋण लेने वाला पुरुष उसे ऋणदाता को ही लौटा देता है,

वैसे ही उत्पीड़नार्थ भेजी हुई कृत्या को हे सूर्य के चक्षु रूप आंजन ! तू भेजने वाले पुरुष को ही लौटा और उसके पार्श्व आदि का खण्डन कर ॥ १ ॥ हम में जो दुःस्वप्न का भय है, गौओं में जो दुःस्वप्न उपस्थित है, उसे अनजान वैरी पुरुष स्वर्णाभूषणों के समान धारण करे ॥२॥ यह त्रिक्कुदाञ्जन ओज का बढ़ाने वाला, चारों दिशाओं में कुण्ठित न होने वाला, जलों का रस रूप, अग्नि के पास प्रकट होता है, यह चार पुत्रों को देने में समर्थ है। यह दिशाओं और कोणों को हमारे लिए सुख देने वाले करे ॥ ३ ॥ हे रक्षा-काम्य पुरुष ! यह आंजनमणि चारों दिशाओं में वीर्य रूप है। इसे तेरे बाँधता हूँ। तेरे लिए सब दिशाएं भय रहित हों। तू सूर्य के समान तेजस्वी हो और यह प्रजाएं तुझे स्वर्ण, मणि रत्न आदि से युक्त भेंट दें ॥ ४ ॥ हे पुरुष ! तू एक अञ्जन को मणि बना, एक को आँज और एक से स्नान कर। यह आंजन चतुर्वीर है। निऋति देवता के पाश से यह आंजन रूप औषधियाँ रक्षा करने वाली हों ॥ ५ ॥ अग्निदेव अपने सभी गुणों सहित मेरी रक्षा करें। प्राणापान, आयु वर्च, ओज, तेज, कल्याण और अपत्य के लिए मेरे रक्षक हों ॥ ६ ॥ इन्द्र प्राणापान; आयु, वर्च ओज, तेज, कल्याण और सुभूति की प्राप्ति के निमित्त ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों को सुदृढ करते हुए मेरे रक्षक हों ॥ ७ ॥ संसार को तृप्त करने वाले सौम्य रस के द्वारा सोम मेरी रक्षा करें। प्राण, अपान, आयु, वर्च, ओज, तेज, मंगल, सुभूति के लिए भी वह मेरी रक्षा करने वाले हों ॥ ८ ॥ ऐश्वर्य सम्पादक गुण के द्वारा भग देवता मेरे रक्षक हों। वे प्राण, अपान, आयु, वर्च, ओज, तेज, मंगल, सुभूति के लिये भी मेरी रक्षा करें ॥ ९ ॥ मरुद्गण प्राण, अपान, आयु, वर्च, ओज, तेज, मंगल, सुभूति के हेतु मेरी रक्षा करें ॥ १० ॥

४६ सूक्त [छठवाँ अनुवाक]

(ऋषि—प्रजापतिः। देवता—अस्तृतमणिः। छन्द—त्रिष्टुप्, प्रभृति)

प्रजापतिष्ट्वा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम् ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय
चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ १ ॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन् पणयो यातुधानाः ।
इन्द्रइव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वाञ्छत्रून् वि
षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ २ ॥
शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे ।
तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥३॥
इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव ।
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ४ ॥
अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते ।
व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः
सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ५ ॥
घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्त्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः ।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥६॥
यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा ।
सजातानामसद् वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥७॥

हे मणे ! तू दूसरों द्वारा अबाधित तथा शत्रुओं को वश करने वाली है। सृष्टि के आदि में तुझे विधाता ने धारण किया था। हे पुरुष ! ऐसी मणि को तेरे बाँधता हूँ। आयु, वर्च, ओज और बल की प्राप्ति में यह मणि तेरी रक्षक हो ॥ १ ॥ हे अस्तृत मणे ! तू सर्व श्रेष्ठ रहती हुई इस पुरुष की रक्षा कर। मणि जातीय असुर तेरी शक्ति को क्षीण न कर पावें। हे पुरुष ! जैसे इन्द्र शत्रुओं को गिराते हैं, वैसे ही तू उन्हें औंधे मुख गिरा। युद्ध रत शत्रु-सेना को वश कर। यह मणि इन कार्यों में तेरी रक्षक हो ॥ २ ॥ प्रहार करने वाले असंख्य शत्रु भी इस मणि से पार न पा सके, इसीलिए यह अस्तृत नाम वाली है। इन्द्र ने इस मणि में चक्षु, प्राण, बल को प्रतिष्ठित किया है, यह मणि तेरी रक्षा करे ॥ ३ ॥ हे मणे ! स्वर्गस्थ देवताओं के स्वामी इन्द्र हैं, उनके कवच से हम तुझे आच्छादित करते हैं। फिर सब देवता तुझे अपने-अपने कवचों से आ दित करने को

वैसे ही उत्पीड़नार्थ भेजी हुई कृत्या को हे सूर्य के चक्षु रूप आंजन ! तू भेजने वाले पुरुष को ही लौटा और उसके पार्श्व आदि का खण्डन कर ॥ १ ॥ हम में जो दुःस्वप्न का भय है, गौओं में जो दुःस्वप्न उपस्थित है, उसे अनजान वैरी पुरुष स्वर्णाभूषणों के समान धारण करे ॥२॥ यह त्रिककुदाञ्जन ओज का बढ़ाने वाला, चारों दिशाओं में कुण्ठित न होने वाला, जलों का रस रूप, अग्नि के पास प्रकट होता है, यह चार पुत्रों को देने में समर्थ है। यह दिशाओं और कोणों को हमारे लिए सुख देने वाले करे ॥ ३ ॥ हे रक्षा-काम्य पुरुष ! यह आंजनमणि चारों दिशाओं में वीर्य रूप है। इसे तेरे बाँधता हूँ। तेरे लिए सब दिशाएं भय रहित हों। तू सूर्य के समान तेजस्वी हो और यह प्रजाएं तुझे स्वर्ण, मणि रत्न आदि से युक्त भेंट दें ॥ ४ ॥ हे पुरुष ! तू एक अञ्जन को मणि बना, एक को आँज और एक से स्नान कर। यह आंजन चतुर्वीर है। निऋति देवता के पाश से यह आंजन रूप औषधियाँ रक्षा करने वाली हों ॥ ५ ॥ अग्निदेव अपने सभी गुणों सहित मेरी रक्षा करें। प्राणापान, आयु वर्च, ओज, तेज, कल्याण और अपत्य के लिए मेरे रक्षक हों ॥ ६ ॥ इन्द्र प्राणापान; आयु, वर्च ओज, तेज, कल्याण और सुभूति की प्राप्ति के निमित्त ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों को सुदृढ़ करते हुए मेरे रक्षक हों ॥ ७ ॥ संसार को तृप्त करने वाले सौम्य रस के द्वारा सोम मेरी रक्षा करें। प्राण, अपान, आयु, वर्च, ओज, तेज, मंगल, सुभूति के लिए भी वह मेरी रक्षा करने वाले हों ॥ ८ ॥ ऐश्वर्य सम्पादक गुण के द्वारा भग देवता मेरे रक्षक हों। वे प्राण, अपान, आयु, वर्च, ओज, तेज, मंगल, सुभूति के लिये भी मेरी रक्षा करें ॥ ९ ॥ मरुद्गण प्राण, अपान, आयु, वर्च, ओज, तेज, मंगल, सुभूति के हेतु मेरी रक्षा करें ॥ १० ॥

४६ सूक्त [छठवाँ अनुवाक]

(ऋषि—प्रजापति। देवता—अस्तृतमणिः। छन्द—त्रिष्टुप्, प्रभृति)

प्रजापतिष्ट्वा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम् ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय
चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ १ ॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन् पणयो यातुधानाः ।
इन्द्रइव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वाञ्छत्रून् वि
षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ २ ॥
शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे ।
तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥३॥
इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव ।
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ४ ॥
अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते ।
व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः
सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ५ ॥
घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्त्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः ।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥६॥
यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा ।
सजातानामसद् वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥७॥

हे मणे ! तू दूसरों द्वारा अबाधित तथा शत्रुओं को वश करने वाली है। सृष्टि के आदि में तुझे विधाता ने धारण किया था। हे पुरुष ! ऐसी मणि को तेरे बाँधता हूँ। आयु, वर्च, ओज और बल की प्राप्ति में यह मणि तेरी रक्षक हो ॥ १ ॥ हे अस्तृत मणे ! तू सर्व श्रेष्ठ रहती हुई इस पुरुष की रक्षा कर । मणि जातीय असुर तेरी शक्ति को क्षीण न कर पावें। हे पुरुष ! जैसे इन्द्र शत्रुओं को गिराते हैं, वैसे ही तू उन्हें औंधे मुख गिरा। युद्ध रत शत्रु-सेना को वश कर। यह मणि इन कार्यों में तेरी रक्षक हो ॥ २ ॥ प्रहार करने वाले असंख्य शत्रु भी इस मणि से पार न पा सके, इसीलिए यह अस्तृत नाम वाली है। इन्द्र ने इस मणि में चक्षु, प्राण, बल को प्रतिष्ठित किया है, यह मणि तेरी रक्षा करे ॥ ३ ॥ हे मणे ! स्वर्गस्थ देवताओं के स्वामी इन्द्र हैं, उनके कवच से हम तुझे आच्छादित करते हैं। फिर सब देवता तुझे अपने-अपने कवचों से [illegible] करने को

ग्रहण करें। ऐसा होने पर तू इस धारणकर्त्ता पुरुष की रक्षक बन ॥ ४ ॥ यह मणि एक सौ एक वीर्यों से युक्त है और सब देवताओं से अनुग्रहीत होने के कारण उन सबके असंख्य प्राण बल भी इसमें व्याप्त हैं। हे पुरुष ! तू ऐसी मणि को धारण करके व्याघ्र के समान शत्रुओं पर पहुँचे। युद्ध-काम्य शत्रु-सेना निर्वीर्य हो, इसलिए यह मणि तेरी रक्षक हो ॥ ५ ॥ सब देवताओं की कृपा के कारण असीमित बल वाली, घृत मधु से सिंचित, इन्द्र कवच से आच्छादित यह मणि शत्रु को भगाने के अनेक साधनों से सम्पन्न है। हे पुरुष ! धारण करने पर यह शरीर सुख, अन्न, पुत्र, पशु आदि का सुख देने वाली है। यह तेरी रक्षा करे ॥ ६ ॥ हे पुरुष ! तू सर्ग श्रेष्ठ हो, शत्रु से हीन हो, शत्रुओं को मार कर भगाने में समर्थ हो, विद्या, धन, कर्म में समान पुरुषों से श्रेष्ठ हो। सविता देवता तुझे ऐसा करें और यह अस्तृत मणि भले प्रकार तेरी रक्षा करे ॥ ७ ॥

४७ सूक्त

(ऋषि—गोपथः। देवता—रात्रिः। छन्द—बृहती; जगती, अनुष्टुप्)

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥ १ ॥
न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद् विश्वमस्यां
नि विशते यदेजति।
अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि
भद्रे पारमशीमहि ॥ २ ॥
ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव।
अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ॥ ३ ॥
षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि।
चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ॥ ४ ॥
द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः।

तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ॥ ५ ॥
रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत ।
मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ॥ ६ ॥
माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः ।
परमेभिः पथिभि स्तेनो धावतु तस्करः ।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥ ७ ॥
अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु ।
हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ ८ ॥
त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि ।
गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ॥ ९ ॥

हे रात्रि ! तेरा अन्धकार पृथिवी के सब स्थानों में, स्वर्ग और अंतरिक्ष के सब स्थानों में भर गया है । तेरे नीले रंग का यह तम तीनों लोकों पर छा गया । सब ओर अँधेरा ही अँधेरा है ॥ १ ॥ जिस रात्रि में यह विश्व विभक्त नहीं होता, एक ही दिखाई देता है, चेष्टावान् प्राणी चलने में असमर्थ होता हुआ जहाँ का तहाँ स्थित हो सो जाता है, हे प्रभूत तममयी रात्रि ! हम सब अहिंसित रहते हुए तुझ से पार हों ॥ २ ॥ हे रात्रि ! मनुष्यों के कर्म फल को देखने वाले तुम्हारे जो निन्यानवे गण हैं तथा अट्ठासी और सतहत्तर गण हैं, उन सब के द्वारा तुम हमारी रक्षा करो ॥ ३ ॥ हे रात्रि ! तुम्हारे छियासठ, पचपन और चवालीस गण हमारे रक्षक हों ॥४॥ हे रात्रि ! तुम्हारे बाईस या ग्यारह गण हैं उन सब के सहित हमारी रक्षक होओ ॥ ५ ॥ मुझे मारने की धमकी देने वाला कोई भी शत्रु मुझ पर न चढ़ सके, दुर्वाक्य वाला कोई भी दुष्ट मुझ पर अधिकार न कर पावे, चोर हमारी गौओं को चुरा न पावे, शृगाल हमारी भेड़ों को न ले जाय । हे रात्रि ! ऐसा करो ॥ ६ ॥ हे रात्रि ! तस्कर हमारे घोड़े का अपहरण न कर सके, राक्षसियाँ और पिशाच मेरे मनुष्यों को हिंसित न कर पावें । चोर अन्य मार्गों से होता हुआ चला जाय । दाँत वाली सर्पिणी आदि भी अन्य मार्गगामिनी हो, और हिंसात्मक

ग्रहण करें। ऐसा होने पर तू इस धारणकर्त्ता पुरुष की रक्षक बन ॥ ४ ॥ यह मणि एक सौ एक वीर्यों से युक्त है और सब देवताओं से अनुग्रहीत होने के कारण उन सबके असंख्य प्राण बल भी इसमें व्याप्त हैं। हे पुरुष! तू ऐसी मणि को धारण करके व्याघ्र के समान शत्रुओं पर पहुँचे। युद्ध-काम्य शत्रु-सेना निर्वीर्य हो, इसलिए यह मणि तेरी रक्षक हो ॥ ५ ॥ सब देवताओं की कृपा के कारण असीमित बल वाली, घृत मधु से सिंचित, इन्द्र कवच से आच्छादित यह मणि शत्रु को भगाने के अनेक साधनों से सम्पन्न है। हे पुरुष! धारण करने पर यह शरीर सुख, अन्न, पुत्र, पशु आदि का सुख देने वाली है। यह तेरी रक्षा करे ॥ ६ ॥ हे पुरुष! तू सर्व श्रेष्ठ हो, शत्रु से हीन हो, शत्रुओं को मार कर भगाने में समर्थ हो, विद्या, धन, कर्म में समान पुरुषों से श्रेष्ठ हो। सविता देवता तुझे ऐसा करें और यह अस्तृत मणि भले प्रकार तेरी रक्षा करे ॥ ७ ॥

४७ सूक्त

(ऋषि—गोपथः। देवता—रात्रिः। छन्द—बृहती; जगती, अनुष्टुप्)

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥ १ ॥
न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद् विश्वमस्यां
नि विशते यदेजति।
अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि
भद्रे पारमशीमहि ॥ २ ॥
ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव।
अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ॥ ३ ॥
षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि।
चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ॥ ४ ॥
द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः।

तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ॥ ५ ॥
रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत ।
मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ॥ ६ ॥
माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः ।
परमेभिः पथिभि स्तेनो धावतु तस्करः ।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥ ७ ॥
अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु ।
हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ ८ ॥
त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि ।
गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ॥ ९ ॥

हे रात्रि ! तेरा अन्धकार पृथिवी के सब स्थानों में, स्वर्ग और अंतरिक्ष के सब स्थानों में भर गया है । तेरे नीले रंग का यह तम तीनों लोकों पर छा गया । सब ओर अँधेरा ही अँधेरा है ॥ १ ॥ जिस रात्रि में यह विश्व विभक्त नहीं होता, एक ही दिखाई देता है, चेष्टावान् प्राणी चलने में असमर्थ होता हुआ जहाँ का वहाँ स्थित हो सो जाता है, हे प्रभूत तममयी रात्रि ! हम सब अहिंसित रहते हुए तुझ में पार करें ॥ २ ॥ हे रात्रि ! मनुष्यों के कर्म फल को देखने वाले तुम्हारे जो निन्यानवे गण हैं तथा अट्ठासी और सतहत्तर गण हैं, उन सब के द्वारा तुम हमारी रक्षा करो ॥ ३ ॥ हे रात्रि ! तुम्हारे छियासठ, पचपन और पचासीम गण हमारे रक्षक हों ॥४॥ हे रात्रि ! तुम्हारे बाईस या ग्यारह गण हैं उन सब के सहित हमारी रक्षक होओ ॥ ५ ॥ मुझे मारने की धमकी देने वाला कोई भी शत्रु मुझ पर न चढ़ सके, दुर्वाक्य वाला कोई भी दुष्ट मुझ पर अधिकार न कर पावे, और हमारी गौओं को चुरा न पावे, शृगाल हमारी भेड़ों को न ले जाय । हे रात्रि ! ऐसा करो ॥ ६ ॥ हे रात्रि ! तस्कर हमारे घोड़े का अपहरण न कर सके, राक्षसियाँ और पिशाच मेरे मनुष्यों को हिंसित न कर पावें । चोर अन्य मार्गों से होता हुआ चला जाय । दाँत वाली सर्पिणी आदि भी अन्य मार्गगामिनी हो, और हिंसा

विचार वाला पापी भी दूर चला जाय ॥ ७ ॥ हे रात्रि ! पीड़ित करने वाले प्रश्वास युक्त सर्प को मस्तक हीन करो । भेड़िये की ठोड़ियों को नष्ट करके उसे मार डालो ॥ ८ ॥ हे रात्रि ! तुम्हारी रक्षा के बल पर हम टिके हैं और उसी के द्वारा निद्रा को प्राप्त होंगे । तुम हमारी गौ, अश्व, संतान आदि को सुख देती हुई हमारी रक्षा में तत्पर रहो ॥ ६ ॥

४८ सूक्त

(ऋषि—गोपथः । देवता—रात्रिः । छन्द—गायत्री; अनुष्टुप्, पंक्ति)

अथो यानि च यस्मा ह यानि चान्तः परीणहि ।
तानि ते परि दद्मसि ॥ १ ॥
रात्रि मातरुषसे नः परि देहि ।
उषा नो अह्ने परि ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि ॥ २ ॥
यत् किं चेदं पतयति यत् किं चेदं सरीसृपम् ।
यत् किं च पर्वतायासत्वं तस्मात् त्वं रात्रि पाहि नः ॥ ३ ॥
सा पश्चात् पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत ।
गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ४ ॥
ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति ।
पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति
ते नः पशुषु जाग्रति ॥ ५ ॥
वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि ।
तां त्वां भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ॥ ६ ॥

खुले हुए चरागाह में जो वस्तुऐं हैं, घर में जो वस्तुऐं हैं, उन सबको हे रात्रि ! हम तुम्हें सौंपते हैं ॥ १ ॥ हे रात्रि ! तुम माता की समान रक्षा करने वाली हो । अपने बाद होने वाले उषाकाल को हमारी रक्षा के लिए प्रदान करो । उषाकाल के पश्चात् होने वाला जो दिन है, उसे हमको सुख पूर्वक प्रदान करो । वह दिन फिर तुम्हें हमको दे दे ॥ २ ॥ आकाश में उड़

वाले पक्षी और पृथिवी पर सरकने वाले सर्पादि, पर्वत और जंगल में घूमने वाले सिंह आदि इन सब हिंसकों से हे रात्रि! हमारी रक्षा करो ॥ ३ ॥ हे रात्रि! हमारे सोने बैठने के स्थानों की चारों दिशाओं से रक्षा करो। हम तुम्हारा ही स्तोत्र कर रहे हैं ॥४॥ रात्रि से संबंधित अनुष्ठान आदि करते हुए जो पुरुष रक्षार्थ जागते रहते हैं और जो रात्रि के चोरी आदि कर्मों से सावधान रहते हैं, वे पशुओं और मनुष्यों की रक्षा के लिए जागते रहें ॥ ५ ॥ हे रात्रि! तू घृताची कहलाती है, इस बात को भारद्वाज ऋषि जानते हैं। ऐसी हे रात्रि! हमारे पशु आदि की रक्षा के लिये तू सावधान रह ॥ ६ ॥

४६ सूक्त

(ऋषि-गोपथः भारद्वाजश्च । देवता-रात्रिः । छन्द-त्रिष्टुप्; पङ्क्ति, जगती)

इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य ।
अश्वक्षभा सुहवा संभृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा ॥१॥
अति विश्वान्यरुहद् गम्भीरो वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठाः ।
उशती राज्यनु सा भद्राभि तिष्ठते मित्रइव स्वधाभिः ॥२॥
वर्ये वन्दे सुभगे सुजात आजगन् रात्रि सुमना इह स्याम् ।
अस्मांस्त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानि पुष्ट्या ॥३॥
सिंहस्य रात्र्युशती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे ।
अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ॥४॥
शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ॥५॥
स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे ।
असाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः ॥६॥
शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना ।
रात्रीहि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत् पुनर्न विद्यते ॥७॥
भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वङ् [illegible]

चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षाममुक्थाः ॥८॥
यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः ।
रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ॥ ९ ॥
प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् ।
यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टो अपायति ।
अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति ॥ १० ॥

एक अवस्था वाली, सब के द्वारा पूज्य, चक्षुओं को तिरस्कृत करने वाली, आह्वानीय रात्रि विश्व में व्याप्त होने से एकाकार वाली लगती है। द्यावापृथिवी उस रात्रि की महिमा से युक्त हो रहे हैं ॥ १ ॥ सर्वत्र व्याप्त इस रात्रि की सब स्तुति करते हैं, यह सब वन पर्वत, समुद्र आदि को आच्छादित किये हुए हैं। यजमान आदि के अन्नदान के प्रभाव से सूर्य जैसे जगत पर चढ़ते हैं, वैसे ही यह भी जगत पर छा जाती है ॥२॥ हे सुन्दर जन्म वाली, सौभाग्यवती रात्रि ! तू आ गई। मैं तुझे पाकर सुन्दर मन वाला बनूँ तब तुम प्रसन्न होकर मेरे पशु, पुत्रादि की रक्षा करो और मनुष्यों और पशुओं के हित वाले पदार्थों की भी रक्षा करो ॥३॥ यह रात्रि, सिंह, हाथी, गैंडा आदि के तेजों को खींचती है, प्राणी के आह्वान रूप शब्द और अश्व के वेग को भी खींच लेती है। हे रात्रि ! तुम इस प्रकार विशेष रूप से दीप्तिमती होकर अपने अनेक रूप प्रकट करती हो ॥४॥ हे रात्रि ! तू मंगलमयी है, मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। रात्रि के भरण करने वाले सूर्य की भी स्तुति करता हूँ। यह रात्रि हिम का उत्पादन करने वाली है। हे रात्रि ! मेरी स्तुति को भले प्रकार जानो जिससे तुम सर्वत्र व्याप्त की मैं वन्दना कर सकूँ ॥ ५ ॥ हे विभावरि ! राजा जैसे अपने प्रशंसकों की स्तुतियों को प्रसन्न होता हुआ सुनाता है, वैसे ही तुम हमारे स्तोत्र से प्रसन्न होओ। तुम्हारे स्तोत्र सुनने पर हम पुत्र पौत्र और धनों से सम्पन्न उषाकालों से युक्त रहें ॥ ६ ॥ हे रात्रि ! तुम शत्रुओं का शमन करने से शम्या हो। मेरे धन के अपहारकों के प्राणों को संतप्त करती हुई आगमन करो। चोर नष्ट भी हो जाय और पुनः प्रकट न हो, ऐसी कृपा करती हुई आओ ॥ ७ ॥ हे रात्रि ! तुम सर्वत्र व्याप्त होने वाली, घोर अंधकार से

म्पन्न धेनु रूप और चमस के समान मंगलमयी हो । तुम हमको पुष्ट करती हुई, दर्शन इन्द्रिय देती हुई आओ और जैसे दिव्य शरीर को नहीं छोड़ती वैसे मारे शरीरों को पृथिवी पर न छोड़ ॥८॥ जो अघायु हमारे धन का अपहरण करने या वध रूप पाप करने के लिए आ रहा हो, वह शत्रु रात्रि के तेज से छिन्न होकर हमसे दूर भागे और रात्रि देवता उसकी ग्रीवा और कंठ को भी काट डाले ॥९॥ पाँव, हाथ से भी हीन होकर वह शत्रु अगाध निद्रा को प्राप्त हो और शुष्क वृक्ष के नीचे स्थान प्राप्त करे ॥ १० ॥

५० सूक्त

(ऋषि— गोपथः । देवता—रात्रिः । छन्द—अनुष्टुप्)

अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु ।
अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ १ ॥
ये ते रात्र्यनड्वाहस्तीक्ष्णशृंगाः स्वाशवः ।
तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा ॥ २ ॥
रात्रिंरात्रिमरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम् ।
गम्भीरमप्लवाइव न तरेयुररातयः ॥ ३ ॥
यथा शाम्याकः प्रपतन्नपवान् नानुविद्यते ।
एवा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ॥ ४ ॥
अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम् ।
अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ॥ ५ ॥
यदद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु ।
यदेतदस्मान् भोजय यथेदन्मानुपायसि ॥ ६ ॥
उषसे नः परि देहि सर्वान् रात्र्यनागसः ।
उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्यं विभावरि ॥ ७ ॥

जिस सर्प का धूम रूप श्वास कष्टदायक है उसे हे रात्रि ! शीर्ष-हीन करो । शृगाल को नेत्रहीन करके वृक्ष के स्थान में मार कर डाल दो ॥ १ ॥

चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षाममुक्थाः ॥८॥
यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः ।
रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ॥ ९ ॥
प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् ।
यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टो अपायति ।
अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति ॥ १० ॥

एक अवस्था वाली, सब के द्वारा पूज्य, चक्षुओं को तिरस्कृत करने वाली, आह्वानीय रात्रि विश्व में व्याप्त होने से एकाकार वाली लगती है । द्यावापृथिवी उस रात्रि की महिमा से युक्त हो रहे हैं ॥ १ ॥ सर्वत्र व्याप्त इस रात्रि की सब स्तुति करते हैं, यह सब वन पर्वत, समुद्र आदि को आच्छादित किये हुए हैं । यजमान आदि के अन्नदान के प्रभाव से सूर्य जैसे जगत पर चढ़ते हैं, वैसे ही यह भी जगत पर छा जाती है ॥२॥ हे सुन्दर जन्म वाली, सौभाग्यवती रात्रि ! तू आ गई । मैं तुझे पाकर सुन्दर मन वाला बनूँ तब तुम प्रसन्न होकर मेरे पशु, पुत्रादि की रक्षा करो और मनुष्यों और पशुओं के हित वाले पदार्थों की भी रक्षा करो ॥३॥ यह रात्रि, सिंह, हाथी, गैंडा आदि के तेजों को खींचती है, प्राणी के आह्वान रूप शब्द और अश्व के वेग को भी खींच लेती है । हे रात्रि ! तुम इस प्रकार विशेष रूप से दीप्तिमती होकर अपने अनेक रूप प्रकट करती हो ॥४॥ हे रात्रि ! तू मंगलमयी है, मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ । रात्रि के भरण करने वाले सूर्य की भी स्तुति करता हूँ । यह रात्रि हिम का उत्पादन करने वाली है । हे रात्रि ! मेरी स्तुति को भले प्रकार जानो जिससे तुम सर्वत्र व्याप्त की मैं वन्दना कर सकूँ ॥ ५ ॥ हे विभावरि ! राजा जैसे अपने प्रशंसकों की स्तुतियों को प्रसन्न होता हुआ सुनाता है, वैसे ही तुम हमारे स्तोत्र से प्रसन्न होओ । तुम्हारे स्तोत्र सुनने पर हम पुत्र पौत्र और धनों से सम्पन्न उषाकालों से युक्त रहें ॥ ६ ॥ हे रात्रि ! तुम शत्रुओं का शमन करने से शम्या हो । मेरे धन के अपहारकों के प्राणों को संतप्त करती हुई आगमन करो । चोर नष्ट भी हो जाय और पुनः प्रकट न हो, ऐसी कृपा करती हुई आओ ॥ ७ ॥ हे रात्रि ! तुम सर्वत्र व्याप्त होने वाली, घोर अंधकार से

उत्पन्न धेनु रूप और चमस के समान मंगलमयी हो । तुम हमको पुष्ट करती हुई, दर्शन इन्द्रिय देती हुई आओ और जैसे दिव्य शरीर को नहीं छोड़ती वैसे हमारे शरीरों को पृथिवी पर न छोड़ ॥८॥ जो अघायु हमारे धन का अपहरण करने या वध रूप पाप करने के लिए आ रहा हो, वह शत्रु रात्रि के तेज से संतप्त होकर हमसे दूर भागे और रात्रि देवता उसकी ग्रीवा और कंठ को भी फाट डाले ॥९॥ पाँव, हाथ से भी हीन होकर वह शत्रु अगाध निद्रा को प्राप्त हो और शुष्क वृक्ष के नीचे स्थान प्राप्त करे ॥ १० ॥

५० सूक्त

(ऋषि—गोपथः । देवता—रात्रिः । छन्द—अनुष्टुप्)

अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु ।
अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ १ ॥
ये ते रात्र्यनड्वाहस्तीक्ष्णशृंगाः स्वाशवः ।
तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा ॥ २ ॥
रात्रिंरात्रिमरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम् ।
गम्भीरमप्लवाइव न तरेयुररातयः ॥ ३ ॥
यथा शाम्याकः प्रपतन्नपवान् नानुविद्यते ।
एवा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ॥ ४ ॥
अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम् ।
अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ॥ ५ ॥
यदद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु ।
यदेतदस्मान् भोजय यथेदन्यानुपायसि ॥ ६ ॥
उषसे नः परि देहि सर्वान् रात्र्यनागसः ।
उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्यं विभावरि ॥ ७ ॥

जिस सर्प का धूम रूप श्वास कष्टदायक है उसे हे रात्रि ! शीर्ष-हीन करो । शृगाल को नेत्रहीन करके वृक्ष के स्थान में मार कर डाल दो ॥१॥

हे रात्रि ! तुम्हारे तीक्ष्ण शृंग वाले वृषभ शीघ्र गति वाले हैं, उनके द्वारा तू न जीते जाने योग्य अनर्थों से पार कर ॥ २ ॥ हम अपने पुत्रादि सहित रात्रि को लाँघ जाँय, परन्तु हमारे शत्रु रात्रि को न काट सकें। साधन-हीन मनुष्य गम्भीर नदी में जाकर डूब जाते हैं; वैसे ही हे रात्रि ! तुम्हारे रक्षा रूप नाव से रहित हमारे शत्रु मार्ग में ही नाश को प्राप्त हों ॥ ३ ॥ हे रात्रि ! हमारे लिए पाप रूप होकर जो शत्रु आ रहा है, उसे पके हुए शाम्याक के समान पृथिवी पर गिरा दो ॥ ४ ॥ वस्त्रापहारक, गौ और अश्वादि के अपहारक को हे रात्रि ! तुम नाश को प्राप्त कराओ ॥ ५ ॥ हे सुभगे ! हे रात्रि ! जो शत्रु हमारे सुवर्णादि धनों को हमसे छीनना चाहते हैं, उस धन का भोगने वाला हमको बनाओ। जिस मार्ग से शत्रुओं के धन को हमें प्राप्त कराती हो, उसी मार्ग से हमारे धनों को भी हमारे पास पहुँचाओ ॥ ६ ॥ हे रात्रि ! हमारी उषा काल तक रक्षा करो, वह उषा सूर्योदय तक हमारी रक्षा करे और वह दिन सुखपूर्वक फिर तुम्हें प्राप्त करावे इस प्रकार के यह दिन-रात्रि हमको धन आदि से युक्त रखते हुए शत्रुओं से रक्षित करें ॥ ७ ॥

५१ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—आत्मा; सविता । छन्द—अनुष्टुप्; उष्णिक्)

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे-
प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥ १ ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो-
हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे ॥ २ ॥

मैं कर्मानुष्ठान की इच्छा वाला पूर्ण हूँ, मेरा शरीर भी पूर्ण है, मेरे नेत्र, श्रोत्र, नासिका, प्राण, अपान, व्यान सब पूर्ण हैं, मैं सर्वेन्द्रिय हूँ ॥ १ ॥ हे कर्म ! मैं प्रयोग करने वाला पुरुष सबको प्रेरणा देने वाले सवितादेव की प्रेरणा से, अश्विनीकुमारों की भुजाओं से और पूषा के हाथों से तुझे प्रारम्भ करता हूँ ॥ २ ॥

५२ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—कामः । छन्द—त्रिष्टुप् ; उष्णिक् बृहती)

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥१॥
त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥२॥
दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये ।
आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ॥ ३ ॥
कामेन मा काम आगन् हृदयाद्धृदयं परि ।
यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥ ४ ॥
यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥ ५ ॥

सृष्टि के पूर्व परमात्मा के मन में काम भले प्रकार व्याप्त हो गया। हे काम ! सृष्टि रचना के लिए प्रथम उत्पन्न हुआ तू परमात्मा का सयोनि है। तू हविदाता यजमान को धन की पुष्टि में स्थापित कर ॥ १ ॥ हे काम ! तुम साहस से प्रतिष्ठित हो, तुम विभु और विभावा हो। हे मित्र ! तुम इनके प्रति मित्र-भाव रखते हो। तुम शत्रुओं को वश करने वाले पूर्ण महान् बली हो। इस यजमान को ओज और बल प्रदान करो ॥ २ ॥ दूरस्थ दिशाओं ने इस दुर्लभ फल की अभिलाषा करने वाले यजमान को इच्छित फल प्राप्त कराने और अक्षय फल द्वारा सुख प्रदान करने का निश्चय किया है ॥ ३ ॥ अभीष्ट फल की कामना से संकल्प फल मुझे मिले और संकल्पों का फल-युक्त मन भी मुझे प्राप्त हो ॥ ४ ॥ हे कामदेव ! जिस फल की कामना से हम तुम्हारे लिए हवि दे रहे हैं, उस हवि-भाग को ग्रहण करो और हमारा इच्छित फल पूर्ण हो ॥ ५ ॥

५३ सूक्त

(ऋषि—भृगुः । देवता—कालः । छन्द—त्रिष्टुप्, बृहती; अनुष्टुप्)

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥
सप्त चक्रान् वहति काल एव सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः ।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥ २ ॥
पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन् ॥ ३ ॥
स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्यैत् ।
पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ॥ ४ ॥
कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत ।
काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥ ५ ॥
कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः ।
काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ॥ ६ ॥
काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥ ७ ॥
काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ॥ ८ ॥
तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥ ९ ॥
कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ।
स्वयम्भूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत ॥ १० ॥

कालात्मक वस्तुओं को व्याप्त कर लेने वाले वह अश्व सप्तरश्मि वाले, सहस्र नेत्र वाले, नित्य युवा; भूरि वीर्य युक्त हैं। उस अश्व रूप पर बुद्धिमान

ही आरूढ़ होते हैं। उस अश्व के चक्र समस्त लोक हैं ॥ १ ॥ कालात्मक संवत्सर सात चक्रों (ऋतुओं) को वहन करता है यह चक्र इसके नाभि-रूप हैं। अमृत अक्ष है। यही कालात्मक ब्रह्म चराचरात्मक विश्व को रचता और यही उसका नाश करता हुआ स्थिर रहता है ॥२॥ संसार के कारणभूत परमेश्वर काल से, कुम्भ के समान पूर्णतया व्याप्त है। हम साधु पुरुष उस काल को अनेक भेद से देखते हुए उसे व्योम के समान निर्लेप बताते हैं ॥३॥ वही कालरूप परमात्मा प्राणियों को उत्पन्न करते हैं, वही भुवनरूप से स्थित हैं, वही इनके पिता होते हुए भी पुत्र होजाते हैं। इस काल से श्रेष्ठ अन्य कोई तेज नहीं है ॥४॥ द्युलोक और प्राणियों को आश्रय देने वाली पृथिवी को काल ने ही प्रकट किया। भूत, भविष्य और वर्तमान भी इस काल के ही आश्रित हैं ॥५॥ इस संसार की रचना उसी काल ने की। काल की प्रेरणा से ही सूर्य इस विश्व को प्रकाश देते हैं। सब प्राणी काल के ही आश्रित हैं। इन्द्रियों का अधिष्ठाता काल में ही अपनी इन्द्रिय-संचालन आदि क्रियाओं को करता है ॥६॥ उसी काल में सृष्टि रचना का मन रहता है, उसी में संसार में अन्तर्यामी रूप से निवास करने वाला प्राण निवास करता है। आगत काल से ही सब प्रजा अभीष्ट-सिद्धि को प्राप्त कर प्रसन्न होती है ॥७॥ काल ही तप है, काल ज्येष्ठ है, काल में ही ब्रह्म प्रतिष्ठित है। काल सभी का ईश्वर, पिता और प्रजापति है ॥८॥ यह जगत काल से ही उत्पन्न हुआ और काल में ही प्रतिष्ठित है। काल ही ब्रह्म होता हुआ परमेष्ठी ब्रह्मा को धारण करता है ॥९॥ काल ने पहिले प्रजापति को उत्पन्न किया, फिर प्रजाओं की रचना की। काल से कश्यप हुए। वह काल स्वयम्भू है ॥१०॥

५४ सूक्त

(ऋषि—भृगुः। देवता—कालः। छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री; पंक्ति)

कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः।
कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः ॥१॥

कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी- मही ।
द्यौर्मही काल आहिता ॥२॥
कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा ।
कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत ॥३॥
कालो यज्ञं समैरयद्देवेभ्यो भागमक्षितम् ।
काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥४॥
कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः ।
इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्याः ।
सर्वांल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ॥५॥

काल से ही जलों की उत्पत्ति हुई, काल से ही ब्रह्म, तप, दिशाऐं और सूर्य उत्पन्न हुए। काल ही सूर्य को फिर अस्त कर देता है ॥१॥ काल से वायु बहता है, काल से ही पृथिवी महिमामयी हुई है और द्युलोक भी काल के ही आश्रित है ॥२॥ काल से ही भूत, भविष्य, पुत्र, पुर, ऋचा और यजुर्वेद की उत्पत्ति हुई ॥३॥ काल ने ही यज्ञ को देवताओं के भाग रूप में प्रकट किया, काल से ही गन्धर्व, अप्सराऐं हुई। यह सब लोक उस कालके ही आश्रित हैं॥४॥ यह अंगिरा, अथर्वा आदि महर्षि काल से ही हुए। वह काल इस परमलोक स्वर्ग तथा अन्य लोकों को देश, काल, कारण से रहित परम-ब्रह्म के द्वारा व्याप्त करके स्थित रहता है ॥५॥

५५ सूक्त

(ऋषि—भृगुः ॥ देवता—अग्निः, छन्द—त्रिष्टुप;
पङ्क्तिः उष्णिक्)

रात्रिरात्रिमप्रयातं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥१॥
या ते वसोर्वात इषुः सा त एषा तया नो मृड ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम् ॥२॥

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥३॥
प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥४॥
अपश्चादग्धान्नस्य भूयासम् ।
अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये ॥५॥
सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ।
त्वयेद्गाः पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवम् ॥६॥
अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥७॥

हे अग्ने ! गार्हपत्य आदि रूपों में वर्तमान तुम पूजन योग्य को हवि देते हुए हम इच्छित अन्न और धन सम्पन्न रहें तथा तुम्हारा सामीप्य प्राप्त करके नाश को प्राप्त न हों ॥१॥ हे अग्ने ! तुम अपनी अन्न देने वाली जो कृपामयी मति है, उसके द्वारा सुख प्रदान करो। हम तुम्हारा सामीप्य पाकर धन से पुष्ट और अन्न से सम्पन्न रहें। हम नष्ट न हों ॥ २ ॥ गार्हपत्य अग्नि प्रातः और सायं दोनों समय हमको सुख देते हैं। हे अग्ने ! तुम हमारे पास वृद्धि को प्राप्त होते हुए हमको धन दो। हम तुम्हें हवियों से प्रदीप्त करते हुए अपने शरीरों को स्वस्थ रखें ॥ ३ ॥ गार्हपत्य अग्नि प्रातः सायं कालों में हमें सुख प्रदान करते हैं। हे अग्ने ! तुम वृद्धि को प्राप्त होते हुए हमको सब का धन दो। हम तुम्हें हवियों से दीप्त करते हुए सौ वर्ष तक जीयें ॥४॥ पात्र के पेंदे में जले हुए अन्न को मैं न पाऊँ। अन्न सेवन करने वाले अन्नपति रुद्रात्मक अग्नि को नमस्कार करता हूँ ॥५॥ सभा में प्रतिष्ठित होने वाले तुम मेरे पुत्र मित्रादि के रक्षक होओ। सभासद इस सभा के रक्षक हों ॥६॥ हे इन्द्र और अग्ने ! तुम ऐश्वर्यवान् हो। हमको जीवन भर अन्न दो। हमको आयु दो। अश्व को तृण देने के समान जो तुमको नित्यप्रति हवि देते हैं, उन्हें अन्न प्रदान करो ॥७॥

५६ सूक्त

(ऋषि—यमः । देवता—दुःस्वप्ननाशनम् ।छन्द—त्रिष्टुप्,)

यमस्य लोकादध्या वभूविथ प्रमदा मर्त्यान् प्र युनक्षि धीरः ।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ ॥१॥
वन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत् पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि ।
ततः स्वप्नेदमध्या वभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः ॥२॥
बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन् ।
तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशानाः ॥३॥
नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम् ।
त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ॥४॥
यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः ।
स्वमर्दसि परमेण वन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ॥५॥
विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद् विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते ।
यशस्विनो नो यशसेह पाह्याराद् द्विषेभिरप याहि दूरम् ॥६॥

हे पिशाच ! तू यमलोक से दुःस्वप्न के रूप में पृथिवी पर आया है और निर्भय होकर तू स्त्री पुरुषों के निकट जा पहुँचता है और तू दुःस्वप्न-ग्रस्त पुरुष के रथ पर एक साथ बैठकर ही जाता है ॥१॥ हे दुःस्वप्न ! तुझे प्रजापति आदि ने दिन रात्रि की रचना से पहिले और विधाता ने सृष्टि के आरम्भ में देखा था, तभी से तू इस संसार पर छाया हुआ है। चिकित्सकों के सामने तू अन्तर्हित हो जाता है ॥२॥ यह दुःस्वप्न असुरों के यहाँ से चल कर महिमा प्राप्त करने की कामना करता हुआ देवताओं के पास पहुँचा, तब उन तैंतीस देवताओं ने उस दुःस्वप्न को अनिष्ट करने वाली शक्ति प्रदानकी॥३॥ तैंतीस देवताओं द्वारा दुःस्वप्न को अनिष्ट फल वाली शक्ति देने वाली वात को उन देवताओं के अतिरिक्त पितर भी नहीं जानते । पाप-नाशक वरुण द्वारा उपदेशित आदित्यों ने महर्षि त्रित में इसे स्थापित किया ॥४॥पाप करने

वाले पुरुष जिस दुःस्वप्न रूप भयंकर फल को प्राप्त करते हैं और पुण्यात्मा पुरुष जिस दुःस्वप्न के प्रभाव में दीर्घ आयु को प्राप्त करते हैं, ऐसे हे दुःस्वप्न ! तू अपने परम बन्धु विधाता के साथ रहता हुआ प्रसन्न होता है और पापी को मृत्यु की सूचना के रूप में तू प्रकट होता है ॥ ५ ॥ हे स्वप्न ! हम तेरे परिजन, और स्वामी के भी जानने वाले हैं, तू दुःस्वप्न के समय हमारी रक्षा करने वाला हो । तू हमसे द्वेष करने वालों को साथ लेकर दूर चला जा ॥६॥

५७ सूक्त

(ऋषि—यमः । देवता—दुःष्वप्ननाशनम् । छन्द—अनुष्टुप्,,त्रिष्टुप,जगती)

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति ।
एवा दुःष्वप्न्यं सर्वमप्रिये सं नयामसि ॥१॥
सं राजानो अगुः समृणान्यगुः सं कुष्ठा अगुः सं कला अगुः ।
समस्मासु यद् दुःष्वप्न्यं निर्द्विषते दुःष्वप्न्यं सुवाम ॥२॥
देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न ।
स मम यः पापस्तद् द्विषते प्र हिण्मः ।
मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ॥३॥
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स त्वं स्वप्नाश्वइव कायमश्वइव नीनाहम् ।
अनास्माकं देवपीयुं पियारुं वप यदस्मासु
दुःष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ॥४॥
अनास्माकस्तद् देवपीयुः पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चताम् ।
नवारत्नीनपमया अस्माकं ततः परि ।
दुःष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि ॥५॥

जैसे यज्ञ में अवदानीय अंगों को लेकर संस्कार करने वाले ऋत्विज अन्यत्र उठा ले जाते हैं, जैसे ऋण को भार समझ कर उतारते हैं, वैसे ही हम दुःस्वप्न जनित अनिष्टों को उस के पुत्र प्रित पर उतारते हैं ॥ १ ॥ जैसे

शत्रु नाश के लिए एकत्र होते हैं, जैस ऋण वढ़ते हुए एकत्र होते हैं, जैसे कुष्ट आदि वृद्धि को प्राप्त रोग एकत्र होते जाते हैं, जैसे फेंके हुए खुर आदि गड्डे में एकत्र होते जाते हैं, वैसे ही दु:स्वप्न देखने से जो अनिष्ट एकत्र होगए हैं, उन्हें हम अपने शत्रुओं पर डालते हैं ॥ २ ॥ हे देवपत्नियों के गर्भ ! हे यम के हाथ रूप स्वप्न ! तेरा मंगलमय भाग मुझे प्राप्त हो और तेरा क्रूर भाग हम शत्रु की ओर भेजते हैं। काले काक का स्वप्न के समान मुख मेरे लिए बाधक न हो ॥ ३ ॥ हे स्वप्न तेरे इस प्रकार के जन्म और आगमन को हम जानते हैं। जैसे अश्व धूल से भरे शरीर को झाड़ता और काठी आदि को गिरा देता है, वैसे ही हमारे तथा देवता और यज्ञों के बाधक शत्रु का तू पतन कर। गौ के निमित्त अपशकुन रूप दु:स्वप्न को भी तू हमारे घर से हटा ॥४॥ हे देव ! उस अनिष्ट को हमारा शत्रु अलंकार के समान धारण करे। हमारे दु:स्वप्न का जो बुरा फल है उसे तुम नौ मुट्ठी दूर हटाओ। हम अपने द्वेषी पर इस उत्पन्न कुफल को प्रेषित करते हैं ॥ ५ ॥

५८ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—मन्त्रोक्ताः। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, शक्वरी)

घृतस्य जूतिः समना सदेवा संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती ।
श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥१॥
उपास्मान् प्राणो ह्वयतामुप वयं प्राणं हवामहे ।
वर्चो जग्राह पृथिव्यन्तरिक्षं वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधत्ता ॥२॥
वर्चसो द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा
पृथिवीमनु सं चरेम ।
यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा
पृथिवीमनु सं चरेम ॥ ३ ॥
व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥ ४ ॥
यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।

इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥ ५ ॥
ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम् ।
इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ॥६॥

परमात्मा विषयक बुद्धि, संवत्सर रूप ईश्वर को अन्न रूप हवि से परिपुष्ट करती है। साधक अपनी इन्द्रियों को विषयों से हटाकर संयमाग्नि में झोंकते हैं. ऐसे हम श्रोत्र, चक्षु, प्राण, आयु, वर्च आदि से युक्त रहें ॥ १ ॥ हमारे शरीरों का धारक प्राण हमें दीर्घजीवी बनाये। हम उस प्राण से शरीर में चिरकाल तक विद्यमान रहने को कहते हैं। पृथिवी, अन्तरिक्ष, सोम, बृहस्पति और सूर्य ने हमको प्रदान करने के लिए वर्च को ग्रहण किया है ॥२॥ हे आकाश-पृथिवी! वर्च प्रदान करो। हम तुम्हारे तेज से पृथिवी और आकाश में घूमें। मुझ स्वामी को अन्न से युक्त गौएं प्राप्त हों और हम उन गौओं के साथ ही यश को भी पाकर दोनों लोकों में घूम सकने वाले हों ॥३॥ हे इन्द्रियो! शरीर से मिल कर रहो. क्योंकि यह शरीर ही तुम्हारा रक्षक है। तुम अपने कर्मों को भले प्रकार करो और अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने में समर्थ होओ। अमस के समान यह भाग साधन रूप शरीर नाश को प्राप्त न हो ॥ ४ ॥ यज्ञ के नेत्र रूप अग्नि, प्रथम पूज्य होने के कारण गुरु रूप हैं। उन अग्नि के लिए मैं श्रोत्रादि से युक्त मन के द्वारा हवि प्रदान करता हूँ। विश्वकर्मा के इस यज्ञ में अनुग्रह बुद्धि वाले इन्द्रादि देवता आगमन करें ॥ ५ ॥ देवताओं में ऋत्विज रूप तथा यज्ञार्ह, जिनके लिए हविर्भाग दिया जाता है, वे देवता जितने भी हैं, वे सब अपनी पत्नियों सहित इस यज्ञ में आकर हवि ग्रहण करें और हम पर प्रसन्न हों ॥ ६ ॥

५६ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अग्निः। छन्द—गायत्री; त्रिष्टुप्)

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥ १ ॥
यद् वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः।
अग्निष्टद् विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥२॥

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात् स इद्धोता सोऽध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति ॥३॥

हे अग्ने ! तुम मनुष्यों में जठराग्नि रूप से निवास करते हो। तुम कर्मों की रक्षा करने वाले हो। तुम यज्ञों में स्तुतियों द्वारा पूजित होते हो ॥१॥ हे देवगण ! विद्वानों के जिन कर्मों को हम अल्प ज्ञान वाले नहीं जानते हैं, उन अन्तर्हित हुए कर्मों को अग्नि देवता सम्पन्न करते हैं। सोम की पूजा करने वाले ब्राह्मणों के सामने यह अग्नि प्रतिष्ठित हैं ॥ २ ॥ हम जिस अनुष्ठान की कामना करते हैं उसे यथास्थान पहुँचाने के लिए हम देवयान मार्ग को जान गए हैं। उस देवयान मार्ग के ज्ञाता अग्निदेव की पूजा करें क्योंकि देवताओं के होता और आह्वान करने वाले वही हैं। वे अहिंसित यज्ञों का समय निश्चित करें ॥ ३ ॥

६० सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—वागादिमन्त्रोक्ताः । छन्द—बृहती; उष्णिक्)

वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥ १ ॥
ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः ।
प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः ॥ २ ॥

मेरे मुख में वाणी, नासिका में प्राण, नेत्रों में दर्शन शक्ति, दाँत अक्षुण्ण और केश पलित रोग से रहित रहें । मेरी बाहुओं में बल रहे ॥ १ ॥ ऊरुओं में ओज, जाँघों में वेग और पाँवों में खड़े रहने योग्य शक्ति रहे। आत्मा अहिंसित और अंग पाप से शून्य हों ॥ २ ॥

६१ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—ब्रह्मणस्पतिः । छन्द—बृहती)

तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय ।
स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥ १ ॥

मैं जीवन भर अपने दाँतों से खाता रहूँ, शत्रुओं के शरीरों को अपने

शरीर से दवा सकूँ। हे अग्ने ! तुम मेरे यहाँ सुख से प्रतिष्ठित होओ और स्वर्ग में भी मुझे सुख से सम्पन्न रखो ॥ १ ॥

६२ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—ब्रह्मणस्पतिः। छन्द—अनुष्टुप्)

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥

हे अग्ने ! मुझे देवताओं का प्रिय बनाओ और मुझे राजा का भी प्रिय करो। मैं सब शूद्रों का, आर्यों का और सब देखने वालों का भी स्नेह-पात्र होऊँ ॥ १ ॥

६३ सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मा। देवता–ब्रह्मणस्पतिः। छन्द–बृहती)

उत् तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय ॥ १ ॥

हे ब्रह्मणस्पते ! उठो और देवताओं को यज्ञ के प्रति बोधित करो। इस यजमान की आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति तथा यजमान की भी वृद्धि करो ॥ १ ॥

६४ सूक्त

(ऋषिः—ब्रह्मा। देवता—अग्निः। छन्दः—अनुष्टुप्)

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे ।
स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु ॥ १ ॥
इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि ।
तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया च धनेन च ॥ २ ॥
यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।
सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ३ ॥
एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद् भव ।

आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ॥ ४ ॥

उन जातवेदा अग्नि के लिए मैं समिधाएं ले आया और इन्हें दीप्त कर रहा हूँ। यह मेरे लिए श्रद्धा और वेदात्मक बुद्धि को प्रदान करें॥ १ ॥ हे अग्ने ! हम तुम्हें समिधा द्वारा प्रवृद्ध करते हैं अतः तुम हमको धन और सन्तान से समृद्ध करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! यह यज्ञीय या अयज्ञीय काष्ठ तुम्हारे निमित्त रखे हैं, वह सब मेरे लिए मंगलमय हो । तुम उन काष्ठों का भक्षण करो ॥३॥ हे अग्ने ! तुम्हारे लिए यह समिधा लाई गई हैं, तुम उनसे प्रदीप्त होओ और हम समिधा डालने वालों को आयु दो । हमारे आचार्य को अमृतत्व प्रदान करो ॥ ४ ॥

६५ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—सूर्यो जातवेदाः । छन्द—जगती)

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम् ।
अव तां जहि हरसा जातवेदोऽविभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य ॥१॥

हे सूर्य ! तुम अंधेरे का नाश करने वाले हो । तुम अपने तेज से आकाश पर चढ़ते हो । तुम्हें जो शत्रु हिंसित करना चाहते हैं उन रोकने वाले शत्रुओं को अपने तेज से भस्म करो । तुम अपने उसी तेज से स्वर्ग पर प्रतिष्ठित हो ॥ १ ॥

६७ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—सूर्यः। छन्द—गायत्री)

पश्येम शरदः शतम् ॥१॥ जीवेम शरदः शतम् ॥ २ ॥
बुध्येम शरदः शतम् ॥३॥ रोहेम शरदः शतम् ॥ ४ ॥
पूषेम शरदः शतम् ॥५॥ भवेम शरदः शतम् ॥ ६ ॥
भूयेम शरदः शतम् ॥७॥ भूयसीः शरदः शतात् ॥८॥

हे सूर्य ! हम तुम्हें सौ वर्ष तक देखते रहें ॥ १ ॥ हम सौ वर्ष तक जीवित रहें ॥ २ ॥ हम सौ वर्ष तक बुद्धि से सम्पन्न रहें ॥ ३ ॥ हम सौ वर्ष तक निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हों ॥ ४ ॥ हम सौ वर्ष तक पुष्ट रहें ॥ ५ ॥ हम पुत्रादि के प्रवाह से सौ वर्ष तक सम्पन्न रहें। सौ वर्ष से भी अधिक समय तक जीवित रहें ॥ ६-७-८ ॥

६८ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—मन्त्रोक्त कर्म। छन्द—अनुष्टुप्)

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥ १ ॥

मैं अपने व्यान और प्राण वायु के मूलाधार को अभिमवन से पृथक् करता हूँ। उन व्यान और प्राण से मन्त्रात्मक वेद को वैखरी के क्रम से पृथक् कर हम कर्म करते हैं ॥ १ ॥

६९ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—आपः। छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री; उष्णिक्)

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥
उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ २ ॥
संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ३ ॥
जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ४ ॥

देवगण ! तुम आयु वाले हो, तुम्हारी कृपा से मैं भी आयु वाला

होऊँ ॥ १ ॥ मैं पूर्ण आयु वाला होऊँ ॥ २ ॥ मेरी आयु सकार्यों में व्यतीत हो ॥ ३ ॥ देवताओ ! तुम आयुष्मान् हो, मैं भी आयुष्मान् होऊँ ॥४॥

७० सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—इन्द्रादयो मन्त्रोक्ताः । छन्द—गायत्री)

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् ।
सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम जीवित रहो, हे सूर्य ! तुम जीवित रहो, हे देवताओ तुम भी जीवित रहो और तुम्हारे अनुग्रह से मैं भी चिरकाल तक जीवित रहूँ ॥ १ ॥

७१ सूक्त

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—गायत्री । छन्द—जगती)

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ १ ॥

मेरे द्वारा स्तुति की गई वेद की माता मुझ स्तोता को आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन, ब्रह्मवर्च देती हुई ब्रह्मलोक के लिए गमन करे ॥१॥

७२ सूक्त

(ऋषि—भृग्वङ्गिरा ब्रह्मा । देवता—परमात्मा देवाश्च । छन्द—त्रिष्टुप्)

यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् ।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥ १ ॥

हम जिस कोश से वेद को निकाल कर, जिस स्थान से कर्म किये जाते हैं उस स्थान में उसे पुनः प्रतिष्ठित करते हैं। ब्रह्म के कर्म प्रतिपादक वीर्य रूप वेद से जो कर्म किया है उस अभीष्ट कर्म के फल द्वारा हे देवताओ मेरा पालन करो ॥ १ ॥

॥ इत्येकोनविंशं काण्डं समाप्तम् ॥

विंश काण्ड



१ सूक्त [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि—विश्वामित्रः, गोतम, विरूपः । देवता—इन्द्रः, मरुतः, अग्निः छन्द—गायत्री)

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे ।
स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१॥
मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः ।
स सुगोपातमो जनः ॥२॥
उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥३॥

हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त ऐश्वर्यवान् हो और अभीष्टों की वर्षा करने में समर्थ हो। सोम के निष्पन्न होने पर हम तुम्हें आहूत करते हैं। इसलिए यहाँ आकर इस मधुर रस युक्त सोम का पान करो ॥१॥ हे मरुद्गण ! तुम सब देवताओं से उत्कृष्ट तेज से युक्त हो। तुम जिस यज्ञगृह में आकाश से आकर सोम पीते हो, उसका गृह स्वामी यजमान अपने आश्रितों की रक्षा करने वालों में अत्यन्त श्रेष्ठ होता है, अतः तुम मेरे घर में आकर ही सोम पीओ ॥२॥ वृषभ और वन्ध्या गौ जिनका भाग है और सोम जिनके ऊपर स्थित रहता है, ऐसे उन अग्निदेव को हम स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हैं ॥३॥

२ सूक्त

(ऋषि—? । देवता—मरुतः; अग्निः; इन्द्रः; द्रविणोदाः । छन्द—गायत्री; उष्णिक्; त्रिष्टुप्)

मरुतः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥१॥

अग्निराग्नीध्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥२॥
इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥३॥
देवो द्रविणोदाः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥४॥

मरुद्गण पोता के लिए सुन्दर स्तोत्र वाले और सुन्दर मन्त्रों से युक्त यज्ञकर्म में हमारे संस्कृत सोम का पान करें ॥१॥ अग्नि का समिंधन करने वाले ऋत्विज के कर्म से प्रसन्न होते हुए अग्नि सोमरस पीयें। यह अग्नीध्र कर्म सुन्दर मन्त्र और स्तुतियों से युक्त हैं ॥२॥ इन्द्र ही ब्रह्मा हैं, क्योंकि वह महान हैं। हे ब्रह्मात्मक इन्द्र ! ऋत्विज की सुन्दर स्तुतियों से पूर्ण यज्ञ कर्म में संस्कृत सोम का पान करो ॥३॥धनदाता द्रविणोदा हमको धन दें। वे ऋत्विज कृत सुन्दर स्तोत्र से यज्ञमें शोधित सोमरस को पीवें॥४॥

३ सूक्त

(ऋषि—इरिम्बिठिः। देवता इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्।
एदं बर्हिः सदो मम ॥१॥
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥२॥
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः।
सुतावन्तो हवामहे ॥३॥

हे इन्द्र ! यहाँ आओ। हमने सोम को संस्कृत किया है अतः इसे पीओ और विस्तृत कुशाओं पर प्रतिष्ठित होओ ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे हर्यश्व मन्त्रों से रथ में जुड़ते हैं और अभीष्ट स्थान पर पहुँचाते हैं। वे अश्व तुम्हें हमारे यहाँ लावें तब तुम हमारी स्तुति सुनो ॥२॥ हे इन्द्र ! हम अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मणों ने सोमयाग किया है और संस्कारित सोम यहाँ उपस्थित है। तुम सोम पीने वाले का हम स्तोता अपने सुन्दर स्तोत्र से आह्वान करते हैं ॥३॥

४ सूक्त

(ऋषि—इरिम्बिठिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप । पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥१॥
आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु ।
गृभाय जिह्वया मधु ॥ २ ॥
स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे तव । सोमः शमस्तु ते हृदे ॥३॥

हे इन्द्र! हमारे पास सोम है; तुम हमारे शोभन स्तोत्र पर ध्यान देते हुए यहाँ आओ। तुम सुन्दर हनु वाले हो। हमारे इस सोम रस को पीओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र! मैं तुम्हारी दोनों कोखों को सोम रस से सम्पन्न करने की इच्छा कर रहा हूँ। यह सोम तुम्हारे सब अङ्गों में व्याप्त होकर गति करे। इसलिए इस मधुर रस को अपनी जीभ के द्वारा पीओ ॥ २ ॥ हे इन्द्र! तुम धन दान आदि में प्रसिद्ध हो। हमारे द्वारा भेंट किया हुआ सोम सुस्वादु हो और तुम्हारे लिए शक्ति दे। यह सोम तुम्हें प्रसन्नता प्रदान करे ॥ ३ ॥

५ सूक्त

(ऋषि—इरिम्बिठि । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः । प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥१॥
तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥२॥
इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा । वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥३॥
दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि ।
यजमानाय सुन्वते ॥ ४ ॥
अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥
शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥६॥
यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः ।
न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! सन्तानवती स्त्रियाँ जैसे पुत्रादि से सब ओर से घिरी रहती हैं, वैसे ही यह सोम अध्वर्यु आदि से घिरा हुआ रखा है। यह सोम तुम्हारे लिए हो ॥ १ ॥ इन इन्द्र के स्कंध सोम-भक्षण से उत्पन्न शक्ति के कारण वृषभ के समान मोटे होते हैं, पेट विशाल और भुजाएं दृढ़ हो जाती हैं। इस प्रकार सोम के द्वारा प्रवृद्ध इन्द्र वृत्र के समान आक्रमक शत्रुओं का संहार करते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम जगत के अधिपति हो, तुमने वृत्र का संहार किया था इसलिए हमारी सेना के आगे चलते हुए इन वृत्र के समान घेरने वाले शत्रुओं को मार डालो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! अंकुश के समान झुका हुआ तुम्हारा हाथ, दान के निमित्त आगे बढ़े। जिस सोम को निष्पन्न करने वाले यजमान को तुम धन प्रदान करते हुए, उसके लिए अपने हाथ को लम्बा करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! यह सोम भले प्रकार छान कर स्वच्छ किया गया है, यह तुम्हारे लिए रखा है, इसलिए यहाँ आगमन करो। यह सोम तुम्हारे लिए संस्कारित किया गया है, इसलिए शीघ्र यहाँ आकर इस सोम को पीओ ॥५॥ हे इन्द्र ! तुमने पणियों द्वारा अपहृत गौऐं निकाल लीं। तुम स्तोत्रों के सुन्दर फलों को प्रकट करने में समर्थ हो। यह सोम तुम्हारे हर्ष के लिए संस्कृत किया गया है इसलिए हम तुम्हें आहूत करते हैं। क्योंकि तुम शत्रुओं को सब ओर से मारने में सशक्त हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम सींगों के समान ऊँची उठने वाली रश्मियों वाले सूर्य का पतन नहीं होने देते हो। तुम्हारा कुण्डपाय्य नामक क्रतु है, उससे सोम से सम्पन्न यज्ञ में तुम अपने मन को प्रयुक्त करो ॥ ७ ॥

६ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१॥
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥२॥
इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः । तिर स्तवान विश्पते ॥३॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते । क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥४॥
दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव द्युक्षास इन्दवः ॥५॥

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद् यशः ॥६॥
अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥७॥
अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥८॥
यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥९॥

हे इन्द्र ! सोम के संस्कारित होने पर हम तुम्हें आहूत करते हैं । तुम इस मधुर रसयुक्त सोम को पीओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम अनेक यजमानों की स्तुतियों को प्राप्त करते हो । तुम इस संस्कारित सोम की इच्छा करो और इस तृप्तिकर सोम को पीकर अपने उदर को संतुष्ट करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम सब देवताओं सहित यहाँ आकर हमारे सोममय यज्ञ में हवि ग्रहण करके उसकी वृद्धि करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम यजमानों की रक्षा करने वाले हो । यह हर्षप्रद सोम रस तुम्हारे पेट में जा रहा है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! इस सोम रस को हृदय में धारण करो । यह सोम तुम्हारे लिए विशिष्ट भाग रूप है ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुम स्तुतियों से पूजन के योग्य हो । हमारे निष्पन्न सोम को पीओ । तुमको हम सोम की आहुतियाँ दे रहे हैं । यह सोम तुम्हारा सुन्दर यश रूप ही है ॥ ६ ॥ यजमान का उज्ज्वल सोम इन्द्र को सब ओर से प्राप्त हो रहा है, उसका पान करते हुए इन्द्र वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम वृत्र हननकर्त्ता हो । तुम हमारे निकटस्थ स्थान में हो तो आ जाओ और दूरस्थ देश में हो तो भी शीघ्र आगमन करो और हमारी स्तुति को श्रवण करो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम जिस दूरस्थ देश से या निकट से, जहाँ भी हो, वहीं से बुलाए जा रहे हो । तुम इस यज्ञ मंडप में शीघ्र ही आगमन करो ॥ ९ ॥

७ सूक्त

(ऋषि–सुकक्षः; विश्वामित्रः । देवता–इन्द्रः । छन्द–गायत्री)

उद् घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।
अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥
नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा ।

अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २ ॥
स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद् यवमत ।
उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत ।
पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ ४ ॥

हे सूर्य ! स्तुति करने वालों या यज्ञ करने वालों को इन्द्र के द्वारा धन दिया जाना प्रसिद्ध है । वे अभीष्ट फलों की भी वर्षा करने वाले हैं, वे अपने सेवकों का इच्छित करते और अनिष्टों को दूर करते हैं और वे इन्द्र शत्रु को भी दबाने वाले हैं, तुम उन इन्द्र को ध्यान में रखते हुए उदित होते हो ॥१॥ जिन इन्द्र ने शम्बर के माया से रचे हुए निन्यानवे नगरों को अपने बाहुबल से तोड़ डाला, उन्हीं इंद्र ने वृत्रासुर का पूरी तरह संहार किया ॥ २ ॥ वे इंद्र हमारे मित्र हों, वे इंद्र हमको सुख देने वाले हों, वे इंद्र हमको गौओं, अश्वों तथा अन्य विभिन्न धनों को दें, जिससे हम धनवान हों ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम ज्योतिष्टोम आदि को सम्पन्न करने वाले हो । तुम्हारी अनेक प्रकार स्तुति की जाती है । इस तृप्तिकर सोम की तुम इच्छा करो, इसे सेवन करते हुए उदरस्थ करो ॥४॥

८ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाज ; कुत्सः; विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥१
अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥२॥
आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥३॥

हे इन्द्र ! तुमने जैसे प्राचीन महर्षियों के सोमयाग में सोम पिया था, वैसे ही तुम हमारे इस सोम को भी पीओ । यह सोम तुम्हारे लिए हर्ष-

जनक हों। हमारे स्तोत्रों को सुन कर उनसे वृद्धि को प्राप्त होओ और फिर सूर्य को प्रकाशित करो। हे इन्द्र! पणियों द्वारा अपहृत हमारी गौएं हमें दो, हमारे शत्रुओं का नाश करो और उत्तमीय धनों की वृद्धि करो ॥१॥ हे इन्द्र! विद्वान् तुम्हें सोम की इच्छा करने वाला बताते हैं, इसलिए हमारे सामने आओ। यह सोम संस्कारित हो चुका है, इसे हर्ष के लिए पीओ। तुम इस सोम को अपनी कुक्षियों में भरो। जैसे पिता पुत्र की बात सुनता है, वैसे ही तुम हमारे स्तोत्र को सुनो ॥२॥ यह द्रोण कलश सोम रस से भरा हुआ इंद्र के लिये रखा था। जिस प्रकार जल छिड़कने वाला मशक को जल से भरा रखता है, उसी प्रकार इन्द्र के पीने के लिए अध्वर्यु सोम रस को सींचता है। यह सोम इन्द्र के हर्ष के लिए उनकी ओर जाते हुए प्यारते हैं ॥३॥

९ सूक्त

(ऋषि—नोधाः; मेध्यातिथिः। देवता—इन्द्रः। छंद—त्रिष्टुप्, बृहती)

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥१॥
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥२॥
तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥३॥
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥४॥

हे यजमानो! तुम्हारे यज्ञ की सम्पन्नता और अभीष्ट फल के निमित्त हम स्तुति रूप वाणी से इन्द्र की अर्चना करते हैं। यह इन्द्र दर्शन करने के योग्य तथा दुष्टों के नाशक हैं। यह सोम के हर्ष में भरे रहते हैं। जिन दिनों के प्रकट करने वाले सूर्य हैं, उन दिनों के उदय और अस्तकाल

गौएं रँभाती हुई बछड़ों की ओर जाती हैं, वैसे ही हम भी स्तुति करती हुई वाणी सहित इन्द्र की ओर जाते हैं ॥१॥ सुन्दर दान वाले; प्रजाओं के पोषक, दीप्तिवान, स्तुत्य और गवादि से सम्पन्न धन की हम वैसे ही प्रार्थना करते हैं, जैसे दुर्भिक्ष को प्राप्त हुए जीव कन्द-मूल-फल आदि से सम्पन्न पर्वत की प्रार्थना करते हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! मैं वीर्य से युक्त शक्तिशाली अन्न को तुमसे मांगता हूँ। जिस धन के दान से भृगु ऋषि को शांति मिली थी, और जिस धन से तुमने कण्व के पुत्र प्रस्कण्व का पालन किया था, वही धन हम तुमसे माँगते हैं ॥३॥ हे इन्द्र ! तुमने अपने जिस बल से सृष्टि के आरम्भ में समुद्रादि को पूर्ण करने के लिए जलों की कल्पना की तुम्हारा वह बल अभीष्ट का फल देने वाला है। तुम्हारी जिस महिमा को हम भूलोक-वासी कहते हैं, उसे शत्रु नहीं पा सकते ॥४॥

सूक्त १०

(ऋषि—मेध्यातिथिः । देवता—इन्द्रः । छंद—बृहती)

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथाइव ॥१॥
कण्वाइव भृगवः सूर्याइव विश्वमिद् धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥२॥

यह गायन मन्त्रों से साध्य तथा न गाये जाने वाले मन्त्रों से साध्य मधुर स्तुतियाँ प्रकट हो रही हैं, यह सदा अन्न प्रदान करती हुई रक्षा करने में समर्थ होती हैं। जैसे रथारोही के अभिप्राय के प्रति रथ गमन करता है, वैसे ही यह इन्द्र को सन्तुष्ट करने के लिये गमन करती हैं ॥ १ ॥ कण्व गोत्रिय महर्षि जैसे तीनों लोकों के ईश्वर, फल की कामना करने वालों द्वारा पूजित इन्द्र को स्तुतियों से प्राप्त होते हैं, जैसे सूर्य अपने नियन्ता इन्द्र को प्राप्त होते हैं और भृगु वंश वाले ऋषि जैसे इन्द्र को प्राप्त होते हैं वैसे ही मनुष्य स्तोत्रों द्वारा इन्द्र को प्राप्त होते हैं ॥२॥

सूक्त ११

(ऋषिः—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्)

इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद् रोदसी उभे ॥१॥
मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥२॥
इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद् वर्पणीतिः ।
अहन् व्यंसमुशधग् वनेष्वाविर्धेना अकृणोद् राम्याणाम् ॥३॥
इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥४॥
इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद् धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥५॥
महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥६॥
युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७॥
सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥८॥
ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ॥९॥
इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीँरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद् दमिताभिक्रतूनाम् ॥१०॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥११

इन्द्र ने अपने शत्रुओं को अपने बल से नष्ट कर डाला, वे शत्रुओं के नगरों का नाश करने वाले और शत्रुओं के धनों के प्राप्त करने वाले हैं। इन इंद्र का शरीर मंत्रों से प्रवृद्ध होता है, इनके पास शत्रु-नाशक असंख्य आयुध हैं। इन्होंने वृत्रादि शत्रुओं का नाश कर डाला और आकाश-पृथिवी को पूरी तरह व्याप्त कर लिया ॥१॥ हे इन्द्र ! मैं इस यज्ञ रूप वाणी को अन्न से सुशोभित करता हुआ प्रकट करता हूँ। हे इन्द्र ! तुम सब के अग्रगण्य हो इसलिए मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥२॥ अपने शत्रु पर हिंसक बल को गिराने वाले इंद्र ने वृत्र को रोका और युद्ध की प्राप्ति पर मायावी राक्षसों का नाश कर डाला। शत्रुओं के नाश की कामना वाले इन्द्र ने वृत्र के कंधे पृथक् कर दिए थे और पणियों द्वारा अपहृत गौओं को भी प्रकट किया था ॥३॥ इन्द्र शत्रुओं को हराने वाले तथा स्वर्ग को प्राप्त कराने वाले हैं। उन्होंने संग्रामेच्छु राक्षसों से दिन को प्रकट करके संग्राम किया और उनकी सेनाओं पर विजय पाई। यजमानों के लौकिक कर्मों के निमित्त उन्होंने सूर्य को प्रकाशित कर रखा है ॥४॥ जैसे युद्धाभिलाषी वीर शत्रु सेना में प्रविष्ट होता है, वैसे ही इन्द्र भी मनुष्यों के हित के लिए प्रवृद्ध शत्रु-सेनाओं में प्रवेश करते हैं और स्तुति करने वालों के निमित्त उषाओं को उदित करते हैं। उषाओं के श्वेत रंग की वृद्धि इंद्र ही करते हैं ॥५॥ इंद्र के द्वारा पूर्ण किये गए अनेकों प्रशंसनीय कर्मों की स्तोता गण स्तुति करते हैं। शत्रु को वश करने वाले इन्द्र ने अपने अस्त्रों द्वारा पापी राक्षसों को मसल डाला और शक्ति सम्पन्न असुरों का क्षय कर दिया ॥६॥ किसी की सहायता लिए विना ही इंद्र ने एक मात्र अपने ही बल से युद्ध द्वारा स्तुति करने वालों को धन प्राप्त कराया। यह इंद्र यजमानों के सदा रक्षक हैं और मनुष्यों को इच्छित फल प्रदान करते हैं। यज्ञादि कर्म वाले यजमान के यहाँ इनके प्रसिद्ध कर्मों को गाया जाता है ॥७॥ फल की कामना वाले मनुष्य जिन इंद्र का वरण करते हैं, जो इंद्र बल प्रदान करते हैं, जो शत्रु सेना को तुरंत ही दबाते हैं, जो स्वर्गीय जलों के सेवनकर्त्ता हैं; जिन इंद्र ने इस द्यावा पृथिवी को मनुष्यों को दिया है, उन इंद्र की स्तुति करने वाले और यजमान उन्हें

हवि देकर सम्पन्न करते हैं ॥८॥ अश्व, हाथी, ऊँट आदि इंद्र ने मनुष्यों के उपयोग के लिए दिये हैं। गौ, भैंस तथा स्वर्णाभूषण आदि भी इन्द्र ने ही दिये हैं। सूर्य को भी इन्होंने ही प्रकाशित किया है। इन्होंने राक्षसों का संहार किया और हर वर्ष का पालन किया है ॥९॥ इन्द्र ने ही यव आदि औषधियों को प्राणियों के उपयोग के लिए रचा, दिनों को तथा वनस्पतियों को भी रचा। इन्होंने मन के उपकारक अंतरिक्ष की रचना की। इंद्र ने बल नामक असुर को चीर डाला, विरोधियों और विरुद्ध अनुष्ठान करने वालों को भी मर्दित किया ॥१०॥ उन धनैश्वर्य सम्पन्न एवं सुखदाता इंद्र को हम इस संग्राम में आहूत करते हैं। जिस युद्ध में अन्न प्राप्त होता है, उसमें रक्षा के लिए इंद्र का आह्वान करते हैं। शत्रुनाशक और धनों के विजेता इन्द्र को हम आहूत करते हैं ॥११॥

१२ सूक्त

(ऋषिः—वसिष्ठः, अत्रिः ॥ देवता—इंद्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्)

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥१॥
अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥२॥
युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥३॥
आपश्चित् पिप्यु स्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥४॥
ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥५॥
एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स न स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।

युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ।।७।।

हे ऋत्विजो ! तुम अन्न की कामना करते हुए स्तोत्रों को कहो। हे यजमान ! तुम ऋत्विजों सहित इस यज्ञ में इन्द्र का पूजन करो। जिस इन्द्र ने अपनी शक्ति से जीवों की वृद्धि की वे हमारी वाणी को सुनें ॥१॥ हे इंद्र ! जो स्तोत्र देवताओं को बंधु के समान प्रिय है, उसे कहता हूँ। इस स्तोत्र के द्वारा यजमान के लिए स्वर्ग फल वाले सोम वृद्धि को प्राप्त होते हैं। मनुष्यों में यह यजमान अपनी आयु को नहीं जानता है, अतः इसे जीवन-यज्ञ के लिए उपयोगी आयु दो। आयु का नाश करने वाला पाप रूप जो कारण है उसे इससे दूर रखो ॥२॥ इन्द्र का रथ गौओं को प्राप्त कराने वाला है, वे उसमें अपने हर्यश्व संयुक्त करते हुए आते हैं। हमारे स्तोत्र उन्हीं इंद्र की सेवा करते हैं। द्यावा-पृथिवी उनके आधीन हैं। उन्होंने वृत्रादि राक्षसों को भले प्रकार मार दिया है ॥३॥ हे इंद्र ! इस अभिषुत सोम का रस गौ के समान वृद्धि को प्राप्त हुआ है। यह ऋत्विज स्तुति के लिए सत्य फल देने वाले यज्ञ मंडप में आ पहुँचे हैं। अतः आप हमारे स्तोत्रों के प्रति पधार कर अन्न दो। जैसे वायु अपने नियुत् नामक अश्वों के प्रति पधारते हैं ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम बलवान हो, यह सुसंस्कारित सोम तुम्हें हर्ष युक्त करें। तुम्हारे पास स्तोताओं के निमित्त अपरिमित धन है और तुम मनुष्य पर कृपा करने वाले एक ही हो। अतः हमको अभीष्ट फल देकर सुखी करो ॥५॥ वज्रधारी, अभीष्ट वर्षक इंन्द्र की इन्द्रियों का निग्रह करने वाले स्तोता उपासना करते हैं। वे इंद्र हमको बहुत से पुत्रों तथा अनेक गौओं से युक्त धन दें। हे देवगण ! इंद्र की प्रेरणा से तुम भी हमारे पालन करने वाले होओ ॥६॥ सोमात्मक, वज्रधारी, अभीष्ट वर्षक, शत्रुओं को वश करने वाले, बली, वृत्रहनन कर्त्ता, देवताओं के स्वामी इंद्र अभिषव वाले स्थान पर सोम पीने वाले हैं। वे अपने घोड़ों द्वारा आकर मांध्यदिन सवन में हमारा सोम पीकर हर्षित हों ॥७॥

१३ सूक्त

(ऋषिः—वामदेवः, गोतमः, कुत्सः, विश्वामित्रः। देवता—इन्द्राबृहस्पती; मरुतः, अग्निः ॥ छन्दः—जगती, त्रिष्टुप्)

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥१॥
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥२॥
इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३॥
ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥४॥

हे बृहस्पते ! तुम इन्द्र के सहित सोम पियो। तुम यजमान को धन देने वाले हमारे इस यज्ञ में अत्यंत प्रसन्न हो रहे हो। तुम्हारे शरीर में सोम प्रविष्ट हो और तुम हमारे लिए पुत्रादि सहित धन प्रदान करो ॥१॥ हे मरुद्गण ! द्रुतगामी अश्व तुम्हें हमारे यज्ञ स्थान पर पहुँचावें और तुम भी शीघ्रता पूर्वक यहाँ आओ। तुम्हारे लिए विशाल वेदी निर्मित की गई है। इस बिछाये हुए कुशाओं के आसन पर बैठे हुए सोम पीकर तृप्ति को प्राप्त होओ ॥२॥ जातवेदा, पूज्य अग्नि के स्तोत्र को हम उसी प्रकार संस्कृत करते हैं, जैसे रथकार रथ के अवयवों को संस्कारित करता है। हमारी बुद्धि इन अग्नि के प्रदीप्त करने में मंगलमयी है। हे अग्ने ! तुम्हारा बन्धुत्व पाकर हम हिंसा को प्राप्त न हों ॥३॥ हे अग्ने ! तैंतीस देवताओं सहित एक रथ पर बैठकर आगमन करो। क्योंकि तुम्हारे अश्व अत्यंत सामर्थ्य वाले हैं। इसलिए जब-जब उन देवताओं को आहुति दी जाय, तब-तब उन्हें यहाँ लाकर उन्हें सोम प्रदान करते हुए प्रसन्न करो ॥४॥

१४ सूक्त

(ऋषिः—सौभरिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—प्रगाथः)

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः ...

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥२॥
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥३॥
हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥४॥

हे सदा नवीन रहने वाले इन्द्र ! तुम पूज्य और पोषणकर्त्ता हो । हम रक्षा की कामना वाले तुम्हें आहूत करते हैं । तुम हमारे किसी विरोधी के पास न जाओ । जैसे किसी अत्यन्त निपुण राजा को विजय के लिए आमंत्रित करते हैं, वैसे ही हम भी तुम्हें बुलाते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! संग्राम आदि के अवसर पर हम अपनी रक्षा के लिये तुम्हारा ही आश्रय पकड़ते हैं । जो इन्द्र नित्य युवा रहते हैं, जो शत्रु को वश करने वाले हैं, वे इन्द्र हमारी सहायतार्थ आवें । हे इन्द्र ! हम तुम्हें सखा मानते हैं, अतः रक्षा के निमित्त तुम्हारी ही कामना करते हैं ॥ २ ॥ हे यजमानो ! तुम्हारी रक्षा के लिए मैं इन्द्र का स्तोत्र कहता हूँ । वे इन्द्र हमको पहिले भी गवादि धन दे चुके हैं । मैं उन्हीं अभीष्ट-दाता का स्तवन करता हूँ ॥ ३ ॥ जो इन्द्र मनुष्यों के रक्षक हैं, जिनके अश्व हरित वर्ण के हैं, जो मनुष्यों पर नियन्त्रण रखते और स्तुतियों से प्रसन्न होते हैं, मैं उन्हीं इन्द्र की प्रार्थना करता हूँ, वे इन्द्र हम स्तोताओं को सौ गौ और सौ अश्व प्रदान करें ॥ ४ ॥

१५ सूक्त

(ऋषि—गोतमः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥१॥
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥२॥
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।

यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव
प्रति नो हर्य तद् वचः ॥ ४ ॥

भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥५॥
त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥६॥

जिन इन्द्र का ऐश्वर्य सब मनुष्यों का पालन करने में समर्थ है, जो इन्द्र दाता, सामर्थ्यवान्, धनवान् और गुणों में अत्यन्त बढ़े हुए हैं, मैं उनका स्तोत्र कहता हूँ। जैसे नीचे जाते हुए जल का वेग असहनीय होता है वैसे जिन इन्द्र का बल संग्राम आदि के अवसर पर असहनीय होता है, मैं उन्हीं इन्द्र का स्तवन करता हूँ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जैसे जल नीचे स्थान के अनुकूल होता है, वैसे ही तुम्हारी कामना के लिए सम्पूर्ण विश्व अनुकूल हो। इन्द्र के वज्र, सुवर्ण युक्त वज्र पर्वत में भी न रुका इसलिए संसार उनके अनुकूल होता है और तीनों सवनीय सवन भी उनके अनुकूल होते हैं ॥ २ ॥ हे उषे ! जिन इन्द्र से शत्रु भयभीत रहते हैं, उनके लिए [illegible] उन इन्द्र को अन्न के सहित हमारे यहाँ लाओ। जिनका [illegible] समृद्धि वाला होता है, जो इन्द्र दिशाओं को प्रकाशित करते [illegible] उन्हें [illegible] यज्ञ स्थान में लाओ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम महान् [illegible] तुम स्तुतियों के पात्र हो, हम तुम्हारे ही आश्रित हैं। हे इन्द्र ! [illegible] सर्वव्यापक हो, हमारी स्तुतियाँ तो अल्प हैं, इसलिए [illegible] तुम्हें ही चाहिए। जैसे राजा, प्रजा की बात को सुनता है, वैसे [illegible] वचन को सुनो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे वृत्र हनन आदि [illegible] से प्रेरित होकर तुम्हारे उपासक होते हैं। तुम इस स्तोता [illegible] कामना को पूर्ण करो। तुम्हारे बल का विशाल आकाश [illegible] पृथिवी तुम्हारे [illegible]

झुक जाती है, इसलिए यह भी तुम्हारा मान ही करती है ॥ ५ ॥ हे वज्रिन्! तुमने परम विशाल पर्वत को भी खण्ड-खण्ड कर डाला था और मेघ को नदी रूप से प्रवाहित कर दिया। तुम ऐसे सब महाबलों को धारण करने वाले हो, तुम्हारी यह महिमा यथार्थ ही है ॥ ६ ॥

१६ सूक्त

(ऋषि—अयास्यः। देवता—बृहस्पतिः। छन्द—त्रिष्टुप्)

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् ॥१॥
सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भगइवेदर्यमणं निनाय।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥२॥
साध्वर्या अतिथिनीरिषिरा स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥३॥
आप्रुषायन् मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥ ४ ॥
अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत्।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥ ५ ॥
यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद् बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीरकृणोदुस्रियाणाम् ॥६॥
बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत्।
आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥७॥
अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम्।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥ ८ ॥
सोषामविन्दत् स स्वः सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥ ९ ॥
हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद् वलो गाः।

अग्नानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥१०॥
अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन्।
रात्र्या तमो अदधुर्ज्योतिरहन् बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः ॥११॥
इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः
स नृभिर्नो वयो धात्॥ १२ ॥

जैसे मेघों के समान शब्दवान्, जल में स्थिरस्थरीज, पक्षियों के समान शब्द वाली, रक्षा करने वाली और मेघों से धारा रूप से गिरती हुई उर्मियाँ शब्द करती हैं, वैसे ही बृहस्पति की स्तुति के लिए मंत्र गुंजते हैं ॥ १ ॥ महर्षि आंगिरस जैसे भग के समान गो घृत आदि सहित विवाह-काल में पति-पत्नी को अर्यमा देवता की शरण प्राप्त कराते हैं; वैसे ही इस दम्पति को अर्यमा देवता की शरण दिलावें। जैसे सूर्य प्रकाश के लिए अपनी रश्मियों को एकत्र करते हैं, वैसे ही इन पति-पत्नी को एक करें। हे बृहस्पते! युद्ध को उद्यत वीर जैसे अश्वों को संयुक्त करते हैं, वैसे ही इन वर वधु को संयुक्त करो ॥ २ ॥ कोठियों से जैसे अन्न निकालते हैं, वैसे ही बृहस्पति स्तोताओं, संतों और अतिथियों को तृप्तिकर सुन्दर वर्ण वाली बल द्वारा अपहृत गौओं को पर्वत से लाकर देते हैं ॥ ३ ॥ जैसे आदित्य उल्का को नीचे की ओर करके डालते हैं, वैसे ही बृहस्पति पृथिवी को सींचने वाले मेघों को अधोमुखी करके भेजते हैं और मणि द्वारा अपहृत गौओं को निकाल कर जैसे जल भूमि को पुलाते हैं, वैसे ही गौओं के खुरों से भूमि की त्वचा को पृथक् कर डालते हैं ॥ ४ ॥ बृहस्पति देवता, वायु के जल से सिवार पृथक् करने के समान गौओं को रोकने वाले लोह स्थित अंधेरे को प्रकाश से दूर करते हैं और बल के गो-स्थान का ध्यान करते हुए, जैसे वायु मेघ को छिन्न भिन्न कर देता है वैसे ही गौओं को इधर-उधर फैलाते हैं ॥ ५ ॥ जब बल के हिंसात्मक आयुध को बृहस्पति ने अग्नि के समान ताप वाले मंत्रों से नष्ट किया तब जैसे चबाए हुए अन्न को जिह्वा भक्षण करती है वैसे ही बल नामक असुर का उन्होंने भक्षण किया। उन्होंने पयस्विनी गौओं को प्रकट कर डाला[illegible] गुफा

में छिपी इन गौओं को बृहस्पति ने जान लिया तब पर्वत को चीर कर उन्हें ऐसे निकाल लिया, जैसे मोर आदि के अण्डे को चीर कर उसके गर्भ को निकालते हैं ॥ ७ ॥ जैसे जल के कम हो जाने पर मनुष्य नदी में स्थित मछलियों को देखता है, वैसे ही बृहस्पति ने पर्वत की गुफा पर ढके पत्थर को हटाकर गौओं को देखा। जैसे चमस पात्र को वृक्ष से निकालते हैं, वैसे ही गौ रूपधारी वल का हनन करके गुफा से गौओं को निकाला ॥ ८ ॥ अंधेरे में छिपी हुई गौओं को देखने के लिए बृहस्पति ने उषा को प्राप्त किया, इन्हीं बृहस्पति ने प्रकाश के निमित्त सूर्य को तथा अग्नि को प्राप्त किया ॥ ९ ॥ पत्तों को निःसार करके ग्रहण करने के समान बृहस्पति ने गौ रूप धन को ग्रहण किया। वल ने भी अपहृत गौएं बृहस्पति को दीं। बृहस्पति द्वारा ही सूर्य चंद्रमा, दिन और रात्रि को प्रकट करते हुए घूमते हैं यह बृहस्पति का ऐसा कर्म है, जिसे कोई अन्य नहीं कर सकता ॥१०॥ बृहस्पति ने जब गौओं के छिपाने वाले पर्वत को चीरा और गौओं को प्राप्त किया, तब पालन करने वाले देवताओं ने, अश्व को अलंकृत करने के समान द्युलोक को नक्षत्रों से अलंकृत किया। उन्होंने दिन में सूर्य रूप तेज और रात्रि में अंधकार को स्थापित किया ॥ ११ ॥ मेघ को चीरकर जल निकालने वाले बृहस्पति के लिए हम यह हवि देते हैं। वे हमारी स्तुति की प्रशंसा करें और गौओं से सम्पन्न अन्न दें तथा अश्व, पुत्र भृत्यादि से युक्त करें ॥ १२ ॥

१७ सूक्त

(ऋषि—कृष्णः। देवता—इन्द्रः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥१॥
न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत् कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥२॥
विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥३॥

वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद् विदत् स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥४॥
कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन् नोत नूतनः ॥५॥
विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद् वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥६॥
आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७॥
वृषा न क्रुद्धः पतयद् रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥८॥
उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥९॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु॥११॥
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१२॥

शुभ्र सुन्दर हाथ और वज्र वाले के स्तोत्र इन्द्र की स्तुति करते हैं। वह स्तोत्र स्वर्ग प्राप्ति में सहायक एवं परस्पर संयुक्त हैं वह सदा इन्द्र की कामना करते हैं। जैसे सन्तान-काम्या स्त्रियाँ पति से लिपटती हैं, जैसे पिता आदि को आते देखकर पुत्र उससे लिपट जाते हैं, वैसे ही मेरी स्तुतियाँ इन्द्र से लिपटती हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! मेरा मन तुमसे पृथक् कभी नहीं होता, वह सदा तुम्हारी ही कामना करता है। तुम शत्रुओं का नाश करने वाले हो। राजा के सिंहासन पर स्थित होने के समान तुम इस कुश रूप आसन पर

विराजमान होओ। इस सुसंस्कारित सोमयाग में 'तुम सोमपान करो ॥ २ ॥ वे इन्द्र हमारी क्षुधा को मिटावें, हमारी दरिद्रता को दूर करें। क्योंकि इन्द्र ही धनों के स्वामी हैं। इन इन्द्र की सप्त नदियाँ ही अन्न की वृद्धि करती हैं ॥ ३ ॥ पक्षियों के वृक्ष पर बैठने के समान यह हर्षदायक सोम इन्द्र का ही आश्रय लेते हैं। इन सोमों के दमकते हुए मुख ने सूर्य रूप वाली ज्योति को प्रकाश के लिए मनुष्यों को प्रदान किया ॥ ४ ॥ जुआरी जैसे पाश को ग्रहण करता है वैसे ही हमारी स्तुतियाँ इन्द्र को ग्रहण करती हैं, क्योंकि इन्द्र ने उस तम नाशक सूर्य को आकाश में प्रतिष्ठित किया है। हे इन्द्र तुम्हारे बल की अनुकृति अन्य किसी के द्वारा नहीं हो सकती। तुमसे प्राचीन और नवीन कोई भी तुम्हारे जैसा काम करने में समर्थ नहीं है ॥ ५ ॥ सभी उपासकों के पास वे कामनाओं के वर्षक इन्द्र एक समय में ही पहुँच जाते हैं, और सबकी स्तुतियों को एक ही समय सुन लेते हैं। ऐसे वे इन्द्र जिस यजमान के तीनों सवनों में प्रतिष्ठित होते हैं वह यजमान शक्ति प्रदायक सोम के प्रभाव से युद्ध-काम्य शत्रुओं को वश कर लेता है ॥६॥ जैसे जल सागरमें जाता है,जैसे छोटी नदियाँ सरोवर को प्राप्त होती हैं वैसे ही जब सोम इन्द्र की ओर जाते हैं तब स्तोतागण अपनी स्तुतियों से इन्द्र की महिमा को प्रवृद्ध करते हैं। जैसे जल देते हुए मेघ अन्न की वृद्धि करते हैं, वैसे ही स्तुति करने वाले विद्वान् अपने स्तोत्रों से इन्द्र की वृद्धि करते हैं ॥७॥ सूर्य से रक्षित जलों को जो इन्द्र पृथिवी पर गिराते हैं, वह क्रोधित वृषभ के समान मेघ को छिन्न-भिन्न करने के लिए जाते हैं और सोम को संस्कारित करने वाले हविदाता यजमान को तेज देते हैं ॥ ८ ॥ मेघ के विदीर्ण करने को इन्द्र का वज्र अपने तेज सहित प्रकट हो। जल का दोहन करने वाली वाणी पूर्ववत् प्रकट हो और अपने तेज से दमके। जैसे प्रकाशमान सूर्य अपने ही तेज से प्रकाशित होते हैं, वैसे ही साधुजन के रक्षक इन्द्र अत्यंत तेजस्वी हों ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी कृपा को प्राप्त करते हुए हम यजमान तुम्हारे द्वारा प्रदान की हुई गौओं से दरिद्रता को पार करे। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त अन्न से अपने मनुष्यों की क्षुधा शांत करें। हम तुम्हारी कृपा से अपने समान पुरुषों में श्रेष्ठ हों और राजा से धन पावें और फिर अपनी शक्ति से शत्रुओं

को पराजित करें ॥ १० ॥ बृहस्पति, उत्तर और ऊर्ध्व दिशाओं से आते हुए हिंसक पापियों से हमारी रक्षा करें। सम्मुख से और मध्य भाग से हुए हिंसकों से इन्द्र रक्षा करें। चारों ओर से हमारी रक्षा करते हुए सखा रूप इन्द्र हमको धन दें ॥ ११ ॥ हे बृहस्पते ! हे इन्द्र ! तुम दोनों आकाश और पृथिवी के धनों के स्वामी हो। अतः तुम स्तोता को धन देते हुए, अपने रक्षा साधनों द्वारा हमारी रक्षा करते रहो ॥ १२ ॥

१८ सूक्त [तीसरा अनुवाक]

(ऋषि—मेधातिथिः प्रियमेधश्च, वसिष्ठ। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखाय ।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥
न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत ॥ २ ॥
इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ ३ ॥
वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् । विद्धी त्वस्य नो वसो ॥४॥
मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे ।
त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥
त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥६॥

हे इन्द्र ! हम कण्वगोत्रिय ऋषि तुम सखा रूप की कामना करते हुए तुम्हारे प्रयोजनीय स्तोत्रों से स्तवन करते हैं ॥ १ ॥ हे वज्रिन् ! मैं नवीन यज्ञ के अवसर पर भी तुम्हारी ही स्तुति करता हूँ, अन्य देवता की नहीं करता ॥ २ ॥ इन्द्रादि देवता सोम को संस्कारित करने वाले यजमान को चाहते हैं और हर्षकारी सोम का ध्यान करते ही प्रमाद रहित हो जाते हैं ॥ ३ ॥ हे अभीष्ट वर्षक इन्द्र ! हम तुम्हारी कामना करते हुए तुम्हारे सामने स्तुति करते हैं, अतः तुम भी हमारे स्तोत्र की कामना करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हमको, क्रूर वचन कहने वाले, निंदक, अदानशील शत्रुओं के
करो। मेरी यह स्तुतियाँ तुम्हारे निमित्त ही हैं, इन्हें स्वीकार

हे वृत्रहन इन्द्र ! तुम आगे बढ़कर युद्ध करते हो, तुम अत्यंत महान् हो। तुम ही मेरे लिए कवच के समान रक्षक होते हो। मैं तुम्हें सहायक रूप में पाकर शत्रुओं को ललकारता हूँ ॥ ६ ॥

१६ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्र । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥१॥
अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥२॥
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥३॥
पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४ ॥
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे । भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥
वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो । इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥६॥
द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥७॥

हे इन्द्र ! वृत्र हनन जैसे कर्म के लिए बल प्रदर्शनार्थ और शत्रु सेनाओं को तिरस्कृत करने के निमित्त हम तुम्हें अपने सामने बुलाते हैं ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम सैकड़ों कर्म करने वाले हो । यज्ञ का निर्वाह करने वाले ऋत्विज तुम्हें हमारे सामने करें और अपनी दृष्टि को भी हमारे लिए कृपा से पूर्ण करो ॥ २ ॥ हे शतक्रतो इन्द्र ! युद्ध स्थल में हम तुम्हारे सहस्राक्ष, पुरन्दर आदि नामों को स्तुति रूप से गाते हैं ॥ ३ ॥ इन्द्र अनेक स्तोताओं द्वारा पूजनीय हैं, वे मनुष्यों के रक्षक और सैकड़ों तेजों से युक्त हैं। हम उन्हीं इन्द्र का पूजन करते हैं ॥ ४ ॥ रणक्षेत्र में अनेक योद्धाओं द्वारा विजय के लिए आहूत तथा यज्ञ में अनेक यजमानों द्वारा आहूत इन्द्र को मैं पाप निवारणार्थ और बल प्राप्ति के लिए पूजता हूँ ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! युद्ध में तुम शत्रुओं का तिरस्कार करने वाले होओ मैं पाप के निवारणार्थ भी तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! धन प्राप्ति के समय, युद्ध की प्राप्ति पर, अन्न की प्राप्ति के समय, पापों और शत्रुओं का नाश करते समय तुम हमारे सहयोगी बनो ॥ ७ ॥

२० सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः; गृत्समदः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री; अनुष्टुप्)

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् ।
इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ १ ॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।
इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ २ ॥
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् ।
उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ ३ ॥
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ४ ॥
इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ५ ॥
इन्द्रश्च मृडयाति नो न नः पश्चादघं नशत् ।
भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ६ ॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! अत्यंत बल करने वाले, दुःस्वप्न के नाशक, तेज से दमकते हुए सोम को हमारी रक्षा के लिए पियो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे देखने सुनने योग्य जो बल देवता, पितर, असुर और मनुष्यों में हैं, मैं उन्हें प्राप्त करूँ ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा अपरिमित अन्न हमें मिले, तुम शत्रुओं से पार लगाने वाले धनों को हममें व्याप्त करो । इस सोम और स्तोत्र द्वारा हम तुम्हारे बल की वृद्धि करते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम शक्तिशाली हो । तुम समीप या दूर जहाँ कहीं भी हो वहीं से हमारे पास आओ । तथा अपने उत्कृष्ट लोक से सोम पीने के लिए यहाँ आगमन करो ॥ ४ ॥ ...
प्राप्त भीषण भय को इन्द्र हमसे दूर करते हैं वे इन्द्र सदा

वाले और सर्वद्रष्टा हैं ॥ ५ ॥ हमारे रक्षक इन्द्र हमको सुखी करें । इन्द्र की रक्षाओं से हमारे दुःखों का नाश होगा और हमारा कल्याण होगा ॥ ६ ॥ सब दिशाओं से प्राप्त होने वाले भयों को इन्द्र दूर करें क्योंकि यह सब दिशाओं में हमारे शत्रुओं को सूक्ष्म रूप से देख लेने में समर्थ हैं ॥७॥

२१ सूक्त

(ऋषि—सव्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—जगती; त्रिष्टुप्)

न्यू षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥१॥
दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥२॥
शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥३॥
एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥
समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥ ५ ॥
ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥६॥
युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥७॥
त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥८॥
त्वमेतां जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥९॥

त्वामाविय सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥१०॥
य उद्दचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ११ ॥

हम इन इन्द्र के लिए सुन्दर स्तोत्र प्रस्तुत करते हैं । यजमान के यज्ञ मंडप में इनके लिए सुन्दर स्तुतियाँ कही जा रही हैं । सोने वाले पुरुष के धन को चोर द्वारा शीघ्रता से ले लेने के समान ये इन्द्र असुरों के धन को शीघ्रता से ले लेते हैं । मैं उन इन्द्र की भले प्रकार से स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम गौ, अश्व, गज, अन्न आदि के देने वाले हो और हिरण्य रत्नादि भी देते हो । तुम अत्यंत प्राचीन हो, तुम अपने उपासकों की कामनाओं को प्रवृद्ध करते हो । ऐसे ऋत्विजों के सखा रूप इन्द्र की हम स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यंत मेधावी, यशी और बहुकर्मा हो । सर्वत्र व्याप्त धन के तुम ही स्वामी हो । तुम हमको धन प्रदान करो । मैं तुम्हारी कामना करता हुआ स्तुति करता हूँ । मुझे तुम अपूर्ण मत रहने दो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! हमारी हवियों और सोमों से प्रसन्न होते हुए तुम हमको बहुत से गौ और अश्वादि धन देकर हमारे दारिद्र्य को नष्ट करो । तुम सुन्दर मन वाले हो । हम अपने शत्रुओं को क्षीण करने के लिए इन्द्र को सोम द्वारा प्रसन्न करते हुए शत्रु विहीन होते और दिये हुए अन्न से सम्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हम सब की इच्छा किये हुए तुम्हारे धन से सम्पन्न हों । हम प्रजाओं को प्रसन्न करने वाले बल से युक्त हों । तुम्हारी कृपामयी बुद्धि हमें प्राप्त हो और वह हमारे लिये गौओं को देने वाली तथा क्लेशों का निवारण करने वाली हो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुम साधुजनों के रक्षक हो । शत्रु-नाश का अवसर प्राप्त होने पर हमारा हव्य तुम्हें हर्षित करे और हमारे स्तोत्र द्वारा प्रवृद्ध होकर तुम हमारे लिए अभीष्ट फलों के वर्षक होओ । जब तुम अपने स्तोता यजमान के लिए कर्म करो तब यह सोम तुम्हारे लिये हर्षप्रदायक हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने प्रहार-साधन वज्र से शत्रुओं के यज्ञों पर आक्रमण करते हो और शत्रु के नगर में वास करने वाले वीरों को मरुद्गण

आदि वीरों द्वारा नष्ट कराते हो । तुमने ही मायावी नमुचि का संहार कर डाला था, इसलिये हम तुम्हारा स्तव करते हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुमने अपनी अत्यंत तेज वाली वर्तनी नामक शक्ति के द्वारा अतिथिगु नामक राजा के शत्रु करंजासुर का वध किया था । तुम्हीं ने पर्णयासुर का भी वध किया । ऋजिश्वन् नामक राजा के शत्रु वङ्गृदासुर के सौ पुरों का भी तुमने ही ध्वंस किया था ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुमने असहाय राजा सुश्रुवा को घेरने वाले साठ हजार निन्यानवे सेनाध्यक्षों को अपने उस चक्र से नष्ट किया, जिस चक्र को शत्रु प्राप्त नहीं कर सकते ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! सुश्रुवा की तुमने रक्षा की और उसी के लिए तूर्वयाण नामक राजा की रक्षा की । तुमने सुश्रुवा को कुत्स, अतिथिगु और आयु का आश्रय प्राप्त कराया ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! इस यज्ञ की सम्पन्नता के समय हम तुम्हारी रक्षा प्राप्त करें । हम तुम्हारे सखा रूप हैं इसलिए हम मंगल को प्राप्त हों । यज्ञ के सम्पूर्ण होने पर भी तुम्हारी स्तुति करते हुए हम सुन्दर पुत्रों वाले हों और दीर्घजीवन को प्राप्त करें ॥ ११ ॥

२२ सूक्त

(ऋषि—त्रिशोकः; प्रियमेधः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ १ ॥
मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।
माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २ ॥
इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे ।
सरो गौरो यथा पिब ॥ ३ ॥
अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि ।
यत्राभि संनवामहे ॥ ५ ॥
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।

यत् सोमुपहुरे विदत् ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! सोम के संस्कारित होने पर सोम पीने के लिए हम तुम्हें संगत करते हैं । उस हर्षदायक सोम को उदरस्थ करते हुए तृप्ति को प्राप्त होओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी सहायता विना अपनी रक्षा की स्वयं कामना करने वाले मूर्ख तुम्हें हिंसित न कर पावें । तुम ब्राह्मणों से द्वेष करने वालों की सेवा स्वीकार मत करो । तुम्हारे प्रति व्यंग करने वाले तुम्हें दबाने में समर्थ न हों ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! इस गोरस मिश्रित सोम से ऋत्विज इस यज्ञ में तुम्हें प्रसन्न करें । जैसे प्यासा मृग सरोवर पर जाकर जल पीता है, वैसे ही तुम सोम का पान करो ॥ ३ ॥ हे स्तुति करने वालो ! इन्द्र हमें जिस प्रकार अपना मानें उस प्रकार तुम उनका पूजन करो। यह यज्ञ के पुत्र रूप इन्द्र सत्य फल से युक्त हैं और साधुजनों के रक्षक हैं ॥ ४ ॥ इन्द्र के सुन्दर अश्व उनके रथ को हमारे स्तुति-स्थान पर बिछी हुई कुशाओं के समीप लावें ॥ ५ ॥ जब पास ही रखे हुए मधुर सुस्वादु सोम को इन्द्र पीते हैं, तब उन यज्ञारम्भ करने वाले के लिए गौएं मधुर दुग्ध का दोहन करती हैं ॥ ६ ॥

२३ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

आ तू न इन्द्र मद्रयग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥१॥

सत्ता होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् ।
अयुज्रन् प्रातरद्रयः ॥ २ ॥

इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद ।
वीहि शूर पुरोडाशम् ॥ ३ ॥

रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥४॥

मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥५॥

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥६॥

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥७॥

मारे अस्मद् वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि ।
इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥
अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ॥९॥

हे वज्रिन् ! हमारे यज्ञ में आहूत किये जाते हुए तुम अपने हरित् अश्वों के द्वारा सोम पीने के लिए आओ ॥१॥ हे इन्द्र ! हमारे यज्ञ के अवसर पर होता उपस्थित हैं और वेदी में कुशा भी बिछे हुए हैं और सोम का संस्कार करने वाले पाषाण भी प्रस्तुत हैं॥ २ ॥ हे इन्द्र ! इन कुशाओं पर प्रतिष्ठित होओ और हमारे द्वारा प्रदत्त हवि का सेवन करो । हम तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम वृत्रहन और स्तुतियों द्वारा सेवा करने योग्य हो। अतः तुम तीनों सवनों के स्तोत्रों में व्याप्त होओ ॥ ४ ॥ जैसे गौ अपने वत्स को चाटती है, वैसे ही हमारी स्तुतियाँ सोमपायी इन्द्र को प्राप्त होती हैं ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! शरीर में बल भरने के लिए सोम की शक्ति से युक्त होओ। बहुत से धन-दान के लिए हर्षित होओ । मैं तुम्हारी स्तुति करने वाला किसी अन्य का निन्दक न होऊँ ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! हम सोम रूपी हवियों से सम्पन्न होकर तुम्हारी कामना करते हैं । तुम हमको अभीष्ट फल दो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने अश्वों को प्रिय मानते हो । अपने रथ में संयुक्त उन अश्वों को दूर न छोड़कर रथ पर चढ़े हुए ही हमारे सामने आओ और इस यज्ञ सोम को पीकर हर्ष में भरो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे श्रम की बूंदों से भीगे हुए अश्व तुम्हें सुखी करने वाले रथ पर आरूढ़ कर इस कुशा पर विराजमान करने के लिए हमारे सामने लावें ॥ ९ ॥

२४ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् ।
हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ १ ॥
तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतम् ।
कुविन्न्वस्य तृप्णवः ॥ २ ॥

इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः। आवृते सोमपीतये ॥३॥
इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे। उक्थेभिः कुविदागमत् ॥४॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो। जठरे वाजिनीवसो ॥५॥
विद्मा हि त्वा धनंजयं वाजेषु दधृषं कवे। अधा ते सुम्नमीमहे ॥६॥
इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब।
आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७ ॥
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोमं चोदामि पीतये।
एष रारन्तु ते हृदि ॥ ८ ॥
त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे। कुशिकासो अवस्यवः ॥९॥

हे इन्द्र! हमारे गव्यमय सोम के पास आओ। तुम्हारा अश्वों से युक्त रथ हमारे यहाँ आना चाहता है ॥ १ ॥ हे इन्द्र! कुशाओं पर रखे इस सुखकारी सोम की ओर आगमन करो और इसे पीकर तृप्त होओ ॥ २ ॥ हमारी स्तुति रूप वाणियाँ इन्द्र को हमारे यज्ञ स्थान में लाने के निमित्त इन्द्र के पास जाती हैं ॥ ३ ॥ सोम पीने के लिए इन्द्र को हम स्तुतियों द्वारा आहूत करते हैं, वे हमारे यज्ञ में अनेक बार आगमन करें ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! यह सोम यमन आदि तुम्हारे निमित्त एकत्र किये गये हैं, इन्हें तुम अपने उदरस्थ करो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र! हम तुम्हें जानते हैं कि तुम युद्धावसर शत्रुओं को वश में करने वाले और धनों के विजेता हो, इसलिए हम तुमसे सुख देने वाले धन को माँगते हैं ॥६॥ हे इन्द्र! पाषाणों से निष्पन्न और गव्य मिश्रित सोम का आकर पान करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र! इस सोम को पीकर उदरस्थ कर लेने के लिए मैं तुम्हें प्रेरित करता हूँ। यह सोम पीने के पश्चात् तुम्हें हृदय में रमा रहे ॥ ८ ॥ हे इन्द्र! हम कौशिक तुम्हारी रक्षा की कामना करते हुए निष्पन्न सोम को पीने के लिए आहूत करते हैं ॥ ९ ॥

२५ सूक्त

(ऋषि—यमः । देवता—इन्द्र । छन्द—जगती; त्रिष्टुप,)

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः।

तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥१॥
आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वराइव ॥२॥
अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥३॥
आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥४॥
यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥५॥
बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥६॥
प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि-सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥७॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे द्वारा रक्षित हुआ पुरुष बहुसंख्यक अश्वों वाले युद्ध में अश्वारोहियों में प्रमुख होता है और गौओं वाले पुरुषों में भी श्रेष्ठ होता है । जैसे जल समुद्र को सब ओर से भरते हैं, वैसे ही तुम भी अनेक प्रकार से प्राप्त होने वाले धन से उसे पूर्ण करते हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जैसे जल नीचे की ओर बह कर समुद्र में जाता है, वैसे ही स्तुतियाँ तुम में जा मिलती हैं । जैसे सूर्य के प्रकाश की चकाचौंध से मनुष्य नीचे की ओर देखने लगते हैं, वैसे ही तुम्हारे तेज से दृष्टि चुराते हैं । जैसे स्तोता तुम्हें वेदी के सामने करते हैं, वैसे ही ऋत्विज् तुम्हारी सेवा करते हैं ॥ २ ॥ जिनमें यज्ञ साधन पात्र रखे हैं ये उन पात्रों के द्वारा इन्द्र का पूजन करते हैं । उन पर स्तुति योग्य उक्थ स्थापित किया गया है । हे इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त किये जाते इस यज्ञ को करने वाला यजमान संतान और पशु आदि से सम्पन्न हो और वह कल्याणमयी शक्ति को प्राप्त करे ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! पणियों द्वारा गौओं का अपहरण कर लेने पर अङ्गिराओं ने प्रथम तुम्हारे लिए ही हविरन्न का संपादन

किया था। यह अङ्गिरावंशी ऋषि अपने सुन्दर कर्मों से आह्वानीय अग्नि को प्रदीप्त रखते हैं। इनके नेताओं ने पणि से छीना हुआ गौ, अश्व, भेड़, बकरी आदि के रूप में बहुत सा धन प्राप्त किया था ॥ ४ ॥ महर्षि अथर्वा ने इन्द्र के लिए यज्ञ करते हुए चुराई हुई गायों के मार्ग को सूर्य से पहिले ही जान लिया था। जब सूर्य उदित हो गए तब कवि के पुत्र उशना ने गौओं को इन्द्र की सहायता से प्राप्त किया था। उन अविनाशी इन्द्र का हम पूजन करते हैं ॥ ५ ॥ सुन्दर संतान रूप फल की प्राप्ति के लिए यज्ञ की जो कुशा विस्तृत की जाती है, जिस वाणी रूप स्तोत्र का यज्ञ में उच्चारण किया जाता है, जिस यज्ञ में सोम का अभिषव करने वाला पाषाण स्तुति करने वाले के समान शब्द करता है, वहाँ इन्द्र विराजमान होते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र! तुम हर्यश्व द्वारा श्रेष्ठ गमन करने वाले और अभीष्टों के वर्षक हो। तुम्हारे लिए मैं सोम-रस पीने की प्रेरणा करता हूँ। तुम स्तुतियों से हमारे इस यज्ञ में प्रसन्न होओ ॥ ७ ॥

२६ सूक्त

(ऋषि—शुनःशेपः; मधुच्छन्दाः। देवता—इन्द्र। छन्द—गायत्री)

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये ॥१॥
आ घा गमद् यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः।
वाजेभिरुप नो हवम् ॥ २ ॥
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्। यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥३॥
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि ॥४॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥५॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥६॥

यज्ञावसर या युद्ध की प्राप्ति पर हम सखा रूप इन्द्र को आहूत करते हैं और अन्न प्राप्ति के अवसर पर भी हम उन्हें ही बुलाते हैं ॥ १ ॥ वे इन्द्र मेरे आह्वान को सुनकर अपने रक्षा साधनों और अन्नों सहित यहाँ आवें ॥२॥ हे इन्द्र! तुम प्राचीन स्वर्ग के स्वामी और असंख्य वीरों के प्रतिनिधि रूप

पिता ने भी पहले तुम्हारा आह्वान किया था । अतः मैं भी तुम्हें
करता हूँ ॥ ३ ॥ इन्द्र के महान्, दैदीप्यमान, विचरणशील रथ में
संयुक्त होते हैं । वे अश्व आकाश में दमकते रहते हैं ॥ ४ ॥ इन्द्र के
इनके रथ में घोड़ों को जोड़ते हैं, यह घोड़े रथ के दोनों ओर रहते
यह अश्व कामना करने के योग्य एवं आरूढ़ कराने वाले हैं ॥ ५ ॥
नुष्यो ! अंधकार में छिपे पदार्थों को अपने प्रकाश से रूप देने वाले और
ानी को ज्ञान देने वाले सूर्य किरणों सहित उदय हो गए, इनके दर्शन
ो ॥ ६ ॥

२७ सूक्त

(ऋषि—गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥ १ ॥
शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे ।
यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते ।
गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥
न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः ।
यद् दित्ससि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत् ।
चक्राण ओपशं दिवि ॥ ५ ॥
वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।
ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यवान् हो । तुम जैसे देवताओं में श्रेष्ठ धनों के
स्वामी हो, वैसे ही मैं भी धन का स्वामी होऊँ । जैसे तुम्हारी स्तुति करने
वाला गौओं का मित्र होता है, वैसे ही मेरी प्रशंसा करने वाला गौ आदि को
प्राप्त करने वाला हो ॥ १ ॥ हे शचिपते ! जब तुम्हारी कृपा से मैं गौओं

सम्पन्न हो जाऊँ तब इस स्तुति करने वाले विद्वान् को धन देने की इच्छा करता हुआ इसे धन दे सकूँ ॥२॥ हे इंद्र ! हमारी सत्य वाणी तुम्हें गौ के समान तृप्तिकर हो और सोम का संस्कार करने वाले यजमान की वृद्धि करे। यह गवादि अभीष्ट पदार्थों का दोहन करती है ॥३॥ हे इंद्र। तुम्हारे धन-दान को कोई रोक नहीं सकता। देवगण तुम्हारे धन को अन्यथा नहीं कर सकते और मनुष्य भी तुम्हारे धन को मिटाने में समर्थ नहीं हैं। हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर यदि तुम हमको धन प्रदान करना चाहो तो उस धन को कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥४॥ जो इंद्र अन्तरिक्ष में मेघ को विस्तृत करते और पृथिवी को वर्षा के जल से फुलाते हैं। वे ही वर्षा के जल से भूमि के प्राणियों को पुष्ट करते हैं। तब हमारी हवियाँ इंद्र की वृद्धि करती हैं ॥५॥ हे इंद्र ! तुम स्तुतियों से प्रवृद्ध होते हो। तुम्हारी शत्रु के धनों को जीतने और रक्षा करने वाली शक्ति का वरण करते हैं ॥६॥

२८ सूक्त

(ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री)

व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना ।
इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥१॥
उद्‌गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः ।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥२॥
इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि दृंहितानि च ।
स्थिराणि न पराणुदे ॥३॥
अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते ।
वि ते मदा अराजिषुः ॥४॥

सोम-पान से उत्पन्न शक्ति के द्वारा इन्द्र ने जब मेघ को चीरा तब अन्तरिक्ष को वर्षा के जल से प्रवृद्ध किया ॥१॥ अंगिराओं के लिए इन्द्र ने कन्दरा में छिपी गौओं को प्रकट किया और उन्हें निकाल कर

को भी अधोमुख कर पतित किया ॥२॥ आकाश में स्थित ग्रहों और
को इंद्र ने स्थिर और दृढ़ किया। इसलिये अब उन्हें कोई गिरा नहीं
ा ॥३॥ हे इन्द्र ! वर्षा के जल से समुद्र आदि को हर्षित करता हुआ
के समान तुम्हारा स्तोत्र मुख से प्रकट होता है। सोम-पान के पश्चात्
हारी शक्ति विशिष्ट होती है ॥४॥

२९ सूक्त

(ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री)

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः ।
स्तोतॄणामुत भद्रकृत् ॥१॥
इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः ।
उप यज्ञं सुराधसम् ॥२॥
अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः ।
विश्वा यदजय स्पृधः ॥३॥
मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः ।
अव दस्यूँरधूनुथाः ॥४॥
असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः ।
सोमपा उत्तरो भवन् ॥५॥

हे इन्द्र ! तुम स्तोत्रों और उक्थों से बढ़ते हो और स्तुति करने वालों के लिए कल्याणप्रद हो ॥१॥ इन्द्र के हर्यश्व सुन्दर फल वाले हमारे यज्ञ में इन्द्र को सोम पीने के लिए लावें ॥२॥ हे इन्द्र ! तुमने नमुचि नामक राक्षस का सिर जल के फेन का वज्र बनाकर काट डाला और प्रतिस्पर्द्धी सेनाओं पर विजय प्राप्त की ॥३॥ हे इन्द्र ! अपनी माया से आकाश पर चढ़ने की इच्छा करने वाले असुरों को तुम अधोमुखी करते हुए पतित करते हो ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम सोम पीकर बलवान होते हो और जहाँ सोम का अभिषव नहीं हो, वहाँ के समाज को नष्ट कर देते हो ॥५॥

३० सूक्त

(ऋषिः—बरुः सर्वहरिर्वा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—जगती)

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः ॥१॥
हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥२॥
सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥३॥
दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद् वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिंभरः ॥४॥
त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्यमसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥५॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे अश्व शीघ्र गमन वाले हैं, इस विशाल यज्ञ में मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ । तुम शत्रुओं के हननकर्त्ता हो, सोम पीने से उत्पन्न हुई शक्ति द्वारा मैं अपने अभीष्ट फल को माँगता हूँ । जैसे अग्नि में घृत सींचा जाता है, वैसे ही इन्द्र अपने हर्यश्वों सहित आते हुए सुन्दर धन की वृष्टि करते हैं । उनको हमारे स्तोत्र प्राप्त हों ॥१॥ प्राचीन महर्षियों ने इन्द्र को यज्ञ में शीघ्रता से बुलाने के लिए इन्द्र के अश्वों को प्रेरित किया, वह स्तोत्र मूल रूप से इन्द्र के निमित्त ही था । नव प्रसूता गौ जैसे क्षीर देकर स्वामी को तृप्त करती हैं, वैसे ही सोमों के द्वारा यजमान इन्द्र को तृप्त करते हैं । हे ऋत्विजो ! उन शत्रु-शोषक, बलवान् हर्यश्वयुक्त इन्द्र का पूजन करो ॥२॥ इन्द्र का लौह वज्र भी हरा है, इन्द्र का कमनीय देह भी हरे रंग का है । इनके पास हरे रंग वाला ही वाण रहता है तथा इनकी सब साज सज्जा हो हरे रंग की है ॥३॥ इन्द्र का वज्र सूर्य के समान अंतरिक्ष में स्थित है, जैसे सूर्य के घोड़े वेग से लक्ष्य को प्राप्त होते हैं, वैसे ही इन्द्र का वज्र वेग से

तव्य स्थान को प्राप्त होता है। अपने हरित् वज्र के द्वारा इन्द्र ने वृत्रासुर
को संतप्त किया और उन्होंने उसके सहस्रों साथियों को शोक प्राप्त कराया ॥४॥
हे इन्द्र ! तुम्हारे केश भी हरे रंग के हैं। जहाँ सोम रूप हवि है वहाँ तुम
हो। तुम स्तुति प्राप्त करके हवि की इच्छा करते हो और अब भी कर रहे हो।
तुम अपने हर्यश्वों सहित यज्ञ में आते हो। ऐसे हे इन्द्र ! यह सोम, अन्न
और उक्थ तुम्हारे ही हैं ॥५॥

सूक्त ३१

(ऋषिः—वरुः सर्वहरिर्वा ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—जगती)

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥१॥
अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन् हरयो हरी तुरा ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥२॥
हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥३॥
स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः ।
प्र यत् कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥४॥
उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योरत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद् वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥५॥

सोमोत्पन्न शक्ति के निमित्त इन्द्र के अश्व उन्हें हमारे यज्ञ में ला रहे
हैं। तीनों सवनों वाले सोम इन्द्र को धारण करते हैं ॥१॥ हरे रंग वाले सो
युद्धों में अटल रहने वाले इन्द्र को धारण करते हैं, वही सोम उनके घो
को यज्ञ की ओर प्रेरित करते हैं। जो इन्द्र अपने घोड़ों द्वारा वेग से यज्ञ
आगमन करते हैं, वे सोम वाले यजमान के पास पहुँचते हैं ॥२॥ इन्
केश, दाढ़ी, मूँछ सब हरे रंग के हैं ! वे सोम के संस्कारित होने पर सो
पीते हुए वृद्धि को प्राप्त होते हैं। अपने द्रुतगामी अश्वों से वे सोम प

आते हैं, हवि उनका धन रूप है। वे अपने रथ में घोड़ों को जोड़ कर हमारे सब पापों का नाश करें ॥३॥ जैसे यज्ञ में रथ चलते हैं, वैसे ही इन्द्र की हरे रंग की चिबुक सोम पीने के लिए चलती है। जब सोम से चमस पूर्ण होता है तब उसका पान करते हुए इंद्र की चिबुक फड़कती है। उस समय वे अपने अश्वों का परिमार्जन करते हैं ॥४॥ इनका निवास द्यावा पृथिवी में है। अश्व जैसे युद्ध के लिए अग्रसर होता है, वैसे ही अपने अश्वों पर चढ़े हुए इंद्र यज्ञ स्थान की ओर अग्रसर होते हैं। हे इन्द्र! हमारा स्तोत्र तुम्हारी कामना करता है, तुम भी यजमान की कामना करते हुए आकर उसे अपरिमित धन देते हो ॥५॥

३२ सूक्त

(ऋषि:—वरुः सर्वहरिर्वा ॥ देवता—इंद्रः ॥ छंदः—जगती; त्रिष्टुप्)

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥१॥
आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन् यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥२॥
अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व ॥३॥

हे इंद्र! तुम अपनी महिमा से आकाश और पृथिवी को व्याप्त करते हो। तुम सदा नवीन रहने वाले हो। तुम हमारे प्रिय स्तोत्र की इच्छा करते हो। तुम पणियों द्वारा अपहृत गौओं के स्थान को सूर्य को देते हो। वह सूर्य स्तुति करने वाले को उस गोष्ठ को दें, ऐसी कृपा करो ॥१॥ हे इन्द्र! तुम सोम पीने की इच्छा करने वाले और सोम पीने से हरे रंग की हुई ठोड़ी वाले हो। तुमको रथ में जुड़े घोड़े यहाँ लावें। चमस आदि में रखे हुए सोम वाले घर में आकर तुम सोम पी सको इसलिए तुम्हें अश्व यहाँ ले आवें ॥२॥ हे इन्द्र! तुम प्रातः सवन में सोम पान कर चुके हो, अब [illegible]

सवन भी तुम्हारा ही है। अतः इस सवन में सोम पीकर हृष्ट होओ। इस सोम को एक साथ ही उदरस्थ कर लो ॥३॥

सूक्त ३३

(ऋषिः—अष्टक; ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्)

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ॥१॥

प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥२॥

ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥३॥

हे इन्द्र ! अध्वर्युओं द्वारा संस्कारित इस सोम को पीकर उदर को पूर्ण करो। जिस सोम को पाषाण निष्पन्न कर चुके हैं, उसे पीते हुए हर्षयुक्त होओ ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम इच्छित फल-वर्षक हो। मैं तुम्हें सोम की प्रचंड शक्ति रूपी बल के लिए प्रेरित करता हूँ। तुम यज्ञ कर्म में हवि और स्तुतियों से प्रशंसित और तृप्त होओ ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे द्वारा रचित पुत्रादि रूप संतान और अन्न से सम्पन्न सत्यफल के ज्ञाता और तुम्हें चाहने वाले ऋत्विज यजमान के घर में तुम्हारी स्तुति करते हुए बैठे हैं ॥३॥

३४ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥१॥

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपितां अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥२॥

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३॥
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाल्लँक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४॥
यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विजइवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५॥
यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६॥
यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥७॥
यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥८॥
यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव या अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥९॥
यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१०॥

इन्द्र के बल से आकाश पृथिवी भयभीत रहते हैं। उन इन्द्र ने प्रकट होते ही अन्य देवताओं को रक्ष्य रूप में ग्रहण किया ॥ १ ॥ हे असुरो ! जिन्होंने विचलित भूमि को स्थिर किया, जिन्होंने पंख वाले पर्वतों के पंख काटकर अचल कर दिया, जिन्होंने अंतरिक्ष और आकाश को भी स्तम्भित किया, वह इन्द्र हैं ॥ २ ॥ जिस इन्द्र ने अंतरिक्ष में घूमने वाले मेघ को चीर कर नदियों को प्रेरित किया और बल द्वारा अपहृत गौओं को प्रकट किया। जिन्होंने मेघों में व्याप्त पाषाणों से विद्युत को उत्पन्न किया, जो युद्धों में शत्रुओं का नाश करते हैं, वही इन्द्र हैं ॥ ३ ॥ हे असुरो ! जिन्होंने दृश्यमान लोकों को स्थिर किया, जिन्होंने असुरों को गुफाओंमें डाल दिया, जिन्होंने भरदत्त शत्रुओं पर विजय पाई और शत्रु के धनों को छीन लेते हैं

नाशक उन इन्द्र के संबंध में लोग विविध शंकाएं करते हैं, वह शत्रु-
क सेनाओं का समूल नाश करते हैं । हे मनुष्यों ! उन इन्द्र पर विश्वास
ो, उनके प्रति श्रद्धावान होओ । वृत्रादि शत्रुओं को उनके सिवाय और
न जीतता ? वे शत्रु-विजेता इन्द्र हैं ॥ ५ ॥ जो इन्द्र निर्धनों को धन और
असहायों को सहायता देते हैं, जो स्तोता ब्राह्मणों को इच्छित प्रदान करते हैं।
जिनकी चिबुक सुन्दर है और जो सोम को संस्कारित करने वाले यजमानों
के रक्षक हैं । हे मनुष्यो ! वह इन्द्र हैं ॥ ६ ॥ माँगने वालों को देने के लिए
जिन इन्द्र के पास वहुत से अश्व, गौएं, ग्राम, रथ, गज, ऊँट आदि सब कुछ
हैं और जिन इन्द्र ने प्रकाश के लिए सूर्य का उदय किया है और उषा को
प्रकट किया है । जो वर्षा के जलों के प्रेरक हैं, वे इन्द्र हैं ॥ ७ ॥ आकाश
और पृथिवी परस्पर एकमत हुए इन्द्र का आह्वान करते हैं । द्युलोक हवि के
लिए और पृथिवी वृष्टि के लिए उन्हें आहूत करते हैं । समान रथ में बैठे
हुए सेनापति जिन्हें आहूत करते हैं, वह इन्द्र ही हैं ॥ ८ ॥ जिनकी सहायता
के बिना विजय की कामना करने वाले व्यक्ति शत्रुओं को हरा नहीं सकते ।
इसलिए युद्धावसर पर वे रक्षा के लिए इन्हें बुलाते हैं । जो इन्द्र अचल
पर्वतों को हटाने में समर्थ हैं और जो प्राणियों के पुण्य पाप के द्रष्टा हैं,
वह इन्द्र हैं ॥ ९ ॥ महापापियों और इन्द्र की सत्ता को न मानने वालों को
जो इन्द्र हिंसित करते हैं, जो अपने कर्मों में इंद्र की अपेक्षा नहीं करते,
उनके जो प्रतिकूल रहते हैं, जो वृत्र आदि असुरों के हिंसक हैं, हे मनुष्यो !
वह इन्द्र हैं ॥ १० ॥

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥
यः शम्बरं पर्यतरत् कसीभिर्योऽचारुकास्नापिबत् सुतस्य ।
अन्तर्गिरौ यजमानं बहुं जनं यस्मिन्नामूर्छत् स जनास इन्द्रः ॥१२॥
यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१३॥

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१४॥
यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१५॥
जातो व्यख्यत् पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितुः परस्य ।
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स जनास इन्द्रः ॥१६॥
यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा ।
यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥१७॥
यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१८॥

जिन इंद्र ने चालीस वर्ष तक पर्वत में छिपकर घूमते हुए शम्बर का वध किया, जिन्होंने शयन करने वाले बली वृत्र का संहार किया, वह इन्द्र हैं ॥११॥ जिन इंद्र की हिंसा के लिए असुरों ने सोमयागकर्त्ता अध्वर्युओं को घेर लिया, जिन इंद्र ने वज्र से शम्बर का दमन किया और जो निष्पन्न सोम को पी चुके हैं, वह इन्द्र हैं ॥१२॥ जो जलों की वर्षा करने वाले हैं, जो कामनाओं के भी वर्षक हैं, जो सात रश्मियों वाले सूर्य रूप से स्थित हैं, जिन्होंने वज्र ग्रहण कर आकाश पर चढ़ते हुए रौहिणासुर का वध किया और जिन्होंने सात नदियों को उत्पन्न किया, वह इन्द्र हैं ॥१३॥ जिनके समक्ष आकाश पृथिवी झुकती हैं, जिनके बल से पर्वत भी काँपते हैं, जो सोम पीकर दृढ़ शरीर वाले और बलवान बाहुओं वाले हैं, जो वज्र को धारण करते हैं, वह इन्द्र हैं ॥१४॥ जो हवि पाक करने वाले और सोम का संस्कार करने वाले यजमान के रक्षक हैं। जो रक्षा के लिए साम गान करने वाले के रक्षक हैं, सोम और स्तोत्र जिन्हें बढ़ाते हैं, हमारा हविरन्न जिन्हें पुष्ट करता है, हे मनुष्यो ! वह इन्द्र हैं ॥१५॥ जो प्रकट होते ही आकाश पृथिवी में व्याप्त हुए, जो पृथिवी रूप माता और पितृ स्थानीय आकाश को भी नहीं [illegible] और जो हमारी स्तुतियों से ही देवताओं को पूर्ण करते हैं, वे इ[illegible] ॥

जो अश्वों को चलाते हुए सोम की कामना करते हैं, जिन्होंने शम्बर को मार डाला, शुष्ण का वध किया, जिनसे सभी प्राणी भयभीत होते हैं क्योंकि वे असाधारण वीर हैं, वह इन्द्र हैं ॥१७॥ हे इन्द्र ! तुम दुर्धर्ष होते हुए भी पुरोडाश का पाक करने वाले या सोम का अभिषव करने वाले यजमान को इच्छित अन्न-धन देते हो, तुम अवश्य ही सत्य हो। हम तुम्हारा स्नेह पाकर सुन्दर पुत्रादि से युक्त धन पाते हुए तुम्हारी स्तुति करते रहें ॥१८॥

३५ सूक्त

(ऋषिः—नोधाः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्)

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥१॥
अस्मा इदु प्रयइव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥२॥
अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्ये न ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥३॥
अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥४॥
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥५॥
अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं रणाय ।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥६॥
अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥७॥
अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥८॥

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥९॥
अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥१०॥

इस स्तोत्र को श्रेष्ठ ढंग से इन्द्र के निमित्त उच्चारण करता हूँ। वे इन्द्र सोम पीने के लिए शीघ्रता वाले और अपराधों के अनुरूप रूप वाले, महान्, बलवान, अबाध गति वाले हैं। वे जैसे क्षुधाग्रस्त को अन्न देते हैं, वैसे ही मैं उनकी स्तुति करता हुआ, प्राचीन कालीन यजमानों के समान हवि अर्पित करता हूँ ॥१॥ मैं इन्द्र के लिए अन्न के समान अपने स्तोत्र को प्रेरित करता हूँ, मैं शत्रुओं को बाधा देने वाले घोष को करता हूँ। ऋत्विज भी अपने हृदय से इन्द्र के लिए स्तुतियों को मार्जित करते हैं ॥२॥ धन के प्रेरक इन्द्र को स्तुतियों द्वारा प्रवृद्ध करने के लिए मैं सुसंस्कृत स्तोत्र का सम्पादन करता हूँ। मैं इन्द्र के लिए उपमायोग्य स्तोत्रों का उच्चारण रूप घोष करता हूँ ॥३॥ जैसे रथ-शिल्पी रथ का निर्माण करता है, वैसे ही मैं इन्द्र के लिए स्तोत्र प्रेरित करता हूँ। यह इन्द्र स्तुतियों से प्राप्तव्य और यज्ञार्ह हैं। मैं उनके लिए स्तुति और हवि प्रदान करता हूँ ॥४॥ अन्न की कामना वाला मैं हविरन्न को घृत युक्त स्रुवे से मिलाता हूँ और अंजन-साधन मंत्र से भी जोड़ता हूँ जैसे अश्वों को रथ में जोड़ा जाता है, वैसे जोड़ता हूँ। असुरों के पुरों को ध्वंस करने वाले, शत्रुओं के भगाने वाले, यशवान इन्द्र की स्तुति करने के लिए उन्हें आहूत करता हूँ ॥५॥ संसार के रचयिता ब्रह्मा ने इन्द्र के लिए वज्र नामक आयुध की रचना की। वह आयुध स्तुतियों के योग्य सुन्दर कर्म वाला है, उसके द्वारा शत्रु-निग्रह होता है। वृत्रासुर के मर्मस्थल को ढूँढ कर इन्द्र ने उसी आयुध से प्रहार किया था ॥ ६ ॥ यह इन्द्र सोम-यागात्मक तीनों सवनों में सोम का पान कर गए और पुरोडाश आदि को खा गए, यह इनका असाधारण कर्म कहा जाता है। यह इन्द्र सोम पान से उत्पन्न बल से शत्रुओं को वश करते और उनके छीनने योग्य धनों को छीन लेते हैं। इन्हीं इन्द्र ने जल को निकालने के लिए मेघ को चीर डाला था

॥ ७ ॥ वृत्रासुर का नाश करते समय देवपत्नियों ने इन्द्र के लिए अर्चन साधन स्तोत्र को बढ़ाया और इन्द्र ने विस्तीर्ण आकाश पृथिवी को अपने तेज से व्याप्त किया। वे द्यावा पृथिवी इन इन्द्र की महिमा को कम करने में समर्थ नहीं हुईं ॥ ८ ॥ इन्द्र की महिमा आकाश से भी ऊपर फैली हुई है। पृथिवी भी इनकी महिमा को विस्तृत करती है, अंतरिक्ष में भी इनकी महिमा का विस्तार है। दमन करने योग्य शत्रुओं पर यह दमकते हुए इन्द्र प्रचण्ड बल वाले हैं। यह वर्षा के लिए मेघों के लाने वाले हैं ॥ ९ ॥ इन्द्र के तेज के सामने सूखते हुए वृत्रासुर को इन्द्र ने काट दिया और पणियों द्वारा अपहृत गौओं को छुड़ाया, वृत्रासुर द्वारा रोके हुए जलों को, मेघ को चीर कर निकाला और यजमान को इन्होंने अन्न प्रदान किया ॥ १० ॥

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११ ॥
अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२ ॥
अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३ ॥
अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः ॥ १४ ॥
अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद् वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥
एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
एषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६ ॥

इन्द्र के वज्र से चारों ओर से नियमित हुई नदियाँ इन्द्र के बल से ही प्रवाहित होती हैं। यह यजमान को इच्छित फल देकर धनवान बनाने वाले और जल में निमग्न तुर्वीति को प्रतिष्ठा प्राप्त कराने वाले हैं ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! वृत्र हनन में शीघ्रता करने वाले तुम शत्रु को नाश करने के लिए वज्र प्रहार करो। जैसे मांस के इच्छुक व्यक्ति पशु को टूक टूक कर डालते हैं, वैसे ही तुम जल को पृथिवी पर प्रवाहित करने के लिए वज्र से वृत्र के टूक-टूक करो ॥ १२ ॥ हे स्तोता ! स्तुति के योग्य इन्द्र के प्राचीन कर्मों का गान करो। जब वे इन्द्र शत्रुओं का वध करते हुए वज्र को बार-बार चलावें तब उनके गुणों का गान करो ॥ १३ ॥ इन्द्र के आविर्भाव से ही वज्र चलने के भय से पर्वत स्थिर होगए और आकाश-पृथिवी भी इनके भय से कम्पायमान होते हैं। नोधा ऋषि इनकी अनेक स्तोत्रों से प्रशंसा करते हुए वीर्य युक्त हुए ॥ १४ ॥ हवियों के स्वामी इन्द्र ने स्तोत्र आदि की असाधारण कामना की थी, इसलिए सोम रूपी अन्न इनके निमित्त दिया जाता है। इन्हीं इन्द्र ने सौरश्व की रक्षा के समय सूर्य से स्पर्धा करने वाले एतश की रक्षा की थी ॥ १५ ॥ हे इन्द्र ! गौतम गोत्रिय ऋषि इन मंत्रात्मक स्तोत्रों को तुम्हारे लिए करते हैं। इन स्तुति करने वालों में अनेक प्रकार के धन और यज्ञ कर्म की स्थापना करो। जैसे इस समय इन्द्र हमारी रक्षा के लिए आए हैं, वैसे ही वे दूसरे दिन भी हमारे यज्ञ में आगमन करें ॥ १६ ॥

३६ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्द—त्रिष्टुप्)

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥ १ ॥
तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥ २ ॥
तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान् तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥ ३ ॥
तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥ ४ ॥
तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।

तुविग्राभं तुविकूर्मि रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥ ५ ॥
अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद् वीडिता स्वोजो रुजो वि दृढा धृषता विरप्शिन् ॥६॥
तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७ ॥
आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥ ८ ॥
भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥ ९ ॥
आ संयतमिन्द्र णः स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥ १० ॥
स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥ ११ ॥

आह्वान योग्य इन्द्र को स्तुतियों से आहूत करता हूँ, यह इन्द्र काम्य वर्षक, सत्य फल रूप, बहुकर्मा, बलप्रदाता और सब प्राणियों के ईश्वर हैं। मैं उन इन्द्र का अपने स्तोत्रों से भले प्रकार पूजन करता हूँ ॥ १ ॥ हमारे जिन सात पूर्व पुरुषाओं ने हवि रूप अन्न से इन्द्र की कामना की और नौ महीनों में सिद्धि पाई, वे इन्द्र की स्तुति करते हुए पितृलोक को प्राप्त हुए। यह इन्द्र शत्रुओं के हिंसक और दुर्गम को पार करने वाले हैं। यह अत्यन्त बलवान हैं, कोई इनकी बात का उल्लङ्घन नहीं कर सकता ॥ २ ॥ वीर पुत्रों और सेवकों से सम्पन्न अपरिमित धन को हम इन्द्र से माँगते हैं। हे इन्द्र! हमको अविनाशी और सुख देने वाला धन दो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! पूर्वकाल में स्तुति करने वाले ऋषि जिस सुख को तुमसे प्राप्त कर चुके हैं, हम स्तोताओं को भी वह सुख दो। उस सुख के लिए जो यज्ञ भाग तुम्हारे लिए निश्चित है, वह कौन-सा है? तुम्हें कौन-सा अन्न हविरूप में देना चाहिए, इस बात को हमें बताओ। तुम शत्रुओं को खेद में डालने वाले तथा बहुत से धनों के

नी हो ॥ ४ ॥ जिन स्तोता की वाणी, वज्र धारण करने वाले और रथ में स्थित इन्द्र को प्राप्त होती है और बहुकर्मा [illegible] इन्द्र ये जो यज्ञकर्म की कामना करता है वह शत्रु को मारने के [illegible] हुआ [illegible] ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुम मन के समान वेग वाले वज्र द्वारा [illegible] वृत्र का नाश कर चुके हो । तुमने [illegible] जा, जिन्हें अन्य कोई [illegible] नहीं [illegible] ॥ ६ ॥ हे [illegible] षियों के समान मैं भी इन्द्र की [illegible] स्तोत्रों से [illegible] हुआ हूँ । सुन्दर वाहनों से युक्त इन्द्र इनको [illegible] के [illegible] ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! पृथिवी, द्युलोक और अन्तरिक्ष में [illegible] के [illegible] को युद्ध करो और उन्हें अपने तेज से भस्म कर डालो । [illegible] राक्षसों के नाश के लिए आकाश पृथिवी को भी तेजोमय करो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम स्वर्ग के राजा हो, अपने दक्षिण हाथ में वज्र लेकर सब [illegible] माया को नष्ट करो ॥ ९ ॥ हे वज्रिन् ! तुम अपनी जिस [illegible] के [illegible] मनुष्यों को भी श्रेष्ठ बना देते हो, उस [illegible] संपत्ति को हमारी ओर प्रेरित करो ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! तुम [illegible] के पास और [illegible] करते हो । तुम अपने [illegible] द्वारा यहाँ आगमन करो । तुम्हारे [illegible] को [illegible] भी रोक नहीं सकता । तुम [illegible] द्वारा [illegible] आओ ॥ ११ ॥

१९ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥ १ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥२॥
त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३ ॥

और धुनि नामक दस्युओं का भी नाश किया था ॥ ४ ॥ हे वज्रिन् ! तुम्हारा वज्र अत्यन्त प्रसिद्ध है । तुमने उसी वज्र से राक्षसों के निन्यानवे पुरों को ध्वस्त किया था और सौवें पुर में व्याप्त हो गए थे । तुमने वृत्र और नमुचि का भी संहार कर दिया था ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! हविर्दाता सुदास के लिए तुम्हारे धन चिरकाल के लिए हुए । तुम बहुत से कर्म वाले और अभीष्ट वर्षक हो । तुम्हें यहाँ लाने के लिए हर्यश्वों को तुम्हारे रथ में जोड़ता हूँ । हमारे प्रबल स्तोत्र तुम्हें प्राप्त हों ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी इस स्तुति में हम त्याग- योग्य न हों । हमको अपने अविनाशी रक्षा-साधनों द्वारा रक्षित करो । हम स्तुति करने वालों और विद्वानों में तुम्हारे प्रिय हों ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे मित्र रूप यजमान अपने गृह में प्रसन्न रहें । तुम अतिथिग्व को सुख प्रदान करो और तुर्वश तथा यादव राजाओं को दीप्त करो ॥८॥ हे मघवन् ! तुम्हारे अभिगमन के समय ऋत्विज उक्थों का उच्चारण करते हैं । जो ऋत्विज तुम्हारे आह्वान से आपत्तियों को नष्ट करते हैं, वे भी उक्थों को कहते हैं । अतः हम उक्थों का उच्चारण करने वालों के लिए फल देने वाले दस्र के निमित्त वरण करो ॥ ९ ॥ हे नरोत्तम इन्द्र ! यह स्तोत्र तुम्हारे सामने आकर धन प्रदान से युक्त है । हम स्तोताओं के पास [illegible] हो और हम हविर्दाता के मित्र के समान रक्षक होओ ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! तुम हमसे स्तुति और हवि प्राप्त करते हुए प्रवृद्ध होओ [illegible] हुए हो । हे अग्नि आदि सब देवताओ ! तुम भी हमारा [illegible] हुए रक्षक बनो ॥ ११ ॥

३८ सूक्त

(ऋषिः—इरिम्बिठिः मधुच्छन्दा । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्

एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना

उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥५॥

हम सब विश्व के प्राणियों की ओर से इन्द्र को आहूत करते हैं, वह इन्द्र हमारे ही हों ॥ १ ॥ इन्द्र ने अन्तरिक्ष को सोम से हर्षित होने पर वृष्टि के जल से प्रवृद्ध किया और अपने बल से मेघ को चीर डाला ॥२॥ अङ्गिराओं के लिए इन्द्र ने गुफा स्थित गौओं को प्रकट किया और निकाला । अपहरण-कर्त्ता बल को अधोमुखी करके गिरा दिया ॥ ३ ॥ आकाश में चमकते हुए नक्षत्रों को इन्द्र ने स्थिर किया । इसलिए अब कोई उन्हें हटा नहीं सकता ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! वर्षा के जल से समुद्र आदि को मत्त बनाता हुआ तुम्हारा स्तोत्र रस के समान उच्चारित होता है और तुम्हारा सोम पीने के कारण उत्पन्न हर्ष प्रकट होता है ॥ ५ ॥

४० सूक्त

(ऋषि—मधुच्छन्दाः । देवता—इन्द्रः, मरुतः । छन्द—गायत्री)

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥१॥

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥२॥

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥३॥

हे इन्द्र ! तुम अभय प्रदान करने वाले मरुतों के साथ रहते हो । तुम एक साथ रहते हुए सदा प्रफुल्लित होते हो । तुम दोनों का तेज एक-सा ही है ॥ १ ॥ इन्द्र की कामना करने वालों से यह यज्ञ अत्यन्त सुशोभित है । वे इन्द्र अत्यन्त तेजस्वी एवं पाप रहित हैं ॥ २ ॥ फिर हवि देने पर वह गर्भत्व को प्राप्त होते और यज्ञिय नाम रखते हैं ॥ ३ ॥

४१ सूक्त

(ऋषि—गोतमः । देवता—इन्द्रः । छंद—गायत्री)

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥१॥

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद् विदच्छर्यणावति ॥२॥

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३॥

युद्ध से पीछे न हटने वाले इन्द्र ने वृत्र के निमित्त बने असुरों को व्यस्त

कर डाला ॥ १ ॥ पर्वतों में अपश्रित अश्व के शीर्ष की कामना करते हुए उन्होंने उसे शर्यणावत् में प्राप्त किया ॥ २ ॥ चन्द्रमण्डल रूप गृह में सूर्य रूप इन्द्र ही एक रश्मि रूप से विद्यमान हैं । अन्य सूर्य-रश्मियाँ भी इसे जानती हैं ॥ ३ ॥

४२ सूक्त

(ऋषि—कुरुस्तुतिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥१॥
अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् । इन्द्र यद् दस्युहाभवः ॥२॥
उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥३॥

मैंने इन्द्र से ही सत्य का स्पर्श करने वाली अष्ट पदवाली और नवस्रक्ति वाणी को अपने शरीर में धारण किया है ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जब तुमने असुरों को नष्ट किया, तब तुम्हारी निर्बलता देखकर द्यावापृथिवी ने तुम पर कृपा की थी ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! सुसंस्कारित सोम को पीकर अपने हनु को चलाते हुए उठो ॥ ३ ॥

४३ सूक्त

(ऋषि–त्रिशोकः । देवता–इन्द्रः । छन्द–गायत्री)

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ १ ॥
यद् वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ २ ॥
यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ॥३॥

हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओं को काटो, रण की बाधा को दूर करो और हमको महणीय धन प्रदान करो ॥ १ ॥ जो धन स्थिर व्यक्ति में रहता है तथा जो धन पार्श्वों में भरा जाता है, हे इन्द्र ! उस धन को हमें दो ॥२॥ तुम्हारे द्वारा प्रदत्त जिस धन को सब उपासक प्राप्त करते हैं उस धन को हमें दो ॥ ३ ॥

किया। वर्षा के जल रूप अमृत को दुहने के कारण यह गौ कहलाते हैं ॥ ४ ॥ प्राणन के पश्चात् अपानन व्यापार वाले जीवों के देह में सूर्य की प्रभा प्राण रूप से घूमती है। वे सूर्य ही सब लोकों को प्रकाशित करते हैं ॥ ५ ॥ सूर्य की रश्मियों से दिन-रात के अंग रूप तीस मुहूर्त दीप्त होते हैं और वेद रूपा वाणी सूर्य का पक्षी के समान आश्रय पाती है ॥ ६ ॥

४६ सूक्त

(ऋषि—नोधाः; मेध्यातिथिः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री प्रभृति)

यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिषासथः। सं देवा अमदन् वृषा ॥१॥
शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्णुहि। मंहिष्ठ आ मदर्दिवि ॥२॥
शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन् वि राजति। विमदन् बर्हिरासरन् ॥३॥
तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ४ ॥
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ५ ॥
तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ६ ॥
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! जब स्तुति करने वाले विद्वान् वाणी पर चढ़ते हैं तब देवता प्रसन्न होते हैं ॥१॥ वे शक्र शिष्ट मनुष्य पर कठोर वचन न कहें। हे मंहिष्ठ ! तुम आकाश को हर्ष से पूर्ण करो ॥ २ ॥ हे शक्र ! कठोर वाणी का उच्चारण न करो। आप कुशाग्रों पर आकर हर्षित हुए विराजमान होते हैं ॥ ३ ॥ हे यजमानो ! यह इन्द्र दुःखों का नाश करने वाले, दर्शनीय एवं सोम से प्रसन्न रहने वाले हैं। तुम्हारे यज्ञ की सम्पन्नता के निमित्त हम इन्द्र की स्तुति करते हैं। जैसे सूर्य द्वारा प्रकाशित दिन के उदय और अस्त के समय गौएं

गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥
प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥ ३ ॥
शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥४॥

हे स्तोताओ ! उन इन्द्र को मुझे प्राप्त कराने के प्रयत्न रूप स्तोत्र को करो। वे इन्द्र विशाल सहस्र संख्यक धन और अन्न के प्रदान करने वाले हैं ॥ १ ॥ जो हविदाता यजमान अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर उन्हें मारते हैं, उन यजमानों के लिए पर्वत से जल निकलने के समान इन्द्र का स्वर्ग रूप धन वरसता है ॥ २ ॥ अभिषव वाले स्तोता को जो इन्द्र सहस्र संख्यक धन प्रदान करते हैं, हे स्तोता ! तुम उन्हीं इन्द्र का भले प्रकार से पूजन करो ॥३॥ इन्द्र के आयुधों से पापी मनुष्य पार नहीं पा सकते क्योंकि वे आयुध सैकड़ों सेनाओं के समान शक्ति रखते हैं। जैसे भोग देने वाला पर्वत अपने पदार्थों से धनवान बनाता है, वैसे संस्कारित सोम से इन्द्र शक्ति से भर जाते हैं तो यजमान को इन्द्र अन्नवान बना देते हैं ॥ ४ ॥

५२ सूक्त

(ऋषि—मेध्यातिथिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बृहती)

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥२॥
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! संस्कार करने पर जल के समान द्रव हुए सोम हमारे पास हैं, हम तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! सोम निष्पन्न करने के

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥२॥
नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥३॥

सब सेनाओं ने शत्रुओं को मूर्छित करने वाले इन्द्र का वरण किया। वे इन्द्र अत्यन्त बलवान और उग्र हैं ॥ १ ॥ यह स्तुति करने वाले सोम पीने के लिए इन्द्र की स्तुति कर रहे हैं यह सोम उनकी ओर अपनी रक्षाओं सहित जाता है ॥ २ ॥ इनके वज्र पर दृष्टि पड़ते ही स्तोता उसे प्रणाम करते हैं। हे स्तोताओ ! ऋक्व नामक पितरों सहित इस वज्र की धमक तुम्हारे कानों को व्यथित न करे ॥ ३ ॥

५५ सूक्त

(ऋषि—रेभः। देवता—इन्द्रः। छन्द—जगती; वृहती)

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री॥१
या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वां असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तवर्हिषः ॥ २ ॥
यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥ ३ ॥

धनवान्, वज्रधारी, युद्धों में अग्रसर, उग्र, बलधारक, स्तुत्य इन्द्र मैं आहूत करता हूँ, वे इन्द्र हमारे धन-मार्गों को सुन्दर बनावें ॥१॥ हे इ तुम स्वर्ग के अधिपति हो। राक्षसों के लिए तुम जिन बाहुओं को उठा उन बाहुओं द्वारा यजमान के स्तोता की वृद्धि करो और तुममें ऋत्विज को भी बढ़ाओ ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम जिस गौ, अश्व आदि करते हो, उसे सोमाभिषव वाले दक्षिणादाता यजमान को दो, असुरों को न दो ॥ ३ ॥

८१ सूक्त

(ऋषि—गोतमः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्ति)

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१॥
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु॥२॥
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः॥३
मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥४॥
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव॥५॥
एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर॥६॥

वृत्रहन् इन्द्र को बल और हर्ष के निमित्त प्रवृद्ध किया जाता है। उन्हें हम बड़े छोटे युद्धों में आहूत करते हैं, वे उस अवसर पर हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥ हे वीर ! तुम शत्रुओं के संहारकर्त्ता, दुष्टों को दण्ड देने वाले और यजमानों को परम ऐश्वर्य प्रदाता हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! युद्ध के अवसर पर धर्षक पुरुष में धन के व्याप्त होने पर तुम अपने अश्वों द्वारा किसे मारोगे ? किसमें धन को प्रतिष्ठित करोगे ? उस समय तुम अपने धन को हममें प्रतिष्ठित करना ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा यज्ञ सुगमता से सम्पन्न होने वाला है, तुम प्रसन्न होकर हमें गौएँ प्रदान करते हो। तुम धन को एकत्र करके हमें दो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम वीर हो, सोम के संस्कारित होने पर हर्ष में भरो और बल को धारण करो। हम तुम्हें असीमित धन वाला जानते हैं तुम हम कामनाओं वालों के रक्षक होओ ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! यह प्राणी तुम्हारे

र्य का पोषण करते हैं। तुम हवि न देने वाले और निन्दकों के धन को
कर हमें दो ॥ ६ ॥

५७ सूक्त

(ऋषि:—मधुच्छन्दा: प्रभृति। देवता—इन्द्र:। छन्द:—बृहती)

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
उप न: सवना गहि सोमस्य सोमपा: पिब। गोदा इद् रेवतो मद:॥२॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्। मा नो अति ख्य आ गहि॥३॥
शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्। इन्द्र सोमं शतक्रतो॥४॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु। इंद्र तानि त आ वृणे॥५॥
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्। उत् ते शुष्मं तिरामसि॥६॥
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावत:।
उ लोको यस्ते अद्रिव इंद्रे तत आ यहि ॥ ७ ॥
इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत्। स हि स्थिरो विचर्षणि:॥८॥
इन्द्रश्च मृडयाति नो न न: पश्चादघं नशत् भद्रं भवाति न: पुर:॥९॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्। जेता शत्रून् विचर्षणि:॥१०

जैसे गौ को दुहने के लिए दूध दोहनकर्त्ता को बुलाते हैं वैसे ही हम प्रत्येक अवसर पर रक्षा के लिए इन्द्र को बुलाते हैं ॥ १ ॥ इन्द्र सदा हर्षित रहते हैं; वे धनवान हैं, गौएँ प्रदान करने वाले हैं। हे इन्द्र! हमारे सोम सवन में आकर सोम पिओ ॥२॥ हे इन्द्र! हम तुम्हारी सुबुद्धियों के ज्ञाता हैं, तुम हमारी निंदा मत कराओ। हमारे यहाँ आगमन करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तुम सैकड़ों कर्म वाले हो। तुम हमारी रक्षा के लिए इस बल देने वाले सो... को पिओ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! तुम बहुकर्मा हो। मैं तुम्हारी उन इन्द्रियों ... वरण करता हूँ जो देवता पितर आदि में हैं ॥ ५ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारा अ... मित अन्न हमें मिले। तुम हममें दमकते हुए धन को, जो शत्रुओं से ... लगा सके, हममें प्रतिष्ठित करो। हम इस स्तोत्र से इस सोम को बढ़ा...

तुम्हें यज्ञ से सम्पन्न करते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम, दूर या समीप जहाँ कहीं हो, वहीं से हमारे पास आओ। हे वज्रिन्! अपने उत्कृष्ट लोक से भी सोम पीने के लिए इस यजन गृह में आगमन करो ॥ ७ ॥ हे ऋत्विज! यह इन्द्र भयानक भय को भी दूर करने वाले हैं, उन इन्द्र को कोई हटा नहीं सकता, वे सर्वदृष्टा हैं ॥ ८ ॥ यदि इन्द्र हमारी रक्षा करें तो हमारे दुःखों का नाश होकर सुख प्राप्त हो। वे सदा मंगल करने वाले हैं ॥ ९ ॥ वे इन्द्र ! सब दिशाओं में व्याप्त हमारे शत्रुओं को देखते हैं। वे सब दिशाओं और उप-दिशाओं से प्राप्त होने वाले भयों को हमसे पृथक् करें ॥ १० ॥

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ ११ ॥
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ १२ ॥
य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ १३ ॥
वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ १४ ॥
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ १५ ॥
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम्।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ १६ ॥

इसे कौन जानता है कि सोमाभिषव पर यह कौन-से अन्न को धारण करते हैं, यह हवि रूप अन्न से हृष्ट हुए इन्द्र शत्रुओं के नगरों को अपनी शक्ति से तोड़ते हैं ॥ ११ ॥ तुम रथ पर आरूढ़ होकर हर्षयुक्त मृग के समान अनेक स्थानों पर जाते हो। सोमाभिषव-काल में तुम्हें कोई रोक नहीं सकता। तुम अपने ही बल से महान् होकर घूमते हो। इसलिए सोम के संस्कारित होने पर यहाँ आओ ॥ १२ ॥ जो शत्रुओं से बली होने के कारण रण के लिए

उद्यत होने पर भी हिंसित नहीं होते । जैसे पत्नी के पास पति जाता है, वैसे ही यह इन्द्र स्तोता के द्वारा बुलाए जाने पर आते हैं ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! संस्कारित होने के कारण जल के समान द्रव हुए सोम से युक्त हम ऋत्विज तुम्हारा स्तोत्र करते हुए बैठे हैं ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! सोम के निष्पन्न हो जाने पर उक्थ गायक ऋत्विज तुम्हें आहूत करते हैं । तुम वृषभ के समान प्यास में भर कर कब हमारे सोम को पीने के लिए पधारोगे ॥ १५ ॥ हे इन्द्र ! तुम धनों को अपने आधीन करने वाले हो । सहस्रों साधनों से युक्त व्यक्ति को भी मर्दित करते हो । हम तुमसे गौओं से सम्पन्न धन को माँगते हैं ॥१६॥

५८ सूक्त

(ऋषि—नृमेधः; भरद्वाजः । देवता—इन्द्रः सूर्यः । छन्द—प्रगाथः)

श्रायन्तइव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ १ ॥
अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ २ ॥
बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥ ३ ॥
बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ ४ ॥

जैसे रश्मियाँ नित्य प्रति सूर्य के साथ रहती हैं, वैसे ही जलों के स्वामी इन्द्र के साथ रहती हैं । उन इन्द्र के जल रूप धनों को हम विस्तृत करने की कामना करते हैं । जैसे इन्द्र तीनों काल के धनों को बाँटते हैं, वैसे ही हम उस धन के भाग पर ध्यान देते हैं ॥ १ ॥ हे स्तुति करने वालो ! तुम धनदाता इन्द्र का हृदय से आश्रय लो । इन्द्र का दान मंगलमय है इसलिए उनकी स्तुति करो । वह अपने उपासक की कामना का नाश नहीं करते । इस प्रकार स्तुति करके माँगने वाला पुरुष दान के निमित्त इन्द्र के मन को आकर्षित करता है ॥ २ ॥ हे सूर्य रूप इन्द्र ! हे आदित्य ! तुम महान् हो,

यह बात यथार्थ है। तुम सत्य रूप वाले हो। तुम्हारी महिमा भी प्रशंसित है। अतः तुम महिमावान् हो, यह यथार्थ ही है ॥ ३ ॥ हे सूर्य! तुम स्वयं महान् हो, हवि रूप अन्न में भी महिमा में प्रवृद्ध हो। तुम अपनी महिमा द्वारा ही राक्षसों से संघर्ष करते हो तुम व्यापक ज्योति रूप एवं अहिंसित हो ॥ ४ ॥

५९ सूक्त

(ऋषि–मेध्यातिथिः, वसिष्ठः। देवता–इन्द्रः। छन्द–प्रगाथ)

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥ १ ॥
कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ २ ॥
उदिन्न्वस्य रिच्यतेंऽशो धनं न जिग्युषः।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥ ३ ॥
मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥ ४ ॥

यह स्तोत्र और गायन योग्य वाणियाँ उत्पन्न हो रही हैं। यह धन प्रदायिनी वाणी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करती है। यह अन्न देने वाली वाणी सदा रक्षा करती है। जैसे रथ अपने स्वामी को गन्तव्य स्थान पर पहुँचाने के लिए गमन करता है, वैसे ही यह वाणियाँ इन्द्र को संतुष्ट करने के लिए चलती हैं ॥ १ ॥ जैसे त्रैलोक्याधिपति इन्द्र के लिए कण्वों की स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं, जैसे धाता, अर्यमा आदि सूर्य अपने प्रेरक इन्द्र में मिलते हैं, जैसे भृगुवंशी ऋषि इन्द्र का आश्रय लेते हैं, वैसे ही प्रिय बुद्धि वाले मनुष्य इन्द्र का ही स्तव करते हैं ॥ २ ॥ इन इन्द्र का यज्ञ भाग जीते हुए धन के समान होता है। जो इन्द्र हर्यश्व वाले हैं, उन्हें शत्रु हिंसित नहीं कर सकते। सोम प्रदान करने वाले यजमान में यह इन्द्र बल स्थापित करते हैं ॥ ३ ॥ हे स्तोताओ! सुन्दर तेज और रूप प्रदान करने वाले यज्ञिय मन्त्रों का उच्चारण

जो इन्द्र की सेवा करने वाला पुरुष है, वह पूर्व बंधनों से मुक्ति को
करता है ॥ ४ ॥

६० सूक्त

(ऋषि—सुतकक्षः सुकक्षो वा; मधुच्छन्दाः । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।
एवा ते राध्यं मनः ॥ १ ॥
एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः ।
अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥ २ ॥
मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते ।
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३ ॥
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही ।
पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते ।
सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या ।
इन्द्राय सोमपीतये ॥ ६

हे इन्द्र ! तुम वीर हो, स्थिर हो तथा दुष्कर्म करने वाले वीरों के रोकने वाले हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपरिमित धन वाले हो । तुम मेरे सहायक होओ । अपनी पोषण-शक्तियों से हम यजमानों में दान शक्ति की स्थापना करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्नों के ईश्वर हो । ब्रह्मा के समान तन्द्रा युक्त मत होओ । तुम बुद्धि देने वाले संस्कारित सोम के द्वारा अत्यन्त आनन्द में भरो ॥ ३ ॥ इन्द्र की भूमि गौओं के देने वाली है, वह हविदाता यजमान को पकी हुई शाखा के समान हो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हविदाता यजमान की रक्षा के लिए तुम्हारे रक्षा-साधन शीघ्र ही प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ इन्द्र को सोम-पान कराते समय स्तोम, उक्थ और शंस्या नामक स्तुतियाँ रमणीय होती हैं ॥ ६ ॥

६१ सूक्त

(ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—उष्णिक्)

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १ ॥
येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ २ ॥
तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥
तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ४ ॥
यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी ।
गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ ५ ॥
स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे ।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ ६ ॥

हे वज्रिन्! शत्रुओं को पराजित करने वाले, स्वर्गों को, ... से युक्त और ... के वर्द्धक तुम्हारे हर्ष की हम पूजा करते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र! आयु और मनु को तुमने जिस सोम के प्रभाव से तेज प्राप्त कराया था, उसी सोम से पुष्ट हुए तुम इस यजमान के कुशा वाले आसन पर प्रतिष्ठित हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र! यह उक्थ गायक तुम्हारी महिमा का गान कर रहे हैं। तुम प्रत्येक अवसर पर धर्म कार्य करते हुए विजय प्राप्त करो ॥ ३ ॥ जो इन्द्र बहुतों द्वारा स्तुत हैं, बहुतों ने उनका आह्वान किया था, तुम उन्हीं इन्द्र का यश गाओ और स्तुति रूप वाणी से उन्हें प्रतिष्ठित करो ॥ ४ ॥ जिन इन्द्र के धर्म-साधन के कारण द्यावा पृथिवी उनके महान् बल, जल, पर्वत और वज्र को धारण करते हैं उन्हीं इन्द्र की पूजा करो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र! तुम विजय युक्त यश के कारण तेजस्वी हो और अकेले ही शत्रुओं का नाश करते हो ॥ ६ ॥

६२ सूक्त

(ऋषि—सोभरिः प्रभृति। देवता—इन्द्रः। छन्द—बृहती, उष्णिक्)

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवयस्वः ।
वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ३ ॥
हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥४॥
इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ५ ॥
त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः ।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ ६ ॥
विभ्राजं ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ७ ॥
तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ८ ॥
यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी ।
गिरीँरज्राँ अपः स्ववृषत्वना ॥ ९ ॥
स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे ।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुम सदा नवीन रहते हो। अन्न प्राप्ति के अवसर पर हम रक्षा की कामना वाले ही तुम्हें आहूत करते हैं। विजय प्राप्त कराने को

ारी ओर ही आओ, विरोधियों की ओर मत जाओ। जैसे वाम गुणी
ता को चिरकालीन से बुलाते हैं, वैसे ही हम तुम्हें बुलाते हैं ॥ १ ॥
इन्द्र ! कर्म के अवसर हम तुम्हारा ही आश्रय लेते हैं। तुम शत्रुओं को
ा में करने वाले, नित्य युवा एवं अपराजित बली हो, तुम हमें सहायक के
र में प्राप्त होओ। हम अपनी रक्षा के लिये तुम सखा रूप का ही वरण
रते हैं ॥ २ ॥ हे यजमानो ! तुम्हारी रक्षा के लिये इन्द्र का ही आह्वान
रता हूँ। जो इन्द्र हमको पहिले गौ आदि के रूप में धन प्रदान कर चुके
, वे अभीष्ट फल देने में सदा समर्थ हैं। मैं उन्हीं इन्द्र की स्तुति करता
॥ ३ ॥ जो इन्द्र मनुष्यों के रक्षक हैं, जिनके हरित् वर्ण के अश्व हैं जो
श्वके नियामक हैं, जो स्तुतियों से प्रसन्न होते हैं, मैं उन्हीं इन्द्र की स्तुति
रता हूँ। वह इन्द्र हम स्तोताओं को गौएँ और अश्व दें ॥ ४ ॥ हे स्तुति
रने वालो ! तुम विद्वान् एवं धर्मात्मा हो। उन महान् इन्द्र को साम-गान
ारा स्तुति करो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुमने ही सूर्य को आकाश में प्रकाशित
िया, तुम शत्रुओं के तिरस्कारक विश्वदेवता और महान् विश्वकर्मा हो ॥ ६ ॥
 इन्द्र ! देवता तुम्हारे मित्र-भाव को प्राप्त हैं। स्वर्ग में चमकते हुए सूर्य
ुम्हारे द्वारा ही ज्योतिर्मान हैं ॥ ७ ॥ हे स्तोताओ ! वह इन्द्र अनेकों द्वारा
आहूत किये जा चुके हैं। अनेकों ने उनकी स्तुतियाँ की हैं। तुम भी उन्हीं
पराक्रमी इन्द्र को स्तुतियों से सुशोभित करो ॥ ८ ॥ जिन इन्द्र की महिमा
े आकाश-पृथिवी, जल, पर्वत, वन और वृक्ष तथा स्वर्ग को भी धारण
करते हैं। उन्हीं इन्द्र का पूजन करो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम विश्वपालक
ा के लिए उत्पन्न हुए हो। तुम शत्रुओं को अकेले ही नष्ट कर देने
 ॥ १० ॥

६३ सूक्त

ऋषि—भुवन आप्त्यो वा, भारद्वाज, गौतमः, (धर्मः)। देवता—इन्द्र।
छन्द—त्रिष्टुप्, उष्णिक्)

मा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः।
ज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥ १

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥२॥
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥३॥
य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ४ ॥
कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ५ ॥
यश्चाद्धि त्वा वहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ६ ॥
य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
येना हंसि न्यत्त्रिणं तमीमहे ॥ ७॥
येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् ।
येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥ ८ ॥
येन सिन्धुं महीरपो रथाँइव प्रचोदयः ।
पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥ ९ ॥

यह इन्द्र, सब विश्वेदेवा और भुवन सुख प्राप्ति का यत्न करते हैं। वे इन्द्र आदित्यों के सहित हमारे यज्ञ, देह और प्रजा को सामर्थ्य प्रदान करें ॥ १ ॥ देवत्व की रक्षा के लिए जिन देवता ने राक्षसों का संहार किया था, वे आदित्यवान और मरुत्वान इन्द्र हमारे देह की रक्षा करने वाले हों ॥ २ ॥ जो अपनी शक्ति से सूर्य को प्रत्यक्ष कर सके, जिन्होंने पृथिवी को अन्नवती किया, उन्हीं से हम देवताओं का हितकारी अन्न प्राप्त करें और वीरों से युक्त रहते हुए शतायुष्य हों ॥ ३ ॥ इन्द्र हविदाता यजमान को धन प्रदान करते हैं, इस कार्य में उनके समान अन्य कोई नहीं है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र अयाज्ञिक को अपने पद-प्रहार द्वारा कब ताड़ना देंगे और हम स्तुति करने वालों की

प्रार्थनाओं को कब सुनोगे ? ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! जो सोमवान पुरुष अनेक स्तुतियों से तुम्हारी प्रार्थना करता है, वह पुरुष अत्यन्त अन्न और ऐश्वर्य से सम्पन्न होता है ॥ ६ ॥ जो इन्द्र सोम के आनन्द पान करने वाले हैं और जिनमें अत्यन्त हर्ष उत्पन्न होता है ऐसे हे इन्द्र ! अपने जिस बल से तुम असुरों का नाश करते हो, उसी बल को हम माँगते हैं ॥ ७ ॥ जिस बल से तुमने दशग्व, अध्रिगु और स्वर्णर की रक्षा की थी, तथा जिस बल से तुमने समुद्र को पुष्ट किया था, उसी बल को हम तुमसे माँगते हैं ॥ ८ ॥ जिस बल से तुमने रथ के समान, जलों को समुद्र की ओर गमनशील बनाया, उस बल को, हम सत्य के मार्ग में अग्रसर होने के लिए माँगते हैं ॥ ९ ॥

६४ सूक्त

(ऋषि—नृमेधः, विश्वमनाः । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः ।
गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ १ ॥
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥
त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि ।
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥
एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः ।
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ ४ ॥
इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् ।
उदानंश शवसा न भन्दना ॥ ५ ॥
तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः ।
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम सत्य के द्वारा विजय प्राप्त करते हो, तुम हमारे प्रिय, तुम्हें कोई ढक नहीं सकता । तुम स्वर्ग के अधिपति और स्वर्ग

समान विस्तारयुक्त हो। तुम हमें अपने प्रिय के रूप में स्वीकार करो ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम सामने आकर सोम पीने वाले हो । तुम आकाशपृथिवी दोनों में ही आविर्भूत होते हो। तुम स्वर्ग के अधीश्वर और सोमाभिषव वाले की वृद्धि करने वाले हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम असुरों को मारने वाले और उनके दृढ़ पुरों को नष्ट करने वाले हो । तुम स्वर्ग के अधिपति और मनुष्यों की वृद्धि करने वाले हो ॥ ३ ॥ हे अध्वर्युओ ! मधु से भी मधुर अन्न से इन को तृप्त करो। यह इन्द्र यजमान की सदा वृद्धि करते हुए स्तुतियों को प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने हर्यश्वों पर आरूढ़ होते हो। तुम्हारे पूर्व कर्म वाले बलों और कल्याणों की समानता कोई नहीं कर सकता तथा तुम्हारी स्तुतियों को भी कोई नहीं पा सकता ॥ ५ ॥ हम अन्न की कामना वाले हैं, अन्न के अधीश्वर इन्द्र को हम आहूत करते हैं। विधि पूर्वक किए जाने वाले यज्ञानुष्ठानों से यह इन्द्र बारम्बार वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥६॥

६५ सूक्त

(ऋषि—विश्वमनाः। देवता—इन्द्रः। छन्द—उष्णिक)

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखाय स्तोम्यं नरम् ।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १ ॥
अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः ।
घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २ ॥
यस्यामितानि वीर्या न राधः पर्येतवे ।
ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥ ३ ॥

यह इन्द्र स्तुति के योग्य हैं, उनके इधर आने के लिए हम हम इन्द्र की स्तुति करते हैं । यह इन्द्र सभी कर्मों के फलों को प्राप्त करने वाले हैं ॥ १ ॥ हे स्तोताओ ! इन तेजस्वी, दर्शनीय, वाणी रूप वाले, गौओं को न रोकने वाले इन्द्र को मधु घृत से भी मधुर वाणी उच्चारण करो ॥ २ ॥ कार्य-साधन के लिए यह इन्द्र अपरिमित बल वाले और दीप्तिमती दक्षिणा के रूप हैं ॥ ३ ॥

६६ सूक्त

(ऋषि—विश्वमनाः । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् ।
अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥ १ ॥
एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् ।
सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥ २ ॥
वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ३ ॥

हे ऋत्विज ! जो इन्द्र अपने अश्वों को खोलकर अविचलित भाव से यज्ञ में बैठे हैं, उन्हीं प्रशंसनीय इन्द्र को यजमान के मंगल के लिए स्तुति करो ॥ १ ॥ ये इन्द्र सदा नवीन, महान् मेधावी हैं, तुम उन्हीं इन्द्र की पूजा करो ॥ २ ॥ हे वज्रिन् ! जैसे आदित्य अपने परिपदों के जानने वाले हैं, वैसे ही तुम मंथन करने वाले भयानक शत्रुओं के ज्ञाता हो ॥ ३ ॥

६७ सूक्त [छठवाँ अनुवाक]

(ऋषि—परुच्छेपः, गृत्समदः । देवता—इन्द्रः मरुत, अग्निः, । छंद—अति जगती)

वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा
यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।
सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ १ ॥
मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि
मोत जारिषुरस्मत् पुरोत जारिषुः ।
यद् वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ २ ॥
अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो
जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।

य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ।। ३ ।।
यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ।।४।
आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन् होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात् तव भागस्य तृप्णुहि ।
एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत् पिब ।।६।
यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभि

सोमाभिषवकर्त्ता अपने शत्रुओं का और देवताओं के शत्रुओं पराभव करता है, वह बहुत से घरों को प्राप्त करता हुआ विविध पदा दान की इच्छा करता है, वह शत्रुओं से घिरा हुआ न रहकर अन्नवान है। उसे इन्द्र समस्त पार्थिव धनों को प्रदान करते हैं ।। १ ।। हे मरु तुम्हारा संताप देने वाला तेज हमारे सामने आकर हमें जीर्ण न करे । तु जो नवीन, चयनयोग्य अविनाशी बल है, उस शत्रुओं को दुष्प्राप्य-ब हम में प्रतिष्ठित करो ।। २ ।। अग्निदेव धनप्रदाता, देव-होता, उत्पन्न हु ज्ञाता और बल के अनुज हैं । यह अपनी ज्वालाओं से यज्ञ को करते हैं। तथा होमे हुए घृत की बूँदों और उसकी दीप्ति की इ हैं ।। ३ ।। हे मरुतो ! तुम स्वर्ग के नेता हो । फल देने के समय तु पृषती नामक अश्वियों-द्वारा यज्ञ में आगमन करते हो । तुम इन कु विराजमान होकर सोम पियो ।।४।। हे अग्ने ! देवताओं को इस य उनका पूजन करो । तुम होता रूप से तीनों स्थानों में विराज पहुँचा कर स्वयं भी हवि ग्रहण करो और मधुर सोम को ।। ५ ।। हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे देह के बल की वृद्धि कर को वश करने के लिए तुम्हारी बाहुओं में बल और ओज सं

यह सोम अभिषुत होकर तुम्हारे लिए पात्र में रखा है तुम आह्लाद के युक्त होने तक इसे पियो ॥ ६ ॥ मैं पहिले के समान ही इन्द्र का आह्वान करता हूँ। यह हरि ऐश्वर्यवान बनाने वाला है। हे इन्द्र ! अध्वर्युओं द्वारा प्रस्तुत इस सोम रूप मधु को पियो ॥ ७ ॥

६८ सूक्त

(ऋषि—मधुच्छन्दाः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद् रेवतो मदः ॥२॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥३॥
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् । यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥४॥
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥५॥
उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥६॥
एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्दयत् सखम् ॥७॥
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥८॥
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ॥९॥
यो रायोऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा । तस्मा इन्द्राय गायत ॥१०॥
आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥११॥
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥१२॥

सरलता से दूध दुहने के लिए दोहनकर्त्ता को जैसे बुलाते हैं, वैसे ही रक्षा का अवसर आने पर हम हर बार इन्द्र को ही आहूत करते हैं ॥१॥ इन्द्र ऐश्वर्यवान् हैं, वे सदा हर्षित रहते हैं और गौएँ प्रदान करते हैं। हे इन्द्र ! इन सोम सवनों में आकर सोम को पियो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे पास जो सुबुद्धियाँ हैं, उन्हें हम जानते हैं। तुम हमारी निन्दा होने से रोको और हमारे यहाँ आगमन करो ॥ ३ ॥ हे स्तोताओ ! इन्द्र को कोई हिंसित नहीं कर सकता, वही इन्द्र मित्रों का मंगल करते हैं, उन्हीं का

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥१०॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥११॥
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे। दधाना नाम यज्ञियम् ॥१२॥

इन्द्र निमन्त्रण के अवसर पर हमारे सामने आविर्भूत होते हैं। वे हमारे पास अश्वों सहित आगमन करें ॥ १ ॥ जिन इन्द्र के युद्ध रत होने पर इनके अश्वों को शत्रु नहीं पाते। हे स्तोताओ! उन इन्द्र को स्तुति करो ॥ २ ॥ दधियुक्त सोम पवित्र हैं। यह सोमपायी इन्द्र के सेवन के लिए अग्रसर हो रहे हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तुम सोम को पीने के लिए योग्य हो अपने देह का विस्तार करते हो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! स्फूर्तिदायक सोम तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट हों और वे तुम्हें तृप्त करें ॥ ५ ॥ हे इन्द्र! तुम्हें स्तोम, उक्थ और हमारी वाणी रूप स्तुतियाँ प्रवृद्ध करें ॥ ६ ॥ जिन इन्द्र में सहस्रों पराक्रम व्याप्त हैं, वे इन्द्र यज्ञ कर्म की रक्षा करने वाले हैं। हम उन्हीं की सेवा करें ॥ ७ ॥ हे इन्द्र! शत्रु हमारे देह के प्रति हिंसा-भावना न रखें। तुम हमारे वध रूप कारण को दूर हटाओ। तुम हमारे स्वामी हो ॥ ८ ॥ इन्द्र के रथ में हर्यश्व जोड़े जाते हैं, वह आकाश में गमनशील हुए स्थावर जङ्गम प्राणियों को चौंकाते हैं ॥ ९ ॥ इन्द्र के रथ में हर्यश्वों को सारथी जोड़ते हैं। वह रथ के दोनों ओर रहने वाले अश्व कामना करने योग्य, प्रहार करने के योग्य हैं और रथको वश में करते हैं ॥ १० ॥ हे मृत्यु-धर्मा मनुष्यो! अज्ञानी को ज्ञान देने और अंधेरे में छिपे रूप रहित पदार्थ को रूप देने वाले सूर्य रूप इन्द्र अपनी रश्मियों सहित उदित हो गये हैं। इनके दर्शन करो ॥ ११ ॥ यह मरुद्गण हवि देने वाले यजमान को प्राप्त होते हुए यज्ञिय नाम से प्रसिद्ध होते हैं ॥ १२ ॥

७० सूक्त

(ऋषिः—मधुच्छन्दाः। देवता—इन्द्रः, मरुतः। छन्दः—गायत्री)

वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः। अविन्द उस्रिया अनु ॥१
देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः। महामनूषत श्रुतम् ॥२

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥३॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥४॥
अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि । समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥५
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रं महो वा रजसः ॥६
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥७॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥८
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥९
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥१०॥

हे इन्द्र ! तुमने उषा के पश्चात् ही अपनी ज्योतिर्मती शक्तियों द्वारा गुफा में छिपे धन को पाया ॥ १ ॥ हे स्तुतियो ! हम देवताओं की इच्छा वाले स्तोता, उन इन्द्र के सामने अपनी सुबुद्धि को प्रस्तुत करें, इस प्रकार उन महिमावान् इन्द्र की स्तुति करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम सदा ही निर्भीक मरुतों के साथ देखे जाते हो । तुम मरुतों के साथ नित्य ही प्रसन्न रहते हो । तुम्हारा और उनका तेज भी एक सा ही है ॥ ३ ॥ इन्द्र की कामना करने वालों से यज्ञ सुशोभित होता है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम ज्योतिर्मान् स्वर्ग से आओ । हमारी वाणी रूप स्तुतियाँ इन्द्र में ही जुड़ती हैं ॥ ५ ॥ इन्द्र पृथिवी पर हों, महर्लोक में हों अथवा स्वर्ग में हों, जहाँ कहीं भी हों वहीं से उन्हें बुलाना चाहते हैं ॥ ६ ॥ पूजक यजमान इन्द्र को पूजते हैं, स्तोता इन्द्र के ही यश का गान करते है ॥ ७ ॥ इन्द्र के साथ रहने वाले अश्व मन्त्रों द्वारा रथ में जोड़े जाते हैं वे मनुष्यों के हितैषी इन्द्र वज्र धारण करते हैं ॥ ८ ॥ इन्द्र ने ही सूर्य को दीर्घ दर्शन के निमित्त स्वर्ग में आरूढ़ किया और इन्द्र ने ही सूर्य रूप से अपनी रश्मियों द्वारा मेघ का भेदन किया ॥९॥ हे इन्द्र ! श्रेष्ठ धन प्राप्त कराने वाले युद्धों में अपने असीमित रक्षा-साधनों से रक्षा करो ॥ १० ॥

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥११॥
स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥१२॥

तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः ।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥१३॥
वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥१४॥
य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥१५॥
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥१६॥
एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥१७॥
नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता ॥१८॥
इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि । जयेम सं युधि स्पृधः ॥१९॥
वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासह्याम पृतन्यतः ॥२०॥

वह इन्द्र वृत्र पर वज्र प्रहार करते हैं । अधिक या थोड़ा धन पाने पर भी हम इन्द्र को ही आहूत करते हैं ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम सब धन के दाता हो और फलों के वर्षक । तुम किसी के हटाये भी नहीं हटते । इस चरु का भक्षण करो और हमारी वृद्धि करो ॥ १२ ॥ मैं धन प्राप्ति के हर अवसर पर तथा बराबर मिलते रहने वाले धन से सम्पन्न रहता हुआ इन्द्र के जिन स्तोत्रों को ध्यान में लाता हूँ, उनमें इन्द्र की महिमा के पार को नहीं पाता ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुम इच्छितों को प्रदान करने वाली शक्ति से फलों को भेजते हो । तुम ईशान हो । तुम्हारा तिरस्कार कोई नहीं कर सकता ॥ १४ ॥ इन्द्र पंच क्षितियों के ईश्वर तथा मनुष्यों और देवताओं के भी ईश्वर हैं ॥ १५ ॥ इन्द्र का ध्यान यदि अन्य प्राणियों की ओर हो तो भी हम उन्हें आहूत करते हैं । वे इन्द्र हमारे ही हों ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुनाशक, जयशील, धनरूप और फल वर्षक धन को हमारी रक्षा करने के लिए धारण करो ॥ १७ ॥ हम तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर अश्वों से सम्पन्न हों और मुष्टाकार शत्रुओं को नष्ट कर डालें ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे द्वारा रक्षित हम तुम्हारे वज्र को विकराल रूप से ग्रहण करते हुए, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें ॥ १९ ॥ हे इन्द्र ! हमारे वीर अधिष्ठित रहें, उनके साथ लेकर हम सेना सहित आक्रमण करने वालों को वश में करें ॥ २० ॥

७१ सूक्त

(ऋषि—मधुच्छन्दाः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्द—गायत्री)

महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥१॥
समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रासो वा धियायवः ।२।
यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्रइव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ॥३॥
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्का शाखा न दाशुषे ॥४॥
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥५॥
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥६॥
इन्द्रे हि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ॥७।
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥८॥
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभि स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ॥९॥
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रतित्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥१०।

इन्द्र श्रेष्ठ और महान् हैं,वे महिमावान हों । उनका पराक्रम आकाश के समान विशाल हो ॥ १ ॥ बुद्धि की कामना वाले विद्वान् मनुष्य पुत्र के साथ भी युद्ध में लग जाते हैं ॥ २ ॥ सोमपायी इन्द्र की कुक्षि ककुदयुक्त बैल तथा गहन जल वाले समुद्र के समान वृद्धि को प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ इन्द्र की गौ देने वाली पृथिवी हवि देने वाले को वृक्ष की पकी हुई शाखा के समान है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हविदाता यजमान के निमित्त तुम्हारे रक्षा-साधन सदा उपलब्ध रहते हैं ॥ ५ ॥ सोम-पान के समय स्तोम, उक्थ और शंस्या इन्द्र के लिए रमण करने योग्य होती हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! यहाँ आओ । सब सोम सवनों में सोम से हर्ष में भरे ओज से तुम्हारा अभीष्ट महान् है ॥ ७ ॥ हे अध्वर्युओ ! तुम उक्थों और चमसों से सोम को मनाओ । सोम अभिषव होने पर इन्द्र को प्रफुल्लित करने वाला है ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम सुन्दर चिबुक वाले हो । तुम सोम सवनों में इन हर्षवर्द्धक सोमों के द्वारा हर्ष को प्राप्त होओ ॥ ९ ॥ जैसे विद्वेषिणी स्त्रियाँ सेचन समर्थ पति को भी छोड़ देती हैं, वैसे ही यह स्तुतियाँ क्या तुम्हें भी त्याग देती हैं ? ॥ १० ॥

[सं] चोदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यम् । असदित्ते विभु प्रभु ॥११
[अ]स्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः ॥१२॥
[सं] गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥१३॥
[अ]स्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥१४
[वसो]रिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् । होम गन्तारमूतये ॥१५
[सुते]सुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः । इन्द्राय शूषमर्चति ॥१६॥

हे इन्द्र ! वरण करने योग्य, सुन्दर, प्रभावान धनों को हमारी ओर [प्रे]रित करो ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमको महान् और यशस्वी होने के ऐश्वर्य [...] में रत करो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! धेनुओं से युक्त और हवियों से सम्पन्न [...]य को हमें दो और सम्पूर्ण आयु को भी हमें दो ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! सहस्रों [...]ा सेवन करने योग्य 'अन्न' को तथा रथिनी इच्छाओं को हमें दो ॥१४॥ हम [ऐ]श्वर्य, वसुपति, ऋग्मिय और यज्ञ में जाने वाले इन्द्र के रक्षा-साधनों को [बु]लाते हैं ॥१५॥ महान् इन्द्र के लिए 'ओकस्' में हर बार सोम अभिषुत होने [प]र शत्रु भी इन्द्र के बल की सराहना करते हैं ॥ १६ ॥

७२ सूक्त [सातवाँ अनुवाक]

(ऋषि—परुच्छेपः। देवता—इन्द्रः। छन्द—अष्टि)

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः -
पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।
तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥ १ ॥
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य-
निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥२॥
उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो-

हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥३॥

हे इन्द्र ! फल वर्षा की याचना वाले, विभिन्न स्वर्गों की कामना वाले, सब सवनों में तुम्हीं से याचना करते हैं। नौका के समान अन्न के पूले से युक्त तुम्हें हम वल-भार में नियुक्त करते हैं। हम इन्द्र की कामना से स्तोत्र को प्रबोधित करते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! अन्न कामना वाले दम्पति गो-दान के अवसर पर तुम्हारा ध्यान लगाते हैं और फल देने की याचना करते हैं। तुम स्वर्ग गमन करने वाले दो व्यक्तियों के ज्ञाता हो, तुम्हारा वर्षणशील एवं सहायक वज्र प्रकट होता है ॥ २ ॥ सूर्य का ज्ञापन करने वाली उषा की हवि को स्वर्ग प्राप्ति के निमित्त प्रदान करते हैं। हे वर्षणशील इन्द्र ! तुम युद्ध की इच्छा वाले शत्रुओं के संहार करने को वज्र ग्रहण करते हो। तुम मेरे नवीन रचे हुए स्तोत्र का श्रवण करो ॥ ३ ॥

७३ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः; वसुक्र। देवता—इन्द्रः । छन्द—जगती त्रिष्टुप्)

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ १ ॥
नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ २ ॥
प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ ३ ॥
यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥४
सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णु
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥५॥

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥६॥

हे वीर इन्द्र! यज्ञ के सभी सवन तुम्हारे लिए हैं। तुम्हारे लिए ही इन मन्त्रों को पढ़ता हूँ। तुम सबके पोषक एवं आहुति के योग्य हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र! तुम उग्र हो। तुम्हारे सुन्दर दर्शन, वीर्य, धन और महिमा को अन्य कोई नहीं पा सकता ॥ २ ॥ हे यजन करने वालो! तुम हवियों द्वारा इन्द्र को सम्पन्न करो। तुम मनुष्यों को अभीष्ट फलों से सम्पन्न करते हो। और हवि रूप अन्न का सेवन करो ॥ ३ ॥ इन्द्र के हर्षक स्वर्विद वज्र को एवं रथ में उनको अश्वों से जोड़ते हैं, तब आनन्द देने वाले इन्द्र रथ पर आरूढ़ होते हैं ॥ ४ ॥ सोम के अभिषुत होने पर इन्द्र हमारे यज्ञ गृह में आते हैं और वायु जैसे वन को कंपित करता है, वैसे ही मधु को कम्पायमान करते हैं। उस सोम रस से अपनी मूँछों को आर्द्र करने वाले इन्द्र की ही प[illegible] वृद्धि है ॥ ५ ॥ जो इन्द्र दुष्कर्म करने वालों का वध करते हैं, जिनसे पापि[illegible] वालों की वाणी को मधुर कर देते हैं, उनके पिता के समान वज्र को पु[illegible] देने वाले पराक्रमों की हम स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

७४ सूक्त

(ऋषि—शुनः शेपः। देवता—इन्द्रः। छन्द—पङ्क्ति)

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥
शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ
नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ
ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः।

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥५॥
पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥६॥
सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥७॥

हे सोमपायी इन्द्र ! हमारे सहस्रों गौ, घोड़े और शुभ्रियों को अमृतत्व को कहो क्योंकि तुम अमृतत्व को प्राप्त हो ॥ १ ॥ हे धनपति इन्द्र ! तुम शत्रुओं को दंशित करने में समर्थ हो, तुम अपने उस सामर्थ्य को हमारे सहस्रों गौ, अश्व और शुभ्रियों में भरो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! मुझे दोनों नेत्रों द्वारा निद्रित करो। हमारे सहस्रों गवादि में निद्रा प्रदान करो ॥ ३ ॥ हे बहुधनेन्द्र ! तुम हमारे सहस्रों गौ, अश्व आदि में धन को भरो। हम जागृत रहें और शत्रु निद्रा के वशीभूत हों ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम पापरूप वृत्ति वाले रासभ को मार डालो। तुम हमारे गवादि में नाशक शक्ति भरो ॥ ५ ॥ वायु कुण्डृणाची के द्वारा जङ्गल से दूर प्रस्थान करता है। हे इन्द्र ! हमारे गौ आदि प्राणियों में कुण्डृणाची को कहो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! कृकदाश्व को नष्ट करो, परिक्रोश को हटाओ। हमारे गौ, अश्व आदि प्राणियों में से परिक्रोश को दूर करो ॥ ७ ॥

७५ सूक्त

(ऋषि—परुच्छेपः । देवता—इन्द्रः । छन्द—अत्यष्टिः)

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥१॥
विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः

सासहानो अवातिरः ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥२॥
आदित् ते अस्य वीर्यस्य चकिरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ
सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥३॥

हे इन्द्र ! गोदान के अवसर पर अन्न की कामना वाले दम्पति तुम्हारा ध्यान करते हुए फल देने के लिये तुम्हें आकर्षित करते हैं। तुम स्वर्ग को गमन करने वाले दोनों को जानते हो। उस समय तुम अपने वर्षण-शील सहायक वज्र को प्रकट करते हो ॥ १ ॥ यह इन्द्र शरद् ऋतु की वस्तुओं में प्रकट होकर बारम्बार शत्रुओं को व्यथित करते हैं। इनके बल को मनुष्य जानते हैं। हे इन्द्र ! जो मर्त्यलोक वासी तुम्हारा पूजन नहीं करता उस पर तुम शासन करो और इस पृथिवी तथा जलों को प्रवृद्ध करो ॥ २ ॥ हे सेचन समर्थ इन्द्र ! हम तुम्हारे वीर्य का वर्णन करते हैं। इन्द्र के हर्षोन्मत्त होने पर तुम उनकी रक्षा करते हो। मित्रों का पालन करते हो। पृतनाओं में सेवनीय कर्मों के करने वाले हो। तुम नदियों के आश्रय में रहो और हमको अन्न प्रदान करते हुए स्नान कराने वाले होओ ॥ ३ ॥

७६ सूक्त

(ऋषिः—वसुक्रः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—त्रिष्टुप्)

वने न वायो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥१॥
प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान्॥२॥
कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्युग्रो वि

कद् वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ३
कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन् कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥४॥
प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधाइव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इंद्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥५॥
मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन् भवन्तु पीतये मधूनि ॥६॥
आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥७॥
व्यानडिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥८॥

हे अश्विनीकुमारो ! तुम देवताओं के भरण करने वाले हो । यह निर्दोष और इन्द्र की कामना करने वाला स्तोम हममें है, इन्द्र इसकी बहुत समय से कामना करते थे । वे इन्द्र मनुष्यों में श्रेष्ठ, सोम को प्राप्त करने वाले हैं । यह स्तोम उन्हीं को ओर अग्रसर होता है ॥ १ ॥ हम वीरों में श्रेष्ठ इन्द्र के सख्य में रहें और दूसरी उषा के भी पार हों । त्रिशोक ऋषि ने सैकड़ों उषाएँ प्राप्त कराईं । कुत्स ऋषि ने संसार रूपी रथ को अन्नवा किया ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हें प्रसन्न करने वाला कौन-सा स्तोम हमको दे वाला होगा ? कौन-सा अश्व तुम्हें मेरे पास लावेगा ? तुम मेरे स्तोत्र प्रति आओ, तुम उपनेय हो, मैं तुम्हें हवियों द्वारा प्रसन्न कर सकूँगा । हे इन्द्र ! तुम अपने आश्रितों को किस बुद्धि से यशस्वी बनाते हो ? महान् कीर्ति वाले हो, अतः यथार्थ सखा के समान इसे अन्नवती बु सम्पन्न करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! इसकी इच्छा पूर्ति के लिए जो माता के मिलती है, उन रश्मियों से हमें अर्थ के समान पार करो । पवन दें । हे इन्द्र ! तुम अपनी पुरातन स्तुतियों को इसकी मति में ला हे इन्द्र ! यह घृतयुक्त सोम तुम्हारे लिए सुस्वादु हों । पृथिवी औ

अपने श्रेष्ठ काम्य के लिए सुमति वाले हों ॥ ६ ॥ इन्द्र के निमित्त यह पात्र मधुर रस से पूर्ण किया गया है। यह इन्द्र अपने बल से ही पृथिवी पर प्रभुत्व होते हैं और यही सत्य के द्वारा पूजित होते हैं ॥ ७ ॥ इन्द्र का बल श्रेष्ठ है, यह सेनाओं में व्याप्त होते हैं। असंख्य और इनके सम्य भाव की कामना करते हैं। हे इन्द्र ! तुम जिस सुमति द्वारा प्रेरणा देते हो, उसी रथ के समान सुमति से हमारे वीरों में व्याप्त होओ ॥ ८ ॥

७७ सूक्त

(ऋषिः—वामदेवः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्)

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥ १ ॥
अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन् नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥ २ ॥
कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत् सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥ ३ ॥
स्वर्यद् वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥४॥
ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्युभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥५॥
विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥६॥
अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावन् ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥ ७ ॥
अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥८॥

इन्द्र के अश्व हमारी ओर गतिवान हों। धन के स्वामी, सत्यनिष्ठ

सोमपायी इन्द्र यहाँ आगमन करें। स्तुति करने वाला विद्वान् इसी कारण स्नानादि कर्म कर रहा है और हम सोम का संस्कार कर रहे हैं ॥१॥ हे वीर! हमारे इस यज्ञ को प्राप्त करो, अपने मार्ग को हमारे समीप करो। यह विद्वान् उशना के समान; इन्द्र के लिए उक्थ उच्चारण करते हैं ॥२॥ इन्द्र फलों के वर्षक हैं, वे वर्षा-जल के द्वारा पृथिवी को सम्पन्न करते हुए आगमन करें। ऋत्विज यज्ञ कार्य कर रहा है। सात स्तोता शोभन स्तोत्रों से स्तुति कर रहे हैं ॥३॥ जिन मंत्रों के द्वारा दर्शनीय स्वर्ग का ज्ञान होता है, जो मंत्र सूर्य को प्रकाशित करते हैं, जिन मंत्रों से सूर्य रूपी इन्द्र दूर से भी अँधेरे को दूर करते हैं, वे अत्यंत बली इन्द्र कामनाओं की स्थापना करते हैं ॥४॥ सोमपायी इंद्र अपरिमित धन का प्रेरण करते हैं, वे सब लोकों में व्याप्त होने से महिमामय हैं। उन्हीं इन्द्र की महिमा पृथिवी और आकाश को पूर्ण करती है ॥५॥ स्वेच्छा से संचालित मेघों द्वारा इन्द्र ने हितकारी जलों की वृद्धि की। वे जल अपने शब्द से पाषाणों को भी तोड़ देते हैं और इच्छा होने पर गोचर भूमि पर छा जाते हैं ॥६॥ हे इन्द्र! यह पृथिवी तुम्हारे वश की सावधानी से रक्षा करती है। यही समुद्र की भी रक्षा करती है। आवरक वृत्र को जलों ने छिन्न भिन्न कर दिया है। हे इन्द्र! तुम अपने बल से इस पृथिवी के स्वामी हो ॥७॥ हे इन्द्र! तुम अनेक यजमानों द्वारा बुलाये जा चुके हो। तुम जिस जल को प्रदान करते हो, वह जल पहले ही प्रकट होकर बहने लगता है। तुम आंगिरसों द्वारा स्तुत, मेघों को चीरते हुए, हमको अपरिमित अन्न देते हो ॥८॥

७८ सूक्त

(ऋषिः—शंयुः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री)

तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
शं यद् गवे न शाकिने ॥ १ ॥

न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः ।
यत् सीमुप श्रवद् गिरः ॥ २ ॥

कुविरस्तस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।
शचीभिरप नो वरत् ॥ ३ ॥

हे स्तोता ! सोम के संस्कारित होने पर इन्द्र की स्तुति करो, जिससे वे हम सोमपानों के लिए गौ के समान कल्याण करने वाले हों ॥१॥ यह इन्द्र हमारी स्तुतियों को यदि सुन लेते हैं तो गौओं से सम्पन्न अन्न को देने से नहीं रुकते ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम वृत्रहन हो, अपरिमित अन्न वाले हो। तुम गौ से सम्पन्न स्थान पर आकर हमको बल से पूर्ण करो ॥३॥

७९ सूक्त

(ऋषिः—शक्तिः, वसिष्ठः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः)

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥१॥
मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! पिता द्वारा पुत्र को इच्छित वस्तु देने के समान ही हमें अभीष्ट वस्तु प्रदान करो। हे पुरुहूत ! इस संसार यात्रा में इच्छित पदार्थ दो जिससे हम दीर्घजीवी होकर इस लोक के सुखों का अनुभव करें ॥१॥ हे वीर इन्द्र ! हम पर आधि-व्याधियों का आक्रमण न हो। अमंगलमय वाणियाँ और पाप हम पर आक्रमण न करें। हम तुम्हारी कृपा को पाकर मनुष्यों से युक्त रहें और कर्मों को सदा सफलता पूर्वक करें ॥२॥

८० सूक्त

(ऋषि—शंयुः । देवता—इन्द्रः । छन्द—प्रगाथः)

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥१॥
त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान् सुषहान् कृधि ॥२॥

हे इन्द्र ! तुम अपने महान् और ओजस्वी धन से हमें सम्पन्न करो। हे वज्रिन् ! तुमने अपने जिस धन से आकाश-पृथिवी को पूर्ण किया है उसी धन को हमें प्रदान करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम उग्र हो हमारे भय के सब कारणों को दूर करो और शत्रुओं को वशीभूत करने वाले बल से हमें सम्पन्न करो। हम तुम्हें रक्षा के लिए आहूत करते हैं ॥ २ ॥

८१ सूक्त

(ऋषि—पुरुहन्मा। देवता—इन्द्रः। छन्द—प्रगाथ)

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥१॥
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥२॥

हे इन्द्र ! हे प्रभो ! सैकड़ों आकाश-पृथिवी भी यदि तुम्हारी समानता करना चाहें तो भी तुम्हारे समान प्रवृद्ध नहीं हो सकते ॥१॥ हे वज्रिन् ! हमारे गोचर स्थान में अपने अद्भुत रक्षा-साधनों से हमारी रक्षा करो और अपनी महिमा द्वारा ही हमारी वृद्धि करो ॥ २ ॥

८२ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—इन्द्रः। छन्द—प्रगाथ)

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय।
स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥१॥
शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे।
नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥२॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे समान प्रभुता को मैं प्राप्त होऊँ, मैं स्तुति करने वालों को धन देने वाला होऊँ और पापत्व के कारण पक्षियों द्वारा व्यथित न किया जाऊँ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! मैं जिधर से चाहूँ वही से धन पाऊँ, जो

तुमसे उत्कृष्ट होना चाहे उसे स्वर्ग का दण्ड दूँ। हे इन्द्र! मुझे इस प्रकार की शक्ति देने वाला अन्य कौन रक्षक हो सकता है? ॥२॥

८३ सूक्त

(ऋषि—शंयुः। देवता—इन्द्रः। छन्द—प्रगाथः)

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत्।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥१॥
ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥२॥

हे इन्द्र! मुझे मंगलकारी गृह प्रदान करो और हिंसात्मक शक्तियों को यहाँ से दूर करो ॥ १ ॥ तुम्हारे जो वज्र शत्रुओं को संतप्त करते और मारते हैं, अपने उन्हीं वज्रों से हे इन्द्र! हमारे शरीरों की रक्षा करो ॥ २ ॥

८४ सूक्त

(ऋषि—मधुच्छन्दाः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥१॥
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥२॥
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥३॥

हे इन्द्र! यहाँ आओ। यह निष्पन्न सोम तुम्हारे ही हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र! यह विद्वान् ब्राह्मण तुम्हें अपने से श्रेष्ठ मानते हैं। अतः इन मंत्रों से सम्पन्न एवं सोमवान ऋत्विजों के समीप आओ ॥ २ ॥ हे इन्द्र! तुम अश्वों वाले हो, शीघ्र ही हमारे स्तोत्रों की ओर आगमन करो और हमारे संस्कारित सोम के पास अपने अश्वों को रोको ॥ ३ ॥

८५ सूक्त

(ऋषि—प्रगाथ मेध्यातिथिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—प्रगाथः)

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१॥
अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोऽभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥२॥
यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥३॥
वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥४॥

हे स्तोताओ ! तुम अन्य किसी देवता का आश्रय न लो, अन्य किसी देवता की स्तुति न करो । हे संस्कारित सोम वाले होताओ ! तुम इन्द्र की स्तुति करते हुए वारम्वार उक्थों को गाओ ॥ १ ॥ वे इन्द्र वृषभ के समान चरने वाले, शत्रुओं के द्वेषी, अवक्ती अजुर, मंहिष्ठ, संवननीय एवं दोनों लोकों में रक्षक हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी रक्षा प्राप्त करने को अनेक पुरुष तुम्हें आहूत करते हैं । हमारा यह स्तोत्र भी तुम्हारी वृद्धि करने वाला है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम शीघ्र आकर विशाल रूप धारण करो । इन विद्वानों, मनुष्यों और यजमान की उङ्गलियाँ शीघ्रता कर रही हैं । तुम हमारे पालन के लिए अन्न को हमारे समीप लाते हुए हमें प्रदान करो ॥ ४ ॥

८६ सूक्त

(ऋषिः—विश्वामित्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्द—त्रिष्टुप्)

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम्
॥ १ ॥

कर्मवान् मन्त्र द्वारा तुम्हारे रथ में अश्वों को संयुक्त करता हूँ । हे

विद्वान् इन्द्र ! उस सुखकारी रथ पर आरूढ़ होकर हमारे इस सोम के पास आगमन करो ॥ १ ॥

८७ सूक्त

(ऋषिः—वसिष्ठः ॥ देवता—इन्द्रः इन्द्राबृहस्पती। छन्दः—त्रिष्टुप्)

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥१॥
यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि सोमान्॥२॥
जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एन्द्र पप्राथोर्वन्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥३॥
यद् योधया महतो मन्यमानान् साक्षाम तान् बाहुभिः शाशदानान् । यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥ ४ ॥
प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य ॥५॥
तवेदं विश्वमभितः पशव्यं यत् पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥६॥
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

हे अध्वर्युओ ! इन्द्र पृथिवी पर वर्षा करने वाले हैं, उनके लिए सोम के रूप रूप अंश की आहुति दो। वह इन्द्र सोम की कामना करते हुए पीने के लिए आते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम आकाश में सुन्दर अन्न धारण करते हो और यज्ञादि कर्मों के अवसर पर सोम का पान करते हो। अतः तुम सोम की कामना करते हुए, इसकी रक्षा करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! [illegible] होते ही सोम पर जाते हो। तुमने संग्राम में जीत कर देवताओं

तुम विशाल अन्तरिक्ष में गमन करते हो वह अन्तरिक्ष तुम्हारी महिमा का बखान करता है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम मनुष्यों सहित संग्राम करो। हम तुम्हारी शक्ति से इस संग्राम में विजय पाते हुए यशस्वी हों। तुम अपनी जिन भुजाओं से बड़े-बड़ों से युद्ध करते हो, उन भुजाओं के बल से हम युक्त हों ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! मैं तुम्हारे नये-पुराने कर्मों का वर्णन करता हूँ। तुमने जिन राक्षसी मायाओं का सामना किया है, इससे सोम तुम्हारा ही हो गया है ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! यह सब पशु धन तुम्हारा है, तुम गौओं के पालन करने वाले हो। तुम सूर्य रूपी चक्षु से देखने वाले हो। तुम अपने उपासक के फल में यत्नवान रहते हो, ऐसे तुम्हारा धन हम पावें ॥ ६ ॥ हे बृहस्पते ! हे इन्द्र ! तुम दोनों ही दिव्य और पार्थिव धनों के स्वामी हो। तुम अपनी रक्षक शक्तियों द्वारा हमारी रक्षा करते हुए स्तुति करने वाले हमें धन प्रदान करो ॥ ७ ॥

८८ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—बृहस्पतिः। छन्द—त्रिष्टुप्)

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥१॥
धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥ २ ॥
बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्व श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥३॥
बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ॥४॥
स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत् ॥५॥
एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥

जिन बृहस्पति ने पृथिवी के छोर को भी अपने घोष से स्तंभित किया, उनका पुरातन ऋषि बारंबार ध्यान करते हैं। वे बृहस्पति प्रसन्न करने वाली जिह्वा वाले हैं, विद्वान् ब्राह्मण उन्हें प्रथम रखते हैं ॥१॥ हे बृहस्पते! जो ऋत्विज तुम्हें हमारी ओर आकर्षित करते हैं, उन गमनशील, अहिंसित, एवं विन्दु युक्त ऋत्विजों की तुम रक्षा करो ॥२॥ हे बृहस्पते! पवित्रस्थ ऋत्विज तुम्हारी रक्षा-साधनों वाले महान् रक्षा के निमित्त बैठे हुए पर्वतों से च्यवन करते हुए सुंदर मधु की तुम पर वर्षा करते हैं ॥३॥ वे बृहस्पति महान् ज्योतिश्चक्र से परम व्योम में आविर्भूत होते हुए सप्त रश्मि बन कर अंधकार को मिटा देते हैं ॥४॥ ऋचा युक्त गण द्वारा वे बृहस्पति मेघ को चीरते हैं। वे हव्य से प्रेरित होकर इच्छा करने वाली गौओं को बारंबार शब्द करते हुए प्राप्त होते हैं ॥५॥ हे बृहस्पते! हम सुन्दर वीर संतानों से सम्पन्न धन के स्वामी हों। हम उन बृहस्पति की हवियों और नमस्कारों द्वारा पूजा करते हैं ॥६॥

८९ सूक्त

(ऋषिः—कृष्णः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्)

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥१॥
दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥ २ ॥
किमङ्ग त्वा मघवन् भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥ ३ ॥
त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥४॥
धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान् प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान् युवति हन्ति वृत्रम् ॥५॥

यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित् सन् भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥६॥
आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद् गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥७॥
प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन् तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंसन् नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥८॥
उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥९॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीवः कृणोतु ॥११॥

हे ब्राह्मणो ! तुम इन्द्र के लिए स्तोमों को भरो । मंत्र रूप वाणी से पार जाओ । हे स्तुति करने वालो ! तुम इन्द्र को सोम से सुसंगत करो ॥१॥ हे स्तोताओ ! अपनी मित्र रूप वाणी को दुहो और शत्रुओं को क्षीण करने वाले इंद्र को बुलाओ। धन से सम्पन्न कोश के समान शुद्ध सोम को इंद्र के लिए सींचो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम भोगने वाले हो । तुम शत्रु के क्षीण करने वाले हो । मुझे क्षीण न करो । मुझे धन मिलने वाला सौभाग्य दो । मेरी बुद्धि कर्मों की ओर अग्रसर हो ॥३॥ हे इन्द्र ! मेरे पुरुष तुम्हें ही आहूत करते हैं । जो वीर तुम्हारी मित्रता की कामना करता है और हवि वाला अनुष्ठान करता है वह सोम का संस्कार करता है ॥४॥ जो हविर्वान् पुरुष इन्द्र के निमित्त सोमों को संस्कारित नहीं करता उसका धन सरकता जाता है और इन्द्र उसे शत्रुओं में मिलाते हुए उस पर वज्र प्रहार करते हैं ॥५॥ जो इन्द्र हमारे अभीष्ट को पूर्ण करने वाले हैं, जिन इन्द्र की हम प्रशंसा करते हैं, उन इन्द्र का शत्रु समीप आते ही भयभीत हो और संसार के सभी प्राणी इन इन्द्र को नमस्कार करें ॥६॥ हे इन्द्र ! तुम अपने उग्र वज्र से पास के

या दूर के शत्रु को व्यथित करो। हमको अन्न वाली बुद्धि देते हुए अन्न तथा पशुओं में पूर्ण धन में प्रतिष्ठित करो ॥७॥ जिन इन्द्र के पास तीव्र सोम गमन करते हैं वे इन्द्र धन की बाधक रस्सी को रोकते और सोम का संस्कार करने वाले स्तोता को असीमित धन प्रदान करते हैं ॥ ८ ॥ जैसे क्रीड़ा कुशल व्यक्ति प्रतिपक्षी को द्यूत में हराता है क्योंकि वह कृत नामक पक्ष को ही योजता है। वह शिकारी इन्द्र की कामना करता हुआ उस जीते हुए धन को व्यर्थ हो न रोकता हुआ इन्द्र के कार्य में लगाता और उन्हें स्वधावान् करता है ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! दरिद्रता से प्राप्त हुई दुर्बुद्धि को हम पशुओं के द्वारा लांघ जांय। अन्नों से भूख को शांत करें। प्रतिपक्षी शिकारी से जीतते हुए हम राजाओं में स्थित उत्कृष्ट धन को बल सम्पन्न अश्वों से प्राप्त करें ॥ १० ॥ जो शत्रु हमारे वध रूप पाप की इच्छा करता है, उससे बृहस्पति देवता चारों दिशाओं में हमें रक्षित करें और अपने अन्य मित्रों से हमें उत्कृष्ट बनावें ॥ ११ ॥

९० सूक्त

(ऋषि—भरद्वाज: । देवता—बृहस्पतिः । छन्द—त्रिष्टुप्)

यो अद्रिभिन् प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥१॥
जनाय चिद् य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान् पृत्सु साहन् ॥२॥
बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥३॥

प्रथम प्रकट होने वाले, मेघों को चीरने वाले, सत्य से सम्पन्न आंगिरस बृहस्पति हवि प्राप्त करने योग्य हैं। वे पालन करने वाले, आकाश-पृथिवी में शब्द करने वाले, द्विबर्हज्मा, प्राघर्मसत् और वर्षा करने वाले हैं ॥ १ ॥ देवहूति में लोक को करने वाले, मनुष्यों के लिए गमनशील बृहस्पति मेघों को चीर कर पुरों को तोड़ते हैं, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हुए सेनाओं का सामना करते हैं ॥ २ ॥ बृहस्पति ने गौओं

से सम्पन्न बृहद् गोष्ठों और धनों पर विजय प्राप्त करली । वे जल-दान के निमित्त स्वर्ग में आरूढ़ होते और मन्त्रों से शत्रुओं को नष्ट करते हैं ॥ ३ ॥

९१ सूक्त [आठवाँ अनुवाक]

(ऋषि—अयास्यः । देवता—बृहस्पतिः । छन्द—त्रिष्टुप्)

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥ १ ॥
ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥ २ ॥
हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद् गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥३॥
अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥४॥
विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥ ५ ॥
इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत् पणिमा गा अमुष्णात् ॥६॥
स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥ ७ ॥
ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।
बृहस्पतिर्मिथोअवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥ ८ ॥
तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥ ९ ॥
यदा वाजमसनद् विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥१०॥

सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद् रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥११॥
इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धून् देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥१२॥

बृहस्पति ने सत्य द्वारा आविर्भूत सप्तशीर्षा बुद्धि को प्राप्त किया है और विश्व से उत्पन्न उन अयास्य ने इन्द्र से कह कर तुरीय को उत्पन्न कराया ॥ १ ॥ सत्य कथन द्वारा आप के वीर्य से उत्पन्न हुए अङ्गिरा यज्ञ स्थान में प्रथम समझे जाते हैं ॥ २ ॥ बंधक मेघों का उद्घाटन करते हुए बृहस्पति स्तुति सी करते हुए विद्वान् से लगते हैं ॥ ३ ॥ दो से फिर एक से हृदय गुहा में अवस्थित पापियों को उद्भूत करते हुए अन्धेरे में प्रकाश की कामना वाले प्रकाशों को प्रकट करते हैं ॥ ४ ॥ पुर को चीर कर पश्चिम में सोते हैं। समुद्र के भागों का त्याग नहीं करते। आकाश में कड़कते हुए बृहस्पति, उषा, सूर्य, मन्त्र और गौ को पाते हैं ॥५॥ कामधेनुओं के धारक मेघ को इन्द्र छिन्न-भिन्न करते हैं। इन्होंने दधि की इच्छा से गौ रूपद रक्षकों को स्थापित किया ॥ ६ ॥ यह इन्द्र धन देने वाले तथा पृथिवी को पुष्ट करने वाले मेघ को चीरते हैं और मरुद्गणपति वर्षणशील मेघों द्वारा धन में व्याप्त होते हैं ॥ ७ ॥ यह मेघ वृषभ और गौओं पर जाने की कामना करते हुए अपनी बुद्धियों द्वारा उन्हें पाते हैं। उन अनवद्य शब्द का पालन करने वाले बृहस्पति मेघों द्वारा गौओं से संयुक्त होते हैं ॥ ८ ॥ उस युद्ध में सिंह के समान गर्जन करने वाले बृहस्पति को हम अपनी सुबुद्धियों से प्रवृद्ध करते हैं और युद्धों के अवसर पर उन्हें प्रसन्न करते हैं ॥ ९ ॥ जब वह विश्व रूप आकाश रूपी भवन पर चढ़कर अन्न प्रदान करने की इच्छा करते हैं, तब ज्योति को ग्रहण करते हुए बुद्धि के द्वारा बृहस्पति को प्रवृद्ध करते हैं ॥ १० ॥ अन्न के पोषक कार्यों से आशीर्वाद को सत्य करते हुए स्तुति करने वाले के रक्षक होओ। हे द्यावापृथिवी ! तुम अग्नि संबंधी रूपाओं के अवलम्ब होने पर भजन करो। जितने युद्ध हैं वे सब विगत हो जाँय ॥ [illegible] ॥ मेघ के मस्तक को अपनी महिमा द्वारा ही इन्द्र काट देते हैं। वे [illegible]

नदियों को प्रकट करते हैं। हे आकाश और पृथिवी! तुम हमारी पोषण करने वाली होओ ॥ १२ ॥

६२ सूक्त

(ऋषि—प्रियमेधः, पुरुहन्मा। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री; अनुष्टुप्; पंक्ति; बृहती; प्रगाथ)

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ १ ॥
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि।
यत्राभि संनवामहे ॥ २ ॥
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु।
यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥ ३ ॥
उद् यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ४ ॥
अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ५ ॥
अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत्।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ६ ॥
आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥ ७ ॥
अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत।
वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥८॥
सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥ ९ ॥
यो व्यतीरफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे।
तक्वो नेता तदिद् वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥ १० ॥

हे स्तोता ! गौओं के स्वामी इन्द्र को जिस प्रकार पाऊँ उसी प्रकार म उनका पूजन करो । यह इन्द्र अपने सत्यनिष्ठ उपासकों की रक्षा करते हैं १ ॥ जिन कुशाओं पर हम इन्द्र का पूजन कर रहे हैं, उन कुशाओं पर न्द्र के अश्व रथ को जोड़ें ॥ २ ॥ जब गौएं इन्द्र के लिए दूध को दुहती तब वे इन्द्र सब ओर से मधुर सोम रसों को प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥ अन्न के ह रूप स्वर्ग में हम और इन्द्र गमन करें । हम इक्कीस बार मधु को पीकर न्द्र का सख्य भाव प्राप्त करें ॥ ४ ॥ हे स्तोताओ ! इन्द्र को श्रेष्ठ रीति से जो । अपने शत्रुओं को वश करने के लिए उनका पूजन करो ॥ ५ ॥ जब न्द्र के प्रति मन्त्र चलता है तब कलश शब्दवान होता है उस समय विशंग दार्थं गमन करता हुआ धनुष की प्रत्यंचा के समान शब्द करता है ॥ ६ ॥ हे स्तोताओ ! इन शुभ धेनुओं में स्थित अविनाशी पदार्थ को ग्रहण करते हुए, इन्द्र के पीने के लिए सोम को लाओ ॥ ७ ॥ इस पदार्थ को इन्द्र ने, अग्नि ने, विश्वेदेवाओं ने पी लिया है । हे जनो ! संसिरथी के पास के समान वरुण की स्तुति करो ॥८॥ हे वरुण ! तुम्हारे पास पुरस्तात्, पर्यंगमी, अश्वपत्नी, अरणा, सेचपरना त्रिपुषा, असन्धा नाम की सात नदियाँ हैं । जैसे नगर से बाहर जल निकलता है, वैसे ही उन नदियों से जल प्रवाहित होता है ॥ ९ ॥ जो हविदाता के लिए मनुष्यों को चालित करते हैं, जो नेता हैं, श्रेष्ठ हैं, उनकी उपमा उनका देह ही है, अर्थात् अन्य कोई नहीं है ॥१०॥

अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
भिनत् कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥ ११ ॥
अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम् ।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥ १२ ॥
आ तू सुशिप्र दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् ॥१३॥
तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥

अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् ।
पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥१५॥
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥१६॥
इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥१७॥
नकिष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वोजसम् ॥१८॥
अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥१९॥
यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥२०॥
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥२१॥

इन्द्र सब शत्रुओं को वश में करते हैं, वे भार को संभालने वाले हैं। इन्होंने मन्त्र से पकते हुए ओदन का कनीन होते हुए भी भेदन किया ॥११॥ वे अपने रथ पर उत्कृष्ट कुमार के समान आरूढ़ होते हैं और द्यावा पृथिवी रूप पिता-माता के निमित्त विभुक्रतु, पाक करते हैं ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! तुम इस स्वर्ण निर्मित रथ पर आरूढ़ होओ और हम भी तुम्हारी कृपा से सुन्दर वाणियों से सम्पन्न, सहस्रों मार्ग से युक्त स्वर्ग पर चढ़ें ॥ १३ ॥ उन इन्द्र को इस प्रकार की महिमा जानने वाले व्यक्ति अपने राज्य में अधिष्ठित करते हैं। हवि देने वाले यजमान के लिए ऋत्विग्गण इनके समीपस्थ धन को प्राप्त कराते हैं ॥ १४ ॥ प्रियमेधा वाले ऋत्विज इनके पूर्व भवन से हितकारी अन्न से सम्पन्न होकर 'प्रयति' का उपयोग करते हैं ॥१५॥ राजा इन्द्र ज्येष्ठ हैं, वे रथ द्वारा गमन करते हुए सभी सेनाओं के पार होते हैं। मैं उनका स्तव करता हूँ ॥ १६ ॥ हे पुरुहन्मन् ! इन्द्र की सत्ता मध्यलोक, अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक

में भी है । क्रीड़ा के निमित्त ऊँचा हुआ वज्र उनके हाथ में सूर्य के समान दर्शनीय है । इस धारक यज्ञ में अन्न प्राप्ति के निमित्त उन्हीं इन्द्र को सुसज्जित करो ॥ १७ ॥ जो पुरुष उन महान् पराक्रमी, अभय, अचल, वृद्धिकर और अपने तेज से सम्पन्न इन्द्र की उपासना में लगता है, उसे उसके कर्म से कोई रोक नहीं सकता ॥ १८ ॥ वे प्रचण्ड इन्द्र विशाल आश्रय मार्ग वाले, याज्ञिकों द्वारा स्तुत और सेनाओं में असहनीय हैं, उनका आकाश और पृथिवी स्तोक स्तव करते हैं ॥ १९ ॥ हे इन्द्र ! सौ-सौ आकाश और पृथिवी हों या सहस्रों सूर्य आकाश-पृथिवी बन जाँय तो भी वह तुम्हारी समानता करने में समर्थ नहीं हैं ॥ २० ॥ हे इन्द्र ! हमारी गोचर भूमि में अपने रक्षा-साधनों से हमें रक्षित करते हुए, हमारी वृद्धि करो ॥ २१ ॥

९३ सूक्त

(ऋषि—प्रगाथः देवजामयः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।
अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥
पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि । नहि त्वा कश्चन प्रति ॥२
त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥३॥
ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भेजानासः सुवीर्यम् ॥४॥
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं वृषन् वृषेदसि ॥५॥
त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः । उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥६॥
त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः । वज्रं शिशान ओजसा ॥७॥
त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा । स विश्वा भुव आभवः ॥८॥

हे वज्रिन् ! यह स्तुति तुम्हारे लिए प्रमुदित करने वाली हो, तुम ब्रह्म द्वेषियों को नष्ट करो और हमको धन दो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! पणियों के धन को छीन कर उन्हें मार डालो । तुम महान् हो । कोई भी तुम्हारी प्रतिस्पर्धा में नहीं टिक सकता ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम संस्कारित सोमों के तथा मनुष्यों के भी स्वामी हो ॥ ३ ॥ अन्न की कामना करती हुई और [illegible] स्वाद

होती हुई औपधियाँ उत्पन्न होते ही इन्द्र की आराधना करती हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र तुम फलों की वर्षा करने वाले अपने धर्षक ओज सहित आविर्भूत हुए हो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुम अंतरिक्ष को लाँघने में समर्थ हो वहाँ तुम वृत्र का नाश करते हो । तुम्हारा ओज स्तम्भित करने वाला है जिससे द्युलोक स्थिर हुआ है ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्रीतिकर मन्त्र के धारण करने के पश्चात् तीक्ष्ण वज्र को अपने ओज से धारण करते हो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! सभी उत्पन्न होने वाले पदार्थों को तुम अपने वल से आधीन करते हो अतः सब शक्तियों को अपने वश में करो ॥ ८ ॥

६४ सूक्त

(ऋषिः—कृष्णः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्, जगती)

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥१॥
सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥२॥
एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥३॥
एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥४
गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा॥५॥
पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्या नि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥६॥
एवैवापागपरे सन्तु दूढ्यो श्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥७॥
गिरींरज्रान् रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।

समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥ ८ ॥
इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन् बोध्याभगः ॥९॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥

जो इन्द्र धन के ईश्वर हैं, धर्म से ध्यानवान् हैं, वे हर्ष के निमित्त आगमन करें और वही अपनी शक्ति से, दबाने वाले शत्रुओं को हर प्रकार से क्षीण करें ॥१॥ हे इन्द्र! तुम्हारे हाथ में वज्र रहता है, तुम्हारे अश्व हर प्रकार से तुम्हारे आधीन रहते हैं, तुम्हारे रथ में बैठने का स्थान श्रेष्ठ है, अतः स्वर्ग से सुन्दर मार्ग द्वारा आओ और हम तुम्हारी सोम-पान की कामना वाली शक्ति को प्रवृद्ध करते हैं ॥२॥ इन वज्रधारी, राजा, भयंकर शत्रुओं का वध करने वाले, सत्य से सशक्त, फलों की वर्षा करने वाले इन्द्र को हमारे इस यज्ञ स्थान में इनके बलवान अश्व लेकर आवें ॥३॥ हे ऋत्विज! ज्ञानी, वज्री, द्रोण पात्र से सुसंगत होने वाले स्कंभ को जल में सींचो। मैं 'ऊर्जितों' को बढ़ाने के लिए तुममें होऊँ। तुम मुझे बल दो और भले प्रकार आश्रय दो ॥४॥ हे इन्द्र! इन स्तोता को शुभ आशीर्वाद दो, इस यजमान में धन को प्रतिष्ठित करो। हे स्वामिन्! इस सोमवान् के गृह में आकर कुशा के इस आसन पर विराजमान होओ। तुम्हारे पात्र धारण शक्ति के कारण धनाढ्य हैं ॥५॥ हे इन्द्र! जो अपने ज्ञान और कर्म के अनुसार देवयान आदि मार्गों से जाने की कामना करते हैं, जो सर्व साधारण को दुष्प्राप्य देवहूति आदि कर्मों को करते हैं, परंतु तुम्हारी कृपा न होने से वे यज्ञ रूप नाव पर नहीं चढ़ पाते, इसलिए साधारण कर्मों को करते हुए मर्त्यलोक में ही रुके रहते हैं ॥६॥ जिन अश्वों को दुर्बुद्ध संयुक्त करते हैं वे 'प्रयाक' से

जो दाता को बहुत से भोज्य पदार्थों से युक्त हैं, वे मेघ हों ॥७॥ सोम के रस से हर्षित हुए इन्द्र पर्वतों को धारण करते, अंतरिक्ष के पदार्थों को कुपित करते और द्युलोक को क्रन्दित करते हैं। आकाश पृथिवी को विष्कमित करते हुए उकथों को श्रेष्ठ बताते हैं॥८॥ हे इन्द्र! मैं तुम्हारे अंकुश को धारणकरता हूँ, तुम उसके द्वारा नख वाले पीडक प्राणियों को नष्ट करते हो। इस सवन में तुम पूजित होओ और सोम के निष्पन्न होने पर धन को जानने वाले होओ ॥९॥ हे अनेकों द्वारा आहूत इन्द्र! हम यजमान तुम्हारे द्वारा प्रदत्त गौओं से दरिद्रता को लाँघ जाँय और तुमने जो अन्न दिया है उससे हम अपने भृत्य पुत्र आदि की भूख को मिटावें। हम अपनी शक्ति से शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें और अपने समान पुरुषों में श्रेष्ठ बन कर धन पावें ॥१०॥ पूर्व दिशा से आते हुए हिंसक शत्रु से इन्द्र हमारी रक्षा करें और धन दें। पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशा से आते हुए हिंसक शत्रुओं से बृहस्पति हमें बचावें ॥११॥

९५ सूक्त

(ऋषिः—गृत्समदः, सुदाः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—अष्टिः, शक्वरी)

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत् सोममपिवद् विष्णुना
सुतं यथावशत्। स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरं सैनं सश्चद्
देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥१॥
प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत।
अभीके चिदु लोककृत् संगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता नभन्ता-
मन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥२॥
त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम्।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्ता-
मन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥३॥
वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः।

प्रस्तासि मन्यवे कथं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिवसु नभन्ता-
मन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥४॥

वे इन्द्र त्रिकद्रुक सोम यागों में सोम पीते और यवादि के मिश्रण से तृप्ति पाते हैं। विष्णु द्वारा निष्पन्न सोम पर अधिकार करते हैं क्योंकि यह सोम उन्हें हर्ष देता हुआ इनमे सुसंगत होता है ॥१॥ इन्द्र के बल को पूजो, इन्द्र को आराधना करो। वह युद्ध में शत्रुओं को मारते हैं। अन्य पुरुषों की प्रत्यंचाएं धनुषों पर न चढ़ पावें। वह प्रेरक इन्द्र हमारी स्तुति को जान गए हैं ॥२॥ हे इन्द्र! तुमने मेघ को मार कर नदियों को दक्षिण की ओर गमनशील बनाया। तुम सब वरणीय पदार्थों को पुष्ट करते और शत्रुओं को मिटाते हो। हम तुम्हें हृदय से लगाते हैं। अन्य पुरुषों की प्रत्यंचाएं उनके धनुषों पर न चढ़ पावें ॥३॥ हे स्वामिन्! हमारे सब शत्रुओं की वृद्धियाँ नष्ट हों। जो शत्रु हमारी हिंसा करने की कामना वाला है, उस पर मरण-साधन वज्र को चलाओ, अपना धन हमको दो। अन्य पुरुषों की प्रत्यंचाएं उनके धनुषों पर न चढ़ पावें ॥४॥

९६ सूक्त

(ऋषिः—पूरणः प्रभूति ॥ देवता—इन्द्र, प्रभृति ॥ छन्दः—त्रिष्टुप
जगती, अनुष्टुप, उष्णिक्, बृहती, पङ्क्ति)

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च ।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः ॥१॥
तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥२॥
य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥३॥
अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥४॥

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥५॥
मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥६॥
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ॥७॥
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इंद्रो यथैनं शरदो नयात्यत्ति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥८॥
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥९॥
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्व ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥१०॥

हे इन्द्र ! तुम इस हवि रूप अन्न वाले यजमान के रथियों के रक्षक बनो । हे इन्द्र ! सोमों को संस्कारित किया जा चुका है अतः अपने अश्वों को छोड़कर यहाँ आओ । अन्य यजमानों के यहाँ रमण मत करो ॥१॥ हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे लिए ही अभिषुत हुए हैं, यह स्तुतियाँ तुम्हारा ही आह्वान कर रही हैं । तुम सब के ज्ञाता हो । हमारे यज्ञ में आकर इस सोम को पीओ ॥ २ ॥ जो देव-काम्य पुरुष सोम को निष्पन्न करता है, उसके स्तोत्रों को इन्द्र स्वीकार कर लेते और सुन्दर वाणी द्वारा उसे तुष्ट करते हैं ॥ ३ ॥ जो पुरुष सोम का संस्कार नहीं करता, वह इन्द्र के प्रहार के योग्य होता है । उस ब्रह्मद्वेषी और हविर्दान न करने वाले को इन्द्र नष्ट कर देते हैं ॥४॥ हे इन्द्र ! हम अश्व, धेनु और अन्न की कामना वाले तुम्हारे आश्रय के लिए, नवीन सुबुद्धि से सुसंगत होकर तुम्हें आहूत करते हैं ॥ ५ ॥ हे रोगी पुरुष ! मैं तेरे जीवन के निमित्त हवि देता हुआ तुझे क्षयादि रोगों से मुक्त करता हूँ । हे इन्द्राग्ने ! यदि इसे पिशाची ने पकड़ लिया हो तो उसके पाप से इसे छुड़ा दो ॥ ६ ॥ यह दुर्गति को प्राप्त हो गया है, इसकी आयु क्षीण होगई है और

मृत्यु का सामीप्य प्राप्त कर चुका है तो भी मैं इसे निर्ऋति के पाश से छीनता हूँ। इसे सौ वर्ष की आयु प्राप्त कराने के लिए मैंने इसका स्पर्श किया है ॥ ७ ॥ मैं इस रोगी को सहस्रों सूक्ष्म दृष्टियों, सैकड़ों वीर्यों और सौ वर्ष वाली आयु के लिए हवि द्वारा मृत्यु से छीन लाया हूँ। इसे इन्द्र ही आयु पर्यन्त के लिए पापों से पार लगावें ॥ ८ ॥ हे रोगिन्! तू सौ वर्ष तक जीवित रहता हुआ बढ़। सौ हेमंतों और सौ बसंतों तक स्थित रह। इन्द्र, अग्नि, सविता, बृहस्पति तुझे शतायुष्य बनावें। इस हवि द्वारा मैं तुझे शतायु करके ले आया हूँ ॥ ९ ॥ हे रोगिन्! तू और था। तू पुनः नवजीवन प्राप्त कर। इस कर्म द्वारा मैंने तेरी दर्शन शक्ति और पूर्ण आयु प्राप्त कर ली है ॥१०॥

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥ ११ ॥
यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥ १२ ॥
यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १३ ॥
यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।
योनिं यो अन्तरारेळ्हि तमितो नाशयामसि ॥ १४ ॥
यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १५ ॥
यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १६ ॥
अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥ १७ ॥
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥ १८ ॥

हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥ १६ ॥
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥ २० ॥
उरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते ॥२१॥
अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥२२॥
अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीवर्हेण विष्वञ्चं-
वि वृहामसि ॥ २३ ॥
अपेहि मनसस्पतेप क्राम परश्चर ।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥ २४ ॥

अग्नि देवता राक्षसों को नष्ट करने वाले हैं, वे मन्त्र से युक्त होते हुए तेरे दूषित रोग को बाधा दें। वह रोग तेरे गर्भाशय में व्याप्त हो रहा है ॥ ११ ॥ जो दुष्ट रोग तेरे गर्भाशय में व्याप्त हो रहा है, उसे अग्निदेव मन्त्र बल से नष्ट करें ॥ १२ ॥ तेरे गिरते या निकलते हुए गर्भ को जो नष्ट करने की इच्छा करता है, हम उसे नष्ट करते हैं ॥ १३ ॥ जो रोग तुम पति पत्नी में व्याप्त है, जो तेरी योनि में और ऊरुओं में व्याप्त है, हम उसे नष्ट करते हैं ॥ १४ ॥ जो पिशाच पति, उपपति या भाई बनकर आता हुआ तेरे गर्भस्थ शिशु को नष्ट करना चाहता है, उसे हम मारते हैं ॥ १५ ॥ जो तुझे स्वप्न में या अंधकार में प्राप्त होकर तेरी संतान का क्षय करना चाहता है, उसे हम नष्ट करते हैं ॥ १६ ॥ मैं तेरे नेत्र, नासिका, श्रोत्र, ठोड़ी आदि से शीर्षण्य और यक्ष्मादि रोगों को मस्तक और जीभ से बाहर करता हूँ ॥१७॥ मैं तेरी अस्थियों से, नाड़ियों से, कन्धों और भुजाओं से तेरे यक्ष्मा रोग को नष्ट करता हूँ ॥ १८ ॥ हे रोगिन्! मैं तेरे हृदय से यक्ष्मा को निकालता हूँ।

हृदय के समीपस्थ क्लोम से, हलीक्ष्ण से पिचाधारों, पार्श्वों, प्लीहा और यकृत से तथा उदर से भी तेरे यक्ष्मा रोग को नष्ट करता हूँ ॥ १९ ॥ हे यक्ष्मग्रस्त रोगिन् ! तेरी आँतों से, गुदा से, उदर से, दोनों कुक्षियों से, प्लाशि से तथा नाभि से तेरे यक्ष्मा रोग को बाहर निकाल कर हटाता हूँ ॥ २० ॥ तेरे ऊरु, जानु, पावों के ऊपर तथा आगे के भाग से, कमर से, कटि के नीचे और गुह्य देश में प्राप्त हुए यक्ष्मा रोग को बाहर निकाल कर पृथक् करता हूँ ॥ २१ ॥ मज्जा, अस्थि, सूक्ष्म नाड़ियों, स्थूल नाड़ियों, अङ्गुलियों, नख तथा तेरे शरीर की सब धातुओं से तेरे यक्ष्मा रोग को निकाल कर हटाता हूँ ॥२२॥ हे रोगिन् ! तेरे सब अङ्गों, सब रोम कूपों और जोड़ों में व्याप्त यक्ष्मा को हम दूर करते हैं । तेरे त्वचागत, नेत्र गत यक्ष्मा रोग को भी मन्त्र द्वारा नष्ट करते हैं ॥२३॥ हे रोग ! तू मन पर भी अधिकार करने वाला है, तू दूर हो । इस जीवित पुरुष के मन से दूर होने को निर्ऋति से कह ॥ २४ ॥

९७ सूक्त

(ऋषि—कलिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—प्रगाथः; बृहती)

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १ ॥
वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥२॥
कदू न्वस्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥३॥

हे स्तोताओ ! हमने इन्द्र को सोम से पुष्ट किया है । तुम भी प्रसन्न मन से उन्हें संस्कारित सोम प्रदान करो । उन इन्द्र को स्तोत्रों द्वारा सुसज्जित करो ॥ १ ॥ इन्द्र का वृक शत्रुओं को भगाने वाला है, वह भेड़ों का मथन करने वाला है । हे इन्द्र ! तुम अपनी रमणीय बुद्धि द्वारा इस यज्ञ में आकर हमारी स्तुतियों को सुनो ॥ २ ॥ यह किसने नहीं सुना कि इन्द्र ने वृत्र का नाश किया । ऐसा कोई पराक्रम नहीं जो इन्द्र में न हो ॥ ३ ॥

९८ सूक्त

(ऋषिः—शंयुः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—बार्हतः; प्रगाथः)

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हम स्तुति करने वाले, अन्न प्राप्ति वाले यज्ञ में तुम्हें ही बुलाते हैं। तुम सज्जनों के रक्षक और जलों को प्रेरित करने वाले हो। जब कोई घेर लेता है तब तुम्हीं आहूत किये जाते हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे द्वारा पूजित होकर इस विजयाकांक्षी नरेश के लिए अश्व, रथ, धेनु आदि दो। हे इन्द्र ! तुम हाथों में वज्र धारण करने वाले हो ॥ २ ॥

९९ सूक्त

(ऋषि—मेध्यातिथिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बार्हतः प्रगाथः)

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ १ ॥
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुमने पहिले सोमपान किया था, उसी प्रकार सोमपान के लिये ऋभु देवता और रुद्र देवता तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ निष्पन्न सोम का हर्ष प्राप्त होने पर वे इन्द्र यजमान को धन वृद्धि की और बल की वृद्धि करते हैं। यह स्तुति करने वाले उन इन्द्र की महिमा को ही पूर्ववत् गाते हैं ॥ २ ॥

१०० सूक्त

(ऋषि—नृमेधः । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् महः ससृज्महे ।

उदेव यन्त उदभिः ॥ १ ॥

वाणं त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।

वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ २ ॥

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे ।

इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ३ ॥

जैसे जल की कामना करने वाले मनुष्य जल में जल को मिलाते हैं, वैसे ही हे इन्द्र! तुम्हारी कामना वाले मनुष्य तुम्हें सोम रूप जलों से सींचते हैं ॥ १ ॥ हे वज्रिन्! तुम प्रत्येक स्तुति पर अपनी वृद्धि की इच्छा करते हो, इसलिए यह मन्त्र तुम्हें जल के समान बढ़ाते हैं ॥ २ ॥ युद्ध में प्रस्थान करने वाले इन्द्र के यशोगान से मन्त्र द्वारा जुड़ने वाले इन्द्र के अश्व रथ में संयुक्त होते हैं ॥ ३ ॥

१०१ सूक्त

(ऋषि—मेधातिथिः । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री)

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१॥

अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥२

अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥३॥

वे अग्नि सबके ज्ञाता और होता रूप हैं, वे यज्ञ के कर्मों को उत्कृष्ट बनाते हैं। अतः हम उन अग्निदेव का वरण करते हैं ॥ १ ॥ हव्य वाहक, बहुतों के प्रिय, प्रजापति अग्नि को यजमान हवि प्रदान करते हैं, इसलिए हम भी अग्नि को हवि देते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने! ऋत्विज के लिये प्रदीप्त होते हुए तुम हमारे होता हो, अतः देवताओं को हमारे यज्ञ में लाओ ॥ ३ ॥

१०२ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री)

ईळेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ॥१॥

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईडते ॥२॥
वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥३॥

वे अग्नि स्तुतियों और नमस्कारों के योग्य हैं, वे फलों की वर्षा करने वाले एवं दर्शनीय हैं। वे अपने धूम को तिरछा करते हुए प्रज्ज्वलित होते हैं ॥ १ ॥ देवताओं को वहन करने वाले अश्व के समान, वे फलों की वृष्टि करने वाले अग्नि प्रदीप्त होते हैं तब हविदाता यजमान उन अग्नि की पूजा करते हैं ॥ २ ॥ हे वृषन्! हे अग्ने! हम हवि की वर्षा करने वाले तुम फलों की वर्षा करने वाले को भले प्रकार प्रज्ज्वलित करते हैं, अतः तुम भले प्रकार प्रदीप्त होओ ॥ ३ ॥

१०३ सूक्त

(ऋषि—सुदीतिपुरुमीढौ; भर्गः । देवता—अग्निः । छन्द—बृहती)

अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥ १ ॥
अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ २ ॥
अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ ३ ॥

हे मनुष्य! अग्नि की गाथाओं द्वारा तू अन्न प्राप्ति के लिए अग्नि की स्तुति कर। वह अग्नि धन देने के लिये प्रसिद्ध; दीप्त एवं शोभायमान हैं। तू उन्हें ही पूज ॥ १ ॥ हे अग्ने! हम होता तुम्हें आहूत करते हैं, तुम अपनी सभी शक्तियों के सहित आओ। प्रयता हविष्मती बर्हि तुम से सुसंगत हो ॥ २ ॥ हे अग्ने! तुम अङ्गिरा गोत्री हो। तुम जल के पुत्र रूप हो। यज्ञ के स्रुच तुम्हारे सामने घूमते हैं। तुम सदा नवीन, बलवान् अग्नि की यज्ञ में हम भी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

१०४ सूक्त

(ऋषि—मेध्यातिथिः नृमेधः। देवता—इन्द्रः । छन्द—प्रगाथः)

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ १ ॥
अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रइव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥२॥
आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥३॥
त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम अपरिमित ऐश्वर्य से युक्त हो। हमारी अग्नि के समान पवित्र वाणियाँ तुम्हें प्रवृद्ध करें । हे स्तोताओ ! तुम इन्द्र के लिए स्तोत्र उच्चारण करो ॥ १ ॥ जल द्वारा प्रवृद्ध समुद्र के समान यह अग्नि ऋषियों की हवियों से सहस्रगुणा प्रवृद्ध होते हैं। मैं इन अग्नि की महिमा का यथार्थ रूप में वर्णन कर रहा हूँ। इन अग्नि का बल यज्ञों में दर्शनीय होता है ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम हवि के योग्य हो। तुम हमको सभी यज्ञों में सुशोभित करो। यह इन्द्र वृत्र के हननकर्त्ता हैं, यह ऋचाओं के अनुकूल अपना रूप प्रकट करते हैं। वे इन्द्र हमारे सवनों को, हवियों को और मन्त्रों को सुशोभित करें ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम धनों के देने वाले हो, तुम प्रभुता प्रदान करते हो, तुम जल के पुत्र को हम प्रदीप्ति सहित वरण करते हैं ॥ ४ ॥

१०५ सूक्त

(ऋषि—नृमेधः; पुरुहन्मा । देवता—इन्द्रः । छन्द—बार्हतः प्रगाथ; बृहती)

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥१॥
अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ।

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥ ३ ॥
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ ४ ॥
इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥५॥

हे इन्द्र ! तुम अशस्ति के नाशक, कल्याण के करने वाले, हिंसात्मक युद्धों में प्रतिस्पर्धा करने वाले हो । तुम स्वयं सब से त्वरा करते हो ॥ १ ॥ तुम्हारे त्वरावान बल के पीछे, पुत्र के पीछे माता-पिता के पहुँचने के समान, आकाश-पृथिवी जाते हैं । जब तुम वृत्र का नाश करने में लगे थे तब उसकी द्वेष वृत्तियाँ तुम्हें नष्ट करने की कामना कर रही थीं ॥ २ ॥ यहाँ से प्रेरित होने वाली रक्षक शक्तियाँ तुम्हें अप्रहित, अजर, रथितम, अतूर्त, तुग्यवृध, प्रहेता, हेता और द्रुतकर्मा बना रहीं थीं ॥ ३ ॥ मनुष्यों के राजा, सेनाओं के उल्लंघक, वृत्रहन, ज्येष्ठ और रथों द्वारा मन्त्रों के सामने जाने वाले जो हैं, उनका स्तोत्र करता हूँ ॥ ४ ॥ हे पुरुहन्मन् ! उन इन्द्र की सत्ता अन्तरिक्ष और स्वर्ग में भी है । उनका क्रीड़ा के लिए हाथ में ग्रहण किया हुआ वज्र सूर्य के समान दर्शनीय है । इस यज्ञ में तुम उन इन्द्र को ही सुशोभित करो ॥ ५ ॥

१०६ सूक्त

(ऋषि—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता—इन्द्रः । छंद—उष्णिक्)

तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम् ।
वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ १ ॥
तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥
त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥

तुम्हारा इन्द्रात्मक वृहद् बल बुद्धि से वरण करने योग्य है। वह कर्म रूपी वज्र को तीक्ष्ण करता है ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! आकाश तुम्हारा वीर्य है, जल और पर्वत तुम्हें प्रेरित करते हैं और पृथिवी तुम्हारे द्वारा ही अन्न की वृद्धि करती है ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! सूर्य, वरुण, यम और विष्णु तुम्हारे प्रशंसक हैं। वायु का अनुगत बल तुम्हें हर्ष देता है ॥ ३ ॥

१०७ सूक्त

(ऋषि—वत्सः; बृहद्दिवोऽथर्वा; ब्रह्मा; कुत्सः। देवता इन्द्रः सूर्यः। छन्द—गायत्री; त्रिष्टुप्; पङ्क्तिः)

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः। समुद्रायेव सिन्धवः ॥१॥
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत्। इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥२॥
वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा। शिरो बिभेद वृष्णिना ॥३
तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥४॥
वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ ५ ॥
त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥६॥
यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः।
ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ॥७॥
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥८॥
नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे :
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥ ९ ॥
स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्त्यमाप्त्यानाम्।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥१०॥

समुद्र के लिए जैसे नदियाँ झुक कर चलती हैं, वैसे ही इन कर्मवान् इन्द्र के लिए समस्त प्रजाएं झुकती हैं ॥ १ ॥ आकाश-पृथिवी को इन्द्र ने चर्म के समान लपेट लिया था, इन्द्र का यह महान् पराक्रम है ॥ २ ॥ क्रोधित वृत्र के सिर को इन्द्र ने अपने शतपर्वा एवं शोणित वर्षक वज्र द्वारा काट डाला था ॥ ३ ॥ यह इन्द्र बलवान् तथा धनवान हैं, भुवनों में उत्कृष्ट हैं, उत्पन्न होते ही शत्रुओं का वध करते हैं, इनके प्रकट होते ही इनकी रक्षक शक्तियाँ बलवती हो जाती हैं ॥ ४ ॥ स्थावर जंगम जगत ब्रह्म में लीन हो जाता है, बल द्वारा प्रवृद्ध शत्रु दासों को त्रास देता है । युद्धों में वैतनिक सैनिक उन इन्द्र की ही प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥ यह वीर जन्म, संस्कार और युद्ध की दीक्षा लेने के कारण त्रिजन्मा कहाते हैं, उन वीरों को स्वादिष्ट पदार्थों से सम्पन्न करो । हे इन्द्र ! तुम वीरों में प्रविष्ट होकर संग्राम में तत्पर होओ ॥ ६ ॥ हे वीर ! तुम प्रत्येक युद्ध में धनों को जीतते हो । यदि ब्राह्मण तुम्हारी स्तुति करें तो उन्हें बली बनाओ । सुख के अवसर पर दुःख देने वाले पुरुष तुम्हें प्राप्त न हों ॥ ७ ॥ तुम्हारे द्वारा ही रणक्षेत्र हम विपक्षियों को मरवा डालते हैं । मैं अपने तप द्वारा सिद्ध हुए वचनों से तुम्हारे शस्त्रों को प्रेरित करता और पक्षी के समान वेग वाले तुम्हारे बाणों को मन्त्रों के द्वारा तीक्ष्ण करता हूँ ॥ ८ ॥ जिस घर में अन्न द्वारा पालन हुआ है, जिसे श्रेष्ठ प्राणियों ने धारण किया है उस घर में माता द्वारा शक्ति स्थापित हो, फिर इस घर में सब शोभन पदार्थों को लाओ ॥ ९ ॥ हे स्तोता ! परम तेजस्वी, विचरणशील, श्रेष्ठ स्वामी इन्द्र की स्तुति करो । यह पृथिवी रूपी इन्द्र इस यज्ञ स्थान में व्याप्त हो रहे हैं ॥ १० ॥

इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ॥११॥
एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥१२॥
चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥१३॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥१४
सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥१५॥

यह राजा स्वर्गाधिपति इन्द्र के लिए स्तोत्रों को करता हुआ स्वर्ग की कामना करता है। यह इन्द्र मेघ के जल की वृष्टि करते हुए संसार को जल से पूर्ण करते हैं ॥ ११ ॥ महर्षि अथर्वा ने अपने को इन्द्र मानते हुए कहा—"पाप-रहित मातरिश्वरी इसे प्रसन्न करती हुई बल-वृद्धि करती हैं ॥१२ यह रश्मिवंत इन्द्र सब दिशाओं की ओर उठते हुए अपने प्रकाश से दिन को प्रकट करते हैं और सब अन्धकारों और पापों से पार होते हैं ॥ १३ ॥ रश्मियों का पूजनीय समूह मित्र, वरुण और अग्नि के चक्षु रूप से उदित हो रहा है। यह सूर्य ही प्राणियों के आत्मा हैं और अपनी महिमा से आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष को पूर्ण करते हैं ॥ १४ ॥ पति के पत्नी के पीछे जाने के समान सूर्य भी इन उषाओं के पीछे जाते हैं। उस समय भद्र पुरुष देव-कार्य में दिन को लगाते हुए सूर्य के निमित्त श्रेष्ठ कर्मों को करते हैं ॥ १५ ॥

१०८ सूक्त

(ऋषि—नृमेधः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री, उष्णिक्)

त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्ण शतक्रतो विचर्षणे ।
आ वीरं पृतनाषहम् ॥ १ ॥
त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ २ ॥
त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे [illegible]
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

हे सैकड़ों कर्म वाले इन्द्र ! हमको [illegible] और शत्रुओं को हराने वाली सन्तान दो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! [illegible] और माता हो

हम तुमसे सुख माँगते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम हविरन्न की कामना करने वाले हो। मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। मुझे वीरों से युक्त धन प्रदान करो ॥ ३ ॥

१०६ सूक्त

(ऋषिः—गोतमः। देवता—इन्द्रः। छन्दः—पङ्क्ति)

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१
ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥२॥
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥३॥

स्तोत्र रूप वाणियाँ विषुवत् यज्ञ के स्वादिष्ट मधु को इस प्रकार पीती हैं, जिससे रात्रियों तक इन्द्र से सुसंगत होकर वह इन्द्र को हर्षित करती रहें। हे यजमान् ! इसके पश्चात् तू अपने राज्य पर सुशोभित होगा ॥ १ ॥ पृश्नियाँ इस सोम को पक्व कर रही हैं। इन्द्र की यह गौएँ इन्द्र के वाणों और वज्र की प्रेरणा करती हैं। इन रात्रियों के पश्चात् हे यजमान् ! तू अपने राज्य पर प्रतिष्ठित होगा ॥ २ ॥ वाणियाँ हवि के द्वारा इन्द्र को पूजती हैं और यजमान के महान् व्रत इन्द्र में मिलते हैं। इन रात्रियों के पश्चात् हे यजमान ! तू अपने राज्य पर प्रतिष्ठित होगा ॥ ३ ॥

११० सूक्त

(ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः। अर्कमर्चन्तु कारवः ॥१॥
यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः। इन्द्रं सुते हवामहे ॥
त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत। तमिद् वर्धन्तु नो गिरः ॥३॥

सेवा के योग्य इस यज्ञ में निष्पन्न सोम से युक्त हमारी वाणियाँ स्तुति करती हुई इन्द्र को पूजें ॥ १ ॥ सब विभूतिमयी सभायें जिन्हें प्राप्त होती हैं, उन इन्द्र को सोम के संस्कारित होने पर आहूत करते हैं ॥ २ ॥ इस ज्ञानदायक यज्ञ को त्रिकद्रुकों ने प्रारम्भ किया, उसे हमारी वाणियाँ प्रवृद्ध करें ॥ ३ ॥

१११ सूक्त

(ऋषि—पर्वतः। देवता—इन्द्रः। छन्द—उष्णिक्)

यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये।
यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ १ ॥
यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे।
अस्माकमित् सुते रणा समिन्दुभिः ॥ २ ॥
यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते।
उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! त्रित में, यज्ञ में, आप्त्य और मरुत् में जो तुम हर्षित होते हो, वह जलमय सोम से ही हर्षित होते हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम दूरस्थ समुद्र अथवा हमारे यज्ञ में हर्ष को प्राप्त होते हो, वह जलमय सोम से ही हर्षित होते हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम सोम के संस्कारक यजमान की वृद्धि करने वाले हो, जिसके उक्थ्य में तुम विहार करते हो, वह जलयुक्त सोम से ही करते हो ॥ ३ ॥

११२ सूक्त

(ऋषिः—सुकक्षः। देवता—इन्द्रः। छन्दः—गायत्री)

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य। सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥१॥
यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे। उतो तत् सत्यमित् तव ॥२
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे। सर्वास्तां इन्द्र गच्छसि ॥३

हे सूर्यात्मक इन्द्र ! तुम वृत्र का नाश करने वाले हो, जिस समय उदित होते हो, वह समय तुम्हारे ही आधीन है ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम जिसे चाहते हो कि यह मृत्यु को प्राप्त न हो तो वह सत्य ही होता है ॥ २ ॥ जो सोम पास या दूर कहीं भी संस्कृत होते हैं, उनके पास इन्द्र स्वयं ही पहुँच जाते हैं ॥ ३ ॥

११३ सूक्त

(ऋषि—भर्गः । देवता—इन्द्रः । छन्द—प्रगाथः)

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥
तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ २ ॥

इन्द्र दोनों लोकों में हितकर कार्य करने वाले हैं, वे इन्द्र हमारे वचन को सामने से सुनें कि इन्द्र देवता सोम पीने को आ रहे हैं ॥ १ ॥ वे इन्द्र अभीष्टों के वर्षक और अपने तेज से तेजस्वी हैं । आकाश-पृथिवी को तनू करते हैं । तुम उपमान को प्राप्त होते हो । और सोम की कामना करते हो ॥ २ ॥

११४ सूक्त

(ऋषिः—सौभरिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्री)

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥
नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित् पितेव हूयसे ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम प्रकट होते ही संभक्ति करते हो और युद्ध में 'आपित्व' की कामना करते हो । तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम्हें 'सुराश्व' पुष्ट करते हैं । तुम जब गर्जनशील होते हो तब पिता के समान आहूत किये जाते हो । तुम धन वाले मनुष्य को सख्य भाव के लिए प्राप्त करते हो ॥२॥

११५ सूक्त

(ऋषि—वासः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ । अहं सूर्यइवाजनि ॥१॥
अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।
येनेन्द्रः शुष्ममिद् दधे ॥ २ ॥
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुऋर्षयो ये च तुष्टुवुः ।
ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ३ ॥

मैं सूर्य के समान उत्पन्न हुआ हूँ और पिता ब्रह्मा की बुद्धि को मैंने पा लिया है ॥ १ ॥ मैं प्राचीन स्तोत्र द्वारा वाणियों को सुसज्जित करता हुआ इन्द्र को बली करता हूँ ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! जिन ऋषियों ने तुम्हारी स्तुति की है या जिन्होंने तुम्हारी स्तुति नहीं की, इससे उदासीन रहते हुए मेरी स्तुति द्वारा ही वृद्धि को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

११६ सूक्त

(ऋषि—मेध्यातिथिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बृहती)

मा भूम निष्टयाइवेन्द्र त्वदरणाइव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोपासो अमन्महि ॥ १ ॥
अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सुकृत् सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हम तुम्हारा ऋण न चुका सकने के कारण दुष्ट शत्रु के समान न माने जाँय । तुम्हारे द्वारा त्याज्य वस्तुओं को हम भी दावानल के समान त्याज्य समझें ॥ १ ॥ हे वृत्रहन् ! हम तुम्हारी वृद्धि के द्वारा सुखी हों । हम अपने को नाश से रहित मानें ॥ २ ॥

११७ सूक्त

(ऋषिः—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—गायत्री)

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।

सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ॥
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभुवसो ममत्तु ॥ २ ॥
बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! जो सोम पाषाण से संस्कारित किया है, वह तुम्हें हर्षित करे। पाषाण संस्कार करने वाले के हाथ में स्थित है। हे इन्द्र ! तुम इस सोम को पीओ ॥ १ ॥ हे हर्यश्ववान इन्द्र ! तुम अपने जिस शोभन मद से मेघ को चीरते हो, वह तुम्हें हर्षित करे ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! जिस यश को वसिष्ठ पूजते हैं उस मन्त्र समूह वाली मेरी वाणी को यज्ञ में स्वीकार करो ॥३॥

११८ सूक्त

(ऋषिः—भर्गः; मेध्यातिथिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बार्हतः प्रगाथः)

शग्ध्यू षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥
पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ २ ॥
इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ३ ॥
इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥४॥

हे इन्द्र ! मेरी याचना है कि मैं तुम्हारे सब रक्षा-साधनों से यश और सौभाग्य प्राप्त करने के लिए तुम्हारा अनुयायी होऊँ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम नगर वासियों को अश्व रूप हो और धन को अपरिमित करते हो। तुम गौओं के बढ़ाने वाले, हिरण्यमय और अहिंसित दान वाले हो। मैं तुम्हारे आश्रय में जिन वस्तुओं के लिए आया हूँ उन वस्तुओं को मुझ में प्रविष्ट करो ॥ २ ॥ हम इन्द्र की सेवा करने वाले संग्राम उपस्थित होने पर धन प्राप्ति

के निमित्त इन्द्र को आहूत करते हैं ॥ ३ ॥ इन्द्र ने सूर्य को तेजोमय किया है और आकाश-पृथिवी को अपनी महिमा से विस्तृत किया है। यह इन्द्र सब भुवनों में आश्रित होते हैं। यह सोम इन्द्र के लिए निष्पन्न किये जाते हैं ॥ ४ ॥

११९ सूक्त

(ऋषि-आयुः धृष्टिगुः। देवता-इन्द्रः। छन्द—बार्हतः प्रगाथः)

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ १ ॥
तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥ २ ॥

हे ऋत्विजो ! मैंने प्राचीन स्तोत्र से इन्द्र की स्तुति की है। अब तुम भी यज्ञ की प्राचीन ऋचाओं से स्तुति करो। स्तोताओं की बुद्धि मंत्रों से सम्पन्न हो गई है ॥ १ ॥ इस यजमान के लिए धन बढ़ता और बल प्राप्त होता है। इन इन्द्र के लिए सोम सिद्ध होते हैं। शीघ्रता करने वाले ब्राह्मण पूजा-मंत्र की प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

१२० सूक्त

(ऋषि—देवातिथिः। देवता—इन्द्रः। छन्द—बार्हतः प्रगाथ)

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥
यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम चारों दिशाओं में स्थित मनुष्यों द्वारा आहूत होते हो। तुम पूर्ण रूप से शत्रु के नाश करने वाले हो। तुम इस यजमान के लिए आओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! कण्व गोत्री ऋषि तुम्हें हवि प्रदान करते हैं। तुम रुम, रुशम और श्यावक में एक साथ आनन्द प्रकट करते हो। तुम यहाँ आओ ॥ २ ॥

१२१ सूक्त

(ऋषि—देवातिथिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बार्हतः प्रगाथः)

त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धाइव धेनवः ।
नमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥
त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
त्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥२॥

हे वीर इन्द्र ! हम तुम्हें बिना दुही गौओं के समान प्रेरित करते हैं। तुम संसार के ईश्वर और स्वर्ग के द्रष्टा हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! कोई पार्थिव और दिव्य प्राणी तुम्हारे समान नहीं है । हे इन्द्र ! हम गौ, अश्व और अन्न की कामना से तुम्हें आहूत करते हैं ॥ २ ॥

१२२ सूक्त

(ऋषि—शुनःशेपः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१॥
आ घ त्वावान् त्मनाप्त स्तोतृभ्यो धृष्णावियानः ।
ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ २ ॥
आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् ।
ऋणोरक्ष न शचीभिः ॥ ३ ॥

हम यज्ञ में इन्द्र के आगमन करने पर अन्न की विभिन्न विभूतियों से सम्पन्न होते हुए सुख पावें ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी दया प्राप्त करने वाला पुरुष स्तोताओं के अनुग्रह से चलने वाले रथ के दोनों पहियों के अक्ष के समान दृढ़ हो जाता है ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा उपासक तुम्हारे बल को प्राप्त करता हुआ चलने वाले रथ के अक्ष के समान दृढ़ होता है ॥३॥

१२३ सूक्त

(ऋषि—कुत्सः । देवता—सूर्यः । छन्द—त्रिष्टुप्)

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।

यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥१॥
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूप कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥२॥

वे सूर्य अपनी महिमा से रश्मियों को अपने में समेट लेते हैं वो फैले हुए सब कार्यों को समेट लेते हैं और तब अन्धकार को सब ओर से समेटती हुई पृथिवी वस्त्र को अर्पण करती है ॥ १ ॥ मैं मित्रावरुण की महिमा को कहता हूँ वे सूर्य रूप से स्वर्ग में अपना रूप बनाते हैं, उनका तेज प्रकाशमान है। इनका दूसरा तेज काले वर्ण का है, उसे सूर्य रश्मियाँ भरण करती हैं ॥ २ ॥

१२४ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः; सुवनः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री; त्रिष्टुप्)

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥
अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥३॥
इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥४॥
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥५॥
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ६ ॥

ये सदा बढ़ाने वाले मित्र किस रक्षा-साधन द्वारा हमारी रक्षा करेंगे। यह रक्षात्मक वृत्ति किस प्रकार पूर्ण होगी ॥ १ ॥ हे इन्द्र! हर्षजनक हवियों में सोम रूप अन्न का कौन-सा अंश श्रेष्ठ है, जिसके द्वारा अ—

तुम धन को भक्तों में बाँट देते हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम, हम स्तुति करने वालों के सखा रूप हो। तुम हमारे सामने सैकड़ों बार आविर्भूत हुए हो ॥ ३ ॥ इस यज्ञ को ऋत्विज और सब देवताओं सहित इन्द्र सम्पन्न करें, आदित्यवान इन्द्र हमारे देह और सन्तान को सशक्त करें ॥ ४ ॥ देवत्व की रक्षा के निमित्त जिन देवता ने राक्षसों को नष्ट किया, वे इन्द्र आदित्यों और मरुतों सहित हमारे शरीरों की रक्षा करें ॥ ५ ॥ वे देव अपने बल से सूर्य को सब के सामने उदय करते हैं। उन्होंने पृथिवी को हवियुक्त किया है। हम देवताओं के सेवक उन्हीं के द्वारा अन्न प्राप्त करें और वीरों से सुसंगत रहते हुए सौ वर्ष की आयु प्राप्त करें ॥ ६ ॥

१२५ सूक्त

(ऋषि—सुकीर्तिः। देवता—इन्द्रः, अश्विनौ। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम ॥१॥
कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद् यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥२॥
नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥ ३॥
युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥४॥
पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः।
यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥५॥
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥६॥
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥७॥

हे इन्द्र ! तुम पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओं से हमारे शत्रुओं को रोको जिससे हम तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख से सुखी हो सकें ॥१॥ हे अग्ने ! जैसे जौ सम्पन्न कृषक बहुत से जौओं को मिलाकर काटते हैं, वैसे हो हवि से संयुक्त हुई कुशाओं का सेवन करो ॥ २ ॥ युद्धों में हमको अन्न नहीं मिला, फसलों के समय भी आवश्यकतानुसार अन्न प्राप्त नहीं हुआ, इसलिये मित्र इन्द्र की कामना करते हुए हम अश्व, गौ और अन्न की याचना करते हैं ॥३॥ हे अश्विद्वय ! नमुचि राक्षस से युद्ध होते समय तुम रमण योग्य सोम को पीकर इन्द्र की रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! माता पिता द्वारा पुत्र का पालन करने के समान तुमने अपने शत्रु-नाशक कौशल से इन्द्र की रक्षा की है। हे इन्द्र ! तुमने सुशोभित सोम को पिया है। तुम्हें सरस्वती अपनी विभूतियों से सींचे ॥ ५ ॥ रक्षक एवं ऐश्वर्यवान् इन्द्र अपने रक्षा-साधनों से हमको सुख दें। वह बलवान इन्द्र हमारे शत्रुओं को मार कर हमारे भय को दूर करें। हम सुन्दर प्रभावपूर्ण धन से सम्पन्न हों ॥६॥ रक्षक इन्द्र दूर से हमारे शत्रुओं को भगावें। उन यज्ञ के योग्य इन्द्र की कृपा बुद्धि में रहते हुए हम उनकी मङ्गलमय भावना को सदा प्राप्त करते रहें ॥७॥

१२६ सूक्त

(ऋषि—वृषाकपिरिन्द्राणी च। देवता—इन्द्र। छन्द—पंक्ति)

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१॥
परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२॥
किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद् वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥३॥
यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥५॥
न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।
न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥६॥
उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।
भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ७
किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥८॥
अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥९॥
संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१०॥

वृषाकपिदेव ने इन्द्र को देवता के समान समझा । वे वृषाकपि पुष्टियों के पालक हैं और मेरे मित्र हैं इसलिए मैं इन्द्र सबसे उत्कृष्ट हूँ ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम वृषाकपि से द्रुत वेग वाले हो । तुम शत्रुओं को व्यथित करने में समर्थ हो । तुम जहाँ सोम-पान का साधन नहीं है, वहाँ प्राप्त नहीं होते, इसलिए इन्द्र सबसे बढ़कर हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! इन वृषाकपि ने क्यों तुम्हें हरा मृग बनाया है जो तुम इन्हें पुष्टिदायक अन्न प्रदान करते हो । इन्द्र सबसे उत्कृष्ट हैं ॥३॥ हे इन्द्र ! तुम जिन वृषाकपि का पालन करते हो, क्या इनके सामने कुत्ता अँगड़ाई लेता है, क्या वराह की कामना वाला कान पर जँभाई लेता है ? इन्द्र सबसे उत्कृष्ट हैं ॥४॥ कपि ने मेरे स्नेहियों को तनू किया और व्यक्ता ने दोषयुक्त किया । दुष्कृत्य में प्राकट्य सुगम नहीं होता, मैं इसके शिर को शब्दवान् करता हूँ । इन्द्र सबसे उत्कृष्ट हैं ॥ ५ ॥ मेरी स्त्री न तो सुयाशुतरा है, न सुभसत्तरा है और प्रतीच्यवीयसी तथा सक्थियों को उद्यमे वाली भी नहीं है, इन्द्र सबसे उत्कृष्ट हैं ॥६॥ हे अम्ब ! मेरा शिर, कटि, सक्थि पक्षी के समान फड़क रहे हैं । जैसा होना होगा,

ऐसा हो। इन्द्र सबसे उत्कृष्ट हैं ॥७॥ हे शूरपत्नी ! तू सुन्दर भुजा, सुन्दर उंगली, पृथुस्तु एवं पृथु जाँघ वाली है। तू क्या हमें वृषाकपि के सामने हिंसित करती है ? इन्द्र सर्वोत्कृष्ट हैं ॥८॥ यह नहुष अपने देह को नष्ट करने की इच्छा करता हुआ मुझे वीर रहित समझता है। परन्तु मैं वीर पति से युक्त हूँ। मेरे पति मरुद्गण के मित्र इन्द्र सर्व श्रेष्ठ हैं ॥९॥ यज्ञ में पुरुष के साथ नारी होत्र रूप से बैठती है। वह इस प्रकार यज्ञ की रचयित्री है, वह वीरपत्नी इन्द्राणी स्तुति के योग्य है क्योंकि इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१०॥

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥११॥
नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१२॥
वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत् त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।१३।
उक्ष्णो हि मे पंचदश साकं पचन्ति विंशतम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।१४।
वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।१५।
न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१६॥
न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।१७।
अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।१८।
अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्त

धन्व च यत् कृन्तत्रं कति स्वित् ता वि योजना ।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२०॥
पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एष स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।२१।
यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्वास्य पुल्वघो मृगः कमगं जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।२२।
पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्रं भल त्यस्या अभूद् यस्या उदरमामयद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः २३

मैं इन्द्राणी को अत्यन्त सौभाग्यशालिनी मानता हूँ क्योंकि इनका पति मृत्यु को प्राप्त नहीं होता और न वृद्ध होता है, अन्य नारियों के पति तो मरणधर्मा मनुष्य हैं ॥११॥ हे इन्द्राणि ! मैं अपने सखा वृषाकपि के सिवाय और कहीं नहीं जाता। इनकी हवि जल से संस्कारित होती है, वे मुझे सब देवताओं में अधिक प्रिय हैं। मैं इन्द्र सब देवताओं से उत्कृष्ट हूँ ॥१२॥ हे वृषाकपिरूप सूर्य की पत्नी ! तू सुपुत्रों से सम्पन्न और धन से युक्त है। तेरी जल रूपी हवि को यह इन्द्र सेवन करें, क्योंकि वे सबसे उत्कृष्ट हैं ॥१३॥ मुझ महान् के पन्द्रह साक बीस का पाक करते हैं, मैं उनका सेवन करता हूँ। मेरी कुक्षियाँ पूर्ण हैं। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१४॥ हे इन्द्र ! तीक्ष्ण सींग वाले बैलों के गौओं में शब्द करने के समान जिसके हृदय में तुम्हारा मन्थ सुख देता है, वही सुख पाता है, क्योंकि इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ १५ ॥ सक्थियों में कपृत लटकाने वाला ऐश्वर्य प्राप्त नहीं करता। बैठने की इच्छा वाले जिसका रोमश अँगड़ाई लेता है, वह सामर्थ्यवान् होता है। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१६॥ जिसका रोमश विजृम्भण करता है, वह असमर्थ होता है और जिसका कपृत् सक्थियों में लटकता है वह सामर्थ्य वाला होता है इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१७॥ हे इन्द्र ! वृषाकपि ने अपने पास नष्ट हुए शत्रु धन को प्राप्त किया और असि, सूना, नवीन चरु को ग्रहण किया, वह इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१८॥ मैं कर्मवान् को खोजता आता हूँ। मैं निष्पन्न सोम को पी रहा हूँ। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं ॥१९॥ मरुस्थल और अंतरिक्ष का वियोजन

छिनता है ? हे वृषाकपे ! तुम पास के स्थान से घरों के पास आगमन करो ॥२०॥ हे वृषाकपे ! तुम उदित होते ही स्वप्न को नष्ट कर देते हो और अस्त को भी प्राप्त होते हो । तुम संसार में सर्व श्रेष्ठ हो, अतः पुनः उदित होओ । फिर हम विश्व के हित में सुन्दर कर्मों की योजना बनावें ॥२१॥ हे वृषाकपे ! तुम उत्तर में रहते हुए भुवनों की प्रदक्षिणा करते हुए छिपते हो, तब तुम्हारे घर में पहुँचने पर सब लोक अंधकार से विस्मित हुए कहते हैं कि सूर्य कहाँ गए ? वे प्राणियों को मोहने वाले सूर्य सर्व श्रेष्ठ हैं ॥२२॥ मानवी पर्शु ने बीस का उद्भव किया, जिसका उदर रोगी था उसके लिए भद्र हुआ सर्व महान् हैं ॥२३॥

सूक्त १२७

इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे ॥१॥
उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश ।
वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः ॥२॥
एष इषाय मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः ।
त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ॥३॥
वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः ।
नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव ॥४॥
प्र रेभासो मनीषा वृषा गावइवेरते ।
अमोतपुत्रका एषाममोत गाइवासते ॥५॥
प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम् ।
देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नावीरस्तारम् ॥६॥
राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्यां अति ।
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः ॥७॥
परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम आसनमाचरन् ।

कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः पतिर्वदति जायया ॥८॥
कतरत् त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम् ।
जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥९॥
अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्वः परो बिलम् ।
जनः स भद्रमेधते राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥१०॥
इन्द्रः कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम् ।
ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत् ते पृणादरिः ॥११॥
इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः ।
इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति ॥१२॥
नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोपती रिषत् ।
मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥१३॥
उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रेण वचसा वयम् ।
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥१४॥

हे नराशंस, कौरम ! स्तोताओं के विषय में सुनो कि हम साठ सहस्र रुशम प्रदान करते हैं ॥१॥ जिसके देह-रथ के बीस ऊँट वहन करने वाले हैं, वह आकाश को छूते हुए हीडन करते हैं ॥२॥ अन्न प्राप्ति के निमित्त मैं सौ निष्क, तीन सौ अश्व, दश सहस्र धेनु और दश मालाऐं देता हूँ ॥३॥ हे स्तुति करने वालो ! जैसे पक्व फल युक्त वृक्ष पर बैठा पक्षी मधुर शब्द करता है, वैसे ही तुम भी करो। हाथ में ग्रहण किये हुए छुरे के समान, कर्म के समाप्त होने पर भी तुम्हारी जीभ न रुके ॥४॥ यह मनीषी स्तोता वीर्यवान वृषभों के समान वर्तमान हैं। इनके गृह में पुत्र, गौ आदि हैं ॥५॥ हे स्तोता ! बाण से जैसे मनुष्य रक्षित रहता है, वैसे ही वाणी से तू रक्षित हो। तू गौ और धन प्राप्त कराने वाली बुद्धि को ग्रहण कर ॥६॥ यदि यह देवता राजा के मनुष्यों का अतिक्रमण करें, तो वैश्वानर की मंगलमयी स्तुति करनी चाहिए ॥७॥ देवता मंगल करने वाला है, आसन को विस्तृत करता है। ऐसे

बढ़ाता हुआ कौरव्य-पति अपनी पत्नी से कहता है ॥८॥ परीक्षित के राज्य में पत्नी अपने पति से पूछती है कि परिश्रुत दही मंथा में तेरे निमित्त कितना लाऊँ ॥९॥ उदर रूप बिल को पक्व जौ प्राप्त होता है। राजा परीक्षित के राज्य में इस प्रकार मनुष्य सुखी हैं ॥१०॥ स्तुति करने वाले के प्रति इन्द्र बोले—उठ, खड़ा हो। मनुष्यों में घूम। तू मेरे अनुग्रह से कर्म करने वाला हो। तेरा शत्रु तेरे पास अपना सर्वस्व छोड़ दे ॥११॥ यहाँ मनुष्य और अश्व उत्पन्न हों, गौएं प्रसव करें। सहस्र संख्यक दक्षिणाओं के दाता पूषा यहाँ विराजमान हों ॥१२॥ हे इन्द्र! गौएं नष्ट न हों, इनका पालक हिंसित न हो। शत्रु और चोर का भी इन पर प्रभाव न हो ॥१३॥ हे इन्द्र! तुम हमको सूक्त द्वारा हर्षित करते हो। हम तुम्हें मंगलमयी वाणी से प्रसन्न करते हैं। तुम हमारी वाणियों को अंतरिक्ष से सुनो। हम कभी नाश को प्राप्त न हों ॥१४॥

१२८ सूक्त

य: सभेयो विदथ्य: सुत्वा यज्वाथ पूरुषः ।
सूर्यं चामू रिशादसस्तद् देवाः प्रागकल्पयन् ॥१॥
यो जाम्या अप्रथयस्तद् यत् सखायं दुधूर्षति ।
ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति ॥२॥
यद् भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषिः ।
तद् विप्रो अब्रवीदु तद् गन्धर्वः काम्यं वचः ॥३॥
यश्च पणि रघुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदाशुरिः ।
धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ॥४॥
ये च देवा अयजन्ताथो ये च पराददिः ।
सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवा नो वि रप्शते ॥५॥
यो नाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यवः ।
अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥६॥

य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः ।
सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥७॥
अप्रपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः ।
अयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥८॥
सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिदिश्ययः ।
सुयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥९॥
परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिगमः ।
अनाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥१०॥

अभिषवकर्त्ता, यज्ञकर्त्ता, सभ्य पुरुष सूर्य लोक को भेद कर ऊर्ध्व लोकों में जाता है। देवताओं ने यह बात पहले कल्पित कर ली थी॥१॥मित्रका दुर्धर्षक, जामि से विस्तारक, अग्रचेता, ज्येष्ठ अधराक् कहाता है ॥२॥ जिस ब्राह्मण का धर्षणशील पुत्र होता है, वह ब्राह्मण अभीष्ट वचन को कहने में समर्थ है, वह गंधर्व कहाता है ॥३॥ जो वणिक् देवताओं को हविर्दान करने वाला नहीं होता, वह शाश्वत धीरों का अपाक् होता है—ऐसा सुनते हैं ॥४॥ जो स्तोता यज्ञ एवं परादान आदि करने वाले हैं, वे सूर्य के समान ही स्वर्ग में गमन करते हैं। इन्द्र श्रेष्ठ हैं ॥५॥ जो अनभ्यक्त, अनाक्ताक्ष, अमणिव, अहिरण्यव तथा अब्रह्मा है वह ब्रह्मपुत्र स्तोता कल्पों में सम्मित है ॥६॥ जो आक्ताक्ष, सुभ्यक्त, सुहिरण्यव, सुमणि, सुब्रह्मा है वह ब्रह्मपुत्र तोता कल्पों सम्मित है ॥७॥ अप्रपाणा, वेशन्ता, रेवा, अप्रतिदिश्य, अयभ्या, कन्या, कल्याणी तोता कल्पों में सम्मित है ॥८॥ सुप्रपाणा वेशन्ता, रेवा, सुप्रतिदिश्य, सुयभ्या, कन्या, कल्याणी तोता कल्पों में सम्मित है ॥९॥ परिवृक्ता, महिषी, स्वस्त्या, युधिगम, अनाशुर और आयामी तोता कल्पों में सम्मित है ॥१०॥

वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिगमः ।
श्वाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥११॥
यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथाः ।
विरूपः सर्वस्मा आसीत् सह यज्ञाय कल्पते ॥१२॥

त्वं वृषाक्षुं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविः ।
त्वं रौहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः ॥१३॥
यः पर्वतान् व्यदधाद् यो अपो व्यगाहथाः ।
इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोऽस्तु ते ॥१४॥
पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैःश्रवसमब्रुवन् ।
स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम् ॥१५॥
ये त्वा श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
पूर्वा नमस्य देवानां बिभ्रदिन्द्र महीयते ॥१६॥

यायावा, महिषी, स्वस्त्या, बुधिगम, रयासुर और यायामी दोनों स्वरों में सम्मिव हैं ॥११॥ हे इन्द्र ! तुमने दाशराज के पुत्र को निगाहित किया था, और तुम सबके लिए रूप रहित हुए थे । तुम मद के साथ कल्पित होते हो ॥१२॥ हे वर्षक इन्द्र ! तुम सूर्य रूप में मधु को झुकाते हो और रोहित को विस्तृत मुख वाला करते हो। तुमने ही वृत्र का शिर छेदन किया था ॥१३॥ जिन्होंने पर्वतों को स्थिर किया और जल का अवगाह किया, जो वृत्रहन हैं, उन इन्द्र को नमस्कार है ॥१४॥ हर्यश्वों की पीठ पर द्रुतगति को प्राप्त हुए इन्द्र के संबंध में उच्चैश्रवा से कहा—"हे अश्व ! तेरा कल्याण हो। तू माला से सुशोभित विजयी इन्द्र को चढ़ाता है ॥१५॥ हे इन्द्र ! श्वेत अश्व तुम्हारे दक्षिण की ओर जुड़ते हैं, उन पूर्वाओं पर चढ़ने वाले तुम देवताओं द्वारा नमस्कारों के योग्य तथा महिमा सम्पन्न हो ॥१६॥

सूक्त १२९

एता अश्वा आ प्लवन्ते ॥१॥ प्रतीपं प्रातिसुत्वनम् ॥२॥
तासामेका हरिक्निका ॥३॥ हरिक्निके किमिच्छसि ॥४॥
साधुं पुत्रं हिरण्ययम् ॥५॥ क्वाहतं परास्यः ॥६॥
यत्रामूस्तिस्रः शिंशपाः ॥७॥ परि त्रयः ॥८॥
पृदाकवः ॥९॥ शृङ्गं धमन्त आसते

अयन्महा ते अर्वाहः ॥११॥ स इच्छकं सघाघते ॥१२॥
सघाघते गोमीद्या गोगतीरिति॥१३॥ पुमां कुस्ते निमिच्छसि ॥१४॥
पल्प वद्ध वयो इति ॥१५॥ वद्ध वो अघा इति ॥१६॥
अजागार केविका ॥१७॥ अश्वस्य वारो गोशपद्यके ॥१८॥
श्येनीपती सा ॥१९॥ अनामयोपजिह्विका ॥२०॥

यह अश्वा आली है ॥१॥ सुत्वा प्रतीप को सम्पन्न करता है ॥२॥ उनमें से एक हरिक्निका है ॥३॥ हे हरिक्निके ! तेरी क्या इच्छा है ? ॥४॥ साधु पुत्र को हिरण्य ॥५॥ परास्य अर्हिंसित रूप से कहाँ है ॥६॥ जिस स्थान पर यह तीन शिंशपा हैं ॥७॥ सब ओर तीन हैं ॥८॥ सर्प ॥९॥ सींगों को धमन्त करते बैठे हैं ॥१०॥ यह दिन तुम्हारा महान् अश्व है ॥११॥ वह कामना वाले का सघाघन करने वाला है ॥१२॥ गोमीधा गोगतियों के लिए सघाघ करते हैं ॥१३॥ पुरुष और पृथिवी तुझे निमिच्छ करते हैं ॥१४॥ हे वद्ध पल्प यह तेरा अन्न है ॥१५॥ हे वद्ध ! तेरी अघा है ॥१६॥ केविका जागृत न हु ॥१७॥ गोशपद्यक में अश्व का चार है ॥१८॥ यह श्येनीपति है ॥१९॥ व उपजीविका अनामय है ॥२०॥

१३० सूक्त

को अर्य बहुलिमा इषूनि ॥१॥ को असिद्याः पयः ॥२॥
को अर्जुन्याः पयः ॥३॥ कः कार्ष्ण्याः पयः ॥४॥
एतं पृच्छ कुहं पृच्छ ॥५॥ कुहाकं पक्वकं पृच्छ ॥६॥
यवानो यतिस्वभिः कुभिः ॥७॥ अकुप्यन्तः कुपायकुः ॥८॥
आमणको मणत्सकः ॥ ९ ॥ देव त्वप्रतिसूर्य ॥ १० ॥
एनश्चिपङ्क्तिका हविः ॥११॥ प्रदुद्रुदो मघाप्रति ॥१२॥
शृङ्ग उत्पन्न ॥ १३ ॥ मा त्वाभि सखानो विदन् ॥१
वशायाः पुत्रमा यन्ति ॥ १५ ॥ इरावेदुमयं दत ॥ १६ ॥
अथो इयन्नियन्निति ॥ १७ ॥ अथो इयन्निति ॥ १८ ॥

अयो श्वा अस्थिरो भवन् ॥ १६ ॥ उयं यकांशलोकका ॥२०॥

बहुत से वाणों को अपने अधिकार में कौन रखता है ? ॥ १ ॥ असितापय कौन सा है ? ॥ २ ॥ अर्जुन्यापय कौन सा है ? ॥ ३ ॥ कार्ष्यें पय कौन सा है ॥ ४ ॥ इससे पूछ, कुछ से पूछ ॥ ५ ॥ कुहाक पक्वक से पू ॥ ६ ॥ यति के समान पृथिवियों से युक्त हुआ ॥ ७ ॥ कुपायकु क्रोधि हो गया ॥ ८ ॥ आमणक मणासक ॥ ६ ॥ हे सूर्यदेव ! ॥ १० ॥ एनश्चिपर्दि वाला हवि ॥ ११ ॥ प्रदुद्रुदो मघाप्रति ॥ १२ ॥ श्रृङ्ग उत्पन्न ॥ १३ ॥ मे मित्र तुझे और मुझे मिले ॥ १४ ॥ वशा के पुत्र को मिलते हैं ॥ १५ ॥ इरावेदुमय दत्त ! ॥ १६ ॥ इसके पश्चात् यह, ऐसे है ॥ १७ ॥ फिर यह इ प्रकार है ॥ १८ ॥ फिर श्वा अस्थिर होता है ॥ १६ ॥ उय यकांशलोक ॥ २० ॥

१३१ सूक्त

आमिनोनिति भद्यते ॥१॥ तस्य अनु निभञ्जनम् ॥२॥

वरुणो याति वस्वभिः ॥३॥ शतं वा भारती शवः ॥४॥

शतमाश्वा हिरण्ययाः । शतं रथ्या हिरण्ययाः ।

शतं कुथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः ॥५॥

अहल कुश वर्त्तक ॥६॥ शफेनइव ओहते ॥७॥

आय वनेनती जनी ॥८॥ वनिष्ठा नाव गृह्यन्ति ॥६॥

इदं मह्यं मदूरिति ॥१०॥ ते वृक्षाः सह तिष्ठति ॥११॥

पाक बलिः ॥ १२ ॥ शक बलिः ॥ १३ ॥

अश्वत्थ खदिरो धवः ॥१४॥ अरदुपरम ॥१५॥

शयो हतइव ॥१६॥ व्याप पूरुषः ॥१७॥

अदूहमित्यां पूपकम् ॥१८॥ अत्यर्धर्च परस्वतः ॥१६॥

दौव हस्तिनो दृती ॥ २० ॥

आमिनोनिति कहते हैं ॥ १ ॥ उसके पश्चात् निभंजन है ॥ २ ॥ ...त्र के साथ वरुण जाते हैं ॥ ३ ॥ वाणी के शत संख्यक बल ॥ ४ ॥ सौ ...र्णिम अश्व, सौ स्वर्णमय रथ, सौ स्वर्णिम कुथ्या और सौ स्वर्णिम निष्क ... ॥ ५ ॥ अहलकुश वर्त्तक ॥ ६ ॥ शफ द्वारा वहन करता है ॥ ७ ॥ आय ...वनेनती जनी ॥ ८ ॥ वनिष्ठा नाव ग्रहण की जाती है ॥ ९ ॥ यह मुझे ...मुदित करता है ॥ १० ॥ वह वृक्षों में स्थित होती है ॥ ११ ॥ पक्व बलि ॥ १२ ॥ शक बलि ॥ १३ ॥ पीपल, खदिर धौ ॥ १४ ॥ विराम को पा... ॥ १५ ॥ शयन कर्त्ता मृतक के समान ॥ १६ ॥ पुरुष व्याप्त है ॥ १७ ॥ मैं पृपा का दोहन करता हूँ ॥ १८ ॥ परस्वान मृग को लाँघ कर अर्धर्व प्रवृत्त हो ॥ १९ ॥ हाथी की दतियों को दुह ॥ २० ॥

१३२ सूक्त

आदलाबुकमेककम् ॥१॥ अलाबुकं निखातकम् ॥२॥
कर्करिको निखातकः ॥३॥ तद् वात उन्मथायति ॥४॥
कुलायं कृणवादिति ॥५॥ उग्रं वनिषदाततम् ॥६॥
न वनिषदनाततम् ॥७॥ क एषां कर्करी लिखत् ॥८॥
क एषां दुन्दुभिं हनत् ॥९॥ यदीयं हनत् कथं-हनत् ॥१०॥
देवी हनत् कुहनत् ॥११॥ पर्यागारं पुनःपुनः ॥१२॥
त्रीण्युष्ट्रम्य नामानि ॥१३॥ हिरण्य इत्येके अब्रवीत् ॥१४॥
द्वौ वा ये शिशवः ॥१५॥ नीलशिखण्डवाहनः ॥१६॥

फिर एक राम तुरई ॥ १ ॥ रामतुरई खोदने वाला ॥ २ ॥ कर्करी को खोदने वाला ॥ ३ ॥ वायु को उखाड़ता है ॥ ४ ॥ कुलाय करता है ॥ ५ ॥ विस्तृत उग्र की सेवा करता है ॥ ६ ॥ अविस्तार वाले की सेवा नहीं करता ॥ ७ ॥ कर्करी को इनमें से कौन लिखता है ? ॥ ८ ॥ दुन्दुभि को इनमें से कौन मारता है ? ॥ ९ ॥ यह हिंसित करती है तो कैसे हिंसित करती है ? ॥ १० ॥ देवी ने हिंसित किया, बुरी तरह हिंसित किया ॥१...

निवास स्थान के सब ओर पुनः पुनः ॥ १२ ॥ ऊँट के तीन नाम हैं ॥ १३॥ एक हिरन ने यह कहा ॥ १४ ॥ दो बालक हैं ॥ १५ ॥ नीलशिखण्डी वाहन है ॥ १६ ॥

१३३ सूक्त

विततौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुषः ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ १ ॥

मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ २ ॥

निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ३ ॥

उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ४ ॥

श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ५ ॥

अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोममति ह्रदे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ६ ॥

हे कुमारिके ! तू उसे जैसा समझती है यह वैसा नहीं है । दो किरण विस्तृत हैं, पुरुष उनका पिसान करता है ॥ १ ॥ हे पुरुष ! तू जिस असत्य से पृथक् है, तेरी माता की दो किरणें हैं । हे कुमारिके ! तू जैसा समझती है, यह वैसा नहीं है ॥ २ ॥ हे मध्यमे ! तू दोनों कानों को पकड़ कर देती नहीं, हे कुमारिके ! तू उसे जैसा समझती है, वह वैसा नहीं है ॥ ३ ॥ शयन के निमित्त तू जाती है । हे कुमारिके ! तू उसे जैसा समझती है, यह वैसा नहीं है ॥ ४ ॥ तू श्लक्ष्णिका, श्लक्ष्णा में श्लक्ष्ण का गूहन करती है । हे कुमारिके ! तू उसे जैसा समझती है, वह वैसा नहीं है।

अश्वलक्षण के समान टूटे हुए दाँत और लोम युक्त सरोवर में है। कुमारिके! तू उसे जैसा समझती है, वह वैसा नहीं है ॥ ६ ॥

१३४ सूक्त

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—अरालागुदभर्त्संथ ॥ १ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—वत्साः पुरुषन्त आसते ॥ २ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—स्थालीपाको वि लीयते ॥ ३ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—स वै पृथु लीयते ॥ ४ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—आष्टे लाहणि लीशाथी ॥ ५ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—अक्षिलली पुच्छिलीयते ॥ ६ ॥

यहाँ चारों दिशाओं के अराल से उत्भर्सन करो ॥ १ ॥ पुरुष बनने की कामना से वत्स बैठे हैं ॥ २ ॥ स्थालीपाक विलीन हो जाता है ॥ ३ ॥ वह अत्यन्त लीन होता है ॥ ४ ॥ लाहन् में लीशाथी उपजीवन करती है ॥५ पूर्व, पश्चिम, उत्तर में इस प्रकार अक्षिलली पूँछ वाली होती है ॥ ६ ॥

१३५ सूक्त

भुगित्यभिगतः शलित्यपक्रान्तः फलित्यभिष्ठितः ।
दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोऽथामो दैव ॥ १ ॥
कोशबिले रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहि पादम् ।
उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तमां जनीन् वर्त्मन्यात् ॥ २ ॥
अलाबूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम् ।
पिपीलिकावटश्वसो विद्युत्स्वापर्णशफो गोशफो जरितरोऽथामो दैव ॥३
वी मे देवा अक्रंसताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचर ।
सुसत्यमिद् गवामस्यसि प्रखुदसि ॥ ४ ॥
पत्नी यदृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा जरितरोऽथामो दैव

होता विष्टीमेन जरितरोथ्यामो दैव ॥ ५ ॥
आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन् ।
तां ह जरितः प्रत्यायंस्तामु ह जरितः प्रत्यायन् ॥ ६ ॥
तां ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णंस्तामु ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णः ।
अहानेतरसं न वि चेतनानि यज्ञानेतरसं न पुरोगवामः ॥ ७ ॥
उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्यविष्ठः । उतेमाशु मानं पिपर्ति ॥ ८ ॥
आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेनु त इदं राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिरः ।
इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत् पृथु ॥ ९ ॥
देवा ददत्वासुरं तद् वो अस्तु सुचेतनम् ।
युष्माँ अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत ॥ १० ॥
त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः ।
विप्राय स्तुवते वसुवनिं दुरश्रवसे वह ॥ ११ ॥
त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते ।
श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहुः ॥ १२ ॥
अरंगरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया ।
इरामह प्रशंसत्यनिरामप सेधति ॥ १३ ॥

"भुक्", "अनिगत", "पञ्च", "[illegible]", "[illegible]" [illegible] हैं। हे स्तुति करने वालो ! फिर तुम [illegible] को [illegible] ॥ १ ॥ पौत्र को [illegible] उपना अतियों को [illegible] ॥ २ ॥ हे [illegible] ! [illegible], [illegible], [illegible], दाक, पर, [illegible], [illegible] [illegible] कोश कर ॥ ३ ॥ हे [illegible] ! [illegible] सम्भोधार करो। तुम [illegible] ॥ ४ ॥ [illegible] हुई दिखाई देती है। [illegible] करो ॥ ५ ॥ हे स्तोता ! [illegible]

वह उसे लाये थे ॥ ६ ॥ हे स्तोता ! उसको उन्होंने ग्रहण किया। उसे तुमने ग्रहण किया। चेतनों को, अहानेतरस को और यज्ञानेतरस को नहीं, विशिष्ट चेतनों को हम पाते हैं ॥ ७ ॥ तुम श्वेत और आशुपत्वा पद वाली ऋचाओं से युवावस्था प्राप्त करते हो। इन्हें मान शीघ्र पूर्ण करता है ॥ ८ ॥ हे आंगिरस ! आदित्य, वसु, रुद्र सब तुझ पर अनुग्रह करते हैं, तू इस धन को ले। यह धन विशाल; बृहत् विभु और प्रभुता से भी सम्पन्न है ॥ ६ ॥ देवता तुझे प्राण, बल, चैतन्यता देते हुए प्रत्येक अवसर पर प्राप्त होते रहें ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! तुम इहलोक, परलोक दोनों से पार करने वालों के लिए शर्मरी से हवि वहन करो। जिसे अन्न प्राप्त होना कठिन है, उस स्तोता ब्राह्मण को बल प्रदान करो ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! परकटे कबूतर के लिए तुम पके हुए पीलु, अखरोट और बहुत-सा जल प्रकट करो ॥ १२ ॥ चर्मरसरी से बँधा हुआ अरंगर बारम्बार शब्द करता हुआ पृथिवी की स्तुति करता है तथा पृथिवी विहीन स्थान का अपसेध करता है ॥ १३ ॥

१३६ सूक्त

यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् ।
मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ १ ॥
यदा स्थूलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत् ।
विष्वञ्चा वस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्दभौ ॥ २ ॥
यदल्पिकास्वल्पिका कर्कन्धूकेव पद्यते ।
वासन्तिकमिव तेजनं यन्त्यवाताय वित्पति ॥ ३ ॥
यद् देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः ।
सकुला देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥ ४ ॥
महानग्न्य तृप्नद्वि मोक्रददस्थानासरन् ।
शक्तिकानना स्वचमशकं सक्तु पद्यम ॥ ५ ॥
महानग्न्यु नूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत् ।

यथा तव वनस्पते निरघ्नन्ति तथैवेति ॥ ६ ॥
महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः ।
यथैव ते वनस्पते पिप्पति तथैवेति ॥ ७ ॥
महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः ।
यथा वयो विदाह्य स्वर्गे नमवदह्यते ॥ ८ ॥
महानग्न्युप ब्रूते स्वसावेशितं पसः ।
इत्थं फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूर्पं भजेमहि ॥ ९ ॥
महानग्नी कृकवाकं शम्यया परि धावति ।
अयं न विद्म यो मृगः शीर्ष्णा हरति धाणिकाम् ॥१०॥

इस पाप का क्षय करने वाली का कृश क्षीण हो गया। इसके मुष्क गरुड़ के समान गोशफ में प्रकम्पित होते हैं ॥ १ ॥ जब स्थूल पस द्वारा मुष्कों का अणु में प्रहार किया गया, तब रेत में गधों के वढ़ने के समान, धान्यादिका में मुष्क प्रवृद्ध होते हैं ॥ २ ॥ जो "कर्कंधूका" सदृश अवपदन करने वाली है और जो अल्प से भी अल्प है। वासन्तिक तेज के समान प्रवात के निमित्त निलय में गमन करते हैं ॥ ३ ॥ जब सुन्दर गौ में प्रविष्ट देवता हर्षित होते हैं तब अविभू के समान नारी अलायी जाती है ॥ ४ ॥ महान् अग्नि ऊपर पड़े हुओं को उल्लंघन न करता हुआ, तृप्ति को प्राप्त होता है। हम दमकते हुओं को शक्ति कानन प्राप्त हो ॥ ५ ॥ महान् अग्नि उलूखल को खींचती हुई कहने लगी—हे वनस्पते! जैसे तुझे कूटते हैं, वैसे ही हो ॥ ६ ॥ महान् अग्नि ने कहा—तू मिट कर भी बारम्बार उत्पन्न होता है। हे वनस्पते! जिस भाँति तू पूर्ण होता है, वैसे ही हो ॥ ७ ॥ महान् अग्नि ने कहा—तू नष्ट होकर भी उत्पन्न हो जाता है। जीर्ण अवस्था होकर स्वर्ग में हरि के समान दुही जाती है ॥ ८ ॥ महान् अग्नि का कथन है कि यह पस भले प्रकार उत्तेजित कर दिया गया है। हम फल वाले वृक्ष के सूप में सूप को प्रविष्ट करते हैं ॥ ९ ॥ कृक शब्द वाले पर महान् अग्नि दौड़ते हैं और हमें यह ज्ञात है कि वह मृग के समान सिर के द्वारा धाणिका

महानग्नी महानग्नं धावन्तमनु धावति ।
इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ ११ ॥
सुदेवस्त्वा महानग्नीर्बबाधते महतः साधु खोदनम् ।
कुसं पीवरो नवत् ॥ १२ ॥
वशा दग्धामिमाङ्गुरिं प्रसृजतोऽग्रतं परे ।
महान् वै भद्रो यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ १३ ॥
विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते महयः साधु खोदनम् ।
कुमारिका पिङ्गलिका कार्द भस्मा कु धावति ॥ १४ ॥
महान् वै भद्रो विल्वो महान् भद्र उदुम्बरः ।
महाँ अभिक्त बाधते महतः साधु खोदनम् ॥ १५ ॥
यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभेत् ।
तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुदमुद्धरेत् ॥ १६ ॥

महान् अग्नि महानग्न के पीछे दौड़ते हैं। इसकी इन्द्रियों का रक्षक हो। इस ओदन को खा ॥ ११ ॥ महान् अग्नि उत्पीड़न करने वाला, बड़े-बड़ों को कुरेदता है। यह स्थूल या कृश सभी को नष्ट कर देता है ॥ १२ ॥ वशा ने दग्ध उङ्गली की रचना की। अन्य उग्रत को रचते हैं। यह अत्यन्त कल्याणमय है। इस ओदन को खा ॥ १३ ॥ यह महान् अग्नि विशिष्ट पीड़ा दायक है, बड़ों को खोद डालता है। पिंगलि कुमारी कार्य के पश्चात् भाग जाती है ॥ १४ ॥ विल्व और उदुम्बर दोनों ही महान् एवं भद्र हैं। जो महान् ओर से पीड़ित करता है वह बड़े-बड़ों को कुरेदता है ॥ १५ ॥ कुमारी पिंगली यदि वसंत को प्राप्त करे तो तैल-कुण्ड में से अंगुष्ठ के समान कुरेदती हुई इसका उद्धार करे ॥ १६ ॥

१३७ सूक्त

(ऋषि—शिरिम्बिठिः; बुध; वामदेव; ययाति; तिरश्ची द्युतानो वा; सुकक्षः। देवता—अलक्ष्मीनाशनम्; विश्वदेवा ऋत्विक्स्तुतिर्वा, सोमः पवमान; इन्द्रः, मरुतः इन्द्रो बृहस्पतिश्च । छन्द—अनुष्टुप्; जगती, त्रिष्टुप्, गायत्री

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः ।

हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥ १ ॥
कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्रयः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥२॥
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ३ ॥
सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥ ४ ॥
इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥ ५ ॥
सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥
अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तमपस्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥७॥
द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥८॥
अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत् तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥९॥
त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥१०
त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥११॥
तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १२ ॥
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः ।

कर वृत्र का नाश करने के कारण हम इन्द्र को प्रशंसा करते हैं। वह अभीष्ट पूर्वक इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हों ॥ १२ ॥ पापियों को वश में करने के लिए बलवा इन्द्र को रस्सी के समान किया । वह हर्षप्रद यज्ञ में प्रतिष्ठित होते हैं। व इन्द्र सौम्य, प्रसिद्ध एवं तेजस्वी हैं ॥ १३ ॥ वह इन्द्र पर्वत से प्राप्य वज्र समान वर्षी हैं, वह कभी पतित नहीं होते । वह श्रेष्ठ यजमानों के लि यज्ञ के धन को प्राप्त कराते हैं ॥ १४ ॥

१३८ सूक्त

(ऋषि—वत्सः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँइव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥१॥
प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥२
कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधम्॥३

इन्द्र महान् हैं, वह वर्षा-जल से सम्पन्न मेघ के समान वत्स के स्तो द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम सत्य वाली प्रजा पालन करो। उस प्रजा की अग्नियाँ पुष्ट करती हैं और यज्ञ वाहक अग्नि से ब्राह्मण उस प्रजा की रक्षा करते हैं ॥ २ ॥ इन्द्र को कण्व ने स्तोमों द्वा यज्ञ साधन रूप में किया और उसी को जामि आयुध कहते हैं ॥३॥

१३६ सूक्त

(ऋषि—शशकर्णः । देवता—अश्विनौ । छन्द—बृहती, गायत्री, ककुप्)

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥१॥
यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषाँ अनु ।
नृम्णं तद् धत्तमश्विना ॥ २ ॥
ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः ।
एवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥३॥
अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।
अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥४॥

यदप्सु यद् वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् ।
तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥

हे अश्विद्वय ! इसके शिशु के विचरणार्थ एवं रक्षा के लिए इसे शृगाल रहित गृह प्रदान करो और इसके शत्रुओं को दूर करो ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! अन्तरिक्ष और स्वर्ग में जो धन है, निषाद पंचम मनुष्यों में जो धन है, उसे हम में प्रतिष्ठित करो ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! ब्राह्मण तुम्हारे कर्मों का परिमर्शन करते हैं, उस सब कर्म को तुम कण्व कृत ही समझो ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! यह हवि धन से युक्त है, यह स्तोम वर्म द्वारा सिंचित होता है, यह सोम माधुर्यमय है । तुम इसी सोम के द्वारा आवरक वैरी के जानने वाले हो ॥४॥ हे अश्विद्वय ! जल, ओषधियों और वनस्पतियों में जो कर्म निहित है, उससे मुझे सम्पन्न करो ॥ ५ ॥

१४० सूक्त

(ऋषिः—शशकर्णः । देवता—अश्विनौ । छन्द—बृहती; अनुष्टुप्; त्रिष्टुप्)

यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वा देव भिषज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥१॥
आ नूनमश्विनोर्ऋषि स्तोमं चिकेत वामया ।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥ २ ॥
आ नून रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना ।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ३ ॥
यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि ।
यद् वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ४ ॥
यद् वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद् वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद् वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥५॥

हे अश्विद्वय ! तुम द्रुतगामी और चिकित्सा कर्म में कुशल हो । तुम्हारा यह वत्स मतियों द्वारा बींधा नहीं जाता । तुम हवि-सम्पन्न के निकट गमन करते हो ॥ १ ॥ अपनी उपासना-योग्य बुद्धियों के द्वारा ऋषियों ने

अश्विनी कुमारों के स्तोत्र को जान लिया। अतः माधुर्यमय सोम की अथर्व से सिंचित करो॥ २॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम द्रुतगामी रथ पर आरूढ़ होने वाले हो। तुम्हारे निमित्त की जाती हुई स्तुति व्योम के समान स्थिर रहे॥ ३॥ हे अश्विनीकुमारो! हम उक्थों द्वारा तुम्हारा आश्रय लेते हैं। यह कपर की ही कृपा है कि हम वाणी के द्वारा तुम्हारी सेवा कर रहे हैं॥४॥ हे अश्विद्वय! कक्षीवान्, दीर्घतमा और व्यश्व ऋषियों ने तुम्हें आहुति दी है। वेन का पुत्र पृथु तुम्हारे सब सदनों में है, अतः तुम चैतन्य होओ॥५॥

१४१ सूक्त

(ऋषि:—वत्सकण्वः। देवता—अश्विनौ। छन्द—अनुष्टुप्; जगती; बृहती)

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम्॥ १॥
यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद् वा वायुना भवथः समोकसा।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद् वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः॥२॥
यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये।
यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः॥ ३॥
आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ॥ ४॥
यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम्।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम्॥ ५॥

हे अश्विनीकुमारो! तुम हमारे रक्षक के रूप में आओ। तुम हमारे गृह की रक्षा करते हुए मिलो। हमारे शरीर के, पुत्र पौत्रादि के रक्षक रूप में प्राप्त होओ और संसार की रक्षा करने वाले होकर मिलो॥१॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम इन्द्र के रथ में साथ ही बैठकर चलते हो। तुम वायु के साथ रहते हो। तुम आदित्य और ऋभुओं के स्नेही हो। तुम विष्णु के विक्रमणों में भी युक्त हो॥ २॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम यजमानों को शीघ्रता से प्राप्त होते हो। तुम अपनी श्रेष्ठ रक्षण-शक्ति से युद्ध में शत्रु को वश करते हो।

अन्न प्राप्ति के लिए मैं तुम्हें आहूत करता हूँ ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! यह हव्य तुम्हारे लिए हितकारी हैं। यह सोम तुर्वश, यदु और कण्व के हैं। तुम यहाँ अवश्य आओ ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! दूर की या निकट की औषधि को अपने दानी मन द्वारा विशिष्ट शक्ति के लिए प्रदान करो और शिशु के निमित्त गृह प्रदान करो ॥ ५ ॥

१४२ सूक्त

(ऋषि—शशकर्णः। देवता—अश्विनौ। छन्द—अनुष्टुप्; गायत्री)

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १ ॥
प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि।
प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ २ ॥
यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥ ३ ॥
यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥ ४ ॥
प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृपाह्याय शर्मणे।
प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥ ५ ॥
यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः।
यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥ ६ ॥

मैं अश्विनीकुमारों को ज्ञान बुद्धि के साथ रहने वाला मानता हूँ। हे मेधे ! तुम मेरी बुद्धि को प्रकाशित करो और मनुष्यों को धन दो ॥ १ ॥ हे स्तोताओ ! तुम प्रातः समय अश्विद्वय को प्रबोधित करो। हे सत्य रूप देवी, तुम उन्हें प्रशंसनीय करो। हे होता ! तुम उनके विस्तृत यश को सब ओर फैलाओ ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो के रथ ! तू अपने तेज से उषा से मिलता हुआ सूर्य के साथ दमकता है। वह रथ अश्वों द्वारा मार्ग को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ जब रश्मियाँ पान की हुई के समान होती हैं, तब गौओं का थनों

से दोहन होता है। उस समय हे अश्विद्वय ! ऋत्विजों की वाणी तुम्हारी स्तुति करती है ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! महान् ऐश्वर्य, मनुष्यों को वश में करने वाला बल और कल्याण को प्राप्त करने के लिए सुन्दर बुद्धि द्वारा मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम अपने पालन करने वाले के निमित्त अपनी बुद्धियों द्वारा विराजमान होते हो और तुम कल्याणकारी कार्यों द्वारा प्रशंसा के योग्य होते हो ॥ ६ ॥

१४३ सूक्त

(ऋषि-पुरुमीढाजमीढौ; वामदेवः; मेध्यातिथिः । देवता-अश्विनौ । छन्द त्रिष्टुप्)

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥ १ ॥
युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् ॥२॥
को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥ ३ ॥
हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥ ४ ॥
आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥५॥
नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद् वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीढासो अग्मन् ॥६॥
इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥
मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ८ ॥
पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।

सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वां इत् ताँ उप याता पिबध्यै ॥९॥

हे अश्विनीकुमारो ! हम तुम्हारे वेगवान् रथ का आज आह्वान करते हैं। तुम्हारा वह रथ ऊँचे नीचे स्थानों में जाता तथा सूर्या का वहन करता है ! वह वाणी का वहनकर्त्ता, वसुओं को प्राप्त कराने वाला तथा गौओं से सु गत होने वाला है। मैं उसी रथ को आहूत करता हूँ ॥१॥ हे अश्विद्वय ! तुम लक्ष्मी के अधिष्ठात्री देवता हो, तुम उसे अपनी शक्तियों द्वारा सेवन करते हो और उसे आकाश से पतित नहीं होने देते। रथ में तुम्हें वहन करने वाले विशाल अश्व और अन्न तुम्हारे शरीर से सदा मिले रहते हैं ॥ २ ॥ कौन हविर्दाता रक्षा-प्राप्ति के लिए और संस्कारित सोम को पीने के लिए तुम्हें आहूत कर रहा है, कौन तुम्हारी सेवा कर रहा है ? यज्ञ-सेवी इन्द्र को नमस्कार है। अश्विनीकुमारो को यहाँ लाने वाले के लिए भी मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम अपने स्वर्णिम रथ के द्वारा इस यज्ञ स्थान में आगमन करो। तुम सोम के मधुर रस का पान करते हुए इस सेवक पुरुष को रत्न-धन प्रदान करो ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम अपने स्वर्णिम रथ के द्वारा आकाश से पृथिवी पर आगमन करो । अन्य पूजक तुम्हें रोक न सकें, मैं तुम्हारे निमित्त स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥ हे अश्विद्वय ! स्तोता मनुष्य स्तुति के साथ ही आजमीढ़ होते हैं। इस स्तोता यजमान को वीर्य द्वारा आविर्भूत होने वाले पुत्र पौत्रादि से युक्त धन दोनों लोकों में दो ॥ ६ ॥ हे अश्विद्वय ! इन्हें ऐसी सुबुद्धि दो, जिससे यह यजमान परस्पर समान मति वाले हों। इनकी अभिलाषा तुम पर ही निर्भर रहे और तुम इस स्तोता के रक्षक होओ ॥ ७ ॥ हमारे लिए आकाश मधुमय हो, अन्तरिक्ष मधुमय हो औषधियाँ भी मधुमती हों और क्षेत्रपति भी मधुमय हो। हम अमृतत्व को प्राप्त हुए उसके अनुगामी होते हुए घूमें ॥८॥ तुम्हारा स्तोत्र-रूप कर्म आकाश और पृथिवी में फलों का वर्धक है तुम सोम-पान करके गोपूजा वाले सैकड़ों स्तोत्रों को प्राप्त होते हो ॥ ९ ॥

॥ इति विंशं काण्डं समाप्तम् ॥

॥ इति अथर्ववेद समाप्तम् ॥

मुद्रक—पं० पुरुषोत्तमदास कटारे, हरीहर मशीन प्रेस, मथुरा।